

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल 1891 परिनिर्वाण : 6 दिसंबर 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 3

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 3
डॉ. अम्बेडकर – बंबई विधानमंडल में

पहला संस्करण : 1993
दूसरा संस्करण : 1998
तीसरा संस्करण : 2013

ISBN : **978-93-5109-003-8**

आवरण परिकल्पना : विनय कुमार पॉल
पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

मूल्य : सामान्य (पेपरबैक) : ₹ 40

प्रकाशक :
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571, 23320576, 23320589
फैक्स : 23320582
वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in

मुद्रक : अरिहंत ऑफसेट, जनकपुरी, नई दिल्ली

व्यक्तिगत स्तर पर मैं यह स्पष्ट कहना चाहता हूं कि मैं नहीं मानता कि इस देश में किसी विशेष संस्कृति के लिए कोई जगह है, चाहे वह हिंदू संस्कृति हो, या मुस्लिम संस्कृति, या कन्नड़ संस्कृति, या गुजराती संस्कृति। ये ऐसी चीजें हैं, जिन्हें हम नकार नहीं सकते, पर उनको वरदान नहीं मानना चाहिए, बल्कि अभिशाप की तरह मानना चाहिए, जो हमारी निष्ठा को डिगाती हैं और हमें अपने लक्ष्य से दूर ले जाती हैं। यह लक्ष्य है, एक ऐसी भावना को विकसित करना कि हम सब भारतीय हैं।

परामर्श सहयोग :

माननीय कल्याण मंत्री,
श्री सीताराम केसरी,
भारत सरकार.

माननीय कल्याण राज्य मंत्री,
श्री के. वी. थंगाबालू,
भारत सरकार.

श्री माता प्रसाद, आई. ए. एस.
सचिव,
कल्याण मंत्रालय.

श्री गंगा दास, आई. ए. एस.
संयुक्त सचिव,
कल्याण मंत्रालय,
सदस्य सचिव,
डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान.

संकलन (अंग्रेजी)

श्री वसंत मून

अनुवादक तथा पुनरीक्षक

श्री राधेश्याम बंधु

डा. रतनलाल शर्मा

श्री तेज सिंह

डा. (श्रीमती) जी.वी. अरोड़ा

श्रीमती सुमन बाजपेयी

श्री रजनी रमण झा

श्री मोहन लाल प्रेमी

श्री ललितेश्वर मिश्रा

डा. विनय

श्री सीताराम खोड़ावाल

श्री अशोक

श्री मथुरा प्रसाद नौटियाल

डा. भगवती प्रसाद निदारिया

आमुख

भारतरत्न बाबा साहेब डा. भीमराव अम्बेडकर हमारे संविधान-निर्माता के साथ-साथ प्रबुद्ध चिंतक एवं महान समाजशास्त्री भी थे। उन्होंने भारतीय दर्शन में विद्यमान रूढ़िवादी तत्वों को चुनौती दी। वे दलित, शोषित एवं सर्वहारा समाज के मसीहा बन गए, लेकिन उनके विचार एवं साहित्य भारतीय भाषाओं में न होने के कारण आम आदमी तक नहीं पहुंच पा रहे हैं।

मुझे प्रसन्नता है कि कल्याण मंत्रालय के संस्थान डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान ने डा. अम्बेडकर के संपूर्ण वांङ्मय को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित करके यथाशीघ्र प्रकाशित कराने का संकल्प लिया है। गत वर्ष बाबा साहेब के महापरिनिर्वाण दिवस पर इस वाङ्मय का दूसरा खंड हिंदी एवं तमिल भाषा में प्रकाशित कर राष्ट्र को समर्पित किया गया था।

अब इस वांङ्मय के तीसरे, चौथे और पांचवें खंड को हिंदी और तमिल भाषा में तथा प्रथम खंड को पंजाबी भाषा में अनूदित करके प्रकाशित किया गया है, जिसे पाठकों को समर्पित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है।

आशा है कि यह प्रायोजना प्रधान संपादक डा. श्याम सिंह शशि, संपादक मंडल के सभी सदस्यों, अनुवादकों, पुनरीक्षकों आदि के सहयोग से यथाशीघ्र पूरी होगी और बाबा साहेब के विचार जन-जन तक पहुंचकर समाज को एक नई दिशा प्रदान करेंगे।

सीताराम केसरी

(सीताराम केसरी)
कल्याण मंत्री
भारत सरकार

नई दिल्ली
5 मार्च 1993

संदेश

बाबा साहेब हिंदू समाज के सभी दमनकारी स्वरूपों के विरुद्ध विद्रोह के प्रतीक मात्र ही नहीं थे, अपितु वह बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। एक राजनीतिज्ञ तथा राष्ट्रीय नेता के नाते उन्होंने अपने पीछे संविधान के रूप में एक मूल्यवान विरासत छोड़ी है। उनका यह दृढ़ मत था कि शिक्षा के बिना प्रगति संभव नहीं है। उन्होंने दलितों तक शिक्षा पहुंचाने के लिए अनेक स्कूलों और कालिजों की स्थापना की। शोषितों के उद्धार के लिए उन्होंने जीवन भर जो संघर्ष किया, उससे उन्हें सामाजिक और आर्थिक अन्याय से पीड़ित मानवता के उद्धारक के रूप में अंतर्राष्ट्रीय-मान्यता प्राप्त हुई।

मुझे प्रसन्नता है कि उनके विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए *डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान* हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उनके भाषणों और लेखों को खंडबद्ध रूप में प्रकाशित कर रहा है।

मैं इस प्रायोजना की सफलता की कामना करता हूं।

थंगा बालू
कल्याण राज्य मंत्री,
भारत-सरकार



dqekjh lSytk
KUMARI SELJA

Lkkekftd U;k; vkSj vf/kdkfjrk ea=h
Hkkjr ljdkj
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
rFkk
v/;{k] Mk- vEcsMdj izfr"Bku
CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

Lkans'k

eq>s ;g tkudj vR;ar çlUurk gks jgh gS fd lkekftd U;k; vkSj vf/kdkfjrk ea=ky; dk Lok;Ùk'kklh laLFkku] Mk- vEcsMdj çfr"Bku }kjk ckck lkgsc Mk- vEcsMdj ds ys[kksa ,oa Hkk"k.kksa ds [kaM la[;k 3 dk iqu% lLdj.k çdkf'kr fd;k tk jgk gSA

Hkkjr jRu Mk- ch- vkj- vEcsMdj Hkkjrh; lkekftd&jktuhfrd vkanksyu ds ,sls iqjks/kk jgs gSa] ftUgksaus thou i;ZUr lekt ds vkf[kjh ik;nku ij lq?kq"kqIr 0;fDr;ksa dh csgrjh ds fy, dk;Z fd;kA Mk- vEcsMdj cgqeq[kh çfrHkk ds /kuh Fks blhfy, mUgksa ys[ku esa fo"k; dh nf'kfud eheka lk ççQfVr gksrh gSA ckck lkgsc dk fpUru ,oa dk;Z lekt dks ckSf)d] vkfFkZd ,oa jktuhfrd leF) dh vksj ys tkus okyk rks gS gh] lkFk gh euq"; dk tkx:d ekuoh; xfjek dh vk/;kfRedrk ls lqlfTtr Hkh djrk gSA

Ckkck lkgsc dk lai.kZ thou neu] 'kks"k.k vkSj vU;k; ds fo#) vuojr Økfr dh 'kks;Z&xkFkk gSA os ,d ,sls lekt pkgrs Fks ftlesa o.kZ vkSj tkfr dk vk/kkj ugha cfYd lerk] Lora=rk] cU/kqRo o ekuoh; xfjek lokZifj gksa vkSj lekt esa tUe] oa'k vkSj fyax ds vk/kkj ij fdlh çdkj ds HksnHkko dh dksbZ xqatkb'k u gksA lerk] Lora=rk vkSj cU/kqRo ds çfr dr lafdYi ckck lkgsc dk ys[ku çcq) euh"kk dk çkekf.kd nLrkost gSA

Hkkjrh; lekt esa 0;kIr fo"kerkoknh o.kZ0;oLFkk] ftlds rgr ekuo&ekuo esa Hksn fd;k tkrk Fkk] ls Mk- vEcsMdj dbZ ckj Vdjk,A bl Vdjkgy ls Mk- vEcsMdj esa ,sls tTck iSnk gq;s vkSj] ftlds dkj.k mUgksaus lerkoknh lekt dh lajpuk dk viuk thou dk fe'ku cuk fy;kA lerkoknh lekt ds fuekZ.k dh çfrc)rk ds dkj.k Mk- vEcsMdj us fofHkUu /keksZa dh lkekftd&/kkfeZd 0;oLFkk dk v/;;u o rqyukRed fpUru&euu fd;kA

Mk- vEcsMdj çfr"Bku] ckck lkgsc Mk- vEcsMdj ds vU; [kaMksa dks Hkh 'kh?kz çdkf'kr djus esa ç;kljr gSA eq>s iwjh vk'kk gS fd ikBdksa dks 'kh?kz gh vçdkf'kr vU; [kaM Hkh iqLrdksa ds vkdkj esa çkIr gks tk,xsA

vk'kk gS] ikBdx.k bl [kaM ds ckjs esa viuh veY; fopkj ,oa lq>ko miyC/k djok,sa ftlls fd bu vufnr [kaMksa dh xq.koÙkk ,oa lkt&lTtk dks vkxkeh [kaMksa esa vkus okys le; esa csgrj cuk;k tk ldsA

¼dqekjh lSytk½

परामर्श सहयोग

कुमारी सैलजा
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री डी. नैपोलियन
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री पी. बलराम नाईक
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्र

श्री अनिल गोस्वामी
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

श्री संजीव कुमार
संयुक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री विनय कुमार पॉल
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री कुमार अनुपम
विशेष कार्याधिकारी

डॉ. शशि भारद्वाज
सम्पादक

श्री जगदीश प्रसाद 'भारती'
व्यापार प्रबंधक

संपादकीय

हमें यह लिखते हुए हर्ष होता है कि 'डा. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय प्रायोजना' का कार्य अनेक कठिनाइयों के बावजूद अबाध गति से आगे बढ़ रहा है। हमने बाबा साहेब डा. भीमराव अम्बेडकर के संपूर्ण वाङ्मय को हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में अनूदित करते समय विषयानुसार श्री वसंत मून के अंग्रेजी संकलन को आधार तो बनाया है, किंतु सुविधा की दृष्टि से उसे कुछ अधिक खंडों में समाविष्ट करने का प्रयास किया है।

अनुवाद कार्य अत्यंत कष्ट साध्य होता है तथा उसका पुनरीक्षण और संपादन उससे भी अधिक परिश्रम की अपेक्षा रखता है। हमारे समक्ष समय की सीमा भी है, यद्यपि पूरी प्रायोजना को दो-तीन वर्षों में पूरा करने का संकल्प असंभव सा लगता है, फिर भी हमें अपने विद्वान अनुवादकों, पुनरीक्षकों तथा संपादन-सहयोगियों की क्षमता पर पूरा भरोसा है, जिनके अनवरत परिश्रम से हम इस कार्य को यथाशीघ्र पूरा कर लेंगे।

हमारा अपने कृपालु पाठकों से पुन: निवेदन है कि वे इस अनुवाद को साहित्यिक अनुवाद की भांति नहीं, बल्कि ज्ञान-विज्ञान के सीधे-साधे रूपांतर की तरह अपनाएंगे तथा बाबा साहेब के चिंतन को आत्मसात् करेंगे।

हमने बाबा साहेब डा. अम्बेडकर के अंग्रेजी लेखों एवं भाषणों के दूसरे खंड को पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में तीन खंडों में विभाजित किया है। इन तीन खंडों के विषय है: डा. अम्बेडकर—बंबई विधान-मंडल में, साइमन कमीशन के साथ, गोलमेज सम्मेलन में।

हमने उपाधि स्वरूप प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी के 'सर' शब्द के स्थान पर 'माननीय' शब्द का प्रयोग किया है। हमें आशा है, हमारे सहृदय पाठक 'माननीय' शब्द को उसी रूप में लेंगे। हमारा विश्वास है, इस खंड को भी पाठकों का पूर्ववत् प्यार मिलेगा।

डा. श्याम सिंह शशि
प्रधान संपादक

विषय-सूची

पृ. संख्या

डा. अम्बेडकर
बंबई विधान मंडल में

की कोई जरूरत नहीं है। सरकार द्वारा इस एकाधिकार को किस प्रकार व्यवस्थित किया गया है? प्रत्येक प्रांत में लोग मद्यपान पर कितना पैसा खर्च करते हैं, यदि आप इसके आंकड़े देखें, तो आप पाएंगे कि बंबई प्रेसिडेंसी नशाखोरी के संबंध में प्रथम स्थान पर है। मैं देखता हूं कि मद्रास में हर व्यक्ति मद्यपान पर 1-3-7 (1.22) रुपये खर्च करता है। बंगाल में 0-7-1 (0.45) रुपये, संयुक्त प्रांत में 0-4-7 (0.28) रुपये, पंजाब में 1-7-8 (1.48) रुपये, बर्मा में 0-13-3 (1.25) रुपये, बिहार और उड़ीसा में 0-8-7 (0.58) रुपये, मध्य प्रांत और बरार में 0-15-0 (0.94) रुपये, आसाम में 0-13-3 (.83) रुपये, लेकिन बंबई में यह भयानक आंकड़े हैं-प्रति व्यक्ति 2-2-9 (2.18) रुपये। मैं अपने माननीय मित्र वित्त सदस्य से पूछना चाहता हूं कि क्या यह समर्थन करने योग्य प्रणाली है? अध्यक्ष महोदय सरकार ने मद्यनिषेध की नीति को लागू करने का निर्णय लिया है और इस नीति को सफल बनाने के लिए कुछ उपाय भी किए हैं। लेकिन नशाखोरी कम नहीं हुई है। सबसे पहले इन उपायों में राशनिंग-प्रणाली को लागू किया गया। अध्यक्ष महोदय! अब सरकार ने राशन के माध्यम से देशी शराब की बिक्री की, जो सीमा तय की है, वह 1,883,804 गैलन है। लेकिन खपत की रोकथाम पर लगाई गई सीमा मात्र एक धोखा और बहाना है, क्योंकि खपत की वास्तविक मात्रा केवल 1,405,437 गैलन है, अर्थात बिक्री की वास्तविक मात्रा खपत की मात्रा से 478,367 गैलन अधिक है। मैं समझता हूं कि मद्यनिषेध की नीति को सफल बनाने के लिए जो दूसरा उपाय लागू किया गया, वह है सलाहकार समिति की नियुक्ति। लेकिन मुझे पता चला है कि इस सलाहकार समिति के 40 प्रतिशत सदस्य मद्यनिषेध के विरोधी हैं। अध्यक्ष महोदय! मैं नहीं जानता कि सरकारी पक्ष के सदस्य इस परिषद को उतना मान दे रहे हैं, जितना उनसे अपेक्षित है। अध्यक्ष महोदय! इस प्रेसिडेंसी की आर्थिक-प्रणाली की विवेचना करते समय मैं माननीय वित्त सदस्य को यह सुझाव देना उचित समझता हूं कि लोगों की समृद्धि ही राज्य की सबसे बड़ी धरोहर होती है। उन्हें उनको दयनीय या भिखारी नहीं बना देना चाहिए। जो राज्य अपनी जनता को भिखारी बना देता है, अंततः वह खुद भी भिखारी हो जाता है। अध्यक्ष महोदय! अब मैं कुछ और बातों का उल्लेख करना चाहता हूं। लेकिन मैं जानता हूं कि मुझे बोलने के लिए जो समय दिया गया है, वह अब समाप्त होने वाला है। अतः मुझे कुछ और समय देने की कृपा करें।

माननीय अध्यक्ष : नहीं, नहीं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : जब मैं राजस्व के अन्य स्रोतों के बारे में विचार करता हूं, तो मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूं कि माननीय वित्त सदस्य प्रेसिडेंसी के स्रोतों का प्रबंध इस किफायत से नहीं कर रहे हैं, जिससे कि प्रेसिडेंसी को पूरा लाभ मिले। उदाहरण के तौर पर राजस्व के स्रोत के रूप में वनों को लें। वर्ष 1921-22 में वनों से 74.9 लाख रुपये राजस्व के रूप में प्राप्त हुए थे, लेकिन 1927-28 में वनों से केवल 74 लाख रुपये का ही राजस्व

प्राप्त हुआ। इस प्रकार आप देखेंगे कि राजस्व में बढ़ोतरी नहीं हो रही है। लेकिन जब आप वनों पर होने वाले व्यय को देखेंगे, तो आप पाएंगे कि व्यय 40 लाख रुपये से बढ़कर 48 लाख रुपये हुआ है। अंततोगत्वा, यदि वनों से होने वाले लाभ के बारे में बात करें, तो आप पाएंगे कि लगभग चार लाख रुपये का घाटा है।

अध्यक्ष महोदय! अब मैं सिंचाई और लोक-निर्माण के बारे में बोलना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि विवरण देने से मेरा समय बरबाद होगा। लेकिन मैं एक बात अवश्य पूछना चाहता हूं कि जब सरकार कोई उद्योग या निर्माण अपने हाथ में लेती है तो क्या वह इस कार्य को प्रधानतया राजस्व प्राप्ति के लिए करती है, या यह प्रधानतया सेवा के लिए करती है, यद्यपि संयोग से राजस्व भी प्राप्त हो जाता है, या फिर यह प्रधानतया सेवा के लिए ही करती है? मैं नहीं मानता कि सरकार ने जो सेवा संबंधी काम अपने हाथ में लिए हैं, उस संबंध में सरकार की कोई निश्चित या परिभाषित नीति है। उदाहरण के लिए मैं व्यक्तिगत रूप से महसूस करता हूं कि इस संबंध में मेरे और सदन के दूसरे माननीय सदस्यों में मतभेद हो सकता है। लेकिन मैं महसूस करता हूं कि सिंचाई विभाग से जितनी आय अपेक्षित है, वह नहीं होती। मेरे माननीय मित्र कर जांच समिति की रिपोर्ट देखें, तो उन्हें पता चलेगा कि पानी की दर बहुत कम है। मेरे विचार से सदन के इस पक्ष के हम सभी सदस्यों का अधिकार है कि हम वित्त सदस्य से प्रेसिडेंसी के स्रोतों के अच्छे प्रबंध की अपेक्षा करें।

अध्यक्ष महोदय! अब मैं इस बजट के व्यय के बारे में विचार प्रस्तुत करूंगा। मैं जानता हूं कि इस सदन के अधिकांश सदस्य घाटे से व्याकुल हो गए होंगे। मैं कह सकता हूं कि मैं नहीं हुआ हूं। घाटा कोई ऐसी चीज नहीं है, जिससे माननीय सदस्यों को भयभीत होना चाहिए। मुझे जिस बात ने व्याकुल किया है, वह यह है कि बजट का घाटा किसी सामाजिक विकास की बड़ी नीति को अपनाए जाने के परिणाम स्वरूप नहीं हुआ, बल्कि घाटा पूर्णत: प्रशासन के अनुत्पादक खर्च में बढ़ोतरी के कारण हुआ है।

अध्यक्ष महोदय! मैं कहूंगा कि माननीय सदस्य, वित्त विभाग के सचिव, ने कल सदस्यों को यह कहकर कि वे समझदारी से काम लें, बहुत बुद्धिमत्ता दिखाई। उन्होंने कहा था कि यदि सदन के सदस्य चाहते हैं कि सरकारी पक्ष के सदस्य उन्हें गंभीरता से लें, तो उन्हें तर्कसंगत होना चाहिए। अध्यक्ष महोदय! मैं उस दलील के महत्व को स्वीकार करता हूं। लेकिन मैं यह दलील उनके पास वापस भेजना चाहता हूं और पूछना चाहता हूं कि इस प्रेसिडेंसी के व्यय में जो वृद्धि हुई है, क्या वह न्यायोचित है और क्या प्रशासन की गुणवत्ता के आधार पर उसे न्यायसंगत सिद्ध किया जा सकता है?

अध्यक्ष महोदय! अगर आप परिषद के प्रशासन के खर्चे की वर्ष 1910 से लेकर वर्ष 1927-28 तक की तुलना करें और मैं तुलना के लिए ऐसे विभागों के आंकड़े ले रहा हूं, जो उस समय पूरी तरह से प्रांत स्तर के थे और आज भी हैं, तो आप पाएंगे कि सामान्य

प्रशासन का खर्च वर्ष 1910-11 में 17 लाख रुपये था। आज वही 126 लाख रुपये हो जाता है। मैं माननीय वित्त सचिव से पूछना चाहता हूं कि क्या यह न्यायोचित है।

श्री जी. विल्स : यदि माननीय सदस्य मुझे इजाजत दें, तो मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि कल मैंने माननीय सदस्य राव साहब दादूभाई देसाई को स्पष्ट किया था कि बजट के वक्तव्य में जो आंकड़े दिए गए हैं, उनको बहुत सावधानी से इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। सुधारों के पहले जो सामान्य प्रशासन का वर्गीकरण था, वह वर्गीकरण इस समय नहीं है। उस समय भूमि-हस्तांतरण पर होने वाले खर्च की मद अन्य शीर्ष के अंतर्गत रखी गई थी, लेकिन उसे इस समय सामान्य प्रशासन के शीर्ष के अंतर्गत शामिल किया गया है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : जो कुछ भी हो, विवरणों में जो भी दिया गया है, हम उसे मानने के लिए बाध्य हैं, बशर्ते कि उनमें संशोधन कर लिए गए हों, जैसा कि मेरे माननीय मित्र ने कहा है। मेरे विचार में इस प्रेसिडेंसी के सामान्य प्रशासन का व्यय बहुत ज्यादा है। वास्तव में, इस प्रेसिडेंसी के पुराने इतिहास को ध्यान में रखने पर भी इसका कोई औचित्य नहीं है। उदाहरण के तौर पर आज हमारे पास चार कार्यकारी पार्षद, तीन मंत्री और उनके मातहत काम करने वाले लगभग 25 सचिव तथा उप-सचिव हैं। मेरा मानना है कि मेरे माननीय मित्र वित्त सचिव भी इसे न्यायसंगत नहीं कहेंगे। माननीय वित्त सदस्य ने इस प्रेसिडेंसी के प्रशासन की अत्यधिक फिजूलखर्ची का बचाव करने का बहुत प्रयास किया है। मैं आशा करता हूं, अध्यक्ष महोदय मुझे कुछ समय और देंगे।

माननीय अध्यक्ष : नहीं, माननीय सदस्य को समझना चाहिए कि मेरे पास समय की बहुत कमी है। उनके पास बोलने के लिए दो मिनट का समय और है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: अध्यक्ष महोदय! ठीक है। मुझे जो कहना था, अब नहीं कह सकूंगा। मैं अब अपनी बात समाप्त कर रहा हूं। अध्यक्ष महोदय! मैं अपने वक्तव्य के इस भाग में अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूं। हम अपने माननीय सदस्यों से सुन रहे हैं कि बहुत ज्यादा छंटनी होनी चाहिए। मैं इसके लिए इनका पूरी ईमानदारी से समर्थन करता हूं, क्योंकि मैं विश्वास करता हूं कि अभी छंटनी की बहुत गुंजाइश है। लेकिन, महोदय! मैं इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकता कि प्रस्तावित छंटनी से कोई बहुत भारी सफलता नहीं मिलने वाली है। छंटनी करने पर भी हमें एक या दो करोड़ रुपये की ही राहत मिल सकती है। लेकिन क्या इससे हमारी समस्या का निदान हो सकेगा? मैं जानता हूं कि इस उपाय से हम बजट को संतुलित कर सकेंगे। लेकिन क्या बजट को संतुलित करना ही इस सदन की एकमात्र आकांक्षा है? मैं महसूस करता हूं कि मेरा यह कहना सही है कि अनिवार्य शिक्षा, चिकित्सा की सुविधा, नशाखोरी से लोगों को मुक्ति दिलाने और जीवन की सभी सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए परिषद अपनी इच्छा के प्रति ईमानदार है। अब मैं सदन को सचेत करना चाहता हूं कि अच्छे काम करने के लिए कठिन परिश्रम करने की

आवश्यकता होती है। हर तरक्की की कीमत अदा करनी पड़ती है और जो लोग इसके लिए त्याग करते हैं, उन्हें तरक्की के लाभ मिलते हैं।

II*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! यह घाटे का बजट होने के कारण निस्संदेह एक निराशाजनक बजट है। लेकिन यह केवल घाटे की वजह से निराशाजनक होता, तो उसे गंभीरता से लेना मेरे लिए बिल्कुल जरूरी नहीं था। चाहे जो भी हो, बजट केवल निराशाजनक नहीं है, बल्कि मेरे विचार से निंदनीय भी है और स्थिति वास्तव में बहुत गंभीर है।

महोदय! आप जानते हैं कि हम लोग व्यावहारिक रूप से 'मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों' के प्रथम दशक को पूरा करने जा रहे हैं। इसलिए हम लोगों के लिए 1921 से अब तक की स्थिति का आकलन करना अवश्य ही लाभदायक होगा। महोदय! इन सुधारों को इसलिए शुरू किया गया था कि सरकार की ओर से स्थानांतरित विषयों को सुरक्षित विषयों से ज्यादा ध्यान मिले। लेकिन, महोदय! यदि हम 1921 से अब तक प्रेसिडेंसी के खर्चों का विश्लेषण करें,तो हमें क्या ज्ञात होता है? हमारी यह आशा पूरी नहीं हुई कि नए शासन में विकासोन्मुख उद्देश्यों पर होने वाले खर्च को उन विषयों के मुकाबले जो केवल कानून और शांति व्यवस्था को कायम रखने में मदद करते हैं, प्राथमिकता दी जाएगी।

मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहूंगा। मैंने विभिन्न प्रांतों में 'हस्तांतरित' और 'आरक्षित' विभागों पर हुए खर्च के कुछ आंकड़े एकत्रित किए हैं। महोदय! आपकी अनुमति से मैं उन आंकड़ों को सदन के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूं, ताकि सदन को ज्ञात हो सके कि स्थिति कितनी शोचनीय है। जो आंकड़े मैं दे रहा हूं, वे वर्ष 1921-22 और वर्ष 1925-26 में विभिन्न प्रांतों में हस्तांतरित और आरक्षित विभागों के खर्चों में हुए प्रतिशत में कमी या वृद्धि को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। ये आंकड़े इस प्रकार हैं :

प्रांत	आरक्षित विभाग		हस्तांतरित विभाग	
	वृद्धि, प्रतिशत	कमी, प्रतिशत	वृद्धि, प्रतिशत	कमी, प्रतिशत
मद्रास	1.21	--	14.26	--
बंबई	6.33	--	5.82	--
बंगाल	--	--	6.11	--
संयुक्त प्रांत[Ψ]	--	--	12.57	--
पंजाब	10.40	--	29.41	--
बर्मा	34.36	--	6.44	--

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 22, पृ. 167-70, 21 फरवरी 1928

Ψ आरक्षित विभागों के खर्च में कमी

प्रांत	आरक्षित विभाग		हस्तांतरित विभाग	
	वृद्धि, प्रतिशत	कमी, प्रतिशत	वृद्धि, प्रतिशत	कमी, प्रतिशत
बिहार और उड़ीसा	5.89	--	44.66	--
मध्य प्रांत	6.24	--	18.15	--
आसाम	8.24	--	12.75	--

महोदय! यदि हम इन आंकड़ों पर ध्यान दें, तो हमें क्या ज्ञात होता है? मुझे यह जानकर खेद होता है, और इस सदन के हर व्यक्ति को भी अवश्य ही दुख होगा कि आरक्षित और हस्तांतरित विभागों के आनुपातिक खर्च के मामले में बंबई जैसे महत्वपूर्ण प्रांत का स्थान बहुत नीचे है। यहां तक कि बर्मा जिसकी व्यवस्था बहुत ही खराब है, इस संबंध में बंबई से ऊपर है। महोदय! इसलिए मेरी यह धारणा है कि इसमें जरूर कोई बड़ा घोटाला है। निश्चय ही इस तरीके से बंबई जैसी महत्वपूर्ण प्रेसिडेंसी की वित्तीय व्यवस्था का संचालन नहीं किया जाना चाहिए। अच्छा होता अगर माननीय वित्त सदस्य ने हस्तांतरित विभागों पर जितना ध्यान दिया है, उससे अधिक ध्यान दिया होता। आंकड़ों से स्पष्ट है कि आरक्षित विभागों को अभाव ग्रस्त से भी बदतर स्थिति में लाकर छोड़ दिया गया है। महोदय! माननीय वित्त सदस्य के होने का क्या लाभ है, यदि वह प्रेसिडेंसी की जनता की आंकाक्षाओं को पूरा नहीं करते हैं? सभी वर्ग समग्र रूप से प्रगति की मांग कर रहे हैं। माननीय वित्त सदस्य जानते ही होंगे कि यह मांग कितनी जोरदार है। लेकिन दुर्भाग्य से अभी तक उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया, जिससे कि भविष्य में उनसे कुछ आशा की जा सके।

महोदय! केवल वित्त व्यवस्था ही गड़बड़ नहीं है, बल्कि मेरा तो यह मानना है कि इस प्रेसिडेंसी की आर्थिक दशा वास्तव में बहुत गंभीर है। यदि आप वर्ष 1921-22 से लेकर आज तक हर साल की आर्थिक स्थिति की समीक्षा करें, तो आप पाएंगे कि हर साल बचत में इस हद तक गिरावट होती रही है कि बचत के बजट प्रस्तुत करने के बजाए, हम अपनी सारी बचत खर्च कर चुके हैं और अब हम उस स्थिति में पहुंच गए हैं कि बजट में लगातार घाटा दिखा रहे हैं। वर्ष 1922-23 में बचत 64 लाख रुपये थी, वर्ष 1923-24 में यह घटकर 29.39 लाख रुपये तक आ गई। वर्ष 1925-26 में 91 लाख रुपये का घाटा रहा और हम जानते हैं कि तबसे स्थिति क्या है? महोदय! इन आंकड़ों से आप देख रहे हैं कि इस प्रेसिडेंसी की आर्थिक स्थिति वर्ष प्रतिवर्ष बिगड़ती चली जा रही है और मेरा कहना है कि सरकार द्वारा किए गए वायदों को लेकर भविष्य में स्थिति बहुत गंभीर होगी। महोदय! आप जानते हैं कि कर्जे की भी जल्दी ही पूरी अदायगी करनी है। उन कर्जों की अदायगी के लिए भी कुछ व्यवस्था करनी पड़ेगी और इसके परिणामस्वरूप प्रेसिडेंसी के खाली खजाने पर बहुत बड़ा बोझ पड़ने वाला है। महोदय! परिषद और सरकार सबके लिए अनिवार्य प्राथमिक

शिक्षा के प्रति वचनबद्ध है। परिषद और सरकार ने मद्यनिषेध की नीति को लागू करने का भी वायदा किया है। इन तीनों ही मदों का प्रेसिडेंसी की वित्त व्यवस्था पर बहुत भारी बोझ पड़ेगा और मैं नहीं समझता कि सरकार का कोई भी माननीय सदस्य इन तीनों ही मदों को क्रियान्वित करने के संबंध में अपनी असहमति व्यक्त करे। हमारी वित्त व्यवस्था वर्ष प्रतिवर्ष इन तीनों मदों को शामिल किए बिना भी खराब होती जा रही है, तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि इन तीनों मदों को क्रियान्वित करने पर क्या स्थिति होगी? इस पूरी स्थिति में मुझे सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक यह लगता है कि इन सब बातों से माननीय वित्त सदस्य को कोई परेशानी नहीं है। इस बात का वह कभी इजहार नहीं करते हैं कि उन्हें प्रतिबद्धताओं का अहसास है। उनके बजट वक्तव्य से यह नहीं लगता है कि वह इन दायित्वों के प्रति जागरूक हैं। मेरे विचार में वह केवल एक काम चलाऊ नीति का ही पालन कर रहे हैं, जिसमें आज के अलावा कल की कोई चिंता नहीं है। उनके पास सामान्य नीति की ऐसी कोई रूपरेखा भी नहीं है, जिससे भविष्य के संकटों से निबटा जा सके। 'मेरे बाद प्रलय ही', उनका वेद वाक्य है। वह केवल बजट के घाटे को ही पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं। सूखा-बीमा अनुदान और मेस्टन सहायता में कटौती से क्या लाभ होंगे, उसका वह हिसाब लगा रहे हैं। लेकिन मैं उनसे गंभीरता से पूछना चाहता हूं कि क्या यह छोटी और क्षुद्र उपलब्धियां प्रेसिडेंसी में आर्थिक स्थिरता को लाने में मदद कर पाएंगी? महोदय! मेरे विचार से यह मानना गलत होगा। या तो माननीय वित्त सदस्य हमें विश्वास दिलाएं कि हमारी समस्याओं के निदान स्वरूप इस प्रेसिडेंसी के प्रशासन के खर्च को कम करने की पर्याप्त संभावनाएं हैं, अथवा वह स्पष्ट रूप से बताएं कि हमारी आकांक्षाओं की पूर्ति कर लगाए बिना नहीं होगी। मैं आदरपूर्वक महामहिम गवर्नर के कल के भाषण का उल्लेख करना चाहता हूं, जिसमें उन्होंने संकेत किया है कि कर लगाने के मामले में विधान परिषद पूरी तरह जिम्मेदार है और आवश्यकतानुसार कर लगाना उसके अधिकार क्षेत्र में है। मैं स्वीकार करता हूं कि विधान परिषद को कर लगाने का अधिकार है। लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूं कि इन मामलों में पहल सरकार की तरफ से होनी चाहिए। सरकार को बताना चाहिए कि वह किस प्रकार का कर लगाना चाहती है? क्या सरकार ने ऐसा किया है? किंतु इसके विपरीत सरकार बिल्कुल चुप है। वह हमें बताना नहीं चाहती कि वह क्या करने जा रही है? यह नहीं कहा जा सकता कि कोई योजना बनाने के लिए उसके पास आंकड़े नहीं हैं। हम सब जानते हैं कि कर जांच समिति ने एक बहुत विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें कई सुझाव हैं, जो एक नई और उपयुक्त आर्थिक नीति को शुरू करने के लिए पर्याप्त हैं। मुझे विश्वास है कि यह सब माननीय वित्त सदस्य की मेज पर पड़ा हुआ है, लेकिन लगता है कि इस वि[illegible]में अभी तक कुछ भी नहीं किया गया है। महोदय! मैं समझता हूं कि स्थिति वास्तव में बहुत गंभीर है और यह बहुत उचित समय है कि माननीय वित्त सदस्य को इससे निबटने के लिए एक कुशल नीतिज्ञ की तरह फैसला करना होगा।

III*

डा. भीमराव अम्बेडकर[ψ] (बंबई नगर) : महोदय! मेरे माननीय वित्त मंत्री द्वारा यह दूसरा आर्थिक वक्तव्य प्रस्तुत किया गया है। इसलिए इस बजट की अधिक जांच और सूक्ष्म परीक्षण करना स्वाभाविक होगा। बजट के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करने से पहले मैं यह बात नहीं भूल सकता कि बहस में भाग लेने वाले इस सदन के सभी सदस्यों ने इस बजट की प्रशंसा की है। माननीय वित्त मंत्री ने काफी संतोष का अनुभव किया होगा कि सभी वक्ताओं ने उनके कार्य की प्रशंसा की है। लेकिन मुझे आश्चर्य तो इस बात से है कि इस बजट की उस प्रकार प्रशंसा नहीं हुई है, जिस तरह से मेरे पूर्व वक्ताओं ने की है। उन्होंने जो आर्थिक वक्तव्य प्रस्तुत किया है, उस पर मैंने काफी मनन किया है और मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि यह बजट अभी तक मेरी जानकारी में सबसे घटिया ही नहीं , बल्कि एक खोखला और सारहीन बजट है। इसमें न तो भविष्य के बारे में कोई कल्पना है और न ही उन समस्याओं को पहचानने का प्रयास है, जिससे यह प्रेसिडेंसी जूझ रही है। ऐसा कहने में कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है, लेकिन मैं अपने कथन की पुष्टि में कुछ कहना चाहूंगा। महोदय! एक मद के लिए सरकार मेरी प्रशंसा की पात्र हो सकती है, लेकिन दुर्भाग्य से प्रशंसा मेरे माननीय मित्र के लिए नहीं, बल्कि माननीय गृह मंत्री के लिए होगी। मैं नई योजना की मद संख्या 45 का उल्लेख करना चाहता हूं। इसमें 36,217 रुपये अतिरिक्त व्यय की व्यवस्था पुलिस बल में वृद्धि के लिए है।

महोदय! इस सदन के सरकारी पक्ष के सदस्यों का सरकार बनाने से पहले पुलिस के साथ संबंध सभी जानते हैं। मुझे सफेद पोशाक में कुछ लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पुलिस के पीछे-पीछे चलते हुए 'पीली टोपी हाय-हाय' के नारे लगाने वाला दृश्य अच्छी तरह याद है। एक समय जुल्म और दमन का हथियार समझी जाने वाली पुलिस के साथ कांग्रेस पार्टी की दोस्ती वास्तव में ऐसा मामला है, जिसके लिए माननीय गृह मंत्री की उनके लिए रुपये की मांग तथा वित्त मंत्री को उनके लिए वित्त व्यवस्था करने के लिए बधाई देनी चाहिए।

मेरी मान्यता के अनुसार, उन्हें पुलिस बल की निश्चित रूप से आवश्यकता है। उन्हें पुलिस वालों की वफादारी की जरूरत है, क्योंकि हम सब जानते हैं कि वह पुलिस वालों को लेकर क्या कर रहे हैं। इसका उदाहरण अभी हाल ही में देखने को मिला है। पुलिस बल का क्या इस्तेमाल किया जा रहा है। मैं 'धारावी' में हुए गोली कांड का उल्लेख करना चाहता हूं। जैसा कि मैं महसूस करता हूं, श्रमिकों के हितों के प्रति वर्तमान सरकार की हमदर्दी

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 3, पृ. 168-79, 2 मार्च 1936

[ψ] डा. अम्बेडकर का बंबई विधान सभा के लिए चुनाव 1937 में हुआ था और सोमवार, 19 जुलाई 1937 को उन्होंने सदस्य के रूप में शपथ ली थी।

नगण्य है और मुझे विश्वास है कि उन्हें श्रमिक वर्गों के खिलाफ और भी पुलिस बल का प्रयोग करना पड़ेगा। कांग्रेस मंत्रिमंडल को भी अपनी असलियत दिखाने के लिए बधाई दी जानी चाहिए। अब मैं इस विषय को यहीं पर समाप्त करता हूं, क्योंकि आगे इसमें ऐसा कुछ नहीं है, जिसके संबंध में सरकार श्रेय ले सके।

महोदय! अब मैं सर्वप्रथम सदन का ध्यान वित्तीय अनियमितताओं के कुछ उदाहरणों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। मेरे सामने पांच मदें हैं, जिन्हें मैंने माननीय वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत किए गए वित्त वक्तव्य से लिया है, अर्थात मद संख्या 53 जिसमें शिक्षा के लिए 24 लाख रुपये, मद संख्या 105 जिसमें ग्राम पंचायत के लिए 4 लाख रुपये, मद संख्या 46 जिसमें स्वैच्छिक पुलिस बल के लिए 25,000 रुपये, मद संख्या 100 जिसमें श्रमिक सुविधाओं के लिए एक लाख रुपये और मद संख्या 67 जिसमें यूनानी हकीमों के प्रशिक्षण के लिए 80,000 रुपये के खर्च की व्यवस्था है। महोदय! जो अधिकृत रिपोर्ट (ब्लू बुक) वितरित की गई है, उसको देखने से पता चलता है कि सरकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि वित्त प्रस्तावों में शामिल की गई इन मदों के लिए कोई भी योजना अस्तित्व में नहीं है। ये सभी शीर्ष जिन पर खर्च करने का विचार है, अभी विचाराधीन हैं। उन्हें स्वयं ही नहीं पता है कि ये उद्देश्य क्या हैं, जिन पर यह रुपया खर्च होना है। दूसरी बात यह है कि इस सदन ने कोई वैधानिक उपाय नहीं पारित किया है, जिसके जरिए इन मदों पर खर्च किया जा सके। महोदय, ये खर्चे सदन से जाली चेक की मांग करते हैं, जिससे कि सरकारी सदस्य इसे पूरी आजादी के साथ किसी भी चीज पर मनमाने ढंग से खर्च कर सकें और यह खर्च शिक्षा, पुलिस आदि जैसे शीर्षों के अंतर्गत दिखा सकें, जिसके लिए कुल मिलाकर 31 लाख रुपये की मांग की गई है। अब यदि कोई इस तथ्य पर विचार करे,तो आसानी से समझ सकता है कि नई मदों की सारी रकम जिसे माननीय वित्त मंत्री ने मौजूदा बजट में जोड़ा है, लगभग 1.16 लाख रुपये होती है और इस राशि को सरकार सदन के हाथ से निकाल कर अपने तरीके से खर्च करना चाहती है। महोदय! मुझे यह कहना पड़ता है कि सरकार लगातार सदन के विशेषाधिकारों का अतिक्रमण कर रही है। मेरे माननीय मित्र गृह मंत्री दुर्भाग्य से यहां उपस्थित नहीं हैं और इसका मुझे खेद है, क्योंकि मैं एक-दो बातों का हवाला देना चाहता हूं, जिसके लिए वह जिम्मेदार हैं। मैंने प्राय: देखा है कि जब से कांग्रेस सरकार ने कार्यभार संभाला है, माननीय गृह मंत्री ने इस बात पर जोर दिया है कि इस सदन को ऐसे किसी नियम के संबंध में निर्णय करने का अधिकार नहीं है, जिसे सरकार ने सदन द्वारा पारित किसी खास कानून के तहत संपन्न किया हो। महोदय! मेरा कहना है कि यह इस सदन के प्राधिकार का अतिक्रमण है। मैं यह कह सकता हूं कि इस तरह के कई नियम हैं। कुछ ऐसे नियम हैं, जो सिर्फ प्रशासनिक नीति को क्रियान्वित करने में ही इस्तेमाल होते हैं। कुछ नियम केवल कानून के हिस्से हैं और मैं दावा करता हूं कि जहां कोई नियम कानून का हिस्सा है, तो

इस सदन को न केवल मौलिक कानून की, बल्कि नियमों की भी समीक्षा करने का अधिकार है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि कोई सरकार यह अधिकार कैसे हथिया सकती है? लेकिन कांग्रेस सरकार ने ऐसा किया है। समय-असमय इसने सदन के इस विशेषाधिकार का अतिक्रमण किया है। रुपये का निकालना, खाली चेक की मांग करना, मैं सदन के विशेषाधिकारों का एक और अतिक्रमण मानता हूं।

महोदय! मैं नहीं जानता कि अब क्या परिस्थितियां हैं, परन्तु हस्तांतरित नियम कहे जाने वाले पुराने भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों से मैं भली-भांति अवगत हूं। माननीय वित्त मंत्री मेरी बात की पुष्टि करेंगे कि हस्तांतरणीय नियमों के एक भाग में, वित्त विभाग का जिसे संविधान कहते हैं, शामिल था। पुराने भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत मान्यता प्राप्त यह एक आधारभूत सिद्धांत था कि वित्त विभाग हस्तांतरणीय विभाग नहीं होना चाहिए। वित्त विभाग को हस्तांतरणीय विभाग न मानने के लिए अत्यधिक ठोस कारण दिया गया था। वित्त विभाग का उद्देश्य पहरेदार की भूमिका निभाना था। किसी भी मंत्री द्वारा अपने अधीन विभाग के लिए प्रस्तुत की गई खर्चे की मांग की जांच करना वित्त विभाग का काम है। वित्त विभाग के प्रमुख कार्यों में से एक कार्य केवल यह देखना ही नहीं था कि किसी मंत्रालय ने किसी खास मकसद से जो धन मांगा है, क्या वह जरूरी है और क्या प्रेसिडेंसी की वित्तीय परिस्थितियों में उसे स्वीकार किया जा सकता है, बल्कि उसे यह भी देखना होता है कि क्या अनुदान मांग को मदों के अनुसार अलग-अलग मद में रखा गया है।

मुझे विश्वास है कि हालांकि 1919 का भारत सरकार अधिनियम निरस्त हो गया है और उस अधिनियम के अंतर्गत जो हस्तांतरणीय नियम बनाए गए थे, उनकी भी अब कोई कानूनी हैसियत नहीं है, परंतु उन हस्तांतरणीय नियमों में जो सिद्धांत रखे गए थे, वे तो स्थायी होने चाहिए और उनका सदा पालन होना चाहिए। जब से विधान मंडल द्वारा कार्यपालिका पर नजर रखने के उद्देश्य से स्थापित किए गए वित्त विभाग को नियंत्रण रखने वाली मशीनरी के एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में मान्यता दी गई है, तब से सदा इस बात को स्वीकार किया गया है कि कोई मंत्री विधान मंडल के समक्ष एकमुश्त राशि की मांग प्रस्तुत नहीं करेगा, जब तक वह उन सेवा विशेष मदों का खुलासा न करें, जिन्हें मांग में शामिल किया गया है। इसके दो कारण हैं। एक तो सदन को ब्यौरेवार यह पता होना चाहिए कि किस मद पर रुपया खर्च किया जा रहा है। दूसरे, परीक्षण लेखा विभाग के लिए यह जानना आवश्यक है कि सदन द्वारा स्वीकृत धन राशि किस प्रकार खर्च हुई है। महोदय! मेरा कहना है कि यह अक्षम्य है कि सरकार सदन के समक्ष केवल इतना कहने का दुस्साहस करे कि उसे अमुक मद पर खर्च करने के लिए 31 लाख रुपया चाहिए, जिसके औचित्य के संबंध में सदन ने कभी भी कोई निर्णय नहीं किया है और ब्यौरेवार इस धन राशि को कैसे खर्च किया

जाए, उस संबंध में सरकार ने स्वयं कोई निर्णय नहीं लिया है। मैं इसे दुस्साहस ही कहूंगा।

अब बजट की बात करें। मैं बजट में निहित विभिन्न मदों की तफसील के संबंध में कुछ नहीं कहना चाहता हूं। ऐसा करने में काफी समय लग जाएगा और यह सामान्य बहस के दौरान खर्चे का ब्यौरा देने का उपयुक्त अवसर भी नहीं है। मैं बजट के सामान्य पहलू तक ही सीमित रहना चाहता हूं। हमारे सम्मुख जो प्रमुख समस्याएं हैं तथा वित्त मंत्री महोदय द्वारा इन समस्याओं के समाधान के लिए किए गए उपायों के बारे में ही मैं बात करूंगा। पहली बात यह देखने की है कि मौजूदा प्रशासनिक ढांचे के इस बजट में 1,16,67,000 रुपये की नई मदें जोड़ी गई हैं। प्रश्न यह है कि क्या यह वास्तव में हमारी गतिविधियों के विस्तार को दर्शाता है? महोदय! हमें इस राशि में से 48,11,000 रुपये की कटौती करनी चाहिए। जैसा कि वित्त मंत्री ने स्वीकार किया है, खर्च की यह राशि अनावर्ती है, अर्थात यह उन अस्थायी मदों पर व्यय करने के लिए है, जिनकी इस समय हमें आवश्यकता है। यह सामाजिक सेवाओं की उन कमियों को स्थायी रूप से पूरी करने के लिए नहीं है, जिन्हें पूरा करना सरकार का कर्तव्य है। इस तरह कुल 1,16,00,000 रुपये की राशि में से 48 लाख रुपये घटाने पर हमें शेष 68,56,000 रुपये की राशि प्राप्त होती है। इसलिए मेरा कहना है कि अगर सही अनुमान प्रस्तुत किया जाए, तो प्रेसिडेंसी में सामाजिक सेवाओं के लिए सरकार द्वारा प्रस्तावित खर्च में स्थायी वृद्धि वास्तव में 1,16,00,000 रुपये नहीं है, बल्कि यह राशि मात्र 68,56,000 रुपये है। मेरे द्वारा प्रस्तुत अनुमानित राशि में से आपको मद्यनिषेध के कारण और भी कटौती करनी होगी और वह कटौती 31,45,000 रुपये की होगी। यह केवल नकारात्मक बात है। इससे प्रांत की आवश्यकताओं की पूर्ति में कोई सकारात्मक वृद्धि नहीं होती। इससे केवल इतना होगा कि सरकार को होने वाली आय से हाथ धोने पड़ेंगे। इसलिए अंततः हमारे वास्तविक स्थायी खर्च के लिए बजट में मात्र 37,11,000, रुपये का प्रबंध है। सदन के कई सदस्य जानते हैं कि सरकार 37,11,000 रुपयों की राशि का वितरण कैसे करेगी। एक स्पष्ट मद है शिक्षा, जिस पर 29 लाख रुपये खर्च होंगे और यह आवर्ती खर्च होगा। लघु सिंचाई योजनाओं पर 3,50,000 रुपये खर्च होंगे और यह भी आवर्ती खर्च होगा। शेष अन्य अनावर्ती मदें हैं – ग्राम पंचायतें, गांव के खाली रकबे, चिकित्सा राहत, कुनैन, आयुर्वेदिक शिक्षा। कहने का तात्पर्य यह है कि यह वर्ष के लिए केवल कामचलाऊ व्यवस्था होगी। महोदय! मैंने बजट का जिस प्रकार उल्लेख किया है, यदि उसी रूप में इसे लें, और मेरा तो कहना है कि बजट को उसी रूप में लेना चाहिए, तो वास्तव में प्रश्न यह उठता है कि क्या इस सरकार को बधाई दी जाए, जिसने वास्तव में सदन के सामने 37,11,000 रुपये की तुच्छ मांग प्रस्तुत की है? महोदय! प्रेसिडेंसी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस प्रेसिडेंसी में निरक्षरता, मलेरिया, गनोरिया, सिफलिस तथा अन्य बीमारियों की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए मुझे यह पूछने में तनिक भी संकोच नहीं

है कि क्या सरकार अपना उत्तरदायित्व ठीक प्रकार से निभा रही है कि उसने मात्र 37,11,000 रुपये का बजट पेश किया है? मेरे मित्र महोदय मेरी बातों पर हंस रहे हैं। उन्हें हंसने से कौन रोक सकता है? इसके सिवाय वह कर ही क्या सकते हैं? वह कुछ और नहीं कर सकते (ठहाका)।

एक माननीय सदस्य: क्या वह रोएं-चीखें ?

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं चाहता हूं कि वह रोएं और मैं उन्हें रोते-चीखते देखना चाहता हूं, क्योंकि इससे कुछ अहसास होगा कि उनमें भावनाएं हैं, हमदर्दी है। हंसने से कोई लाभ नहीं और इसमें कोई तुक भी नहीं है।

महोदय! अब मैं सवाल के दूसरे पहलू पर आता हूं। सरकार ने इस बजट में खर्च की जो व्यवस्था की है, क्या वह स्थायी रहेगी? शिक्षा पर सरकार ने जो 29 लाख रुपये खर्च करने का प्रस्ताव किया है, क्या वह रकम अगले वर्ष और उससे अगले वर्षों में भी जारी रहेगी? लघु सिंचाई योजनाओं के लिए और दूसरी चीजों के लिए सरकार ने जो व्यवस्था की है, क्या उम्मीद की जा सकती है कि अगले साल और उससे अगले साल भी इन सब मदों के लिए धन मिलता रहेगा? क्या हम इस बात पर विश्वास कर सकते हैं कि ये स्थायी मदें होंगी? महोदय! मैं कोई सकारात्मक जवाब नहीं दे सकता। परंतु हम सबको स्पष्ट हो जाएगा यदि हम एक सवाल पूछें और वह यह है कि सरकार ने इस खर्च का क्या प्रबंध किया है? इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कौन से स्रोत हैं? मैं देखता हूं कि बजट तैयार करते समय वित्त मंत्री का ध्यान 10,50,000 रुपये पर था, जो वर्तमान वर्ष के खर्च से बचे हुए हैं। तत्पश्चात उन्होंने इस साल की शेष राशि में से 63 लाख रुपये निकाल लिए हैं। तीसरे, उन्हें कुछ नए करों से 8 लाख रुपये की अतिरिक्त आय होने की उम्मीद है। यह साधन हैं, जिन पर मेरे माननीय मित्र नई मदों पर खर्च का प्रबंध करने के लिए निर्भर करते हैं। लेकिन, महोदय! मेरा सवाल यह है कि मेरे मित्र माननीय वित्त मंत्री द्वारा सुझाए गए क्या यह साधन और उपाय स्थायी और आगे तक चलने वाले हैं? क्या इन पर साल-दर-साल भरोसा रख सकते हैं? हम आंकड़ों का विश्लेषण करें। पहली बात तो यह है कि चालू वर्ष के राजस्व में बढ़ोतरी से जो उन्हें 10,50,000 रुपये प्राप्त हुए हैं, उसका मुख्य कारण है कि सौभाग्य से वह उत्पाद शुल्क और स्टाम्प जैसे दो स्रोतों से अतिरिक्त राजस्व प्राप्त करने में समर्थ रहे हैं। उनके अपने आंकड़ों के अनुसार राजस्व के इन दोनों स्रोतों से उन्हें 21,52,000 रुपये प्राप्त हुए हैं। फिर, भारत सरकार ने उन्हें आयकर के खाते से 27 लाख रुपये दिए हैं। अब उनके अपने सिद्धांत के अनुसार नशाबंदी या उत्पाद शुल्क राजस्व से जो धन राशि मिली है, वह दूषित है। हम कह सकते हैं कि उनका सारा काम दूषित है, क्योंकि वह दूषित धन पर निर्भर हैं। हम पिछली बातें छोड़ें, वर्तमान हमारे सामने है। इस बात में कोई शक नहीं है कि अब उन्हें उत्पाद शुल्क नहीं मिलेगा। यही नहीं कि वह अधिक उत्पाद शुल्क नहीं

प्राप्त करते हैं, बल्कि हकीकत यह है कि जो उन्हें मिलता था, वह भी छोड़ रहे हैं। मेरे ख्याल से स्टाम्प से उन्हें कुछ ज्यादा नहीं मिलेगा। इस स्रोत से वह अधिक की आशा भी नहीं रखते हैं। इसलिए हमारे विचार से जहां तक आगे के सालों का संबंध है, इन दो मदों को जिन्होंने बचत को बढ़ा दिया है, भूल जाना चाहिए। आयकर की प्राप्ति हो भी सकती है और नहीं भी। यह भी एक आकस्मिक मद हैं। इसलिए जहां तक भविष्य का प्रश्न है, बजट में यही बात स्पष्ट दिखाई देती है, क्योंकि वास्तविक परिसंपत्ति के आधार पर खर्च की जो नई मदें उन्होंने दिखाई हैं, वह आठ लाख रुपये की तुच्छ राशि के सिवाय कुछ नहीं है, जो प्रांत की मौजूदा तम्बाकू कराधान प्रणाली में संशोधन के द्वारा प्रस्तावित है। 37 लाख रुपये के अतिरिक्त खर्च के लिए आठ लाख रुपये के राजस्व पर ही भरोसा किया जा सकता है। इसलिए मेरा यह कहना सही है कि बजट के रूप में 37 लाख रुपये का जो तमाशा हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है, वह फिर अगले वर्ष नहीं हो सकेगा। महोदय! अब हम दूसरे दृष्टिकोण से बजट को देखें। मैं जानना चाहता हूं कि किन जिम्मेदारियों का निर्वाह कांग्रेस सरकार करना चाहती है। हमें पता होना चाहिए कि हमारी कुल देनदारी क्या है। महोदय! यह तो छोटी सी बात है कि हम देनदारी कल पूरी कर सकते हैं, परसों कर सकते हैं, या इसमें लंबा समय लग सकता है। यह तो बिल्कुल अलग प्रश्न है। बुनियादी और अति महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि पक्ष और विपक्ष में बैठे हम लोगों को, जहां तक इस प्रेसिडेंसी की जनता के कल्याण का संबंध है, सर्वसम्मति से यह ज्ञात होना चाहिए कि प्रेसिडेंसी के लोगों के कल्याण के लिए हम क्या काम करना चाहते हैं। इसलिए इस प्रश्न के अलावा, स्थिति से हम कैसे और कितनी जल्दी निबट सकेंगे, हमारे लिए यह बहुत जरूरी है कि हम इस बात का जायजा लें कि अंततः स्थिति क्या होने वाली है। महोदय! अब यह स्पष्ट है कि आज तक इस प्रेसिडेंसी में जो परंपरागत बातें सरकार कर रही है, हालांकि उन्होंने अपना दायित्व और कर्तव्य जो शिक्षा, जन-स्वास्थ्य, चिकित्सा और कुछ हद तक जलापूर्ति तक फैला है, पूरा नहीं किया है। ये सर्वसम्मति से स्वीकृत सरकार के कार्य हैं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि कांग्रेस सरकार जब 17 अगस्त 1937 को सत्ता में आई, तब उसने एक बयान जारी किया था, जो 'सरकार की श्रम नीति' के नाम से जाना जाता है। मैं अपने माननीय मित्र को इस बयान की याद दिलाना चाहता हूं, क्योंकि उन्होंने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया है कि सरकार ने प्रेस विज्ञप्ति में क्या कहा था। इस विज्ञप्ति के हवाले से मैं कहना चाहूंगा कि सरकार ने स्पष्ट रूप से यह तथ्य स्वीकार किया था कि केवल ये ही कर्तव्य नहीं हैं, जिन्हें यह सरकार अनिवार्य रूप से करेगी। कांग्रेस सरकार ने स्वीकार किया है कि जिन्हें आवश्यक सेवाएं कहते हैं, जैसे शिक्षा, जन-स्वास्थ्य, चिकित्सा सहायता और जल-आपूर्ति के अतिरिक्त अन्य दूसरे काम भी हैं, जिन्हें करना सरकार का कर्तव्य है और जो इस समय सभी आधुनिक देशों में आमतौर पर उपलब्ध हैं। मैं समझता

हूं ये कर्तव्य हैं– बेरोजगारी भत्ता, रोगी बीमा, वृद्धावस्था पेंशन, प्रसूति लाभ और असमय मृत्यु पर उसके आश्रितों को सहायता। इसलिए हमें इस स्थिति से आरंभ करना है कि हमारी सरकार, जिसका दावा है कि उसके हाथ में कार्यभार की बागडोर है, उसे इन कर्तव्यों का पालन करना होगा। इसलिए प्रश्न यह है कि यदि सरकार अपने इन दायित्वों को निभाने का फैसला करती है, तो उसका कुल खर्च कितना होगा? जैसा कि मैंने कहा कि इस बात का कोई महत्व नहीं है और इससे समस्या हल भी नहीं होती है कि हम इस काम को आज करने की स्थिति में हैं अथवा नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि हमें पता होना चाहिए कि हमारे क्या कर्तव्य हैं और हमें कितना खर्च झेलना पड़ेगा। महोदय! इन सभी बातों पर विचार करने पर मैं चाहूंगा और बहस की समाप्ति पर भी मैं इसका स्वागत करूंगा, यदि मेरे माननीय मित्र मंत्री महोदय यह बताएं कि यदि हम इन दायित्वों को पूरी तरह वहन करेंगे, तो प्रेसिडेंसी के राजस्व पर कितना भार पड़ेगा। मैंने अपनी क्षमता के अनुसार इस बारे में हिसाब लगाया है। मेरा हिसाब–किताब एकदम सही नहीं हो सकता। मेरे पास कोई जानकारी नहीं है और न ही कोई आंकड़े हैं। मुझे विशेषज्ञों की कोई सहायता भी उपलब्ध नहीं है। परंतु मैंने एक तरह का अनुमान लगाया है कि सरकार का कुल वित्तीय दायित्व कितना हो सकता है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि इस प्रेसिडेंसी का दायित्व 24 करोड़ रुपये बैठेगा। यह बात सरकार को ध्यान में रखनी होगी। मुझे इससे कोई एतराज नहीं है कि कौन सी सरकार आती है। हो सकता है, यही सरकार इस प्रेसिडेंसी के प्रशासन को निरंतर चलाती रहे। मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यदि सरकार को अपनी जिम्मेदारियों का बोध है। इसलिए हमारे सामने प्रश्न यह है कि 24 करोड़ रुपये की इस राशि को हम कैसे प्राप्त करेंगे? इसमें थोड़ा–बहुत हेरफेर हो सकता है। इस सरकार का खर्च इसके नजदीक ही पहुंचेगा। महोदय, मैं पूछना चाहता हूं कि क्या यह सरकार या कोई अन्य सरकार इतना धन जुटाने में सक्षम है? दुनिया के दूसरे देशों के कुछ राजस्व आंकड़े लें और इस प्रेसिडेंसी की परिस्थितियों से उनकी तुलना करें। मैंने कुछ देशों से प्रतिव्यक्ति राजस्व के जो आंकड़े एकत्र किए हैं, वे इस प्रकार हैं :

	पौंड	शिलिंग	पेंस	
कनाडा	9	8	0	
दक्षिण आस्ट्रेलिया	19	0	0	
न्यू साउथ वेल्स	13	0	0	
न्यूजीलैंड	22	0	0	
दक्षिण अफ्रीका संघ	4	0	0	(इसमें प्रांतीय सरकारों द्वारा एकत्र राजस्व सम्मिलित नहीं हैं)

	पौंड	शिलिंग	पेंस
आस्ट्रेलिया	12	0	0
आयरिश फ्री स्टेट	10	0	0
बंबई	0	0	7

महोदय! यह चौंका देने वाली स्थिति है। यह तस्वीर का एक पहलू है, जो ठीक विपरीत है। वह स्थिति किसी भी वित्त मंत्री को जो इस प्रेसिडेंसी में लोगों के कल्याण के लिए काम करना चाहता है, विचलित कर देगा।

अब प्रेसिडेंसी की वित्तीय स्थिति के संदर्भ में जो बात हमें ध्यान में रखनी होगी, वह यह है कि हमारा राजस्व जहां का तहां है। मैं स्वयं वित्त मंत्री के उदाहरण प्रस्तुत करता हूं। अपने पिछले वर्ष के बजट भाषण में उन्होंने 1922 से 1935 के बीच विभिन्न प्रांतों के बहुत उपयोगी राजस्व वृद्धि के तुलनात्मक आंकड़े दिए थे। वृद्धि इस प्रकार है:

	प्रतिशत
मद्रास	26.7
पंजाब	28.6
संयुक्त प्रांत	16.7
आसाम	14.7
बंगाल	11.9
बंबई	3.00

बंबई के 3 प्रतिशत में और भी ह्रास होगा। यह वृद्धि इस कारण हुई है कि उसमें उन सभी अतिरिक्त करों को जोड़ लिया गया है, जो 1922 से लगाए गए हैं। यदि आप 1922-35 के बीच इस प्रेसिडेंसी में लगाए गए अतिरिक्त करों को घटा दें, तो हमारे राजस्व में साढ़े पांच प्रतिशत का ह्रास हो जाएगा। इसलिए हमारी स्थिति यह है कि हमारे राजस्व में कतई वृद्धि नहीं हो रही है। उसमें रुकावट हो गई है। इसमें दो बातें और जोड़ दें। पहली बात यह है कि इस सरकार द्वारा लागू मद्यनिषेध नीति से हालात और बिगड़ेंगे। दूसरी बात यह है कि इस सरकार ने यह नीति घोषित की है कि लगान कम कर दिया जाएगा। यह वास्तविकता है कि इन दोनों मदों का योग 7 करोड़ रुपये बैठता है। सरकार की नीति के संदर्भ में मान लेना चाहिए कि यह सात करोड़ रुपये प्रेसिडेंसी के राजस्व से लुप्त हो रहे हैं। इसलिए कुल राजस्व जिसको आप स्थायी आय कह सकते हैं, वह 5 करोड़ रुपये रह जाएगी। इसके विपरीत जैसा कि मैंने कहा है, आपको 24 करोड़ रुपये के दायित्वों का वहन करना होगा।

महोदय! अब प्रश्न यह है कि इस प्रेसिडेंसी के वित्तीय साधनों में सुधार के उपाय क्या

हैं? मुझे यह कहते हुए अत्यंत दुःख होता है, परंतु वास्तव में मैं कहूंगा कि वित्तीय वक्तव्य और मेरे माननीय मित्र का बजट भाषण दर्शाता है कि यह बजट प्रतिगामी है। यह एक ऐसा बजट है, जिससे पता चलता है कि सरकार अपने वचन से मुकर रही है। महोदय! हमारे वित्त मंत्री के पिछले बजट भाषण में जहां प्रशंसा उचित है, वहां प्रशंसा करनी चाहिए। इसमें एक साहस का पुट था, क्रांति के तत्व थे, जिससे हमारे पक्ष में बैठे हुए सदस्यों को प्रसन्नता हुई थी। पिछली बार के उनके भाषण से मैंने इस बार के भाषण की तुलना की है और दुःख की बात है कि मुझे दोनों में विरोधाभास दिखाई दिया है। महोदय! पिछले वर्ष मेरे माननीय मित्र ने जो भाषण दिया था, उसके मूल्यांकन से मुझे यह आभास हुआ था कि वह एक बड़ी कठिन और महत्वपूर्ण समस्या के प्रति जागरूक हैं, जो हम सबके समक्ष मौजूद है। वह समस्या है धन जुटाने की। वह इस सर्वोच्च समस्या से केवल परिचित ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने हमसे वायदा किया था कि वह इससे इस प्रकार निबटेंगे कि प्रेसिडेंसी के लिए न केवल अधिकाधिक साधन एकत्र करेंगे, बल्कि करों के भार को इस तरह बराबर-बराबर बांट दिया जाएगा कि जो उसे सहन नहीं कर सकते, उन्हें उससे मुक्त कर दिया जाएगा, और जो सहन कर सकते हैं, उन पर कर लगाया जाएगा। मैं उनके भाषण का एक अंश उनको पढ़कर सुनाना चाहता हूं, जो उन्होंने पिछले साल दिया था। पैरा 14 में मेरे विद्वान मित्र ने कहा था :

एक माननीय सदस्य: माननीय सदस्य।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मुझे उच्च न्यायालय की आदत पड़ी हुई है, जहां हम अपने मित्रों को विद्वान कहकर संबोधित करते हैं। तो मेरे माननीय मित्र ने यह कहा था :

> अंत में हम नए कराधान के मुद्दे पर आते हैं, जो अतिरिक्त वित्त जुटाने का साधन है। इस बारे में हमारा पहला उद्देश्य वर्तमान करों के भार में आवश्यक समन्वय करना है। पहले भू-राजस्व को लेते हैं। हमारा अंतिम उद्देश्य अलाभकारी जोतों पर से कर को खत्म करना है, जिसमें हमारी भूमि इस समय विभाजित है। फिर भी, शुरू में हम यह आवश्यक समझते हैं कि बड़ी कृषि आय पर श्रेणीकृत कर लगाया जाए। वास्तविक खेती करने वालों के हाथों से संपत्ति हरण की प्रक्रिया के कारण बहुत सी भूमि उन हाथों में पहुंच गई है, जो खेती नहीं करते हैं, भाड़ा खाते हैं और अनुपस्थित भू-स्वामी हैं। क्या उनकी आय को, चाहे थोड़ी हो या बहुत, कराधान से उसी प्रकार मुक्त रखा जाए या उनके कर को कम किया जाए, जैसा जमीन पर वास्तविक खेती करने के साथ होता है? और ऐसी बहुत सी आय है जो हस्तांतरित भूमि से होती है। इससे प्रेसिडेंसी को लगभग 70 लाख रुपये का वार्षिक घाटा होता है। इस प्रकार की आय को किस रूप में लिया जाए, जब हम अपने खातेदारों के अधिक संपन्न लोगों पर कर लगाने का प्रस्ताव रखते हैं? इस सदन में बैठे हुए सभी माननीय सदस्यों द्वारा ऐसे प्रश्नों पर व्यक्त

विचार सरकार को निश्चित प्रस्ताव तैयार करने में बहुत उपयोगी होंगे। जो क्षमता रखते हैं,उनकी भूमि से प्राप्त आय पर ऊंचा कर लगाने की नीति को अपनाने से साधन प्राप्त होंगे। हमारे विचार से उपयोग वास्तव में खेती करने वालों के लिए भूमि कर के बोझ को सहने योग्य बनाने और उनका जीवन बदतर बनाने के लिए किया जाएगा। उच्चतर और औचित्यपूर्ण कर योग्य कृषि आय पर श्रेणीकृत कर के परिणाम के बारे में जांच-पड़ताल पहले ही शुरू कर दी गई है। इसी प्रकार यह आवश्यक है कि दूसरे कर जिनसे हमें राजस्व मिलता है, उनकी जांच दुबारा करें और उनका समंजन फिर से इस संदर्भ में करें कि उनका प्रभाव क्षेत्र कितना है और उनका जनहित पर क्या प्रभाव पड़ता है। हम इस काम को बहुत तेजी से कर रहे हैं और सरकार को आशा है कि इनके निश्चित निष्कर्षों को अगला बजट प्रस्तुत करने से पहले इस सदन में घोषित कर दिया जाएगा। मुझे आशा है कि आज मैंने जो कुछ कहा है, उसमें ऐसा कुछ नहीं है कि जिससे कोई यह कहे कि सरकार सामाजिक उपयोगिता की योजनाओं के लिए नए करों का प्रस्ताव करने के लिए तैयार नहीं है। अगर किसी की ऐसी धारणा बनती है, तो उसमें सच्चाई नहीं है। वैसे तो इस प्रांत में कराधान की दर बहुत ऊंची है। हमारे सामने यह बात साफ है कि अधिकांश करों का बोझ इस प्रांत में गरीबों को ही उठाना पड़ता है। भू-राजस्व, उत्पाद शुल्क, स्टाम्प फीस, कोर्ट फीस, सार्वजनिक वाहनों पर कर, देसी तंबाकू पर कर, अधिकांशत: गरीबों को ही देने होते हैं। बस आयकर ही है, जिसे संपन्न लोग देते हैं, और वह इस समय प्रांतीय सरकार के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता। एक ओर गरीब लोग हैं, जो इस सरकार को अधिकांश कर देते हैं, और दूसरी ओर संपन्न लोग हैं, जो केन्द्र सरकार को आयकर देते हैं। इन दोनों के बीच में काफी लोग हैं, जिन्हें अपने प्रांत के वित्तीय दायित्व का एक हिस्सा तो देना ही चाहिए। धन-संपन्न लोग प्रांतीय राजस्व के लिए जो कुछ दे रहे हैं, वह अपर्याप्त है। इसलिए वे आगे आकर अपने उचित हिस्से का भार संभालें। हम बहुत सी पाबंदियों से बंधे हुए हैं और यह आसान काम नहीं है कि हम ऐसे कर खोज निकालें, जो उन कर देने योग्य लोगों पर लगें, जो अब तक कर नहीं दे रहे हैं। मैं आज इस स्थिति में नहीं हूं कि भावी निर्णयों की पूर्वकल्पना कर सकूं। बस, मैं इतना ही कह सकता हूं कि हम बहुत से प्रस्तावों की संभावनाएं खोज रहे हैं, जिसे इस सदन में प्रस्तुत किया जा सके। केवल ऐसे प्रस्ताव नहीं जिनसे हमें मद्यनिषेध से हुए घाटे को पूरा करने के लिए आवश्यक धन मिले, बल्कि साथ में हम अपनी योजनाओं को विस्तृत कर सकें, हालांकि उतना विस्तार तो नहीं कर सकते, जितना हम व्यापक अर्थों में समाज सेवा के बहुत से क्षेत्रों में करना चाहते हैं।

महोदय! इसके बाद उन्होंने अपना यह विचार भी प्रस्तुत किया:

साधनों में वृद्धि करने के उद्देश्य से एक और दिशा में भी सरकार की गतिविधियों को

बढ़ाया जा सकता है। बहुत सी जनोपयोगी सेवाएं हैं, जिन्हें आज पूरे समाज की कीमत पर कुछ लोगों के लाभ के लिए चलाया जा रहा है। ऐसा कोई कारण नहीं है,जो सरकार को इन सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करने से रोक दे और उनसे होने वाले लाभ को पूरे समाज के हित में लगा दे। जैसे बिजली की आपूर्ति को ही लें। यह काम निजी एजेंसियां सरकार के संरक्षण में करती हैं और सरकार ही जनता की ओर से उन्हें संरक्षण दे सकती है। ऐसा कोई उचित कारण नहीं है कि इस जनोपयोगी गतिविधि के लाभों को मान्यता प्राप्त एजेंसी, यानी सरकार के माध्यम से क्यों न समस्त जनता को वापस कर दिया जाए। अब तक इस दिशा में कोई काम नहीं हुआ है। आय के और भी बहुत से संभावित स्रोत हैं, जिन्हें सरकार न्यायोचित रूप से अपने हाथ में ले सकती थी, जिनका या तो उपयोग नहीं किया गया, या जिन्हें केवल कुछ लोगों के लाभ के लिए इस्तेमाल होने दिया गया है। अभी बहुत बड़ा क्षेत्र बचा है जिसका पता हमें लगाना चाहिए, ताकि उस क्षेत्र में सरकार की गतिविधियों को बढ़ाया जा सके। सरकार को विश्वास के साथ जनहित के संभाव्य स्रोतों के रूप में इस प्रकार की गतिविधियों के बारे में पता लगाना चाहिए।

क्या इस नए बजट भाषण में ऐसा कुछ है, जिसे मेरे माननीय मित्र ने प्रस्तुत किया है? उन्होंने अपने ही शब्दों को वापस ले लिया है। उन्होंने अपने पूर्व बजट भाषण का कोई भी संकेत नहीं किया है। उनसे मेरा प्रश्न है : उन्होंने अपने शब्दों की क्यों उपेक्षा की है? उन्हें ऐसा करने के लिए किसने विवश किया है?

माननीय सदस्य: वल्लभभाई, शेगांव।

डा. भीमराव अम्बेडकर : इसके पीछे अवश्य कोई है, लेकिन मैं उस बात की तह में नहीं जाना चाहता। तो भी मैं एक बात कहना चाहता हूं और पूरी ईमानदारी के साथ कहना चाहता हूं। मेरे माननीय मित्र को इसके लिए बधाई दी गई है कि उन्होंने कोई नया कर नहीं लगाया है। लेकिन मैं स्वयं अपनी तरफ से सबसे बड़ा आलोचक हूं कि उन्होंने नए कर नहीं लगाए। इसलिए मैं कहता हूं कि यह बजट संपन्न व्यक्तियों के लिए है। यह गरीब आदमी का बजट नहीं है। गरीब आदमी को तो अधिक से अधिक राहत चाहिए। संपन्न व्यक्ति तो सरकार से स्वतंत्र रहकर भी अपना गुजारा कर सकता है। अमीर आदमी को स्कूल की जरूरत नहीं है। वह स्कूल मास्टर अपने घर पर रख सकता है और वह अपने बेटे को स्कूल और कालिज भेजे बिना बी.ए. तक की शिक्षा दे सकता है। अमीर आदमी को औषधालय की जरूरत नहीं है। वह डाक्टर को अपने घर पर ही बुला सकता है और उसे 30 रुपये देकर अपनी, पत्नी तथा बच्चों की बीमारी की जांच करा सकता है। यह तो गरीब आदमी ही है, जो चाहता है कि सरकार सहायता के लिए आगे आए। गरीब आदमी को ही अधिक सेवा की आवश्यकता पड़ती है। **कोई भी सार्थक सरकार, कोई भी सरकार जो अपने दायित्वों के प्रति गंभीर है, गरीबों से यह नहीं कह सकती कि वह उन्हें ये सुविधाएं नहीं दे सकती,**

क्योंकि उसमें कर लगाने का साहस नहीं है। ऐसी सरकार जितनी जल्दी सत्ता को छोड़ दे, उतना ही अच्छा है।

माननीय श्री मोरारजी आर. देसाई: यही तो मुश्किल है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं एक और मुद्दे को उठाना चाहता हूं। मैं नहीं जानता कि इस सदन के कितने सदस्य मेरी इस बात से सहमत होंगे, लेकिन मेरा पक्का विचार है कि भारत में जितनी सरकारें हैं, चाहे वह किसी भी प्रांत की हों, वे कभी अच्छा काम नहीं कर सकेंगी, अगर उनका ध्यान, मात्र जिनको यूरोपीय देशों में समाज सेवाएं कहते हैं, तक ही सीमित है। मैं यह मानता हूं और जोर देकर कहता हूं कि सरकार का मुख्य दायित्व यह है कि वह गरीबी की समस्या का सामना करे। सरकार को यह देखना चाहिए कि वह ऐसे उपायों को अपनाए, जिससे इस प्रेसिडेंसी की आय काफी बढ़ जाए और अधिसंख्य लोग सुविधाओं के साथ रहने लगें, जो सभी आधुनिक एवं सभ्य लोगों के लिए अतिआवश्यक है। समाज कल्याण की पद्धति जो अब तक यूरोपीय देशों में चलती रही है, उसके अंतर्गत सरकार अनुदान या बेरोजगारी भत्ता, प्रसूति लाभ आदि सुविधाएं देती है। इसमें एक बात पहले से ही मान ली गई है कि अधिसंख्य लोगों को इस तरह की सुविधाओं की आवश्यकता नहीं है। वे गरीबी की रेखा से ऊपर हैं और बस थोड़े से ही लोग,जो या तो आर्थिक ढांचे के दुष्प्रभाव के कारण या दुर्भाग्य के कारण गरीबी की रेखा से नीचे हैं, उनको ही सरकारी मदद की आवश्यकता होती है। इसलिए यह पूरी तरह संभव है, उचित है कि यूरोप के देशों की सरकारें जनता के सामान्य आर्थिक उत्थान की समस्याओं की चिंता नहीं करती हैं। हम अपने देश में जिन समस्याओं से जूझ रहे हैं, वे बिल्कुल दूसरी तरह की हैं। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है और मेरा ख्याल है कि इस सदन में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है,जो मेरे इस विचार पर विवाद उत्पन्न करेगा कि हमारा देश भिखारियों और कुलियों का देश है। अपनी जनता का हम इसी तरह वर्णन कर सकते हैं। इसलिए कोई भी सार्थक सरकार इस गंभीर समस्या की उपेक्षा नहीं कर सकती।

महोदय। अब बजट प्रस्तावों की बात करें, जो हमारे सामने हैं। क्या इनमें ऐसा कोई संकेत है कि सरकार इस समस्या से परिचित है? क्या सरकार को इस बात का ध्यान है कि उसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो? राष्ट्र को अधिक लाभ हो? मुझे बजट में ऐसा कुछ भी नहीं मिला। इसमें सभी जगह एक ही बात मिलती है और मैं इस स्थिति में इसकी जांच करना चाहता हूं। सभी ने एक ही विचार प्रस्तुत किया है कि खेती करने वालों की गरीबी का कारण उन पर भू-राजस्व का भारी बोझ है। इसलिए सबका यही विचार है और मैं बिना किसी संदेह के यह कह सकता हूं कि वित्त मंत्री का भी यही विचार है कि जनता की आय को बढ़ाने के लिए भू-राजस्व के बोझ को हल्का करना होगा। महोदय! अब मैं यह कहने की स्वतंत्रता चाहता हूं कि इससे अधिक भ्रामक विचार और कुछ नहीं

हो सकता। इसका आशय यह नहीं कि मैं भू-राजस्व में कटौती करने का विरोधी हूं। मैं चाहता हूं कि भू-राजस्व में कटौती कर दी जाए। मैं ऐसा करने के पक्ष में हूं। मैं ऐसा करने का आग्रह करूंगा, क्योंकि वास्तव में इस सरकार को खेती से होने वाले लाभ हड़पने का कोई अधिकार नहीं है। यह भूमि के उपयोग के लिए लगाए गए भू-राजस्व से अलग है। मुझे इस समय प्रचलित विचार को इस रूप में देखने दीजिए, जिसे इस सरकार ने अपनाया है और वह है कि सामान्य जनता को गरीबी से राहत दिलाने के लिए भू-राजस्व को खत्म या उसमें कटौती करने की आवश्यकता है। महोदय! हम इस पर विचार करके यह देखें कि इस प्रक्रिया से क्या राहत मिलेगी। हमें भू-राजस्व के रूप में कुल साढ़े तीन करोड़ रुपये मिलते हैं और प्रेसिडेंसी की जनसंख्या लगभग दो करोड़ है। बहस करने के लिए मान लीजिए, मैं अपने मन के विरुद्ध यह बात मान रहा हूं, कि यह सरकार बहुत उदार है और कुल भू-राजस्व, यानी साढ़े तीन करोड़ रुपये को छोड़ सकती है, पर यदि हम इस राशि को प्रेसिडेंसी की जनता में बांट देते हैं, तो मेरे हिसाब से मोटे तौर पर प्रति व्यक्ति की आय में, आज की परिस्थिति में लगभग डेढ़ रुपये की वृद्धि होती है। यह सर्वोच्च आय है। इसे मासिक भत्ते के रूप में तब्दील करने पर प्रति व्यक्ति की आय में प्रति मास ढाई आने की वृद्धि होगी। अब मैं पूछना चाहता हूं कि क्या वास्तव में कोई इस बात को स्वीकार करेगा कि सारा भू-राजस्व माफ कर देने के परिणामस्वरूप ढाई आने की वृद्धि हो जाने से हमारी आर्थिक स्थिति इस तरह सुधर जाएगी कि हमारे सम्मुख जो गरीबी की समस्या है, वह समाप्त हो जाएगी। महोदय! इस बीमारी का इलाज कुछ और ही है। मैं इस समय इस पर बात नहीं करना चाहता । मैंने शायद सदन को काफी उकता दिया है। लेकिन मैं यह अवश्य कहना चाहता हूं कि यह ऐसी समस्या है, जिससे सरकार परिचित नहीं है। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि जो सरकार इस समस्या से परिचित नहीं है, जिस सरकार के पास इस विकट समस्या को हल करने के लिए उपाय नहीं है, वह जनता को कोई राहत नहीं पहुंचा सकती, वह प्रेसिडेंसी की जनता को खुशी नहीं दे सकती। इसलिए मैं निष्कर्ष रूप में यह कहना चाहता हूं कि यह सबसे निराशाजनक बजट है। यह बजट अमीरों को राहत देने और लोगों को भूखा रखने के लिए बनाया गया है (तालियां)।

IV*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर): अध्यक्ष महोदय! अब यह माननीय वित्त मंत्री का तीसरा बजट है, जिसे उन्होंने सदन में प्रस्तुत किया है। मैं समझता हूं कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उन्होंने इस सदन में पहले,जो दो बजट प्रस्तुत किए थे, वे संतोषप्रद नहीं थे। शायद पहले दो असंतोषप्रद बजटों के संबंध में बहाने भी दिए गए थे। उन्होंने जो

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 5, भाग 1, पृ. 903-16, 21 फरवरी 1939

पहला बजट प्रस्तुत किया था, वह वास्तव में उनका अपना बजट नहीं था। उसे शायद अंतरिम सरकार ने तैयार किया था। इसलिए पहले बजट में जो कमियां थीं, उसके लिए निस्संदेह वित्त मंत्री को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। दूसरे बजट के बारे में बहाना यह था कि उसे जल्दबाजी में तैयार किया गया था, क्योंकि सरकार के पास सारी वित्त-व्यवस्था को समझने और अपनी योजनाएं तैयार करने के लिए पर्याप्त समय नहीं था। मुझे विश्वास है कि वर्तमान बजट के साथ ऐसा कोई बहाना नहीं है, जिसे उन्होंने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इस बजट के बारे में कहा जा सकता है कि इसे भली-भांति सोच-समझकर तैयार किया गया है। निस्संदेह इसमें पूरी योजना दी गई है कि सरकार को कराधान के मामले में क्या करना है और किस मद पर कैसे खर्च करना है। उन्होंने वही मदें ली हैं, जिन पर उनकी दृष्टि से तात्कालिक खर्च करना चाहिए। इसलिए मैं समझता हूं कि इस बजट को अधिक ध्यान से देखा-परखा जाना चाहिए।

हर कोई जानता है कि यह ऐसा बजट है, जिसने सबके मन में उत्तेजना पैदा कर दी है। जो लोग बजट से कुछ अपेक्षा रखते थे, वे निराश हो गए हैं, और जिन पर इसका प्रहार हुआ है, उन्होंने इसे उथल-पुथल वाला बजट कहा है। मैं जब इसके राजस्व और व्यय पक्ष को देखता हूं, तो मेरा भी यह विचार बनता है कि राजस्व की दृष्टि से इसे अविवेचित और व्यय की दृष्टि से अर्थहीन बजट कहना ठीक होगा। निस्संदेह, इस बजट के एक भाग के रूप में वित्त विधेयक में विहित प्रस्तावों के गुण और दोषों की विवेचना करने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है। उन प्रस्तावों की विस्तृत आलोचना तभी की जाएगी, जब वित्त विधेयक को इस सदन में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाएगा। फिर भी, सामान्यतः यह कहना अनुचित न होगा कि कराधान के प्रस्तावों पर मैं क्या सोचता हूं, जिन्हें मंत्री महोदय ने वित्त विधेयक में शामिल किया है।

वित्त विधेयक में छह अलग-अलग प्रस्ताव हैं। सबसे पहले तो इस विधेयक में यह है कि स्टाम्प ड्यूटी और कोर्ट फीस में जो वृद्धि की गई और जिसे 1932 के बंबई वित्त अधिनियम 2 के अनुसार स्वीकृति मिली थी, उसे एक साल और जारी रखने का प्रस्ताव है। दूसरे, इसमें बिजली के उपभोग का शुल्क बढ़ा दिया गया है। तीसरे, इसमें अचल संपत्ति के हस्तांतरण-पत्रों पर कुछ शहरों और शहरी क्षेत्रों में स्टाम्प ड्यूटी बढ़ा दी गई है। चौथे, अचल संपत्ति के पट्टे पर कर लगा दिया गया है। पांचवें, बंबई उप नगर जिला और अहमदाबाद शहर में भवनों के वार्षिक किराया मूल्य में 10 प्रतिशत की वृद्धि कर दी गई है। छठे, इसमें इन तीन मदों – मोटर स्प्रिट या चिकनाई युक्त पदार्थ, निर्मित कपड़ा, रेशमी धागे पर बिक्री कर लगाया गया है, जो सवा छह प्रतिशत से अधिक न हो। जैसा कि मैंने पहले कहा था, कराधान के इन प्रस्तावों के विवरणों की तह में जाने का मेरा इरादा नहीं है। मैं संक्षेप में सामान्य सिद्धांतों पर कुछ आलोचना करूंगा।

अब मैं स्टाम्प ड्यूटी और कोर्ट फीस को जारी रखने वाले मुद्दे को उठाता हूं। मैं माननीय वित्त मंत्री को यह याद दिलाना चाहता हूं कि जहां तक मुझे याद है यह कर वही है,जिस पर पुरानी विधान परिषद में कांग्रेसियों ने हमेशा आपत्ति की थी। महोदय! मुझे एक भी ऐसा बजट अधिवेशन याद नहीं है, जब कांग्रेसियों ने बजट अधिवेशन को वार्षिक अखाड़ा न बना दिया हो, जिसमें एक ओर वित्त सदस्य और दूसरी ओर कांग्रेसी होते थे। तब हर साल करों का पूरी ताकत से विरोध होता था और कांग्रेसी खुद इस कर को लगातार बनाए रखना नहीं चाहते थे। अब स्थिति इतनी बदल गई है कि कांग्रेसी मंत्री ही स्वयं इस कर को हमेशा के लिए बनाए रखना चाहते हैं। संक्षेप में कहें तो यह कांग्रेस की पुरानी नीति है। बस, अब उनके हाथ में सत्ता है, इसलिए जो चीजें पहले इतनी बुरी लगती थीं, अब अच्छी लग रही हैं। इसका कारण यह है कि अब उन्हें कांग्रेसी चला रहे हैं। ऐसे ही उनके मन-परिवर्तन के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। हम जानते हैं कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग नहीं करने पर कांग्रेसी पहले खूब लड़ते थे। उनके अनुसार वह बहुत दमनकारी प्रणाली थी। अब वही कांग्रेसी इसका समर्थन करते हैं कि वह अत्यधिक आदर्श पद्धति थी। अब मैं इससे अधिक कुछ नहीं कहूंगा, परंतु मैं इस ओर संकेत तो अवश्य करूंगा कि यह निश्चित रूप से कांग्रेसियों के घोषित विश्वास के विरुद्ध है।

अब बिजली पर शुल्क की बात करें। मैं समझता हूं कि सिद्धांततः यह बुरा कर है। मैं उनमें से ही एक हूं,जो यह विश्वास करते हैं कि बिजली के उपयोग को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जाए। इसका कारण यह है कि अगर बिजली नहीं होगी तो लोग मिट्टी का तेल जलाएंगे, जिसमें से धुंआ निकलता है, जो स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। इस धुंए को जल्दी से जल्दी रोकना चाहिए। मिट्टी के तेल के उपभोग को कम करने के लिए बिजली को अधिक से अधिक सस्ता बनाया जाए। इसलिए मेरा निवेदन है कि सामान्य सिद्धांत के रूप में यह बुरा शुल्क है। कराधान प्रस्ताव के इस अंग पर मेरी दूसरी टिप्पणी यह है कि इस कर का वितरण बहुत बुरी तरह से किया गया है। इसमें सबसे असाधारण बात यह है कि सिनेमा और थियेटरों के बिजली कर में कोई वृद्धि नहीं की गई है। महोदय! मैं सोचता हूं कि अगर किसी व्यक्ति पर कर लगाने की बात होती, तो यही सिनेमा और थियेटर ठीक रहेंगे। इसका कारण यह है कि अगर सिनेमा या थियेटर पर कर लगाया जाता है, तो उसे उपभोक्ता को ही बर्दाश्त करना होता है और इस प्रकार वह कर उन्हीं लोगों को भरना होता है, जो सिनेमा या थियेटर जाते हैं। उस स्थिति में कर आरामदेह वस्तु पर लगता। यह संभव है कि मेरा आकलन पूरी तरह सही न हो, लेकिन मुझे विश्वास है कि इस कर को परिवारों पर बांटने के बदले, जैसा कि माननीय वित्त मंत्री ने किया है, यदि वह सिनेमा और थियेटर पर कर की दर बढ़ाकर लगा देते, तो उनकी उतनी ही आय होती, जितनी वह इस कर से अपेक्षा रखते हैं। जैसा कि मैंने कहा है कि यह असाधारण काम है, क्योंकि जो कर देने

में सक्षम था, उस पर कर नहीं लगाया गया। इसके अलावा और क्या किया गया है? जो लोग अभी तक 12 यूनिट से कम बिजली खर्च कर रहे थे, अब उन्हें भी कर देना होगा। जो लोग 12 यूनिट से अधिक यूनिट बिजली खर्च करेंगे, उनके लिए कर की दर 9 पाई से बढ़ाकर 15 पाई कर दी गई है। महोदय! मुझे यह कर वितरण उपाय का औचित्य नहीं समझ आ रहा है। लोग जो 12 यूनिट से कम खर्च करते थे और उन्हें कर नहीं देना होता था, अब उन पर कर क्यों लगा दिया गया है? जो लोग अब तक 9 पाई देते थे, अब उन्हें 15 पाई क्यों देनी होगी, जब कि सिनेमा और थियेटर इस कराधान से मुक्त हैं?

अब कराधान की तीसरी मद को लेते हैं, वह है — संपत्ति के हस्तांतरण पर स्टाम्प ड्यूटी में बढ़ोत्तरी, जो मेरे हिसाब से औचित्यपूर्ण नहीं है। बंबई नगर में माननीय वित्त मंत्री ने स्टाम्प ड्यूटी को साढ़े तीन प्रतिशत से बढ़ाकर चार प्रतिशत कर देने का प्रस्ताव किया है, जो कुल मिलाकर वर्तमान आधार पर 20 प्रतिशत की वृद्धि है। पूना और अहमदाबाद में उनका प्रस्ताव ढाई प्रतिशत से बढ़ाकर तीन प्रतिशत कर देने का है। वह वर्तमान के आधार पर 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी है। दूसरे शब्दों में, जिनकी घोषणा सरकार बाद में करेगी, इस कर को डेढ़ प्रतिशत से बढ़ाकर तीन प्रतिशत कर दिया गया है। यह 50 प्रतिशत वृद्धि है। शेष शहरों में इसे डेढ़ प्रतिशत से दो प्रतिशत कर देना है, जो सवा तैंतीस प्रतिशत वृद्धि है। मैंने वित्त विधेयक के संबंध में माननीय मंत्री का वक्तव्य पढ़ा है, जिसमें वृद्धि के उद्देश्य और कारण दिए गए हैं। मुझे कर की इस वृद्धि के लिए कोई औचित्यपूर्ण स्पष्टीकरण नहीं मिला। माननीय मंत्री ने बस इतना कहा है: यह वांछनीय समझा गया है कि संपत्ति के हस्तांतरण पर स्टाम्प ड्यूटी गांवों की अपेक्षा शहरों में अधिक होनी चाहिए। यह क्यों वांछनीय है? क्या शहरी क्षेत्र अधिक गुनाहगार हैं कि उन्हें अब तक जो स्टाम्प ड्यूटी दे रहे थे, उससे अधिक देनी पड़ेगी? हमें माननीय मंत्री से अभी तक इसका कोई उत्तर नहीं मिला है। यह मनमाने ढंग से किया हुआ काम है और बिना कोई कारण दिए बस यह कहा गया है कि कर बढ़ाना पड़ेगा।

इसके बाद हम पांचवें प्रस्ताव पर आते हैं, जो संपत्ति कर के बारे में है। यह संपूर्ण कराधान प्रस्ताव का मूल प्रश्न है। मेरे विचार से यह कई दृष्टि से आपत्तिजनक है। मेरे माननीय मित्र श्री जमनादास पहले ही इस पर अपनी एक आपत्ति बयान कर चुके हैं और वह यह है: अब सरकार कराधान के उस क्षेत्र में भी घुस रही है, जो अब तक नगरपालिकाओं का रहा है। बंबई नगरपालिका संपत्ति कर के रूप में बहुत बड़ा राजस्व प्राप्त करती है। केवल बंबई नगरपालिका ही नहीं बल्कि सभी नगरपालिकाओं को संपत्ति कर लगाने की अनुमति दी गई है। महोदय! मुझे विश्वास है कि कराधान के क्षेत्र में सरकार की नगरपालिकाओं के साथ प्रतिस्पर्धा से स्थानीय स्वायत्त शासन को गहरा धक्का लगेगा। मैं इस मुद्दे पर और अधिक नहीं कहूंगा। लेकिन मैं प्रस्ताव के कुछ अन्य पहलुओं की ओर संकेत करूंगा और पहला

पहलू इस प्रकार है। बंबई नगर के किराएदार एक आंदोलन चला रहे हैं कि किराए असाधारण रूप से ज्यादा हैं और उन्हें कम किया जाए। महोदय! अब जैसा कि सरकार कराधान के इस उपाय को अपनाने जा रही है, उससे वह संपत्ति के मूल्य का 19 प्रतिशत प्राप्त करेगी। तब ऐसी स्थिति में क्या उसको मकान मालिकों से किराएदारों का किराया कम करने को नहीं कहना चाहिए, जो इस समय ऊंचे किराए के खिलाफ आंदोलन कर रहे हैं। इसलिए सरकार जो कर रही है, वह बंबई नगर के किराएदारों के साथ धोखा है। उनका अधिकार उनसे छीन रही है। यह बात अहमदाबाद और पूना के किराएदारों पर भी लागू होती है। मैं समझता हूं कि यह आपत्ति गंभीर आपत्तियों में से एक है।

दूसरे, यह संपत्ति जिस पर सरकारी प्रस्ताव के अंतर्गत कर लगाया जाता है, वह ऐसी संपत्ति नहीं कही जा सकती कि उस पर इस समय कर नहीं लगा हुआ है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि उस पर मामूली कर लगा हुआ है, इसलिए इस पर ऊंचा कर लगाया जा सकता है। मुझे बंबई नगर की बात करने की अनुमति दें।

माननीय अध्यक्ष : मुझे डर है कि एक भ्रांति हो गई है। पूना इस कराधान प्रस्ताव में शामिल नहीं है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मुझे अफसोस है। केवल बंबई और अहमदाबाद को शामिल किया गया है। बंबई की स्थिति को ही लें। वह यह है कि बंबई नगर पालिका संपत्ति के कर योग्य मूल्य पर कुल मिलाकर साढ़े अठारह प्रतिशत कर लगाती है, जो उसके अपने उपयोग के लिए है। इसके अतिरिक्त अगर संपत्ति पट्टे पर है, तो मकान मालिक को भूमि का किराया भी देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, उसे भारत सरकार को आयकर भी देना होता है, जो उसे संपत्ति के किराए से होती है। इन सबको एक साथ जोड़ कर देखें, तो मेरा ख्याल है, यह कुल मिलाकर 22-23 प्रतिशत हो जाएगा (एक माननीय सदस्य: 50 प्रतिशत)। तो ठीक ही मेरे माननीय मित्र कहते हैं कि यह 50 प्रतिशत बैठेगा। वह शायद इसे आगे चलकर स्पष्ट करेंगे। मैं जो कहना चाहता हूं, वह यही है कि यह नहीं कह सकते कि इस संपत्ति पर मामूली कर लगाया गया है। इस पर तो पहले ही भारी कर लगाया गया है। इसलिए दस प्रतिशत कर का और भार डाल देना अनुचित है।

मैं अगली बात माननीय वित्त मंत्री से यह कहना चाहता हूं कि वह शायद समझ रहे हैं कि यह सिर्फ रेट है, कर नहीं है। इस बात पर मेरा उनके साथ विवाद है। वह जो लगा रहे हैं, रेट नहीं है, कर है। रेट और कर में अंतर इस प्रकार है। रेट वह है, जिसके लिए विशेष सेवा मिलती है। हम नगरपालिका को रेट देते हैं और उसके बदले में हमें नगरपालिका से सीधी सेवा मिलती है, जैसे पानी मिलता है, सफाई-व्यवस्था मिलती है, बिजली मिलती है और अन्य विभिन्न सेवाएं मिलती हैं। यह वास्तव में दी गई सेवा के दाम हैं, लेकिन जो कुछ वित्त मंत्री महोदय कर रहे हैं, वह सेवा नहीं है, इसलिए यह कर है। मंत्री महोदय इसे संपत्ति पर कर की संज्ञा दे रहे हैं, परंतु मैं इसे आयकर कहता हूं। मैं उन्हें यह बता देना

चाहता हूं कि चीजें कुछ नहीं देतीं, आखिर व्यक्ति ही देता है। अगर व्यक्ति कुछ भुगतान करता है, तो वह उसे अपनी आय में से ही देता है। इसलिए यह आयकर है। अब मैं मंत्री महोदय से यह पूछना चाहता हूं कि न्यायसंगत सिद्धांत जो आयकर की सामान्य योजना का अंग माना जाता है, उसे इस कर का अंग क्यों नहीं बनाया? इस सिलसिले में दो बातें कही जा सकती हैं। एक बात तो यह कही जा सकती है कि आयकर की हर योजना में छूट की व्यवस्था होती है। एक निश्चित न्यूनतम सीमा है, उसके नीचे आप आयकर नहीं लगा सकते। मेरा ख्याल है, इस समय आयकर की न्यूनतम सीमा लगभग 2,000 रुपये है। अगर यह आयकर है और मैं जोर देकर कहता हूं कि यह आयकर है और कुछ नहीं है, तो फिर इसमें छूट क्यों नहीं दी गई? सभी मकान मालिकों को एक ही वर्ग में रख देने से कोई फायदा नहीं है। मैं हिन्दू कालोनी में रहता हूं। वहां ऐसे बहुत से लोग हैं, जिन्हें सरकार से ग्रेच्यूटी मिली है। बहुत से लोगों को भविष्य निधि की कुछ जमा राशि मिली है। इन लोगों ने छोटे-छोटे मकान बना लिए हैं। मकान के एक हिस्से में वे स्वयं रहते हैं और शेष भाग में किराएदार रखते हैं। ये लोग जमीन का किराया देते हैं। ये नगरपालिका को कर देते हैं। क्या उन लोगों का कोई ध्यान नहीं रखना है? फिर ऐसे भी लोग हैं, जिन्होंने लाखों रुपये भवनों में लगा दिए हैं। वे कुछ नहीं करते हैं, बस इस संपत्ति की आय पर रहते हैं। मैं कहता हूं कि इन दोनों प्रकार के मकान-मालिकों में अंतर है और अंतर करना ही चाहिए। प्रश्न यह है कि यहां यह अंतर क्यों नहीं किया गया?

एक और पहलू पर विचार करें। बहुत सी संपत्तियां ऐसी भी हैं, जो परोपकारी संगठनों की हैं। मैं यह नहीं जानता कि ऐसी संपत्ति कितनी है, परंतु अत्यधिक है। उदाहरण के लिए बंबई को ही लें। यहां सोशल सर्विस लीग, सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी और अन्य बहुत से संगठन हैं, जिनका उल्लेख किया जा सकता है। वे अपनी आय में से गरीबों, विधवाओं, अनाथ बच्चों, अशिक्षितों की सहायता करते हैं और उन्हें चिकित्सा सुविधाएं भी देते हैं। मैं नहीं समझ सकता कि इस जैसी सरकार, जिसने समाज सेवाओं के प्रति अपने दायित्व को त्याग दिया है (मैं इसे आगे चलकर बताऊंगा) और ऐसी सेवाएं प्रदान करने का बोझ जनता को मिलने वाले दान पर डाल दिया है, परोपकारी संस्थाओं के लिए करों में छूट क्यों नहीं देती है? आयकर अधिनियम की धारा 4 में भी व्यवस्था है कि परोपकार के नाम पर जो आय होती है, उस पर कर नहीं लगेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि इनमें से कोई भी बात माननीय वित्त मंत्री के ध्यान में क्यों नहीं आई? मुझे विश्वास है कि जब हम विधेयक पर बात करेंगे, तो मंत्री महोदय कुछ कहेंगे।

अब बिक्री कर की बात करें। निजी तौर पर मैं इसे पसंद नहीं करता। मैं जानता हूं कि ऐसे लोग भी हैं, जो समझते हैं कि यह कर अच्छा है और इसे लगाना चाहिए। मेरी राय उनसे अलग है। यह कर मुझे ऐसा ही लगता है, जो भारतीय मिलों पर 1894 से लगाया

गया था, जिसे कपड़ा उत्पादन पर उत्पाद शुल्क कहा जाता है। यह उसके सिवाय और कुछ हो भी नहीं सकता। अगर इसे निर्माता या विक्रेता द्वारा स्थानांतरित कर दिया जाए, तो अवश्य ही इसका प्रभाव उपभोक्ता पर पड़ेगा। अवश्य ही, इससे उसके जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ेगा। अगर इसे स्थानांतरित न किया जाता है और इसे निर्माता ही स्वयं सहन करते हैं, तो इसका प्रभाव उद्योग पर पड़ेगा। किसी भी स्थिति में यह कराधान बहुत संतोषप्रद नहीं है।

महोदय! मैं उनमें से हूं, जो यह मानते हैं कि जीवन की अच्छी चीजें छप्पर फाड़कर नहीं टपकतीं। ऐसा कभी नहीं होता। सच तो यह है कि अगर आप जीवन की अच्छी चीजें चाहते हैं, तो आपको उनके लिए दाम चुकाना होगा। जब तक आप उनका दाम नहीं चुकाते हैं, वे आपको नहीं मिल सकतीं। इसलिए मैं उनमें से हूं, जिन्हें इस कर के लिए कोई अंतःकरणानुकूल आपत्ति नहीं है। मैं अवश्य ही उन लोगों में से हूं, जो जीवन की अच्छी चीजें पाना चाहते हैं और उनके लिए दाम चुकाना चाहते हैं। इसलिए अब इस प्रश्न पर विचार करना है कि यह कर किसलिए लगाए जाते हैं? इसका उद्देश्य क्या है? सरकार कर लगाकर कौन सा अच्छा काम करना चाहती है? यह याद रखना आवश्यक है कि वित्त मंत्री अपनी कर की योजना से कुल 169 लाख रुपये के राजस्व की प्राप्ति करना चाहते हैं। महोदय! अब मैं बजट पर आता हूं। सबसे पहले तो यह पूछना चाहिए कि व्यय की नई मदें क्या हैं, जिन्हें इस बजट में शामिल किया गया है? अब मैंने व्यय की कुछ मदें छोड़ दी हैं, जिनका संबंध केवल प्रशासनिक विभागों से है और जिनका परिणाम जनता के प्रत्यक्ष लाभ के लिए नहीं है, जिसे हम समाज कल्याण कहते हैं। मैंने बजट में से नए व्यय की कुछ ऐसी मदें चुनी हैं, जो मेरे अनुसार जन-कल्याण को प्रभावित करती हैं। मैं यह पाता हूं कि इस बजट में सिंचाई के लिए साढ़े सात लाख रुपये की व्यवस्था की गई है। शिक्षा के लिए साढ़े सोलह लाख रुपये की व्यवस्था है, जिसमें से पांच लाख रुपये प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए, पांच लाख रुपये मकानों के लिए, 11.81 लाख रुपये मूल कलाओं का प्रचलन करने के लिए रखे गए हैं। जन-स्वास्थ्य के अंतर्गत कुछ उल्लेखनीय नहीं है, सिवाए इसके कि पांच लाख रुपये गांवों में पानी की आपूर्ति के लिए रखे गए हैं। कृषि के लिए कुछ नहीं है, सहकारिता के लिए सात लाख रुपये हैं। ग्रामीण विकास के लिए तो कुछ है ही नहीं, सिवाए इसके कि उसमें 7,000 भटकते हुए लोगों को लाभ दिलवाना है, जो पूरी प्रेसिडेंसी में इधर से उधर, कुछ न कुछ प्रचार करते हुए घूमते-फिरते हैं। बस इसी से माननीय मंत्री समझते हैं कि जनता को लाभ मिलेगा।

दूसरे, दो लाख रुपये की व्यवस्था ऋण चुकाने के लिए की गई है। मैं एक बात का संकेत करना चाहता हूं, वह है: इस प्रश्न के अलावा कि बजट में व्यय की जो व्यवस्था की गई है, वह प्रांत की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त है या नहीं, इस सदन को एक बात समझ लेनी चाहिए कि नए व्यय के लिए नए कर की कोई आवश्यकता नहीं है। माननीय

वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में स्वयं कहा है कि 169 लाख रुपये के कुल करों में से केवल 44 लाख रुपये दो योजनाओं—एक, ग्रामीण शिक्षा का विस्तार, दो, ग्रामीण आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं, शेष 125 लाख रुपये मंत्रालय जो नए खर्च करना चाहता है, उसके लिए आवश्यक नहीं हैं। सरकार को यह 125 लाख रुपये की राशि किसी अन्य काम के लिए नहीं, पर मद्यनिषेध नीति के घाटे को पूरा करने के लिए चाहिए। अत: एक सीधा सा विचारणीय प्रश्न उठता है– क्या मद्यपान एक समस्या है? अगर मद्यपान समस्या है, तो क्या यह तात्कालिक समस्या है? अगर यह सदन इन दोनों प्रश्नों के सकारात्मक उत्तर देने को तैयार है, तो फिर वित्त मंत्री के कर के प्रस्ताव पर मतदान करने का कोई औचित्य नहीं है। महोदय! हम इस स्थिति का विश्लेषण करने में कोई गलती न करें। यह कोई प्रश्न ही नहीं है कि मद्यपान एक बुराई है और इसके बहुत बुरे परिणाम निकलते हैं। लेकिन मद्यपान एक बुराई है, इसे स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि मद्यपान एक समस्या है या तात्कालिक समस्या है।

महोदय! अब हम इस स्थिति पर तुलनात्मक दृष्टि से देखें। बंबई प्रेसिडेंसी में क्या स्थिति है? हमें इस समय शेष भारत के संबंध में बिल्कुल भी परेशान नहीं होना चाहिए, क्योंकि हम बंबई सरकार के बजट पर बहस कर रहे हैं। जहां तक मद्यपान का सवाल है, बंबई प्रेसिडेंसी की क्या स्थिति है और दूसरे देशों में क्या स्थिति है? सबसे पहले मैं विभिन्न देशों में उत्पाद शुल्क से प्राप्त हुए राजस्व के आंकड़े प्रस्तुत करना चाहता हूं। इसका कारण यह है कि किसी भी देश में उत्पाद शुल्क से प्राप्त राजस्व से पता चल जाता है कि उस देश के सम्मुख समस्या कितनी बड़ी है। ये आंकड़े 1931 के हैं, जिन्हें मैंने लीग आफ नेशंस द्वारा जारी 'ब्लू बुक' से लिया है। ग्रेट ब्रिटेन से शुरू करते हैं, जिसकी जनसंख्या 44,937,444 है और उत्पाद शुल्क 1,504,895,000 है। आस्ट्रिया अब नहीं है, परंतु 1937 में था, जिसकी जनसंख्या 6,760,233 और उत्पाद शुल्क से राजस्व की प्राप्ति 15.96 लाख से अधिक थी। कनाडा की जनसंख्य एक करोड़ है और उत्पाद शुल्क से प्राप्त राजस्व 57.19 लाख है। आयरिश फ्री स्टेट की जनसंख्या 2,965,854 है और उत्पाद शुल्क से राजस्व की प्राप्ति 665 लाख है। डेनमार्क की जनसंख्या 37 लाख है और उत्पाद शुल्क से राजस्व की प्राप्ति 5,34,80,000 है। फ्रांस की कुल जनसंख्या 419 लाख है,उत्पाद शुल्क से राजस्व की प्राप्ति 20,70,79,650 है। अब नार्वे के आंकड़ों को देखा जाए। इसकी कुल जनसंख्या 2,814,194 और उत्पाद शुल्क से राजस्व की प्राप्ति 1,66,72,000 है तथा जहां स्थानीय विकल्प भी है। महोदय! अब हम इस संदर्भ में अपनी प्रेसिडेंसी के आंकड़ों की तुलना करें। बंबई प्रेसिडेंसी की जनसंख्या 180 लाख है और उत्पाद शुल्क से कुल राजस्व की प्राप्ति 325 लाख है। क्या कोई कह सकता है कि बंबई प्रेसिडेंसी में शराब की जो खपत हो रही है, उससे कोई समस्या आने वाली है और जिससे इस प्रेसिडेंसी को तुरंत निबटना होगा? जो व्यक्ति इस प्रश्न का

सकारात्मक उत्तर देगा, वह अवश्य ही ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो अपनी सुध-बुध खो बैठा है (ठहाका)। एक और मामला लें। आप शराब के उपभोग को लें और मैंने बंबई सरकार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में से ये आंकड़े लिए हैं। यहां के लोग कितनी शराब पीते हैं। बंबई सरकार द्वारा जारी की गई प्रशासन रिपोर्ट या 'ब्लू बुक' कहती है कि पूरी प्रेसिडेंसी में शराब की औसत खपत तीन ड्रम प्रति व्यक्ति है। मुझे बताया गया है कि यह एक औंस से कम है, वास्तव में चौथाई औंस है। इस पर भी सामने बैठे मेरे माननीय मित्र कहते हैं कि यह एक समस्या है। ग्रामीण क्षेत्र में शराब की 1.8 ड्रम और कस्बों को साथ मिलाकर देखें तो 8.2 ड्रम है, जो एक औंस भी नहीं है। अब बंबई प्रेसिडेंसी का राजस्व का आधार फिर से देखें, और अब मैं यहां एक मद का उल्लेख कर रहा हूं, जिसकी खपत सबसे ज्यादा है। यह है देसी स्प्रिट और इसी मद से हमें सबसे अधिक उत्पाद शुल्क मिलता है। देसी स्प्रिट से बंबई प्रेसिडेंसी को कितना राजस्व प्राप्त होता है? रिपोर्ट बताती है कि देसी स्प्रिट से कुल राजस्व की प्राप्ति 1,54,43,750 रुपये है। ये आंकड़े पूरी प्रेसिडेंसी के हैं। अब हम इसे शहरी क्षेत्र और ग्रामीण क्षेत्र में बांट दें। प्रशासन की रिपोर्ट के अनुसार बंबई प्रेसिडेंसी में 33 कस्बे हैं। इनकी कुल जनसंख्या 29 लाख है। इन 33 कस्बों से देसी शराब से कितना राजस्व मिलता है? यह कुल एक करोड़ रुपये है। इसका अर्थ यह है कि शेष जनसंख्या जो कस्बों में नहीं रहती, बल्कि गांवों में बसती है, उनकी मेरी गणना के अनुसार, जनसंख्या 1,52,00,000 है और जो 54 लाख रुपये की देसी स्प्रिट का उपभोग करती है। हिसाब लगाकर देखें, तो पता चलता है कि इसका प्रति व्यक्ति औसत 5 आने (31 पैसे) प्रति वर्ष से अधिक नहीं आता। मुझे कस्बों के कुल आंकड़ों का कुछ और विश्लेषण करने दें। जैसा कि मैंने पहले कहा है, कस्बों में 29 लाख लोग एक करोड़ रुपये की शराब पीते हैं। क्या यह सही है? हम सब जानते हैं कि इस देश में औरतें शराब नहीं पीतीं। इतना ही नहीं, बड़े से बड़ा शराबी भी यह सहन नहीं कर सकता कि उसकी पत्नी शराब को चखकर भी देखे। बच्चे भी शराब नहीं पीते। इसलिए यह न्यायसंगत होगा, अगर हम कस्बों की जनसंख्या में से 75 प्रतिशत शराब न पीने वाली बच्चों और औरतों की जनसंख्या को निकाल दें। अगर आप इतने लोगों को निकाल दें, तो शराब की बुराई से जकड़े हुए लोगों की संख्या लगभग 10 लाख रह जाएगी। महोदय! इन आंकड़ों के यह आधार पर मैं यह दावा करता हूं कि किसी के सामने यदि ये आंकड़े हों और वह निष्पक्ष विचारों का हो, तो वह यह नहीं कह सकता कि इस देश में शराब ऐसी समस्या है, जिसका समाधान अभी करना आवश्यक हो।

महोदय! मैं जानता हूं कि हमारे यहां ऐसे लोग हैं, जिनका आदर्श अमरीका है और जो यह सोचते हैं कि अमरीका ने 1919 में अपने संविधान में संशोधन करके मद्यनिषेध की नीति को चलाया है, उसी प्रकार इस देश में भी उस नीति को अपनाया जा सकता है। महोदय! हमारे लिए यहां यह आवश्यक है कि ऐसा पागलपन करने से पहले उस पर विचार करें

कि अमरीका में क्या स्थिति थी। मेरे पास कुछ आंकड़े हैं, जो यह बताते हैं कि अमरीका में 1919 में संविधान में संशोधन करने से पहले वहां क्या समस्या थी और समस्या का क्या रूप था। तब अमरीका में शराब का कुल कितना उपभोग होता था? फैल्डमैन की पुस्तक *प्रोहिबिशन* के अनुसार, स्थिति यह थी। सन् 1910 और 1914 के बीच स्प्रिट से बनी शराब, वाइन और बीयर की प्रति व्यक्ति खपत 22.43 गैलन, 1905 और 1910 के बीच 21 गैलन, 1900 से 1904 के बीच 18.77 गैलन थी। इससे पता चलता है कि शराब की प्रति व्यक्ति खपत तेजी से बढ़ रही थी। यह खपत 1900 से 1901 में 18 गैलन, 1905 से 1909 में 19.46 गैलन और 1910 और 1914 में 22.43 गैलन थी। अवश्य ही, हमारी स्थिति की किसी भी हालत में अमरीका की स्थिति से तुलना नहीं की जा सकती।

एक और संकेत लीजिए। क्या हम कह सकते हैं कि देश में शराब जैसी कोई चीज है? क्या हम कह सकते हैं कि हमारे यहां ऐसे लोग रहे हैं, जिनकी मौत केवल शराब पीते रहने से हुई है? क्या ऐसे लोग हुए हैं, जो अत्यधिक शराब पीने से जिगर की बीमारी से पीड़ित हो कर मरे हैं? मैंने इस प्रांत की पब्लिक हैल्थ रिपोर्टों में प्रकाशित आंकड़ों का अध्ययन किया है। मैंने भारत सरकार द्वारा नियुक्त स्वास्थ्य आयुक्त द्वारा प्रकाशित आंकड़ों की खोजबीन की है। मैं यह कहना चाहता हूं कि दोनों ने शराबखोरी से होने वाली मौतों का उल्लेख करना भी आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने ऐसा इसलिए नहीं किया क्योंकि ऐसी मौतें हमारे देश में नहीं होतीं। दूसरी ओर, देखिए, अमरीका में क्या हुआ। अमरीका में शराबखोरी के कारण मरने वालों की स्थिति इस प्रकार है – 1917 में प्रति 1,000 लोगों में से 5,1916 में 5.8, 1915 में 5.2, 1914 में 4.9, 1913 में 5.10 लोग शराबखोरी से मरे। एक और संकेत देखें। कितने लोग शराब की लत के कारण जिगर की बीमारी से मरे। इनकी संख्या प्रति 1,000 व्यक्ति इस प्रकार थी: 1917 में 11, 1916 में 12, 1915 में 12.6, 1914 में 13, 1913 में 13.4 लोग। मेरा निवेदन है कि हमारे देश में इस प्रकार की घटनाएं नहीं हैं। इसलिए मेरा विचार है कि मंत्रालय का यह कथन गलत है कि हमें इस समस्या से निबटना होगा। मैं मानता हूं कि हमारे देश में ऐसी समस्या कभी बन भी नहीं सकती। इसके दो सशक्त कारण हैं। एक, भारत के सभी धर्म मद्यपान को पाप समझते हैं और उस पर रोक लगाते हैं। धर्म ने बहुत से शरारती काम किए होंगे, परंतु इसमें कोई शक नहीं है कि भारतीय धर्मों, हिन्दू, मुस्लिम, पारसी ने एक अच्छा काम किया है। वह है, शराब पीने पर प्रतिबंध लगाना, जिसका पालन हमारी अधिसंख्य जनता ने बहुत सख्ती से किया है।

हमारी दूसरी विशेषता जो हमारे देश को अन्य देशों से बिल्कुल अलग करती है और जिसके कारण मद्यपान की कोई समस्या खड़ी ही नहीं हो सकती है, वह यह है कि शराब का व्यापार सरकार के हाथ में है। यह निजी मुनाफाखोरों के हाथों में नहीं है, जैसा कि अमरीका में है या यूरोप के अन्य देशों में है। सरकार एक जिम्मेदार संस्था है। वह जनमत

के अधीन होती है। वह इस सदन की राय के अधीन है, इसलिए वह कभी खराब काम नहीं कर सकती, जबकि यह काम निजी मुनाफाखोर कर सकते हैं। जैसा कि मैंने कहा है, हर दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूं कि यह ऐसी समस्या है, जिससे निबटने की आवश्यकता है।

महोदय! मेरा अगला प्रश्न है, क्या यह अत्यंत आवश्यक समस्या है कि हम हर चीज को ताक पर रख दें और पहले इससे निबटें? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि इस प्रेसिडेंसी के लोगों की विभिन्न आवश्यकताएं क्या हैं? क्या उनकी अन्य आवश्यकताएं पूरी हो गई हैं? क्या वे उनसे उतने संतुष्ट हैं कि हम थोड़ी देर के लिए उन्हें भूल जाएं और केवल इसी एक समस्या से निबटें। मैं कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूं। सबसे पहले शिक्षा का प्रश्न उठाते हैं। इसमें प्रौढ़ शिक्षा की स्थिति इस प्रांत में इस प्रकार है। जहां तक पुरुषों का संबंध है, इनकी जनसंख्या के केवल 14.3 प्रतिशत लोग ही साक्षर हैं। जहां तक महिला जनसंख्या का संबंध है, केवल 2.4 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि 86 प्रतिशत पुरुषों और 98 प्रतिशत स्त्रियों को प्रारंभिक अक्षर ज्ञान की आवश्यकता है, जिससे वे अपने जीवन की गतिविधियों को अन्य वर्गों के कपट का शिकार बने बिना चला सकें। इस मामले में रिपोर्ट बनाने के लिए सरकार ने एक कमेटी की नियुक्ति की थी। इसने अपनी रिपोर्ट दे दी है। लेकिन इस बजट में उस कमेटी के प्रस्तावों को कार्य रूप देने के संबंध में कोई प्रावधान दिखाई नहीं देता है। अब बच्चों की शिक्षा को ही लीजिए। क्या आप जानते हैं कि इस प्रेसिडेंसी में इसकी क्या स्थिति है? इस प्रांत में एक चीज ऐसी है, जिससे बिल्कुल इंकार नहीं किया जा सकता और वह यह है कि सरकार ने कालिज शिक्षा के संबंध में अपना दायित्व नहीं निभाया है। मैं समझता हूं कि इस मुद्दे पर कोई संदेह हो ही नहीं सकता। यह सरकार इस प्रेसिडेंसी के लड़कों को उच्च शिक्षा देना अपना काम नहीं मानती। यह काम उसने निजी एजेंसियों पर छोड़ रखा है। चलिए, सेकेंडरी शिक्षा को लीजिए। यहां भी स्थिति कमोबेश वैसी ही है। सरकार अपने कंधे पर कोई जिम्मेदारी नहीं लेती। हां, वह यह काम जरूर करती है कि निजी एजेंसियां जो धन इकट्ठा करती हैं, उसमें सरकारी खजाने से थोड़ा सा अनुदान देकर कुछ इजाफा कर देती है। इसलिए जहां तक शिक्षा का संबंध है, हमारे पास वास्तव में गतिविधि का क्षेत्र ही बहुत सीमित है। अब प्राथमिक शिक्षा को लीजिए। सरकार ने इस संबंध में क्या किया है? इस सिलसिले में जो आंकड़े मैं कल इकट्ठा कर पाया हूं, उससे ज्ञात होता है कि स्थिति यह है: प्राथमिक शिक्षा अधिनियम 6 से 11 वर्ष की आयु के बच्चों पर लागू होता है। इस आयु वर्ग में कुल 24,79,000 बच्चे हैं। इनमें से 7,54,000 बच्चे स्कूल जाते हैं और बाकी बच्चे स्कूल नहीं जाते। इस अनुपात को इस रूप में समझा जाए कि हर तीन बच्चों में से एक बच्चा स्कूल जाता है और दो बच्चे स्कूल नहीं जाते। इस प्रश्न की जांच सुविधाओं

की दृष्टि से करें, जिन्हें सरकार प्राथमिक शिक्षा के लिए देती है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, इस प्रेसिडेंसी के कस्बों में 184 प्राथमिक स्कूल हैं।

यह तो हुआ शहरों के संबंध में। गांवों में स्थिति क्या है? इस प्रेसिडेंसी में कुल 21,484 गांव हैं। इनमें से केवल 8,599 गांवों में स्कूल हैं। 12,885 गांवों में कोई स्कूल नहीं है। तो स्थिति यह है। सरकार उन्हें सुविधाएं प्रदान करने के लिए कुछ नहीं करती, प्राथमिक शिक्षा अधिनियम की व्यवस्थाओं को लागू करना तो अलग बात है। महोदय! यहां मुझे एक असाधारण बात ध्यान में आ रही है। मैं नहीं जानता कि माननीय वित्त मंत्री का ध्यान उस पर गया है या नहीं। अगर प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया जाए, तो उस पर कुल कितना व्यय होगा? प्राथमिक शिक्षा समिति द्वारा तैयार किए गए आंकड़ों के अनुसार, बंबई सरकार को प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने पर 1.30 लाख रुपये व्यय करने होंगे। महोदय! इतनी ही राशि माननीय वित्त मंत्री कर प्रस्तावों से ले रहे हैं। कर प्रस्ताव अच्छे हैं या नहीं, वह अलग बात है। मैं अपना ध्यान इस प्रश्न पर केन्द्रित करना चाहता हूं कि कौन सी श्रेष्ठ पद्धति से और किस उद्देश्य के लिए बजट से प्राप्त धन का उपयोग किया जाए। यही प्रश्न मैं माननीय वित्त मंत्री से पूछना चाहता हूं। आप 1.30 लाख रुपये इकट्ठा कर रहे हैं। क्या यह आवश्यक है कि आप शराबखोरों की स्थिति सुधारने के लिए इस धन का व्यय करें या आपको उस धन को उन बच्चों की शिक्षा पर खर्च करना चाहिए, जो शिक्षा नहीं ले पाते? यह महत्व का प्रश्न है। वास्तव में, क्या बच्चों की शिक्षा उन दस लाख शहरी लोगों से कम महत्वपूर्ण है, जो शराब पीना पसंद करते हैं? महोदय! मैं इस पर विश्वास नहीं करता। मैं स्वयं शराब नहीं पीता और मैं चाहता हूं कि कोई भी न पिए। परंतु समस्या यही है। अगर आप मुझे एक शिक्षित व्यक्ति दिखा दें,जो संयमी भी हो, तो मैं उसका स्वागत करूंगा। लेकिन अगर आप ऐसे संयमी को अपनाने को कहते हैं जो मूर्ख हो, जो निकम्मा हो, जो कुछ नहीं समझता हो, तो मैं उसकी तुलना में उस व्यक्ति को पसंद करूंगा, जो पीता हो, परंतु कुछ जानता तो हो। मेरी वही स्थिति है। मैं समझता हूं, माननीय वित्त मंत्री को ऐसी ही स्थिति को भारी कराधान के प्रस्ताव जिसे वह प्रांत पर लगाना चाहते हैं, वितरण करते समय ध्यान में रखनी चाहिए।

एक और विकल्प लें। मैं जन-स्वास्थ्य की बात कर रहा हूं। यह प्रांत जन-स्वास्थ्य पर जो कुल 31,48,000 रुपये की मामूली राशि खर्च करता है,इसका हिसाब लगाएं, तो यह हमारे संपूर्ण बजट के कुल ढाई प्रतिशत की दर बैठती है। महोदय! गांवों में पानी की तत्काल आवश्यकता है। सैकड़ों गांवों को पानी नसीब नहीं होता। जो कोई भी गांव में जाएगा, उसे महसूस होगा कि गांव गोबर के ढेर के सिवाय और कुछ नहीं है। उन्हें गांव कहना गलत है। उन्हें रहने की जगह कहना भी गलत है। हमारे प्रांतों के गांवों में जो गंदगी है, उनमें सुधार लाना आज की तात्कालिक आवश्यकता है। सैकड़ों लोग मलेरिया व अन्य बीमारियों से मर रहे हैं। मुश्किल से ही कहीं औषधालय है। दवा के वितरण या चिकित्सा के लिए

शायद ही कहीं कोई व्यवस्था है। जैसा मैंने कहा है, पानी की कोई व्यवस्था नहीं है। पिछले वर्ष 10 लाख रुपये का प्रावधान किया गया था। हम नहीं जानते, वह रुपया कैसे खर्च हुआ। इस वर्ष 8,55,000 रुपये का प्रावधान किया गया है। क्या यह विकट समस्या से जूझने के लिए पर्याप्त है? सैकड़ों लोग सिर्फ इसलिए मर रहे हैं, क्योंकि उन्हें डाक्टरी चिकित्सा नहीं मिलती, पीने का पानी नहीं मिलता। वित्त मंत्री ने यह धन बंबई और अहमदाबाद के 10 लाख शराबियों की आत्मा की रक्षा करने के लिए, बाईबल की भाषा प्रयोग करें, तो उनकी आत्मा की शुद्धि के लिए या उनको पुरोहित बनाने के लिए खर्च करने के लिए सोचा है।

महोदय! एक और मुद्दा भी है। वही मुद्दा उठाया गया है कि हम शहर में रहने वालों, शहरी जनसंख्या पर कर लगा रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? हम शहरी जनसंख्या पर कर इसलिए लगाते हैं, क्योंकि हम गांव के लोगों को सुविधाएं देना चाहते हैं। क्या इस बजट में ऐसा कुछ किया गया है? अगर मंत्री महोदय वास्तव में ऐसा ही कर रहे हैं, जिसके लिए मेरे कुछ मित्रों ने काफी ध्यान दिया है, तो इससे मुझे अत्यंत प्रसन्नता होगी। करों से प्राप्त 1.69 लाख रुपये की राशि किस पर खर्च होती है? वह शराबियों के कल्याण पर खर्च करेंगे, जो शहरों में रहते हैं। गांव के निर्धन व्यक्ति को इसमें से कोई लाभ नहीं मिलेगा। उदाहरण के लिए केवल एक मद, भूमि-कर को लेते हैं। इस प्रेसिडेंसी में कुल भू-राजस्व 3,38,63,000 रुपये का है। पिछले वर्ष 10 लाख रुपये की छूट दी गई थी। वह स्थायी कटौती नहीं है। बजट में यह संकेत दिया गया है कि 40 लाख रुपये की स्थायी कटौती की जाएगी। इसका अर्थ है कि ग्रामीण जनसंख्या को अब भी तीन करोड़ रुपये भू-राजस्व के रूप में बरदाश्त करने होंगे। मैं वित्त मंत्री से यह प्रश्न पूछना चाहता हूं। अगर वह शहर की जनता से कर के रूप में 1.69 लाख रुपये प्राप्त करते हैं, तो वह भू-राजस्व को पूरी तरह क्यों नहीं खत्म कर देते? मैं स्वयं इससे बहुत खुश होऊंगा। अगर वह इन करों से प्राप्त होने वाली संपूर्ण धन राशि को भू-राजस्व खत्म करने में लगा देते हैं, तो मैंने बजट का जो विरोध किया है, उस सबको वापस ले लूंगा। क्या वह ऐसा करेंगे? वह ऐसा क्यों नहीं कर रहे हैं?

महोदय! अब तो बस एक-दो मुद्दे ही रह गए हैं, जिन पर मुझे बोलना है। इस बजट में माननीय वित्त मंत्री दो कामों के लिए श्रेय लेना चाहते हैं। एक यह है कि वह सभी करों को शहरी क्षेत्रों में लगा रहे हैं। दूसरे, सब मिलाकर उन्होंने कोई नया भार नहीं डाला है। इसका कारण यह है कि नए कर के रूप में जो कर लगाया गया है, वह मद्यनिषेध का घाटा पूरा करने के लिए है। इसलिए, जोड़-घटाव के बाद योग वही आता है। अब पहले प्रश्न के संदर्भ में मैं कुछ महत्वपूर्ण आंकड़ों की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं। मेरा यह विचार रहा है और यह विचार मेरे इस प्रांत की स्थितियों के अध्ययन से पुष्ट होता है कि जहां तक हमारे प्रांत का संबंध है, कृषि सबसे घना व्यवसाय है। मैं अपनी बात के समर्थन में कुछ आंकड़े देना चाहता हूं। पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि बंबई क्षेत्र की दृष्टि से एक छोटी प्रेसिडेंसी है। इस प्रेसिडेंसी का कुल क्षेत्रफल 76,735 वर्ग मील है, जो मद्रास प्रेसिडेंसी

के आधे, पंजाब, संयुक्त प्रांत और मध्य प्रांत के दो तिहाई के बराबर और बिहार, उड़ीसा से कुछ कम है। इस बात को ध्यान में रखते हुए उस क्षेत्र की तुलना कीजिए, जिस पर खेती के लिए बुआई होती है, जिस पर खाद्यान्न की फसलें उगाई जा सकें। बंबई में बुआई वाला क्षेत्र 32,801,971 एकड़ है। जैसा कि मैंने कहा है, हमारी प्रेसिडेंसी छोटी है, परंतु वास्तव में बुआई वाला क्षेत्र उतना ही है, जितना कि मद्रास में है, यानी ऐसी प्रेसिडेंसी जो बंबई से दोगुनी है। संयुक्त प्रांत में भी बुआई का क्षेत्र उतना ही है। यह बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रांत के बुआई क्षेत्र से 80 लाख एकड़ अधिक है। पंजाब के बुआई क्षेत्र से 60 लाख एकड़ अधिक है। मेरा दावा है कि इस प्रेसिडेंसी में कृषि सबसे अधिक घना उद्योग है, यानी हरेक इंच क्षेत्र जिसका उपयोग किया जा सकता था, उसका उपयोग किया जा चुका है। इसलिए अब कृषि की ओर लोगों को ढकेलने की कोई आवश्यकता नहीं है। कृषि योग्य बंजर भूमि की थोड़ी और तुलना करके देखें, जो संयुक्त प्रांत में 100 लाख एकड़, मद्रास में 130 लाख एकड़, मध्य प्रांत में 140 लाख एकड़, पंजाब में 140 लाख एकड़ है और जब कि बंबई में यह केवल 60 लाख एकड़ है। महोदय! इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए मेरा यह विचार बन रहा है और मैं यह बात पूरे सोच-विचार के साथ कह रहा हूं कि इस प्रेसिडेंसी की मुक्ति, और मैं कह सकता हूं कि संपूर्ण भारत की मुक्ति, इस बात में है कि यहां और अधिक शहरीकरण किया जाए, हमारे कस्बों में नए जीवन का संचार किया जाए, उद्योगों की स्थापना की जाए और जितना संभव हो सके, ग्रामीण जनसंख्या को शहरों में पहुंचा दिया जाए। गांवों में क्या रखा है? वैसे भी, हमारे ग्रामीणों के पास इतना धन नहीं होता कि अपनी कृषि को सर्वोच्च ढंग से चला सकें, जैसे कि चलाना चाहिए। जनसंख्या हर दशक में बढ़ रही है और नए उत्तराधिकारियों के उत्पन्न हो जाने से भूमि का विभाजन होता जा रहा है। हर जगह हालत इतनी खराब है, जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। गांवों के लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए एक ही रास्ता है कि उन्हें चरखे जैसी पुरानी मशीन न दें या उन्हें कपड़ा बुनने के लिए मजबूर न करें, जिसे वे प्रतिस्पर्धी बाजार में बेच न सकें। उनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए उद्योगों को नष्ट न करें, शहरों में अन्य सेवाओं को नष्ट न करें और लोगों को गांवों में जाने के लिए मजबूर न करें। इसका उपाय दूसरी दिशा में है, यानी अधिक से अधिक लोगों को गांवों से शहरों में ले जाया जाए, वहां उन्हें उद्योगों में रोजगार दिया जाए और उनका आर्थिक जीवन बेहतर बनाया जाए। यही रास्ता है। महोदय! मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि जो व्यक्ति, हमारे पास जो कुछ छोटे उद्योग हैं, उन्हें तोड़ने पर तुला है, वह जनता का दोस्त नहीं, दुश्मन है।

अब दूसरा मुद्दा लेते हैं। मेरे माननीय मित्र कहते हैं : आखिर मैं क्या कर रहा हूं? क्या मैं योगफल में कुछ जोड़ रहा हूं? नहीं, मैं 1.69 लाख रुपये जुटा रहा हूं, लेकिन मैं इसके साथ 1.25 लाख रुपये का शराब राजस्व और 40 लाख रुपये का भू-राजस्व छोड़ रहा हूं।

मैं नहीं जानता हूं कि क्या वह यह श्रेय गंभीरता से ले रहे हैं। अगर वह इसे गंभीरता से ले रहे हैं, तो मैं उन्हें उस कुम्हार की याद दिलाऊंगा, जिसे कुछ मिट्टी दी गई थी। अगर वह कुम्हार गणपति की मूर्ति के बदले बंदर की मूर्ति ब.ा दे, या हाथी की मूर्ति बनाने के बदले गधे की मूर्ति बना दे, तो क्या आप उसे अच्छा कुम्हार कहेंगे, क्योंकि उसने अधिक मिट्टी खर्च नहीं की? मैं जानने के लिए उत्सुक हूं कि इसका उत्तर क्या हो। यह केवल गणपति के बदले बंदर बनाने के सिवाय और कुछ नहीं है। महोदय! इसलिए जैसा कि मैंने शुरू में कहा था, यह बजट जहां तक कराधान का प्रश्न है, लापरवाही से बनाया गया बजट है और जहां तक व्यय का प्रश्न है, यह निरर्थक है। महोदय! हम सबको समझ लेना चाहिए कि इस प्रेसिडेंसी में सबसे अधिक कर लगे हुए हैं। ब्रिटिश भारत के प्रांतों में प्रति व्यक्ति कराधान को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। ये मेरे आंकड़े नहीं है। ये मेरे माननीय मित्र, वित्त मंत्री के आंकड़े हैं, जो मैंने उनके पिछले वर्ष के बजट भाषण से लिए हैं :

	रुपये
बिहार और उड़ीसा	1.29
बंगाल	1.78
आसाम	2.26
मध्य प्रांत	2.72
संयुक्त प्रांत	2.29
पंजाब	4.43
मद्रास	3.26
सिंध	4.90
बंबई	6.00

इसी से पता चल जाएगा कि हमारी जनता कितने भारी करों के बोझ से दबी हुई है। सच्चाई यह है कि हमारे व्यय को इतना नियंत्रित किया गया है कि हमारे पास व्यय करने के लिए कुछ है ही नहीं। वास्तव में, हमारे पास व्यय करने के लिए कुछ गुंजाइश है ही नहीं। व्यावहारिक रूप में इस प्रेसिडेंसी में कर इकट्ठा करने की लागत हमारे राजस्व की 15 प्रतिशत बैठती है। अवकाश प्राप्ति पर लोगों को देने में दस प्रतिशत खर्च हो जाता है। ब्याज साढ़े दस प्रतिशत ले जाता है। कानून और व्यवस्था (न्याय, पुलिस और जेल समेत) पर 18 प्रतिशत चला जाता है। अब बाकी जो बचता है, वह उन मदों पर खर्च किया जाता है, जिन्हें जन-कल्याण की मदें कहते हैं। यही स्थिति है। कठिन परिस्थितियों में जहां तक राजस्व का संबंध है, हमारी क्षमता कम है, और जहां तक विनियोग का प्रश्न है बहुत सी मदें, जो जन-कल्याण के रूप में हैं, हमें कुछ नहीं देतीं। ऐसी परिस्थिति में हमारे माननीय वित्त मंत्री को ज्यादा सावधानी दिखानी चाहिए थी। मुझे खेद है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया (तालियां)।

2

वित्त अधिनियम–संशोधन विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकरः (बंबई नगर) : अध्यक्ष महोदय! माननीय वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया गया विधेयक मेरे ख्याल से मुख्यतः तीन प्रावधान करना चाहता है। पहला प्रावधान संपत्ति कर को प्रथम शुल्क बनाने, दूसरा प्रावधान संपत्ति कर न अदा करने पर जुर्माने के संबंध में है और तीसरा प्रावधान जुर्माने को पूर्व-प्रभावी रूप से लागू करने से संबंधित है। सबसे पहले तो मैं यह बता दूं कि मैं माननीय वित्त मंत्री को बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने स्वयं ही अपने भाषण में कहा है कि वह पूर्व-प्रभावी जुर्माने वाली धारा को वापस लेने के उद्देश्य से इस विधेयक में संशोधन करने के लिए तैयार हैं। इतना तक तो ठीक है। यह सब होते हुए भी मेरे लिए इस मुद्दे से दूसरे मुद्दों पर बिना आश्चर्य प्रकट किए जाना मुमकिन नहीं है कि जिस सरकार में पांच-पांच नामी-गिरामी वकील मौजूद हों, उसने शुरू में ही ऐसा विधेयक लाना ठीक समझा, जिसमें पूर्व-प्रभावी जुर्माने का प्रावधान है। यह वाकई बहुत खराब बात है। यह विधेयक इस रूप में नहीं लाया जाना चाहिए था। बहरहाल, अब मैं इस विधेयक के बाकी दो प्रावधानों की ओर आता हूं, यथा क्या संपत्ति कर को प्रथम शुल्क बनाना चाहिए और उसे अदा न करने पर जुर्माना लगाना चाहिए?

मैं पहले जुर्माने से संबंधित दूसरे प्रावधान पर आता हूं। मेरे विचार से इस विधेयक से संबंधित एक-दो बातों की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट करना मेरे लिए उपयुक्त होगा। मेरे काबिल दोस्त ने शायद इस पर ठीक से ध्यान नहीं दिया है, लेकिन उन्हें मालूम होगा कि नगरपालिका अधिनियम में भी संपत्ति कर न देने पर जुर्माना लगाने का कोई प्रावधान नहीं है। बंबई नगरपालिका अधिनियम की धारा 200 में प्रावधान है कि जैसे ही कर का निर्धारण हो जाता है, वैसे ही बिल उस अभिधारक को दे दिया जाएगा, जिसे उसका भुगतान करना है। इसके बाद धारा 202 के अनुसार, ऐसे बिल की अदायगी उसकी प्राप्ति के दिन से अगले

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 6, पृ. 1033-37, 26 अगस्त 1939

15 दिन के अंदर करनी होगी। तत्पश्चात धारा 203 में प्रावधान है कि अगर बिल की अदायगी 15 दिन के भीतर नहीं होती है, तो फौरन ही दावे की अधिसूचना भेजी जाएगी और अगर यह अधिसूचना भेजे जाने पर भी बिल की अदायगी नहीं होती है, तो नगरपालिका को अधिकार प्राप्त होगा कि वह इस रकम की वसूली कर सके। दोषी व्यक्ति से संपत्ति कर की वसूली करने के लिए नगरपालिका को समर्थ बनाने के उद्देश्य से नगरपालिका अधिनियम में दो प्रावधान हैं। पहला है, उस व्यक्ति की संपत्ति की कुर्की करवाना। और दूसरा तरीका है, नगरपालिका ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कचहरी में बाकायदा दावा दायर करे। लेकिन जहां तक जुर्माने का सवाल है, नगरपालिका अधिनियम के अंतर्गत इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। रही बात दूसरी वित्तीय कार्यवाहियों की, तो इसके लिए मैं आयकर अधिनियम के एक प्रावधान की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। मेरे माननीय मित्र ने जरूर गौर फरमाया होगा कि आयकर अधिनियम के अंतर्गत दोषी व्यक्तियों के लिए एक तरह के जुर्माने की व्यवस्था है। यह व्यवस्था अधिनियम की धारा 45 के तहत है। यह बहुत बड़ी धारा है और मैं इस समूची धारा के विस्तार में नहीं जाना चाहता। इस धारा का सार यह है कि इसमें लगातार बकाया रकम से निबटने के लिए एक योजना दी गई है। इस योजना के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति बकाया रकम की अदायगी एक दिन के बाद करता है, तो उसे कुछ जुर्माना देना होगा और दो दिन की बकाया रकम की अदायगी करने पर उसे ज्यादा जुर्माना देना होगा, यानी कि क्रमिक जुर्माना। अधिकतम जुर्माने की रकम जो तय की है, वह कर की रकम जितनी है। इस धारा के हिसाब से लगातार बकाया रकम की अदायगी के लिए सतत जुर्माना नहीं है। अब मैं बंबई भू-राजस्व संहिता पर आता हूं। जुर्माने का जिक्र धारा 148 में किया गया है। इस जुर्माने की व्यवस्था महज इतनी भर है कि अगर कोई व्यक्ति कर देने के मामले में विफल रहता है, कहने का आशय यह है कि अगर वह अपनी किश्त समय पर नहीं दे पाता है, तो कलेक्टर या तो जुर्माना लगाएगा या बकाया रकम पर ब्याज। नियमों के अनुसार, केवल एक अधिकृत सरकार है, जो इस संबंध में नियम बना सकती है। बंबई सरकार द्वारा भू-राजस्व संहिता के तहत बताए गए कानूनों का अध्ययन करने के बाद मैं यह पाता हूं कि सरकार ने जुर्माना लगाने या ब्याज वसूलने के बारे में कोई नियम नहीं बनाया है। दावे की अधिसूचना में सरसरी तौर पर उल्लेख किया गया है कि जुर्माने की अधिकतम सीमा बकाया रकम के एक चौथाई हिस्से से अधिक नहीं होगी। महोदय, मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि जुर्माने का सिद्धांत नया है, परंतु निस्संदेह यह कई वित्तीय प्रावधानों में देखने को मिलता है। अब हमारे सामने विचाराधीन प्रश्न यह है कि जुर्माना किस ढंग से लगाया जाए और इसकी अधिकतम सीमा क्या हो।

इस विधेयक के बाकी प्रावधानों के बारे में माननीय मंत्री महोदय ने हमें बताया है कि यह केवल परिणति है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि ये प्रावधान सबसे ज्यादा विवादास्पद

हैं। इस विधेयक में अगर कोई प्रावधान है जिसके कारण मैं इसका विरोध करता हूं, तो वह वास्तव में धारा 24 ख है, जिसे मेरे माननीय मित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं। सबसे पहले मैं इस मुद्दे पर आता हूं कि यह विधेयक केवल परिणति है। क्या यह केवल परिणति है या यह सर्वाधिक क्रांतिकारी है?

माननीय श्री ए.बी. लाट्ठे: मैंने कभी नहीं कहा कि यह परिणति है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं अपने शब्द वापस लेता हूं।

माननीय श्री ए.बी. लाट्ठे : मैंने कहा था कि यह प्रावधान को स्पष्ट करने के लिए है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: इसमें संदेह नहीं है कि स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मंत्री महोदय ने बंबई नगरपालिका को मुद्दा बनाया है। हमारी स्थिति अब क्या है? स्थिति यह है कि क्या बंबई नगरपालिका को देय शहरी संपत्ति कर प्रथम शुल्क होना चाहिए या नहीं। आपको शायद याद होगा कि फरवरी में जब इस विधेयक पर पहली बार चर्चा हुई थी, तब इसकी इस आधार पर आलोचना की गई थी कि सरकार शहरी संपत्ति पर कर डालकर नगरपालिका के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रही है, जब कि यह अधिकार नगरपालिका को आम सहमति और परंपरागत रूप से प्राप्त है। सरकारी पक्ष में कई माननीय सदस्यों, विशेष रूप से मेरे माननीय मित्र श्री जमनादास मेहता ने इस विधेयक की इस बात पर आलोचना की थी कि नगरपालिका के कर वसूली के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण करके सरकार ने नगरपालिका को पंगु बना दिया है। यह आलोचना का एक मुद्दा है। आलोचना का दूसरा मुद्दा यह है कि सरकार ने बंबई नगरपालिका को इन करों की वसूली करने वाला एजेंट बनाकर बहुत ही गलत काम किया है। एक सुझाव यह दिया गया था कि जिस प्रकार केन्द्रीय सरकार अपने द्वारा लगाए गए करों को वसूल करने के लिए अपनी ही मशीनरी का उपयोग करती है, जैसे उत्पाद शुल्क, आयकर, नमक पर कर, उसी प्रकार बंबई सरकार को भी यह कर अपनी ही एजेंसियों द्वारा वसूलना चाहिए। मेरे माननीय मित्र ने इस स्थापित सिद्धांत और कुशल पद्धति से हटकर इस कर की वसूली के लिए नगरपालिका की मुश्किल इतनी नहीं बढ़ाई, जितनी कि वह अब बढ़ा रहे हैं। उस वक्त उन्हें यह करने का साहस नहीं था कि बंबई सरकार की ओर से नगरपालिका द्वारा वसूल किया गया शहरी संपत्ति कर प्रथम शुल्क होगा। उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा था। मैं इस समूचे विधेयक को पढ़ गया हूं, लेकिन मुझे उपर्युक्त प्रावधान कहीं नहीं दिखाई दिया। इसलिए मेरा दावा है कि यह एक नया मुद्दा है।

अब इस विधेयक के पेश होने से पहले क्या स्थिति थी? अगर हम बंबई नगरपालिका अधिनियम की धारा 212 को देखें, तो पता चलेगा कि स्थिति यह थी: इस धारा के अनुसार, बंबई नगर में स्थित संपत्ति पर प्रथम शुल्क भू-राजस्व था, जो कि नगरपालिका के अधीन है। भू-राजस्व के बाद प्राथमिकता के आधार पर सबसे पहला दावा नगरपालिका का था। उस वक्त यह स्थिति थी। अब क्या स्थिति होने वाली है? अब स्थिति ऐसी होने वाली है:

भू–राजस्व प्रथम प्रभार होगा और सरकार को देय शहरी संपत्ति कर अब द्वितीय प्रभार होगा तथा नगरपालिका जिसका संपत्ति कर में पूर्ण हक है, सबसे बाद में आती है। महोदय! बंबई नगरपालिका के लिए जिसे तेरह लाख नागरिकों के कल्याण का दायित्व निभाना है, ऐसी व्यवस्था कहां तक वांछनीय है? क्या ऐसे विधेयक को पास करना सही होगा, जो नगरपालिका के हित और दावे को सबसे अंत में रखता है?

मेरे माननीय मित्र इस संपत्ति कर को लागू करने के लिए जिम्मेदार हैं। जैसा कि उन्होंने स्वयं ही अपनी आरंभिक टिप्पणी में कहा था, इस कदम का जनता द्वारा विरोध किया जा रहा है।

माननीय श्री ए.बी. लाट्ठे : मैंने कहा था कि सरकार का एक वर्ग . . .

डा. भीमराव अम्बेडकर : मेरे लिए इतना ही काफी है (ठहाका)। उन्होंने कहा था कि इस कदम का विरोध हो रहा है। अगर इस कदम का विरोध है, तो यह विरोध किस रूप में है? हमें यह समझना चाहिए। मैं नहीं समझता कि मैं कोई झूठा वक्तव्य दे रहा हूं, या ऐसी कोई बात कह रहा हूं जो कि माननीय राजस्व मंत्री की जानकारी में नहीं है। और वह वक्तव्य है, विपक्ष के नेता मेरे माननीय मित्र भी मेरी बात की पुष्टि करेंगे कि जमींदारों का एक छोटा वर्ग और समूची मुसलमान बिरादरी इस विधेयक का विरोध कर रही है। इस बात में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। गलत है या सही है, वे विरोध कर रहे हैं। इस समय मैं इसकी जांच करना नहीं चाहता। लिहाजा यह सिर्फ किसी एक अड़ियल व्यक्ति का मामला नहीं है,जो कर की अदायगी करने के लिए तैयार नहीं, बल्कि पूरी एक बिरादरी इसका विरोध कर रही है। अब, महोदय, इस पर गौर फरमाया जाए कि इस विधेयक का क्या नतीजा होने वाला है। स्थिति कुछ ऐसी है: नगरपालिका को कहा गया है कि वह अपने द्वारा लगाए गए संपत्ति कर और बंबई सरकार द्वारा लगाए गए कर, दोनों की वसूली करे। मेरे माननीय मित्र मुझ से सहमत नहीं होंगे, यदि मैं कहूं कि वह एक डाकू की तरह उस धन पर झपटने को तत्पर हैं,जो नगरपालिका ने इकट्ठा किया है और वह भी इस बात का ध्यान किए बिना कि यह धन नगरपालिका द्वारा उनके लिए इकट्ठा किया गया है, या स्वयं अपने ही लिए। जैसे ही वह देखते हैं कि नगरपालिका की बैंक में जमा राशि बढ़ गई है, वह बैंक को वारंट जारी कर देते हैं। इस क्रम में वह यह भी नहीं देखते कि नगरपालिका की देनदारी कितनी है। नगरपालिका असहाय रह गई है। प्रश्न यह है कि अब नगरपालिका क्या करे? विधेयक की योजना के अनुसार, नगरपालिका को पूरे समाज के खिलाफ अपना काम आगे चलाना है और कर वसूल करना है। अब मैं अपने माननीय मित्र के सामने जो मुद्दा रखना चाहता हूं वह यह है कि अगर उनमें हिम्मत है,तो वह स्वयं कर की उगाही करें। भला नगरपालिका कर की उगाही कैसे कर सकती है, जब कि उसके खिलाफ संगठित विरोध खड़ा हो गया है? हमें इस बात को भी जान लेना चाहिए कि यह विरोध मुसलमानों की ओर से हो रहा है, जहां परदा प्रथा है। उनके मकानों में घुसकर यह मालूम करने की हिम्मत कौन करेगा

कि उनके पास कौन से सामान्य गहने हैं और कौन से हीरे-जवाहरात हैं? ऐसे मामले में नगरपालिका क्या करे? उसके पास तो पुलिस की फौज भी नहीं है। इसके पास कोई पूंजी और साधन नहीं है, जिससे कि लोगों पर दबाव डाल सके। आखिर, उन्हें तो कर लगाना है, फिर वह ही पहल करें और साहसी व्यक्ति की तरह अपनी एजेंसी को उस काम में लगाएं तथा उनसे कर उगाही करें, जो देना नहीं चाहते। नगरपालिका को कठिनाई में क्यों डाला जाए? यही मेरा कहना है। शेष बातों पर मैं बहस नहीं करना चाहता। मैं उनकी चिंता नहीं करता, परंतु वास्तव में मुद्दा यह है कि क्या बंबई सरकार को यह छूट दी जाए कि वह बंबई नगरपालिका को उन बातों के लिए कठिन स्थिति में डाले, जिसके लिए वह जिम्मेदार नहीं है? आप अपने दायित्व से क्यों मुंह मोड़ें? यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यह विधेयक सबसे अधिक कायरतापूर्ण है और मुझे यह कहने में कोई संकोच भी नहीं है। अगर आप कह सकते हैं कि यह कर लोकप्रिय है, तो फिर आप इसकी उगाही की जिम्मेदारी से क्यों बच रहे हैं? आप नगरपालिका पर बोझ क्यों लाद रहे हैं? आप उनके साधनों को क्यों काम में ला रहे हैं? इस दृष्टि से मैं निश्चित रूप से यह समझता हूं कि यह कायरतापूर्ण विधेयक है, जिसका समर्थन नहीं किया जाना चाहिए।

3
शिक्षा के लिए अनुदान *

डा. भीमराव अम्बेडकर : अध्यक्ष महोदय! मैं अधिक समय नहीं लेना चाहता, क्योंकि मैं यह समझता हूं कि हमारे पास समय बहुत कम है। फिर भी, मैं माननीय शिक्षा मंत्री के विचारार्थ कुछ मुद्दे प्रस्तुत करना चाहता हूं।

सबसे पहला मुद्दा,जो मैं उनके ध्यान में लाना चाहता हूं, वह यह है कि अपने बच्चों की शिक्षा के मामले में हमारी प्रगति बहुत धीमी है। भारत सरकार ने हाल ही में शिक्षा की प्रगति के बारे में जो रिपोर्ट जारी की है, उसे पढ़कर बहुत दुःख होता है। उसमें कहा गया है कि अगर शिक्षा की प्रगति इसी वेग से चलती रही,जो आज चल रही है, तो स्कूल जाने वाली उम्र के लड़कों को 40 साल और लड़कियों को 300 साल शिक्षित बनाने में लगेंगे। महोदय! मैं कहना चाहता हूं कि यह बहुत निराशाजनक स्थिति है, जिस पर इस सदन को विचार करना है। माननीय वित्त मंत्री ने बजट प्रस्तुत करते हुए हमें बताया था कि 1921-22 से लेकर आज तक शिक्षा पर खर्च लगभग 39 लाख रुपये बढ़ गया है। महोदय! शिक्षा के खर्च और स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या में हुई बढ़ोतरी को ध्यान में रखने पर मुझे लगता है कि स्कूली बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी, शिक्षा पर खर्च में हुई बढ़ोतरी के अनुरूप नहीं है। अगर हम 1916-17 से 1922-23 के आंकड़ों को देखें, तो हम पाएंगे कि शिक्षा पर खर्च लगभग सौ गुना बढ़ गया है, जब कि उसी अवधि के दौरान स्कूली बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी केवल 29 प्रतिशत हुई है। महोदय! मैं जानता हूं कि बंबई प्रेसिडेंसी में वित्तीय संकट है और हम इस समय ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि शिक्षा में तेजी से प्रगति करने की मांग करें, लेकिन हम एक मांग तो कर ही सकते हैं। हमारे पास इस प्रेसिडेंसी में दो विभाग हैं, जो मेरे अनुसार एक-दूसरे से उल्टा काम कर रहे हैं। हमारे पास शिक्षा विभाग है, जिसका काम लोगों को नैतिकता सिखाना और उनको समाज में रहने लायक बनाना है। दूसरी ओर हमारे पास उत्पाद शुल्क विभाग है, जो मेरे विचार से एकदम विपरीत दिशा में काम कर रहा है। महोदय! मेरे विचार से मेरी मांग बड़ी नहीं है, अगर मैं कहूं कि हम शिक्षा पर

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 19, पृ. 971-76, 12 मार्च 1927

कम से कम उतनी राशि तो खर्च करें ही, जितनी हम लोगों से उत्पाद शुल्क के रूप में लेते हैं। हम इस प्रेसिडेंसी में शिक्षा पर प्रति व्यक्ति 14 आना खर्च करते हैं, परंतु उत्पाद शुल्क से हमारी प्राप्ति 2-2-9 रुपये (2.17 रुपये) होती है। मेरे विचार से यह न्यायोचित होगा कि शिक्षा पर हमारा खर्च इस प्रकार तय किया जाए कि हम लोगों की शिक्षा पर उतना खर्च करें, जितना हम उनसे लेते हैं।

एक दूसरा मुद्दा,जो इसी प्रकार का है और जिसके प्रति मैं अपने माननीय मित्र शिक्षा मंत्री का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, वह यह है कि हम इस समय प्राथमिक शिक्षा पर जो खर्च कर रहे हैं, उसके अधिकांश भाग का वास्तव में अपव्यय हो रहा है। प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि प्राथमिक विद्यालय में दाखिल होने वाला हर बच्चा स्कूल तभी छोड़े, जब वह साक्षर हो जाए और अपने शेष जीवन में वह साक्षर बना रहे। लेकिन हम आंकड़ों पर नजर डालें, तो हमें पता चलेगा कि प्राथमिक स्कूलों में दाखिल होने वाले हर एक सौ बच्चों में से केवल 18 बच्चे ही कक्षा चार तक पहुंचते हैं और शेष बच्चे, यानी 100 में से 82 बच्चे पुनः निरक्षरता की दुनिया में चले जाते हैं। इस परिस्थिति का इलाज क्या है? महोदय! शिक्षा की समीक्षा पर अपनी रिपोर्ट में भारत सरकार ने जो टिप्पणी दी है, उसे मेरे विचार से सफाई दिए बिना सदन को पढ़कर सुना देना चाहिए। यह रिपोर्ट इस प्रकार है:

शिक्षा के प्रयत्न व्यर्थ हो रहे हैं और अधिकांश शिक्षा शास्त्रियों की यह राय है कि भारत में इस समस्या का कोई समाधान नहीं है, बल्कि यह विवशता है। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा के प्रयत्नों की कुल बरबादी और उसके साथ-साथ शिक्षा पर खर्च होने वाले धन का अपव्यय कुल प्रयासों का लगभग पचास प्रतिशत है।

इसलिए मैं माननीय शिक्षा मंत्री से अनुरोध करता हूं कि वह प्राथमिक शिक्षा पर अधिक खर्च करें, कम से कम यह देखने के लिए ही करें कि वह जो खर्च करें अंततः उसका कुछ परिणाम तो निकले। महोदय! यह तर्क उस तर्क से बहुत अलग नहीं है, जो सरकारी पक्ष के सदस्यों ने 'बेक बे' उधार के मामले में दिया था। हमें बताया गया था कि 'बेक बे' पर अधिक धन खर्च करने का आग्रह इसलिए किया गया था कि अगर हम ऐसा नहीं करते, तो उस पर जो खर्च हुआ है, वह बेकार जाएगा। मैं समझता हूं कि अब वही तर्क इस मामले में भी दिया जा सकता है और हम कह सकते हैं कि अगर पर्याप्त धन खर्च करके हर बच्चा जो स्कूल में प्रवेश करता है,उसे कक्षा चार तक नहीं पहुंचाया जाएगा, तो हमने उस पर जो खर्च पहले ही किया है, वह बेकार चला जाएगा।

महोदय! तीसरा मुद्दा जिसकी ओर मैं माननीय शिक्षा मंत्री का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह यह है। उन आंकड़ों की जो हमें जानकारी देते हैं कि इस प्रेसिडेंसी में शिक्षा का वित्तीय प्रबंध कैसे होता है? छानबीन करने से मुझे यह पता लगा है कि आर्ट्स कालिजों

पर जो खर्च किया जाता है,उसका 36 प्रतिशत भाग फीस से मिलता है, हाई स्कूलों पर जो खर्च होता है,उसका 31 प्रतिशत भाग फीस से आता है। मिडिल स्कूलों पर जो खर्च होता है,उसका 21 प्रतिशत भाग फीस से आता है। महोदय! मेरा निवेदन है कि यह शिक्षा का व्यवसायीकरण है। शिक्षा तो एक ऐसी चीज है, जो कि सबको मिलनी चाहिए। शिक्षा विभाग ऐसा नहीं है, जो इस आधार पर चलाया जाए कि जितना वह खर्च करता है, उतना विद्यार्थियों से वसूल किया जाए। शिक्षा को सभी संभव उपायों से व्यापक रूप में सस्ता बनाया जाना चाहिए। मैं यह निवेदन इसलिए कर रहा हूं, क्योंकि मैं महसूस करता हूं कि अब हम उस स्थिति पर आ गए हैं, जब समाज के निचले तबके के लोगों के बच्चे हाई स्कूल, मिडिल स्कूल और कालिजों में जा रहे हैं। इसलिए इस विभाग की नीति यह होनी चाहिए कि निचले वर्गों के लिए उच्च शिक्षा को जितना संभव हो सस्ता बनाया जाए। इसलिए मैं माननीय शिक्षा मंत्री का ध्यान इस प्रेसिडेंसी में शिक्षा प्रशासन के इसी चुभते हुए तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहूंगा।

महोदय! चौथा मुद्दा जिसकी ओर मैं अपने मान्य मित्र शिक्षा मंत्री का ध्यान दिलाना चाहता हूं, वह यह है कि इस प्रेसिडेंसी में विभिन्न वर्गों में शिक्षा के तुलनात्मक विकास में बहुत असमानता पाई जाती है। इससे पहले कि मैं इस मुद्दे पर अपनी बात कहूं, मैं आपके सामने एक तथ्य प्रस्तुत करना चाहता हूं और वह यह है कि इस प्रेसिडेंसी की जनगणना रिपोर्ट ने विभिन्न जातियों में शिक्षा के विकास की तुलना के लिए कुल जनसंख्या को चार वर्गों में बांटा है। पहला वर्ग 'विकसित हिन्दुओं' का है। दूसरे वर्ग में 'मध्यवर्ती हिन्दू' आते हैं और इस वर्ग में वे लोग भी शामिल हैं, जिन्हें अब राजनीतिक उद्देश्यों के लिए गैर-ब्राह्मण, जैसे मराठा तथा अन्य संबंधित जातियां कहा जाता है।

तीसरा वर्ग पिछड़ी जातियों का है, जिनमें दलित वर्ग, पहाड़ी आदिम जातियां और अपराधी आदिम जातियां शामिल हैं। चौथे वर्ग में मुसलमान आते हैं। इस वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए यह पता चलता है कि शिक्षा के मामले में इन विभिन्न जातियों की तुलनात्मक प्रगति में बहुत भारी असमानता है। अब हम इन वर्गों के लोगों की तुलना उनके जनसंख्या के क्रम के अनुसार और उनके शिक्षा के विकास के क्रम के अनुसार करें, तो हम किस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं? मैं पाता हूं कि मध्यवर्ती वर्ग, यानी गैर ब्राह्मण जो जनसंख्या की दृष्टि से पहले स्थान पर हैं, वह कालिज शिक्षा में तीसरे, सैकेंडरी शिक्षा में तीसरे और प्राथमिक शिक्षा में तीसरे स्थान पर हैं। पिछड़ी जातियां,जो जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे स्थान पर है, वे कालिज शिक्षा में चौथे, सैकेंडरी शिक्षा में चौथे और प्रशासनिक शिक्षा में चौथे स्थान पर हैं। मुसलमान जो जनसंख्या की दृष्टि से तीसरे स्थान पर हैं, वे कालिज शिक्षा में दूसरे, सैकेंडरी शिक्षा में दूसरे और माध्यमिक शिक्षा में दूसरे स्थान पर हैं। विकसित हिन्दू जो जनसंख्या की दृष्टि से चौथे स्थान पर हैं, वे कालिज शिक्षा में पहले, सैकेंडरी शिक्षा

में पहले और प्राथमिक शिक्षा में पहले स्थान पर हैं। महोदय! मैंने विभिन्न जातियों की शिक्षा के क्षेत्र में तुलनात्मक प्रगति के बारे में असमानता का खाका पेश कर दिया है। इन आंकड़ों से यह पता नहीं चलता कि हमारी प्रेसिडेंसी में विभिन्न जातियों के बीच असमानता कितनी है। इसलिए मैं यहां माननीय शिक्षा मंत्री के गंभीर विचार के लिए ये आंकड़े प्रस्तुत करता हूं। पहले प्राथमिक शिक्षा को लेते हैं:

	(विद्यार्थी, अपनी जनसंख्या के प्रति एक हजार में)
विकसित हिन्दू	119
मुसलमान	92
मध्यवर्ती वर्ग	38
पिछड़ी जातियां	18

यह थी, प्राथमिक शिक्षा की स्थिति। अब सैकेंडरी शिक्षा को लेते हैं :

	(विद्यार्थी, अपनी जनसंख्या के प्रति एक लाख में)
विकसित हिन्दू	3,000
मुसलमान	500
मध्यवर्ती वर्ग	140
पिछड़ी जातियां	14

यह थी, सैकेंडरी शिक्षा की स्थिति। अब हम कालिज शिक्षा को लेते हैं :

	(विद्यार्थी, अपनी जनसंख्या के प्रति दो लाख में)
विकसित हिन्दू	1,000
मुसलमान	52
मध्यवर्ती वर्ग	14
पिछड़ी जातियां	शून्य (या लगभग एक अगर है भी तो)

यह है, पिछड़ी जातियों की कालिज शिक्षा की स्थिति, जब कि उनकी कुल जनसंख्या लगभग साढ़े सैंतीस लाख है। महोदय! इन आंकड़ों से दो निष्कर्ष निकलते हैं। एक, शिक्षा के मामले में विभिन्न जातियां एक समान नहीं हैं। इनसे एक और बात भी मालूम होती है, जिसकी ओर मैं सदन का ध्यान दिलाना चाहता हूं। वह यह है कि शिक्षा के मामले में मुसलमान आगे निकल गए हैं। महोदय! यह काल्पनिक विवरण नहीं है। मैंने जो आंकड़े इस सदन के सामने प्रस्तुत किए हैं, वे 'पब्लिक इंस्ट्रक्शन फार बोंबे' के निदेशक की 1923-24 की रिपोर्ट से लिए गए हैं और इस तर्क के समर्थन में सर इब्राहीम रहीमतुल्ला जैसे विख्यात व्यक्ति की राय को पेश कर रहा हूं, जिन्होंने मुस्लिम सम्मेलन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए यही टिप्पणी की थी। यह याद रहे कि मैं यह वक्तव्य, सरकार ने मुसलमानों की शिक्षा के लिए जो प्रयत्न किए हैं, उनमें दोष निकालने के लिए या ईर्ष्या भाव से नहीं

दे रहा हूं। मैं यहां केवल इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि यह देश विभिन्न जातियों से मिलकर बना है। इन सभी जातियों का समाज में स्थान और विकास एक समान नहीं है। अगर इन सबको एक स्तर पर लाना है, तो इसका एकमात्र समाधान असमानता के सिद्धांत को अपनाना और स्तर से नीचे वालों के प्रति अनुकूल बरताव करना है। मैं जानता हूं कि ऐसे लोग भी हैं, जो मेरी इस बात का विरोध करते हैं और समानता के सिद्धांत का समर्थन करते हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि सरकार ने मुसलमानों के संबंध में इस सिद्धांत को लागू करके अच्छा किया है। मैं ईमानदारी से विश्वास करता हूं कि ऐसे लोगों के साथ समान व्यवहार करना जो स्वयं असमान हैं, अगर सरल शब्दों में कहें, तो उनकी ओर उदासीन रहना और उनकी उपेक्षा करना है। मेरी एक ही शिकायत है कि सरकार ने अभी तक इस सिद्धांत को पिछड़ी जातियों के लिए लागू करने योग्य नहीं समझा है। आर्थिक या सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी जातियां जिस तरह बाधित हैं, उस तरह कोई भी दूसरी जाति नहीं है। इसलिए मेरा ख्याल है कि उनके लिए सहानुभूतिपूर्ण रवैये का सिद्धांत अपनाया जाए। जैसा कि मैंने बताया है कि पिछड़ी जातियों की स्थिति मुसलमानों से बहुत खराब है और मेरा केवल यही निवेदन है कि सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के वे सबसे अधिक हकदार हैं और उन्हें वास्तव में यह मिलना चाहिए, तो इस मामले में सरकार द्वारा मुसलमानों की अपेक्षा पिछड़ी जातियों की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

यही यह प्रश्न है, जिसे मैं मुख्य रूप से सदन के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूं और माननीय शिक्षा मंत्री से आग्रह करना चाहता हूं कि वह वही पद्धतियां और सिद्धांत पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए अपनाएं, जो मुसलमानों के उत्थान के लिए अपनाए गए हैं। महोदय, मैं मंत्री महोदय का ध्यान 1882 के शिक्षा आयोग की रिपोर्ट पर 1885 में भारत सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देशों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। रिपोर्ट में मुसलमानों के लिए शिक्षा में सुधार करने के लिए कई प्रस्ताव किए गए थे। भारत सरकार ने जिस प्रस्ताव पर जोर दिया था, वह यह था कि एक विशेष निरीक्षक वर्ग की नियुक्ति की जाए, जो मुसलमानों की शिक्षा की आवश्यकताओं को देखे और मुसलमानों को समझाए कि उनके लिए शिक्षा क्यों आवश्यक है। मैं समझता हूं कि दलित वर्गों की शिक्षा की देखभाल करने के लिए भी विशेष निरीक्षक वर्ग की उतनी ही आवश्यकता है। महोदय! मैं कहना चाहता हूं कि प्राथमिक शिक्षा अधिनियम बहुत गलत है। शायद माननीय सदस्य इस संबंध में मुझ से सहमत नहीं होंगे, लेकिन मैं कहता हूं कि वह गलत है। यह दोगुना गलत है। यह इसलिए गलत है, क्योंकि शिक्षा का दायित्व उनको दिया गया है, जिनको यह समझने का पर्याप्त ज्ञान नहीं है कि शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। इस परिषद में ऐसे लोग नहीं हैं, जो शिक्षा की आवश्यकता को समझते हैं। स्थानीय बोर्डों के सदस्य इतने अधिक अशिक्षित हैं कि वे नहीं समझते कि शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। इसलिए मेरा कहना है कि इस परिषद

ने शिक्षा का दायित्व उन लोगों को सौंप कर जो शिक्षा के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं, बहुत गलत काम किया है। इतना ही नहीं, शिक्षा को स्थानीय बोर्डों को सौंपना गलत है, क्योंकि इससे उन कंधों पर बोझ डाल दिया गया है, जो उसे संभाल नहीं सकते। महोदय! हम सब समझते हैं कि जनता की शिक्षा पर बहुत खर्च होता है और अगर उस भारी खर्च को कोई संस्था उठाने में समर्थ है,तो यह परिषद ही है, जिसकी आय साढ़े पंद्रह करोड़ रुपये है। स्थानीय निकाय जिनकी आय कुछ लाख रुपयों की ही है, इस योग्य नहीं हैं। महोदय! मैं महसूस करता हूं कि इस परिषद ने शिक्षा को स्थानीय निकायों को सौंप कर जनता में शिक्षा के प्रसार को वास्तव में अनिश्चित काल तक स्थगित कर दिया है और उसकी यह बहुत बड़ी गलती है। महोदय! मैं जो कुछ कहना चाहता हूं , यह तो उसकी प्रारंभिक तैयारी है, यथा इस गलती से सबसे ज्यादा हानि दलित वर्गों की हुई है। स्थानीय स्वायत्त शासन के माननीय मंत्री के प्रति पूर्ण आदर भाव रखते हुए मैं यह कहने के लिए विवश हूं कि उनके स्थानीय बोर्ड किसी संग्रहालय के संपत्ति गृहों के ढंग पर बने हैं, जहां प्रबंधक का उद्देश्य हर प्रकार के नमूने के लिए अपने संग्रहालय में जगह बनाना है। महोदय! हर स्थानीय निकाय में दलित वर्गों के लिए एक ही प्रतिनिधि का प्रबंध है। इन वर्गों का केवल एक ही प्रतिनिधि रखने की क्या उपयोगिता है? यह बात मेरी समझ में नहीं आती। उदाहरण के तौर पर, अगर स्थानीय बोर्ड में दलित वर्गों का प्रतिनिधि यह चाहे कि वे स्थानीय बोर्ड से ऐसी नीति पास करा ले,जो दलित वर्गों के हित में हैं, तो उसके प्रयत्न व्यर्थ ही रहेंगे। बात साफ है कि दस-बाहर सदस्यों के निकाय में एक व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। मेरे पास प्रेसिडेंसी के सभी भागों से शिकायतें आती रहती हैं कि वर्तमान शासन के अंतर्गत दलित वर्ग अपने को अत्यंत दयनीय स्थिति में महसूस करते हैं। वे ऐसे लोगों से घिरे हुए हैं, जो उनकी महत्वकांक्षाएं या उनकी विकास और प्रगति की इच्छाओं में किसी तरह भागीदार नहीं बन सकते। इसलिए मेरा कहना है कि इस बात की और भी अधिक आवश्यकता है कि सरकार किसी निरीक्षक एजेंसी को अपने सीधे नियंत्रण में नियुक्त करे, जो यह देखे कि वे निकाय जिनको शिक्षा जैसा महत्वपूर्ण काम सौंपा गया है, दलितों की उपेक्षा न करें।

दलितों के बारे में दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि पिछड़ी जातियों को छात्रवृत्ति देने के लिए बजट में कुछ धन अलग रखा गया है। महोदय! बजट में प्रयुक्त 'पिछड़ी जातियों' शब्द का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया है। यह बहुत ही अच्छा होता, अगर माननीय मंत्री द्वारा उन्हीं शब्दों का चयन किया जाता, जो पब्लिक इंस्ट्रक्शन के निदेशक ने अपनी रिपोर्ट में किया है। मैं यह भी चाहता हूं कि वह हर जाति के लिए जिन्हें वह 'पिछड़ी जातियां' शब्दावली में सम्मिलित करना चाहते हैं, अलग से निश्चित धन राशि नियत करें। तब हम यह जान पाएंगे कि मध्यवर्ती हिन्दुओं, पिछड़े हिन्दुओं और मुसलमानों की प्रगति साल-दर-साल कैसे हो रही है। आजकल हम सबको एक समान माना गया है, जब कि वास्तव

में ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि हम जितना चाहें कह लें कि हम एक हैं, हम निश्चित रूप से एक दूसरे से अलग हैं।

तीसरा मुद्दा जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं और मुझे आशा है कि माननीय मंत्री इस पर भली-भांति विचार करेंगे, वह है दलित जातियों के लड़कों को छात्रवृत्ति देने की पद्धति। सहायता के रूप में छात्रवृत्ति किसी भी प्रकार की सहायता न होने से बेहतर है। फिर भी, मेरे माननीय मित्र, शिक्षा मंत्री, मेरी यह बात मान लें कि मेरी पूछताछ और मेरे अनुभव बताते हैं कि छात्रवृत्ति देने की जो पद्धति है, वह वास्तव में सरकारी धन की बरबादी है। दलित वर्ग के बच्चों के माता-पिता इतने गरीब और अनभिज्ञ हैं कि वे यह नहीं समझ पाते कि सरकार द्वारा दी गई सहायता वास्तव में उनके बच्चों को शिक्षित बनाने के लिए है। वे छात्रवृत्ति को अपने खर्च को पूरा करने वाली सहायता के रूप में लेते हैं। एक प्रकार से यह छात्रवृत्ति बच्चे की शिक्षा के काम नहीं आती, जो कि उसका प्रथम उद्देश्य है। महोदय! दूसरी बात यह है कि मुझे अनुभव है कि छात्रवृत्ति से लड़का अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुंच सकता। इसके विभिन्न कारण हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि दलित वर्ग का लड़का बुरे माहौल में पलता है . . . .

एक माननीय सदस्य: इसके लिए कौन जिम्मेदार है?

डा. भीमराव अम्बेडकर : भगवान ही जाने। वह ऐसी परिस्थितियों में पलता है, जो किसी भी तरह से वांछनीय नहीं है। जब किसी लड़के को छात्रवृत्ति मिल जाती है, तो वह हर प्रकार के बुरे प्रभावों का शिकार हो जाता है। उचित दिशा निर्देशन के अभाव में उसे पढ़ाई छोड़ देनी पड़ती है और इस प्रकार उस पर खर्च होने वाला धन बेकार हो जाता है। इसलिए मैं माननीय मंत्री को सुझाव देना चाहता हूं कि क्या यह बेहतर नहीं होगा कि वह इस धन का उपयोग छात्रावासों की अभिवृद्धि के लिए करें, जिसे या तो सरकर खुद बनाए-चलाए या यह काम पिछड़ी जातियों की शिक्षा को बढ़ावा देने वाली निजी संस्था करे। महोदय! इससे दोहरी बचत होगी। सबसे पहली बात तो यह है कि छात्रावास लड़कों को गंदे माहौल से दूर रखता है। उसे प्रभावी निरीक्षण उपलब्ध होता है और जब छात्रावास की व्यवस्था निजी संस्था द्वारा की जाएगी, तो सरकारी धन की कुछ बचत होगी।

महोदय! मेरे पास बोलने के लिए जो थोड़ा समय शेष है, उसमें मैं तीन सुझाव ही देना चाहता हूं। मुझे आशा है, मेरे माननीय मित्र शिक्षा मंत्री इन पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे और इस मामले में आवश्यक कार्यवाही करेंगे।

4

बंबई विश्वविद्यालय अधिनियम संशोधन विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर: अध्यक्ष महोदय! मैंने अपने माननीय मित्र, बंबई विश्वविद्यालय के सदस्य का भाषण बहुत रुचि के साथ सुना है। उन्होंने अपने एक घंटा बीस मिनट के भाषण में विषय पर इतना विस्तारपूर्वक खुलासा किया है कि मुझे लगता है कि मेरे पास बोलने के लिए कुछ है ही नहीं, लेकिन मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूं कि एक दृष्टिकोण है, जिसे न तो मेरे माननीय मित्र, विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि ने और न ही इस महत्वपूर्ण विधेयक पर जिस पर आज हम बहस कर रहे हैं, हमें सलाह-मशवरा देने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित मेरे माननीय मित्र, प्रोफेसर हमील ने सदन के सामने रखा है। महोदय! मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ने अपने भाषण में अधिकांशत: बंबई विश्वविद्यालय के संगठन पर अपने विचार व्यक्त किए। वह अंतरंगता के साथ विधेयक में उल्लिखित सिंडिकेट, सीनेट और शैक्षिक परिषद के घनिष्ठ रिश्तों पर बोले। मुझे विश्वविद्यालय का सदस्य होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए मैं उसी अधिकार से यह नहीं कह सकता कि इस विधेयक में जो प्रावधान किए गए हैं, उनसे वही परिणाम निकलेंगे, जो हम चाहते हैं। लेकिन, महोदय! मैं अपने माननीय मित्र, विश्वविद्यालय के सदस्य, के प्रति सम्मान व्यक्ति करते हुए यह कहना चाहता हूं कि अगर हम विश्वविद्यालय की तीनों संस्थाओं के बीच वही संबंध कायम करने में सफल होते हैं, जैसा मेरे माननीय मित्र चाहते हैं, तो भी मुझे भय है कि अंत में हमें छाया ही मिलेगी, मूल तत्व नहीं। महोदय! अगर मैं माननीय शिक्षा मंत्री की बात को ठीक तरह समझ पाया हूं, तो इस विधेयक का मूल उद्देश्य बंबई विश्वविद्यालय को शिक्षा प्रदान करने वाले एक अच्छे विश्वविद्यालय के रूप में व्यवस्थित करना है। मैं समझता हूं

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 20, पृ. 825-33, 27 जुलाई 1927

कि यह इस विधेयक के मूल उद्देश्यों में से एक है। महोदय! अब जब कि मैं विधेयक में शामिल प्रावधानों का विश्लेषण कर रहा हूं, तो मुझे कहना पड़ेगा कि मैं महसूस करता हूं कि हमें इस मामले में निराशा ही मिलेगी। अपनी स्थापना के बाद से इस विश्वविद्यालय का सबसे बड़ा दोष यह रहा है कि इसका गठन परीक्षाएं लेने वाली संस्था के रूप में हुआ है।

महोदय! हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि किसी भी विश्वविद्यालय को अनुसंधान कार्यों या उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन देने में सफलता नहीं मिल सकेगी, अगर वह परीक्षा प्रणाली को ही अपने अस्तित्व का एकमात्र ध्येय मान लेता है। 1902 में गठित विश्वविद्यालय आयोग ने स्वीकार किया था और उसकी रिपोर्ट के बाद प्रस्तुत किए गए विधेयक में इस तथ्य को स्वीकार किया गया था कि जिस विधान से यह विश्वविद्यालय बना, उसे इस तरह बदलना चाहिए, जिससे विश्वविद्यालय विद्यार्थियों की परीक्षाएं तो लेता रहे, परंतु इसके साथ ही वह पढ़ाने का काम भी कर सके। महोदय! जब 1904 का वह विशेष अधिनियम लागू हुआ, तो उस समय पहले से चल रहे कुछ कालिजों के कारण विश्वविद्यालय के सामने उच्च शिक्षा देने के मार्ग में बाधा उत्पन्न हो गई। महोदय! इस स्थिति में विश्वविद्यालय ने एक ही काम किया था कि स्नातकोत्तर शिक्षा के कार्य को अपने अधिकार में ले लिया और 1912 से बंबई विश्वविद्यालय यही कर रहा है। इसलिए जिनको आज स्कूल आफ सोशियोलोजी और स्कूल आफ इकोनोमिक्स कहते हैं, उनकी स्थापना विशेष रूप से उन विद्यार्थियों के लिए की गई, जो उन विभागों में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। महोदय! मैं समझता हूं कि यह विश्वविद्यालय 1904 के अधिनियम के अनुसार उसे सौंपे गए लक्ष्य को पूरा करने के लिए कुछ अन्य स्नातकोत्तर संकायों की स्थापना भी करना चाहता है। महोदय! उक्त विधेयक को तैयार करने वाले व्यक्तियों के प्रति यथोचित सम्मान व्यक्त करते हुए, मैं यही कहूंगा कि उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा प्रदान करने वाले एक विश्वविद्यालय के रूप में काम करने के लिए अपनाई गई इस विभाजन नीति के परिणामों पर ध्यान नहीं दिया। महोदय! मुझे लगता है कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर हमील और श्री मुंशी मेरे कथन की पुष्टि करेंगे कि विश्वविद्यालय के कार्यों का विभाजन 1904 के अधिनियम के द्वारा किए गए इस विभाजन के परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय ने स्नातकोत्तर की शिक्षा के कार्य को अपने अधिकार में ले लिया है और स्नातक शिक्षा का काम कालिजों के लिए छोड़ दिया है। इससे इन दोनों संस्थाओं के बीच एक प्रकार की प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा हो गई, और मैं तो कहूंगा कि एक प्रकार की दुश्मनी हो गई है। हालांकि इस क्षेत्र में मेरा अनुभव सीमित है, फिर भी मैं एक कालिज में कुछ समय तक प्रोफेसर रहा था और यद्यपि अब मैं प्रोफेसर नहीं हूं, परंतु अपने पुराने सहयोगियों के साथ अब भी मिलता-जुलता हूं, जो मुझे बताते हैं कि विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों और कालिजों के प्रोफेसरों के बीच इतने मैत्रीपूर्ण संबंध नहीं हैं, जितने कि होने चाहिएं। महोदय! ऐसा होना अवश्यंभावी है। जब

विश्वविद्यालय और कालिज अपने-अपने ढंग से समान शिक्षा प्रदान करने का काम करते हैं, परंतु विश्वविद्यालय अन्य कालिजों की तुलना में अपने आपको अधिक ऊंचा और श्रेष्ठ समझते हैं, तो एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्याभाव अवश्य होगा। महोदय! मेरा यह निवेदन है कि जब कालिजों और विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों के बीच आपसी संबंध ही अच्छे नहीं हैं, तो अनुसंधान करने और ज्ञान प्राप्ति के लिए कैसे प्रोत्साहन मिलेगा और इससे कालिजों, विश्वविद्यालयों या अंततः जनता को कैसे लाभ मिलेगा।

महोदय! मेरा दूसरा निवेदन यह है कि जब तक विश्वविद्यालय पूर्व-स्नातक शिक्षा का काम अपने हाथ में नहीं लेता, तब तक स्नातकोत्तर शिक्षण का कितना ही भार उन पर डालने से कोई लाभ नहीं होगा। महोदय! विभिन्न कालिजों की स्थिति क्या है? मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि सरकारी कालिजों को छोड़कर अधिकांश कालिजों की स्थापना निजी प्रयत्नों से की गई है। मैं उन लोगों का निरादर नहीं कर रहा हूं, जो इनमें काम कर रहे हैं, जब मैं यह कहने की धृष्टता करता हूं कि वे कालिज पूर्व-स्नातक स्तर की शिक्षा संतोषजनक ढंग से नहीं दे पा रहे हैं। पहली बात तो यह है कि उनमें पर्याप्त स्टाफ नहीं है। उदाहरण के लिए दो विषय लें-- इतिहास, राजनीतिक अर्थव्यवस्था-- जो मेरे विशेष विषय थे। मैं जानता हूं कि एक कालिज में इन विषयों को पढ़ाने के लिए आमतौर पर दो प्रोफेसर होते हैं। यह मानना हास्यास्पद होगा कि एक कालिज में केवल दो प्रोफेसर इतिहास और राजनीतिक अर्थव्यवस्था जैसे इतने विशाल विषयों को ठीक से पढ़ा सकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक प्रोफेसर को एक सप्ताह में लगभग 13 घंटे व्याख्यान देना पड़ता है। मेरा ख्याल है, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर हमील मेरी बात का समर्थन करेंगे। मेरा कहना है कि जिस प्रोफेसर को गुलाम जैसा काम करना पड़ता है, वह कभी भी सच्चे अर्थों में अध्यापक नहीं बन सकता। वह एक साधारण कर्मचारी ही बन सकता है और तैयार कुंजी की मदद से ही अपना काम करेगा। हम उससे मौलिकता की कोई उम्मीद नहीं रख सकते और वह उन विद्यार्थियों को जिनको दुर्भाग्यवश उससे पढ़ना पड़ रहा है, कोई प्रेरणा नहीं दे सकता। सारा शिक्षण मात्र एक यांत्रिक प्रक्रिया बनकर रह जाता है। यही नहीं कि कालिजों में प्रोफेसरों की कमी है, जो वहां हैं भी उनकी नियुक्ति इसलिए नहीं की गई थी कि वह कालिज को कुछ दे पाएंगे, बल्कि इसलिए कि वह कम वेतन पर काम करने को तैयार हैं। पूर्व-स्नातकों की बड़ी संख्या की सहायता से कोई भी साहसी व्यक्ति कालिज खोल सकता है और पूर्व-स्नातक शिक्षा का नियंत्रण अपने हाथ में ले सकता है। महोदय! मेरा कहना है कि अगर आपकी पूर्व-स्नातक शिक्षा प्रणाली इतनी ही खराब है, जितनी मैंने बयान की है, तो विश्वविद्यालय केवल स्नातकोत्तर शिक्षण के कार्य को अपने पर लादकर सच्चे ज्ञान को या अनुसंधान को प्रोत्साहन देने में सफल नहीं हो सकता। तीसरी बात यह है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति पूर्णतः निरर्थक है। विश्वविद्यालय और कालिजों के बेहतर गठन से इसे सार्थक बनाया

जा सकता है। उदाहरण के लिए बंबई शहर में ही राजनीतिक अर्थव्यवस्था की पढ़ाई को लें। महोदय! मेरी जानकारी है कि सिडनहेम कालिज आफ कामर्स में लगभग छह प्रोफेसर हैं, जो खासतौर पर इतिहास, राजनीतिक अर्थव्यवस्था और वाणिज्यिक भूगोल पढ़ाते हैं। इन्हीं विषयों को पढ़ाने के लिए विल्सन कालिज में, एल्फिंस्टन कालिज और सेंट जेवियर प्रत्येक में दो प्रोफेसर हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बंबई जैसे शहर में इतिहास और राजनीतिक अर्थव्यवस्था पढ़ाने के लिए बारह प्रोफेसर हैं। महोदय! यदि इन चार कालिजों और उनके बारह प्रोफेसरों को लेकर ऐसी व्यवस्था की जाए,जिससे व्याख्यान पद्धति का समूहीकरण किया जा सके और कालिज में तथा विभिन्न कालिजों के विद्यार्थियों को किसी भी कालिज में व्याख्यान सुनने और उपस्थित रहने की अनुमति मिल सके, तो व्याख्यान देने वाले प्रोफेसरों को कुछ और विशेष काम के लिए आसानी से समय मिल सकेगा। अगर ऐसा होता है, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि विभिन्न कालिजों में समान विषयों को पढ़ाने वाले ये बारह प्रोफेसर पूर्व–स्नातकों को ही नहीं, बल्कि स्नातकोत्तर शिक्षा के कार्य को संभालने में समर्थ होंगे। इससे स्कूल आफ सोशियोलोजी और स्कूल आफ इकोनोमिक्स के विस्तार पर इस समय जो खर्च हो रहा है, उसमें अवश्य ही बचत होगी और उसका सदुपयोग दूसरे विषयों के लिए किया जा सकेगा। महोदय! ऐसा अपव्यय इतिहास और राजनीतिक अर्थव्यवस्था के स्नातकोत्तर शिक्षण के बारे में ही नहीं हो रहा है, बल्कि विश्वविद्यालय के अन्य विषयों के स्नातकोत्तर अनुसंधान शिक्षण में भी होगा। इसका सरल कारण यह है कि हमारे कालिज अपने आप में एक छोटे विश्वविद्यालय हैं। हर कालिज में लगभग हर विषय पढ़ाया जाता है और उनके स्टाफ में विश्वविद्यालय द्वारा परीक्षा के लिए निर्धारित सभी विषयों को पढ़ाने वाले प्रोफेसर हैं। इस स्थिति में अगर विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए अलग से प्रोफेसरों को रखता है, तो उससे पुनरावृत्ति और अपव्यय होगा। इसके अलावा और भी कई प्रकार की बाधाएं आएंगी, जिनका बयान मैं अपने भाषण में पहले ही कर चुका हूं। महोदय! इसलिए मेरा यह निवेदन है कि अगर इस विधेयक का उद्देश्य उच्च शिक्षा और अनुसंधान को प्रोत्साहन देना है, तो सबसे उत्तम उपाय यह है कालिजों को विश्वविद्यालय से अलग न किया जाए, जैसा अभी किया जा रहा है, बल्कि कुछ ऐसा संयोजन किया जाए, जिससे कि विश्वविद्यालय और कालिज समानता के आधार पर साझीदार हों और दोनों आपस में मिल–जुलकर पूर्व–स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षा को प्रोत्साहन देने में भागीदार बनें। महोदय! मेरे द्वारा व्यक्त किए गए विचार वास्तव में मेरे नहीं है। यह सिफारिशें सैडलर आयोग की थीं, जिसने कलकत्ता विश्वविद्यालय की इसी प्रकार की समस्याओं का विश्लेषण किया था। इसमें कोई शक नहीं है कि अब तक देश में जितने आयोग बने हैं, उनमें सैडलर आयोग सर्वाधिक कुशल आयोगों में से एक था। मेरी समझ में यह बात नहीं आती है कि यह सरकार उस रिपोर्ट पर कैसे गर्व कर सकती है, जिसे तैयार

करने वाले सब अकुशल हैं और कैसे सैडलर आयोग के विशेषज्ञों के विस्तृत और सुविचारित निर्णय से मुकाबला कर सकती है। विश्वविद्यालय समिति ने बंबई विश्वविद्यालय के पुनर्गठन के संबंध में जो रिपोर्ट तैयार की है, वह मैंने बड़े ध्यान से पढ़ी है। इसमें मुझे ऐसा कुछ नहीं मिला, जिससे मैं अपना अभिप्राय* बदल दूं कि सैडलर आयोग की सिफारिशें बंबई विश्वविद्यालय समिति की सिफारिशों से ज्यादा प्रभावी और लाभदायक हैं। इसलिए मेरे विचार से यह बेहतर होगा अगर मेरे माननीय मित्र शिक्षा मंत्री अब भी किसी तरह इस विधेयक में ही व्यवस्था करके या सीनेट को नियम बनाने के अधिकार देकर विश्वविद्यालय को कालिजों पर नियंत्रण रखने की ज्यादा शक्ति देकर शिक्षण को स्थानीय बनाने दें और ऐसे कालिज जो भौगोलिक दृष्टि से एक जगह स्थित हों, वे संघटक कालिज कहे जाएं। मेरा विचार है कि समिति ने यह स्वीकार कर लिया है कि पूना एक अलग से विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थान है। इसमें कोई शक नहीं है कि बंबई स्वयं भी एक अलग से विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए सर्वथा उचित स्थान है। मेरा विचार है कि इन दोनों केन्द्रों में स्थित कालिजों को अलग करके विश्वविद्यालय में समाहित कर दिया जाए, तो हम शिक्षा और अनुसंधान की समस्या को हल कर सकेंगे। मुफस्सल क्षेत्र के कालिज जो प्रेसिडेंसी में इधर-उधर बिखरे हुए हैं उनका प्रबंध हम मुफस्सल बोर्ड बनाने के सैडलर कमेटी के सुझाव को अपनाकर कर सकते हैं। मैं यह कह सकता हूं कि सुधार समिति ने रेक्टर की नियुक्ति संबंधी जिस योजना की सिफारिश की है, उसकी अपेक्षा सैडलर कमीशन की योजना सौ गुना बढ़िया है। महोदय, मुझे विश्वविद्यालय के गठन पर बस इतना ही कहना था।

अब मैं सीनेट के गठन से संबंधित मुद्दे को लेना चाहूंगा। कल मेरे माननीय मित्र श्री जाधव ने अपने भाषण के दौरान जब यह कहा कि लक्ष्यों का विवरण और तर्क बंबई विश्वविद्यालय की सीनेट में पिछड़े समुदायों के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता का समर्थन नहीं करते हैं, तो बड़ी गर्मा-गर्मी हुई। मुझे इस बात पर कुछ अचरज हुआ कि मेरे माननीय मित्र, बंबई विश्वविद्यालय के सदस्य, इस पर फौरन उबल पड़े। परंतु महोदय! मैं यह कहना चाहता हूं कि हम हमेशा उस सीढ़ी को लात मारकर गिरा देते हैं,जिसके बल पर हम ऊपर चढ़ते हैं और मेरे माननीय मित्र बंबई विश्वविद्यालय के सदस्य, जिन्होंने प्रबलतापूर्वक सांप्रदायिकता का विरोध किया, वह स्वयं भी अपवाद नहीं हैं। महोदय! मैं उनको यह याद दिलाना चाहता हूं कि स्वयं उन्होंने इस आधार पर समर्थन प्राप्त करने के लिए कि गुजरात गुजरातियों के लिए है, विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक घोषणापत्र जारी किया था। अब मैं उनसे यह पूछना चाहता हूं कि . . .

श्री के. एम. मुंशी : महोदय! मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि यह वक्तव्य बिल्कुल गलत है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : यह पूर्णतया गलत नहीं है। मैंने आपका घोषणा पत्र पढ़ा है।

---

*बंबई विश्वविद्यालय सुधार समिति को दिया गया डा. अम्बेडकर का लिखित साक्ष्य परिशिष्ट 3 के रूप में छपा है।

वैसे राजनीतिज्ञों की स्मरण–शक्ति कमजोर होती है।

मैं इस सदन मैं यह कहना चाहता हूं कि हिन्दू और मुसलमान जिस तरह उनके स्वभाव बन गए हैं, मैं नहीं समझता कि वे ईमानदारी से कह सकते हैं कि वे एक–दूसरे के प्रति असांप्रदायिक हैं। इस सदन का कोई सदस्य यह नहीं कह सकता कि वह अपने व्यवहार से असांप्रदायिक है। मैं चुनौती देता हूं, कोई माननीय सदस्य इससे इंकार करे कि . . .

राव बहादुर आर.आर. काले: मैं इस वक्तव्य को चुनौती देता हूं।

माननीय सदस्यगण: हम भी इस वक्तव्य को चुनाती देते हैं।

माननीय अध्यक्ष: शांति, शांति। कृपया एक–दूसरे से बात न करें।

राव बहादुर आर.आर. काले: लेकिन माननीय सदस्य, डा. अम्बेडकर ने कहा है कि वह किसी भी माननीय सदस्य को चुनौती देते हैं कि वह उनके वक्तव्य का खंडन करके देखें।

डा. भीमराव अम्बेडकर: इस बात का खंडन नहीं किया जा सकता कि हर हिन्दू और हर मुसलमान एक खास जाति या समुदाय में पैदा होता है। इस तथ्य का भी विरोध नहीं किया जा सकता कि हम सबका पालन–पोषण सांप्रदायिक वातावरण में होता है। हमारे अंदर उसी समुदाय की इच्छाएं और महत्वकांक्षाएं होती हैं और हम उस समाज की असमर्थता का अनुभव करते हैं। इस कारण मेरे मन में इस बारे में जरा भी संदेह नहीं है कि इस सदन का कोई भी सदस्य या सदन से बाहर का कोई भी व्यक्ति हर प्रश्न को चेतन या अचेतन अवस्था में सांप्रदायिक दृष्टि से देखने को विवश है।

माननीय सदस्यगण : नहीं, नहीं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं आपके नकारने का बिल्कुल विश्वास नहीं करता। महोदय! मेरे विचार से इस प्रकार चिल्ला–चिल्लाकर नकारना बिल्कुल पाखंड है। मैं ईमानदारी से स्वीकार करता हूं कि इस के सामने आने वाले हर सवाल पर मैं स्वयं सांप्रदायिक दृष्टि से विचार करता हूं और मैं अपने आप से पूछता हूं कि अमुक मामला दलित वर्गों के लिए ठीक रहेगा या नहीं।

श्री के. एम. नरीमन: मुझे इस बात पर अफसोस है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: जो 'अफसोस' कहते हैं, वे स्वयं सांप्रदायिकता से मुक्त नहीं हैं। गैर–सांप्रदायिकता पर बात करना बहुत आसान है, क्योंकि वह सिर्फ बात ही तो है। महोदय! हम जानते हैं कि जिस तरह से हमें देखा जाता है, हम दूसरे समुदायों के साथ समानता से मिल नहीं सकते। जब हमें अपनी बेटी की शादी करनी होती है, तब हम यह पूछते–फिरते हैं कि दूल्हा हमारी अपनी जाति का है या नहीं (ठहाका)। जब हम खाने के लिए मेहमानों को आमंत्रित करते हैं, तो यह जानने की कोशिश करते हैं कि वे हमारी जाति या हमारे समुदाय के हैं, या नहीं ।

श्री आर.जी. पहलाजानी: मैं इसे चुनौती देता हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : यह कहना केवल पाखंड है कि हम ऐसा नहीं करते। मैं चाहता

हूं कि माननीय सदस्य यह समझ लें कि यह एक दोष है, जिसके लिए मैं किसी एक समुदाय को दोषी नहीं ठहराता। महोदय! यह एक कलंक है, जिससे हम सब पीड़ित हैं। ऐसी स्थिति में यह मान लेना चाहिए कि कोई भी समुदाय, चाहे वह बौद्धिक दृष्टि से कितना ही उन्नत क्यों न हो, दूसरे समुदाय का संरक्षक नहीं हो सकता। इस बात को तो उन विधायकों ने स्वीकार किया है, जिन्होंने सुधार अधिनियम बनाया था। अगर ऐसा नहीं होता, तो हम इस परिषद में मुसलमानों, पिछड़े वर्गों और दलित वर्गों के लिए अलग-अलग प्रतिनिधित्व नहीं देखते। यह इसलिए है कि हम स्वभावानुसार स्थिति को व्यापक रूप में देख नहीं सकते। सांप्रदायिकता की ताकत पर रोक लगाने के लिए यह प्रतिरोध लगाया गया है और मैं समझता हूं,इन विधायकों ने यह काम बड़ी समझदारी से किया है। महोदय! मैं अपनी बात ईमानदारी से कहूंगा और यह उम्मीद करता हूं कि मेरे माननीय सदस्य भी इस मुद्दे पर ईमानदार रहेंगे। इसमें कोई फायदा नहीं है कि हम कहें कुछ और करें,कुछ और। मेरा निवेदन है कि इसी कारण बंबई विश्वविद्यालय की सीनेट में उन समुदायों के प्रनिनिधित्व की आवश्यकता है, जो बौद्धिक दृष्टि से उन्नत नहीं हैं। महोदय! मैं सीनेट पर जानबूझकर भेदभाव करने का आरोप बिल्कुल नहीं लगा रहा हूं। फिर भी, मैं इतना तो कहूंगा कि पिछड़े हुए या दलित वर्गों के प्रति बंबई विश्वविद्यालय का रवैया अब तक प्रोत्साहित करने वाला नहीं रहा है। मैं यहां बस एक उदाहरण देना चाहूंगा। उदाहरण के तौर पर इस विश्वविद्यालय की शिक्षा पद्धति को लें। मुझे इस बारे में कोई संदेह नहीं है और जो लोग विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि हैं, वे भी इससे इंकार नहीं करेंगे कि हमारी परीक्षा पद्धति भारत में प्रचलित वर्तमान परीक्षा पद्धतियों से कठिन है। निस्संदेह कुछ शिक्षा शास्त्री इसे उचित ठहराते हैं। उनका विश्वास है कि परीक्षा के स्तर को ऊंचा करना शिक्षा के स्तर को ऊंचा करने के समतुल्य है। मैं आदरपूर्वक उनसे असहमत हूं। परीक्षा, शिक्षा से बिल्कुल भिन्न है, परंतु शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के नाम पर वे परीक्षा के स्तर को इतना असंभव और कठोर बनाते जा रहे हैं कि जिन पिछड़ी हुई जातियों को अभी तक विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का मौका नहीं मिला है, उनको बिल्कुल बाहर रखा जा रहा है। मैं इस पर बोलना नहीं चाहता, क्योंकि यह पद्धति सभी जातियों पर समान रूप से लागू होती है। फिर भी, महोदय! इस पर तनिक विचार तो करें। क्या विश्वविद्यालय ने इस पर कभी विचार किया है कि पिछड़ी जातियों की शिक्षा की प्रगति पर एक साथ ली गई परीक्षाओं का क्या प्रभाव पड़ता है? इसका औचित्य मेरी समझ में नहीं आता है कि एक उम्मीदवार जो परीक्षा में बैठता है, उससे यह अपेक्षा रखी जाए कि वह सब पेपरों में एक ही प्रयास में उत्तीर्ण हो जाए। यह मामला उन विद्यार्थियों के लिए कोई महत्व नहीं रखता, जिनके माता-पिता काफी समृद्ध हैं, जिनके पास समय है और दिन में कालिज जा सकते हैं तथा जो शिक्षा के लिए अपना सारा समय दे सकते हैं। सवाल यह है कि उन लड़कों का क्या होगा, जिनके गरीबी से त्रस्त माता-पिता को जरूरत

है कि दो जून की रोटी का जुगाड़ करने के लिए वे दिन में कुछ काम करें? उन लड़कों का क्या होगा जो विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए दिन के बारह घंटों में से कुछ ही समय निकाल पाते हैं? अगर विश्वविद्यालय पिछड़ी हुई जातियों की आर्थिक स्थिति की परवाह करता, तो अवश्य ही वह एक साथ परीक्षाओं को लेने का आग्रह नहीं करता, जो मेरे हिसाब से बिल्कुल अनुचित और बेतुका है। मैं आपके सामने एक और उदाहरण पेश करता हूं, जो मेरे दिमाग में अभी–अभी आया है, क्योंकि मेरे माननीय मित्र, श्री मुंशी फरमाते हैं कि विश्वविद्यालय किसी के प्रति कोई पक्षपात किए बिना सब कुछ कर रहा है। विश्वविद्यालय सीनेट के लिए नामजद मेरे एक मित्र ने मुझसे एक दिन कहा था कि उन्होंने विश्वविद्यालय की परीक्षा में बैठने वाले दलित वर्ग के उम्मीदवारों की फीस में कुछ रियायत देने के संबंध में सीनेट में दो बार प्रस्ताव पेश किया था। मुझे उन्होंने यह भी बताया था कि सीनेट ने इस प्रस्ताव को दोनों बार रद्द कर दिया।

एक माननीय सदस्य : गरीब लोग तो सभी जातियों मे हैं।

माननीय अध्यक्ष : माननीय सदस्य किसी रोक–टोक की परवाह किए बिना अपनी बात आगे जारी रखें।

डा. भीमराव अम्बेडकर : यह बात सभी ने, यहां तक कि सरकार ने भी स्वीकार की है कि कुछ ऐसी जातियां हैं, जो आर्थिक दृष्टि से गरीब हैं और जिन्हें सरकार से विशेष रियायतों की आवश्यकता है, ताकि वे उसी स्तर पर आ जाएं, जहां दूसरी जातियां पहले से ही हैं। अगर इस विवेकपूर्ण सिद्धांत को सीनेट समझ नहीं सकती, उसकी कदर नहीं कर सकती, तो मुझे यह कहना पड़ेगा कि ऐसी सीनेट पिछड़ी हुई जातियों के हितों का संरक्षण कभी नहीं कर सकती।

मेरे माननीय मित्र, प्रोफेसर हमील ने अपने भाषण के दौरान कुछ टिप्पणी की थी और मेरे लिए यह जरूरी है कि मैं उनके बारे में बोलूं, हालांकि मैं सदन का ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। उन्होंने कहा था कि दलित वर्गों और पिछड़े वर्गों को सीनेट में अवश्य ही नामजद किया जाए, बशर्ते कि वे विश्वविद्यालय को कुशलता को बढ़ा सकें। मेरा ख्याल है, उनका तर्क यह था कि अगर पिछड़ी हुई जातियों के लोग शिक्षा विशेषज्ञ हों, तो उन्हें अवश्य ही बंबई विश्वविद्यालय की सीनेट में सीटें दी जाएं। अब मैं यह कहना चाहूंगा कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर हमील बयान करते समय यह बात बिल्कुल भूल गए कि इस सीनेट का सही काम क्या है। सीनेट विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी नहीं है। पिछड़ी हुई जातियों के किसी भी सदस्य ने कभी सिंडिकेट या विद्या परिषद में विशेष प्रतिनिधित्व की मांग नहीं की है। मैं यह मानता हूं और जितना मेरे माननीय मित्र, प्रो. हमील समझते हैं उतनी ही अच्छी तरह समझता हूं कि विश्वविद्यालय की इन दोनों संस्थाओं का संचालन निस्संदेह विशेषज्ञ ही करते हैं और वही विश्वविद्यालय को चलाते हैं। परंतु मैं उन्हें यह याद दिलाना चाहता हूं कि सीनेट तो एक विधायी संस्था है, एक ऐसी संस्था है, जिसका

काम पिछड़ी हुई जातियों की जरूरतों को पेश करना और साथ ही उनके लिए आवश्यक सुविधाओं का सुझाव देना है। मेरे विचार से सीनेट बिल्कुल विधान परिषद की तरह है और इस परिषद में दलित वर्ग के जो सदस्य हैं, उनकी नियुक्ति उन माननीय सदस्यों को हटाने के लिए नहीं की गई है, जो सरकारी बेंचों पर बैठे हैं, बल्कि उनका एकमात्र काम सरकार को यह बताना है कि उन जातियों की क्या आवश्यकताएं हैं, जो अभावों से ग्रस्त हैं। हम सिर्फ यह मांग कर रहे हैं और मेरा विचार है कि मेरे माननीय मित्र तर्क करते समय यह बिल्कुल भूल जाते हैं कि सीनेट का क्या काम है।

महोदय! अब मैं अपनी बात खत्म करने से पहले एक बात बहुत जोर देकर कहना चाहता हूं। स्वराज पार्टी के मान्य सदस्यों की मांग है कि हमें प्रांतीय स्वायतत्ता मिले। यह मांग स्वागत करने योग्य है। परंतु मैं यह कहना चाहता हूं कि जब तीन-चौथाई जनता अज्ञान के अंधेरे कुएं में पड़ी हो और अपने अधिकारों एवं दायित्वों से परिचित न हो, तो स्वायत्तता की कैसे आशा की जा सकती है। तीन-चौथाई जनता के अज्ञान के अंधेरे में भटकने पर भी, अगर स्वायत्तता मिल जाती है, तो हमारी प्रतिनिधित्व पद्धति एक ढोंग होगी और उस स्थिति में समृद्ध लोग गरीबों पर और शक्तिशाली लोग कमजोरों पर राज करेंगे। सचमुच यही होगा। महोदय! इसलिए मैं यह कहता हूं कि अगर हम प्रांतीय स्वायत्तता चाहते हैं, तो हमें दो बातें सुनिश्चित करनी पड़ेंगी। एक, जो जातियां शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं, उनके लिए हरेक तरह की आधुनिकतम शिक्षा प्राप्त करने के लिए सब मार्ग खुले हों, जिससे वे नागरिकता के अधिकारों एवं दायित्वों को समझ सकें। दूसरे, उन जातियों के लिए सारे मार्ग खुले रखने के लिए जिससे वह आधुनिकतम शिक्षा प्राप्त कर सकें, वर्तमान स्थितियों में यह आवश्यक बन जाता है कि उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाए।

महोदय! अपनी बात समाप्त करने से पूर्व मैं एक बात साफ करना चाहता हूं। कल आपने आदेश दिया था, जिसे मैं पूरी तरह समझ नहीं पाया हूं। आपके कल के निर्णय से मैं यह समझा हूं कि सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत ठुकरा दिया गया है। अब उसके अनुसार मैं समझता हूं कि सामान्य शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से खास समुदायों के मतदाताओं का संगठित होकर सदस्य को चुनने संबंधी सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को ठुकरा दिया गया है। आपके निर्णय का मैं यह अर्थ निकाल रहा हूं। उसके अनुसार अब हमें विश्वविद्यालय की किसी भी समिति में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व पर प्रश्न पूछने नहीं दिए जाएंगे। परंतु मुझे नहीं लगता कि आपका निर्णय इतना विस्तृत है कि आप कह सकें कि जो 40 सीटें नामांकन के लिए आरक्षित रखी हैं, उनके आबंटन के संबंध में हम कोई राय नहीं दे सकते। मेरा निवेदन है कि माननीय सदस्यों के पास अभी भी इस विषय पर प्रवर समिति में या दूसरे वाचन के समय बहस करने का मौका है। मैं अपने माननीय मित्र शिक्षा मंत्री को कहना चाहता हूं कि वह इस संबंध में अपनी समापन टिप्पणी में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करें, क्योंकि मैं

जोर देकर कहना चाहता हूं कि जब तक सीनेट में पिछड़ी हुई जातियों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाएगा, यह विधेयक हमारे लिए कोई महत्व नहीं रखता और मैं इसके विरुद्ध मत दूंगा।

II*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! खंड 3 में अपना संशोधन प्रस्तुत करने से पहले मैं संशोधन में टंकक से जो भूल हो गई है, उसे ठीक करना चाहता हूं। संशोधन को इस प्रकार पढ़ा जाए:

> निगमित कालिज एक ऐसी संस्था है, जिसका गठन और प्रबंध स्वयं विश्वविद्यालय द्वारा उन विशेष विषयों के अध्ययन के लिए किया जाता है, जिनके लिए पर्याप्त प्रबंध अन्य कालिजों में नहीं है, आदि।

महोदय! मैं जिस संशोधन को प्रस्तुत करना चाहता हूं, वह एक अनुवर्ती संशोधन है, जो विधेयक के खंड 25 के मुख्य संशोधन के पारित किए जाने पर निर्भर है, जिसे मैं प्रस्तुत करूंगा। यदि यह संशोधन पास नहीं किया जाता है, तो उस संशोधन को प्रस्तुत करना मेरे लिए जरूरी नहीं होगा। इसलिए मेरा निवेदन है कि खंड 25 के मेरे मुख्य संशोधन के पारित होने के बाद मुझे उस संशोधन को प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए। यदि मैं उस संशोधन को अब प्रस्तुत करता हूं और बाद में मेरा मुख्य संशोधन अस्वीकृत हो जाता है, तो सदन का समय नष्ट होगा।

कालिजों के विश्वविद्यालय से संबंध

डा. भीमराव अम्बेडकर: माननीय अध्यक्ष महोदय! खंड 7 के मेरे संशोधन का प्रथम हिस्सा एक अनुवर्ती संशोधन है, जो खंड 25 के संशोधन पर निर्भर है। महोदय! इसलिए आपसे मेरा अनुरोध है कि खंड 25 के संशोधन पर कार्यवाही पूरी होने तक उसे रोके रखा जाए।

माननीय अध्यक्ष : मैं इसे रोके रखूंगा।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मेरा ख्याल है कि खंड 7 के मेरे दूसरे संशोधन के संबंध में माननीय मंत्री इस बात पर विचार करने के लिए कुछ समय चाहेंगे कि क्या वह मेरे संशोधन में कोई और संशोधन कर सकते हैं, जिसके लिए हम दोनों ही सहमत हों।

माननीय अध्यक्ष: क्या माननीय सदस्य अपना संशोधन पेश करेंगे?

डा. भीमराव अम्बेडकर: खंड 7 का मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है: विधेयक में निम्नलिखित खंड सम्मिलित किया जाए:

> 7 (ख) सरकारी कोष से सहायता अनुदान देने के लिए सरकार द्वारा सिर्फ विश्वविद्यालय को ही मान्यता दी जाएगी और विश्वविद्यालय के माध्यम के सिवाय किसी भी कालिज

---

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 21, पृ. 250–53, 1 अक्तूबर 1927

को अनुदान राशि नहीं दी जाएगी।

मैंने जिस संशोधन के बारे में नोटिस दिया है, उसमें 'कालिज' शब्द के बाद 'सिवाय' शब्द जोड़ना चाहूंगा। यह टंकक की भूल की वजह से रह गया था।

महोदय! इस संशोधन को प्रस्तुत करने के मेरे ये कारण हैं। नए अधिनियम के अंतर्गत विश्वविद्यालय को शिक्षा प्रदान कराने की अपेक्षा प्रत्यक्ष रूप से अत्यधिक जिम्मेदारी डाली गई है, इस बात को मानना होगा कि विश्वविद्यालय से संबद्ध कालिज प्राथमिक संस्थाएं होंगी, जो विश्वविद्यालय के अंतर्गत व्यावहारिक रूप से शिक्षा प्रदान करने का कार्य करेंगे। महोदय! मेरा कहना है कि अगर विश्वविद्यालय को कालिजों में दी जाने वाली शिक्षा के कार्य संचालन को नियंत्रित करने के कुछ अधिकार नहीं दिए जाते हैं,तो शिक्ष के स्तर को कायम रखने के लिए विश्वविद्यालय को जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं होगा। विश्वविद्यालय को अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए कालिजों और उनके शिक्षा के कार्य-संचालन पर नियंत्रण रखने के लिए अधिकार दिए जाने चाहिए। महोदय! वर्तमान अधिनियम के अंतर्गत विश्वविद्यालय के पास कालिजों पर नियंत्रण रखने का एक ही उपाय यह है कि विश्वविद्यालय कुछ नियुक्तियां करता है, जिसे मेरी जानकारी के अनुसार, निरीक्षक-समिति कहा जाता है। समिति इन कालिजों का कुछ निश्चित समय के बाद दौरा करके निरीक्षण करती है और यह पता लगाती है कि उनकी प्रबंध-व्यवस्था और साज-सामान में क्या कमियां हैं। मेरे विचार में यह समिति . . . .

श्री पी.आर. चिकोदी: नियमानुसार एक आपत्ति उठाना चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि माननीय सदस्य के संशोधन की सही शब्दावली क्या है?

माननीय अध्यक्ष : यह पढ़ा जा चुका है कि 'सिवाय' शब्द जोड़ा गया है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! इन कालिजों पर विश्वविद्यालय का नियंत्रण जिससे कि वह कालिजों पर अपने नियम लागू कर सकता है, इस निरीक्षक समिति की रिपोर्ट के द्वारा ही हो सकता है। मैं समझता हूं कि यह निरीक्षक समिति, कभी-कभार निरीक्षण-दौरे पर जाती है और कालिज के प्रबंध में पाई जाने वाली कमियों पर रिपोर्ट तैयार करती है। यह रिपोर्ट विश्वविद्यालय की स्थायी-समिति को प्रस्तुत की जाती है और स्थायी समिति निरीक्षक समिति द्वारा बताई गई कमियों के बारे में अपने विचार विद्या परिषद (सिंडिकेट) के समक्ष रखती है। इस समय विश्वविद्यालय द्वारा कालिजों के नियंत्रण के लिए बनाए गए अनुशासन के नियमों को लागू करने के लिए बस इतना ही किया जाता है। मेरा कहना है कि यह पर्याप्त नहीं है, क्योंकि अगर कालिज इस निरीक्षक समिति की रिपोर्ट के आधार पर विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन नहीं करते हैं, तो विश्वविद्यालय के पास सिर्फ एक ही प्रभावशाली अधिकार है कि वह इन कालिजों को असंबद्ध कर सकता है। महोदय! मेरा कहना है कि यह अधिकार बहुत कठोर है, यह अधिकार उन्मूलन का अधिकार है। वास्तव में, व्यावहारिक रूप से विश्वविद्यालय के पास कालिजों की कार्य-प्रणाली में

संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरे शब्दों में, कालिजों पर अपने नियंत्रण की वर्तमान प्रणाली के अंतर्गत विश्वविद्यालय संबद्ध या असंबद्ध करके किसी कालिज को बना सकता है या उसे बनने से रोक सकता है। वर्तमान प्रणाली के अंतर्गत विश्वविद्यालय के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है, जिससे कि वह किसी कालिज को असंबद्ध करने की कठोर सजा का सहारा लिए बिना कालिजों में अनुशासन लागू कर सके और अपने निर्देशों का पालन कराने के लिए बाध्य कर सके। महोदय! मेरा संशोधन विश्वविद्यालय को किसी भी कालिज को असंबद्ध करने की सख्त कार्रवाई का सहारा लिए बिना कालिज की कार्य-प्रणाली में सुधार करने और विश्वविद्यालय द्वारा कालिजों को दिए गए निर्देशों का पालन करने के लिए मजबूर करने का अधिकार देता है।इसलिए मैं मानता हूं कि यदि विश्वविद्यालय को सरकार की तरफ से एक इकाई के तौर पर मान्यता दी जाती है और मेरा कहना है कि ऐसी मान्यता मिलनी भी चाहिए और यदि सरकार की तरफ से विभिन्न कालिजों को दी जाने वाली अनुदान-राशि विश्वविद्यालय के द्वारा, या अगर संभव हो तो विश्वविद्यालय की सिफारिशों पर वितरित की जाती है, मेरा कहना है कि विश्वविद्यालय को कालिजों पर अपना अनुशासन लागू करवाने के लिए जिस अधिकार की आवश्यकता है, वह उसे प्राप्त हो जाएगा। मेरे विचार से विश्वविद्यालय को देने के लिए ऐसा और कोई अधिकार नहीं है, जिससे इस उद्देश्य की प्राप्ति हो सके, और मेरा मानना है कि विश्वविद्यालय द्वारा उद्दंड कालिज को अपने अनुशासन के नियम लागू करने योग्य बनाने का सबसे आवश्यक उद्देश्य है। महोदय! यह अभिप्राय कि विश्वविद्यालय को इन कालिजों पर वित्तीय नियंत्रण दिया जाए, लंदन विश्वविद्यालय में शिक्षा संबंधी रायल कमीशन की तरफ से भी निर्धारित किया गया है। उनकी रिपोर्ट के पैरा 41 में उन्होंने कहा है :

> आर्थिक नियंत्रण वास्तव में नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण तरीका है, जो विश्वविद्यालय के पास होना चाहिए, अगर उसे शिक्षा को सुव्यवस्थित करना है, जिसके साथ उसका संबंध है। वेल्स और स्कॉटलैंड को छोड़कर अन्य सभी आधुनिक विश्वविद्यालय राज्य और नगरपालिका अनुदान के निर्धारण के संबंध में स्वतंत्र हैं, क्योंकि विश्वविद्यालय एक इकाई है, ना कि कई इकाइयों का एक समूह।

इस रिपोर्ट में सदस्यों ने यह भी सिफारिश की है कि लंदन विश्वविद्यालय के संबंध में वही सिद्धांत अपनाया जाना चाहिए, और मेरा संशोधन लंदन विश्वविद्यालय में शिक्षा से संबंधित रायल कमीशन की महत्वपूर्ण सिफारिश पर आधारित है। मैं इस संबंध में यह भी ध्यान दिलाना चाहूंगा कि शुरू में बंबई विश्वविद्यालय का गठन बुनियादी तौर पर लंदन विश्वविद्यालय के आधार पर ही किया गया था। मेरे विचार में हम इस विधेयक में बंबई विश्वविद्यालय के अंतर्गत कालिजों को उसी तरह एकीकृत या सम्मिलित करना चाहते हैं, जैसे लंदन के अंतर्गत कालिजों का रायल कमीशन के सुधारों के बाद किया गया था।

दोनों की स्थिति एक जैसी है। मेरा मानना है कि लंदन विश्वविद्यालय का लंदन विश्वविद्यालय के कालिजों के साथ संबंध नियमित करने के लिए जो नियम निर्धारित किए गए हैं, उन्हें वैसे ही लाभदायी परिणामों के लिए बंबई विश्वविद्यालय का बंबई विश्वविद्यालय के कालिजों के साथ संबंधों को नियमित करने के लिए प्रयोग में लाने चाहिए। किंतु इस आधार पर एतराज किए जा सकते हैं कि शायद विश्वविद्यालय अनुदान की सिफारिश के मामले में कोई अनुचित व्यवहार करे। मेरे विचार में इस धारणा के पीछे कोई औचित्य नहीं है कि विश्वविद्यालय का किसी विशेष कालिज के विरुद्ध निजी वैमनस्य होगा। मैं नहीं मानता कि नए अधिनियम के अंतर्गत विश्वविद्यालय में ऐसे गैर-जिम्मेदार व्यक्ति होंगे कि वे अपने स्वार्थों या सनक के लिए एक विशेष कालिज के हितों का बलिदान करेंगे। इसलिए में अनुरोध करता हूं कि इस आधार पर मेरा संशोधन स्वीकृत किया जाए।

बहस पुन: आरंभ*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! हालांकि मैं नहीं जानता हूं कि इस संशोधन का परिणाम क्या होगा? फिर भी मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि बहुत से माननीय सदस्यों ने इस संशोधन में विहित सिद्धांत को समझा है। मुझे यह उचित नहीं लगता है कि मैं इस संशोधन के विरुद्ध उठाई गई हरेक आपत्ति का जवाब देने के लिए सदन का समय बरबाद करूं। पर सबसे पहले मैं इस ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं कि जो संशोधन मैंने प्रस्तुत किया है, जहां तक मेरा अनुमान है, वह अनुदान का वितरण करने के संबंध में विश्वविद्यालय को किसी भी ढंग से स्वेच्छाचारी नहीं बना सकता।

मैं केवल इतना कहना चाहता हूं कि अनुदान का वितरण विश्वविद्यालय द्वारा किया जाए। इससे अनुदान देने वाले मंत्री के अधिकारों में कोई कमी नहीं आएगी। वह इस संशोधन के बावजूद अनुदान के विषय में फैसला करने वाले अंतिम निर्णायक प्राधिकारी होंगे। मैं नहीं मानता कि माननीय शिक्षा मंत्री की अनुदान देने के मामले में विश्वविद्यालय जैसी एक महत्वपूर्ण संस्था के साथ विचार-विमर्श करने में आपत्ति होगी। मेरा विश्वास है कि वे सभी माननीय सदस्य, जो छोटे शहरों के कालिजों के पक्ष में होते हैं और जिन्हें डर है कि विश्वविद्यालय के अधिकारी छोटे शहरों के कालिजों के हितों के बारे में कोई हेराफेरी करेंगे, मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि यह सिर्फ उनका कर्तव्य ही नहीं है, बल्कि इस सदन में प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य होगा कि वे देखें कि सरकार की वह राशि जो कि अनुदान के रूप में दी जा रही है, कालिजों द्वारा सही ढंग से इस्तेमाल हो रही है। मेरे विचार में मंत्री महोदय को सलाह देने के लिए कि करों द्वारा एकत्र की गई और छोटे शहरों के कालिजों को अनुदान में दी गई राशि सही ढंग से प्रयोग में लाई जा रही है या नहीं, विश्वविद्यालय

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 21, पृ. 264-65, 1 अक्तूबर 1927

से ज्यादा योग्य संस्था और कोई नहीं हो सकती। मेरे विचार से मंत्री महोदय इस महत्वपूर्ण संस्था के विचारों से असहमत नहीं होंगे, जिसके कि वह इस विधेयक के पारित होने पर जनक कहलाएंगे।

माननीय सदस्य श्री जयराम दास ने एक मुद्दा उठाया था, जिसका सत्ता पक्ष के सदस्यों द्वारा जोरदार स्वागत किया गया। उन्होंने कहा था कि इस संशोधन से सदन का मंत्री पर नियंत्रण कम हो जाएगा। मुझे नहीं मालूम मेरे संशोधन का यह नतीजा कैसे होगा? जैसा कि मैंने अभी कहा है कि मेरे संशोधन का उद्देश्य मंत्री के हाथ मजबूत करना है। अगर यह उद्देश्य स्पष्ट नहीं है,तो उसे सुस्पष्ट करने के लिए मंत्री महोदय जो भी संशोधन पेश करते हैं, मैं उसे मानने के लिए तैयार हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि मेरा संशोधन इस सदन का मंत्री पर अधिकार या मंत्री के अधिकार को किस तरह कम करेगा। इस संशोधन के अंतर्गत भी मंत्री ही अनुदानों से संबंधित निर्णय लेने के लिए अंतिम प्राधिकारी होंगे। इस संशोधन का उद्देश्य सिर्फ यह है कि अनुदान देने के मामले में मध्यवर्ती संस्था होने के नाते विश्वविद्यालय से विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। मैं नहीं मानता कि इससे मंत्री के अधिकार क्षेत्र पर या मंत्री पर सदन के नियंत्रण पर कोई भारी रोक होगी। बल्कि सदन यह निर्णय करने के लिए अच्छी स्थिति में होगा कि मंत्री द्वारा दी गई राशि सही ढंग से खर्च की गई है या नहीं। इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधन की सदन से सिफारिश करता हूं।

III*

विश्वविद्यालय में रेक्टर की नियुक्ति

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं अपने माननीय मित्र श्री जाधव के संशोधन का समर्थन करता हूं। मुझ से पहले इस विषय पर माननीय सदस्यों द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया है कि विश्वविद्यालय की वर्तमान वित्तीय स्थिति में यह नियुक्ति विश्वविद्यालय के सीमित साधनों पर एक अतिरिक्त बोझ होगी। मेरे विचार से यह तर्क अपने आपमें काफी प्रबल है और मैं इस संबंध में विशेष रूप से कहना चाहता हूं कि प्रशासनिक तौर पर यह नियुक्ति अनावश्यक है। महोदय! मुझे पता लगा है कि 1914 में बंबई विश्वविद्यालय ने मानचेस्टर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति सर एलफ्रेड हापकिन्सन को विश्वविद्यालय द्वारा अनुसंधान के बारे में प्रस्तावित एक योजना के विषय में विश्वविद्यालय को सलाह देने के लिए निमंत्रित किया गया था और, महोदय! मुझे पता लगा है कि इस संबंध में रिपोर्ट तैयार करने वाले अधिकारी के अनुसार यह नियुक्ति आवश्यक नहीं है। विश्वविद्यालय सुधार समिति की रिपोर्ट के पृष्ठ 9 पर उस अधिकारी के वक्तव्य का विवरण इस प्रकार है:

वह विश्वविद्यालय के एक वेतनभोगी प्रशासनिक अध्यक्ष के पक्ष में नहीं थे और उन्होंने

* बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 21, पृ. 286-87, 3 अक्तूबर 1927

बढ़ते हुए कार्य से उपजी कठिनाइयों को हल करने के लिए एक पूर्णकालिक कुलसचिव और संयुक्त माध्यमिक बोर्ड के एक पूर्णकालिक वैतनिक सचिव की नियुक्ति करने तथा विश्वविद्यालय के प्रशासनिक कार्य के लिए विश्वविद्यालय और कालिज-प्रोफेसरों से अधिकाधिक लाभान्वित होने का प्रस्ताव किया।

अगर 1914 में सर एल्फ्रेड हापकिन्सन जैसे विशेषज्ञ के ये विचार थे, तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस अंतराल में ऐसी कौन सी नई परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं कि हमें इस विश्वविद्यालय पर इस अधिकारी को थोपने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। इसके अलावा रेक्टर के पालन करने के लिए कोई निश्चित कार्यभार नहीं है। विश्वविद्यालय सुधार समिति की रिपोर्ट के पृष्ठ 162 पर मैंने लिखा हुआ पाया है कि उप-कुलपति विश्वविद्यालय का सामान्य पर्यवेक्षण करेंगे और उनके पास ही अधिनियम, कानूनों और अध्यादेशों का पालन करवाने के अधिकार होंगे। महोदय! रेक्टर की स्थिति के बारे में विश्वविद्यालय सुधार समिति ने उसी पृष्ठ पर उल्लेख किया है कि उनकी नियुक्ति पांच वर्ष के लिए होगी और वह पुनः नियुक्ति के योग्य होंगे। वह विश्वविद्यालय के मुख्य कार्यकारी और विद्या अधिकारी होंगे और यह देखने का उनका कर्तव्य होगा कि अधिनियम, कानूनों और अध्यादेशों का सही ढंग से पालन हो रहा है तथा इस उद्देश्य के लिए उनके पास जरूरी सभी अधिकार होने चाहिए। उप-कुलपति के दायित्व और रेक्टर को जो दायित्व सौंपे जाएंगे, उनमें कोई अंतर नहीं दिखाई देता। अगर विश्वविद्यालय सुधार समिति की रिपोर्ट में दी गई स्थिति वही है,जो मैंने अभी सदन के समक्ष प्रस्तुत की है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे यह पद एक ओर उप-कुलपति और दूसरी ओर विश्वविद्यालय के कुलसचिव से भिन्न है , क्योंकि मैंने उसी समिति की रिपोर्ट के पृष्ठ 163 पर लिखा पाया है कि रेक्टर की अनुपस्थिति में कुलसचिव उनके कार्यभार को संभालेंगे। इसलिए मैं नहीं मानता कि रेक्टर का कार्यभार किसी भी अर्थ में उप-कुलपति तथा कुलसचिव के कार्यभार से भिन्न होगा तथा इसलिए मैं नहीं समझता कि एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति जरूरी है। यह अनावश्यक है और वर्तमान परिस्थितियों में विश्वविद्यालय पर एक बोझ है। इसी आधार पर मैं अपने माननीय मित्र की श्री जाधव के संशोधन का समर्थन करता हूं।

बहस पुनः आरंभ*

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं इस संशोधन के पक्ष में हूं। वास्तव में, मैं विभिन्न कालिजों के प्रधानाचार्यों के विश्वविद्यालय में प्रवेश के पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि मैं उन व्यक्तियों में से हूं, जिनका विचार है कि अगर, विश्वविद्यालय को आगे बढ़ना है, तो कालिजों को प्राध्यापकों के अधीन होना चाहिए। यह मेरा विचार है और मुझे मालूम नहीं है कि कितने

---

*_बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स_, खंड 21, पृ. 326-27, 3 अक्तूबर 1927। यह भाषण श्री हामिल के संशोधन, जिसमें उन्होंने विश्वविद्याल में शिक्षकों को लाए जाने के लिए कहा था, के समर्थन में दिया गया।

माननीय सदस्य मेरे इस विचार से सहमत हैं। अगर सभी प्राधानाचार्यों को विश्वविद्यालय में प्रवेश करने दिया जाए, तो वे अपने साथ विश्वविद्यालय प्रबंध में अलगाववाद की भावना लाएंगे और विश्वविद्यालय को एक संगठित संस्था बनाने के बजाए, इसको एक खंडित संस्था बनाएंगे। पर मेरे माननीय मित्र श्री हामिल ने यह विचार रखा है कि विश्वविद्यालय में उसके कार्य संचालन के लिए पर्याप्त संख्या में शिक्षक जरूर होने चाहिएं। उन्होंने अब भी कहा है कि वर्तमान स्थिति में विश्वविद्यालय में पर्याप्त संख्या में शिक्षक नहीं हैं। महोदय! मेरे विचार में माननीय सदस्य श्री हामिल द्वारा पेश किए गए विचार को ध्यान में रखा जाना चाहिए, क्योंकि मैं समझता हूं कि जब कि हम विश्वविद्यालय को लोकतांत्रिक बना रहे हैं, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि विश्वविद्यालय में पर्याप्त संख्या में शिक्षक होने चाहिए, जो विश्वविद्यालय को इस प्रेसिडेंसी के शैक्षिक मामलों के लिए बनाई गई एक संस्था के रूप में कार्य करने में सहायक सिद्ध हों। मैं यह चाहता हूं कि विश्वविद्यालय में शिक्षकों को रखने की व्यवस्था करते हुए प्रधानाचार्यों के प्रवेश को हम उन कारणों के लिए, जो मैं पहले ही दे चुका हूं, टाल सकते थे। पर मेरा मानना है कि अब यह संभव नहीं है, क्योंकि खंड 3 की परिभाषा में शिक्षकों में प्राध्यापक शामिल हैं। प्रधानाचार्य प्राध्यापक हैं और वे विश्वविद्यालय में आ सकते हैं, चाहे माननीय सदस्य श्री दस्तूर का संशोधन स्वीकृत हो या न हो। उनका संशोधन केवल व्याख्यात्मक है और इससे कोई नई तब्दीली नहीं होती है। मैं इसलिए इसके पक्ष में हूं।

IV*

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं। अगर मैं विश्वविद्यालय में सुधारों और विश्वविद्यालय की कार्य पद्धति के बारे में अपने माननीय मित्र श्री मुंशी के विचारों से सहमत होता, तो निस्संदेह मैं इस संशोधन के पक्ष में खड़ा न होता। पर विश्वविद्यालय के सुधार में दिलचस्पी लेने वाले एक व्यक्ति के तौर पर और दूसरे दलित वर्ग का होने के नाते,मैं सैद्धांतिक तौर पर अपने माननीय मित्र श्री मुंशी के विचारों से असहमत हूं। महोदय! ऐसा लगता है कि मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी का विचार है कि विश्वविद्यालय एक ऐसी संस्था है, जिसका उद्देश्य कानून और कानूनी नियम बनाना है तथा सिर्फ परीक्षाएं करवाने और उस विधेयक के अंतर्गत शुरू किए जाने वाले विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का प्रबंध करना है। महोदय! मेरे विचार में विश्वविद्यालय के बारे में यह दृष्टिकोण बहुत संकीर्ण है। जैसा कि मैं समझता हूं कि विश्वविद्यालय के मूलभूत कार्यों में से एक कार्य जरूरतमंद और गरीबों को उच्चतम शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है। मैं नहीं मानता कि किसी भी सभ्य देश में कोई भी विश्वविद्यालय अपने अस्तित्व को

---

* बॉबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 21, पृ. 414–16, 5 अक्तूबर 1927 । यह भाषण मनोनीत सीनेटरों की संख्या 40 से 50 करने के संबंध में श्री नूर मोहम्मद की तरफ से बंबई विश्वविद्यालय विधेयक में पेश किए संशोधन के समर्थन में दिया गया था।

न्यायोचित ठहरा सकता है, अगर वह केवल परीक्षाओं की समस्याओं को हल करने और डिग्रियां देने का ही कार्य करता रहे। अगर एक आधुनिक विश्वविद्यालय का दायित्व है कि वह पिछड़े समुदायों को उच्चतम शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करे, तो मेरे विचार में, इसके परिणामस्वरूप स्वीकार करना चाहिए कि पिछड़े समुदायों का विश्वविद्यालय के मामलों में कुछ नियंत्रण होना चाहिए। महोदय! मैं विश्वविद्यालय को प्राथमिक तौर पर एक तंत्र मानता हूं, जहां उन सभी व्यक्तियों को शैक्षिक सुविधाएं दी जाती हैं, जो इन सुविधाओं का पूरी तरह लाभ उठाने के लिए बौद्धिक तौर पर सक्षम हैं, परंतु जो रुपये-पैसे तथा कुछ और अभावों के कारण इन सुविधाओं को हासिल नहीं कर सकते। महोदय! यह कहा जाता है कि विश्वविद्यालय का संबंध मुख्यत: प्रबुद्ध तथा शिक्षित वर्ग से है और विश्वविद्यालय के सही ढंग से कार्य करने के लिए यह जरूरी है कि कथित शिक्षित वर्ग इसका नियंत्रण करे। मैं यह सिद्धांत मानने के लिए तैयार हूं, अगर शिक्षित वर्ग जो इस विश्वविद्यालय का नियंत्रण करेगा, उसमें सामाजिक सदाचार हो। उदाहरणार्थ, अगर वे निम्न वर्गों की आकांक्षाओं से सहानुभूति रखते हों, निम्न वर्गों के अधिकारों को मान्यता देते हों और मानते हों कि इन अधिकारों का आदर करना चाहिए, तो हम जो कि पिछड़े समुदायों से हैं, शायद अपने भाग्य को कथित उन्नत वर्गों के हाथों में सौंप दें। परंतु महोदय! सदियों से कथित उन्नत और शिक्षित वर्गों के शासन का हमें बहुत ही कड़वा अनुभव है। मेरे विचार में उन्नत वर्गों के लिए यह गौरव की बात नहीं है कि इस देश में जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा, जिसे अपराधी जातियों के नाम से जाना जाता है, मौजूद रहे। निस्संदेह, यह उनके लिए गौरव की बात नहीं है कि देश में एक ऐसी आबादी है। जिसे अस्पृश्य माना जाता है। निश्चय ही वे दलित वर्गों के स्तर को उठा सकते थे, वे अपराधी जातियों के स्तर को उठा सकते थे। अगर वे चाहते तो अपनी संस्कृति हम तक ला सकते थे और हमें अपने बराबर कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा न भूतकाल में किया और न ही भविष्य में वे इस दिशा में कुछ करना चाहते हैं। उनकी निर्दयतापूर्ण उपेक्षा ने और हमारी प्रगति के प्रति सक्रिय विरोध के द्वारा, उन्होंने हमें यह पक्का विश्वास दिला दिया है कि वे वास्तव में हमारे शत्रु हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि उनकी इच्छा हमें वहीं रखने की है, जहां हम हैं। मैं पिछले कुछ दिनों से चल रही बहस का जिक्र नहीं करना चाहता, परंतु इस तथ्य में जरा-सा भी संदेह नहीं है कि विरोधी पक्ष के सदस्य,जो सरकार को अपना शत्रु मानते थे, अब इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर हमें हराने के एक ही उद्देश्य से उसके साथ हैं। उनके इस व्यवहार के पीछे पिछड़े वर्गों के नामांकन द्वारा प्रतिनिधित्व के दावों के सिवाय और कोई कारण नहीं है। यही कारण है कि वे सरकार के साथ मिल गए हैं, जिसका वे हर समय विरोध करते थे। महोदय! क्या हम इस प्रबुद्ध वर्ग का जो अपने दृष्टिकोण में इतना संकीर्ण, इतना अनुदार हो, विश्वास कर सकते हैं?

मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ने कहा है कि यदि यह किसी भौतिक लाभों के लिए विभाजन का प्रश्न होता, तो वह शायद सीनेट में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के लिए सहमत होते। लेकिन मैं उन्हें यह याद दिलाना चाहता हूं कि दलित वर्ग यह समझ गए हैं कि शिक्षा ही सबसे बड़ा भौतिक लाभ है और उसके लिए वे लड़ सकते हैं। हम भौतिक लाभों को भूल सकते हैं, हम सभ्यता के भौतिकवादी लाभों को भूल सकते हैं, परंतु हम उच्चतम शिक्षा के लाभ को पूर्णरूप से प्राप्त करने के अपने हक और अवसर को नहीं छोड़ सकते। दलित वर्गों के दृष्टिकोण से इस प्रश्न का यही महत्व है कि अब उन्हें यह अहसास हो चुका है कि शिक्षा के बिना उनका अस्तित्व सुरक्षित नहीं है। यही कारण है कि सीटों में बढ़ोतरी के लिए संघर्ष किया जा रहा है।

मैं एक और बात का उल्लेख करना चाहता हूं। यह कई बार कहा जा चुका है कि जब विभिन्न कालिजों के प्रधानाचार्यों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया जा चुका है, तो नामांकित सीटों की संख्या बढ़ाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि अगर प्रधानाचार्यों को विश्वविद्यालय में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता, तो सरकार को कम से कम दस सीटें उन्हें देनी पड़तीं। और क्योंकि उनके लिए अब अलग से प्रावधान किया गया है, चालीस की चालीस सीटें दलित वर्गों को मिलेंगी। अब, महोदय! मैं यह कहना चाहता हूं कि यही कारण है कि दलित वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए नामांकित सीटों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। हमें इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि माननीय सदस्य श्री हामिल के संशोधन के परिणामस्वरूप विभिन्न कालिजों के जिन प्रधानाचार्यों को प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व मिला है, वे निश्चय ही दलित वर्गों के मित्र होंगे। मुझे इन प्रधानाचार्यों का पर्याप्त अनुभव है और मुझे यकीन है कि सीनेट के लिए चुने जाने वाले व्यक्ति उच्च वर्गों के ही होंगे और वे शिक्षा की मांग करने वाले दलित वर्गों के बचाव के लिए कभी नहीं आएंगे। यदि मंत्री महोदय ने सीनेट में उच्च वर्गों के लिए और दस सीटें दी हैं, तो उन्हें पिछड़े समुदाय के लोगों की सहायता करने के लिए आगे आना चाहिए और संतुलन बराबर करना चाहिए। ऐसा इस विधेयक में पहले से उपलब्ध सीटों में दस और सीटें जोड़कर ही किया जा सकता है। महोदय! हमने अपने डर और अपनी शंकाओं को प्रकट कर दिया है। मेरे विचार में यह उचित ही है कि ऐसे मामले में जहां पिछड़े समुदायों की भावनाएं इतनी प्रबल हैं और जहां वे समझते हैं कि जब तक उन्हें सीनेट में प्रतिनिधित्व नहीं मिलता उनके हितों की सुरक्षा नहीं होगी, सरकार को यह विचार करना चाहिए कि क्या यह सही होगा कि वह दलित जातियों को उच्च जातियों की दया पर छोड़ने के लिए अपनी सरकारी ताकत का प्रयोग करे? मैं सदन के माननीय नेता से यह अपील करूंगा कि इसी में बुद्धिमानी है कि वह इस प्रश्न को इस सदन में मुक्त निर्णय के लिए छोड़ दें। अब सदन को जैसा ठीक लगे, फैसला करे। इस बयान के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

5

बंबई प्राथमिक शिक्षा अधिनियम संशोधन विधेयक *

I

डा. भीमराव अम्बेडकर : मुझे इस धारा को समझना बहुत मुश्किल लग रहा है। इस संबंध में उन्होंने जो कुछ कहा है, यदि मैंने वह ठीक से सुना है कि धारा 2 क के अंतर्गत विचाराधीन बोर्ड के लिए हमें एक लोकतांत्रिक गठन के बारे में नहीं सोचना चाहिए, तो मैं उनके इस विचार से सहमत हूं। यह बोर्ड इस इरादे से बनाया जाता है कि यह विशेषज्ञों की एक संस्था हो। जिन सदस्यों को स्कूल बोर्डों द्वारा प्रांतीय बोर्डों के लिए चुने जाने की आशा है, वे केवल जन साधारण के विचारों को ही प्रकट करेंगे। वे इस बोर्ड के कार्य के लिए विशेषता प्राप्त व्यक्ति नहीं ला पाएंगे। साफ जाहिर है कि जिस तरह के व्यक्ति उसमें होंगे, वे ऐसा नहीं कर पाएंगे। अन्य छह सदस्यों की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाएगी। इस खंड में ऐसा कुछ भी नहीं है,जिससे संकेत मिलता हो कि सरकार केवल शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त व्यक्तियों को नियुक्त करेगी। इस खंड में केवल इतना ही कहा गया है कि तीन व्यक्तियों की नियुक्ति प्रेसिडेंसी की सरकार द्वारा की जाएगी। ऐसा कोई भी संकेत नहीं है कि ये तीनों ही शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त व्यक्ति होंगे। इसलिए प्रांतीय बोर्ड के समूचे गठन के विश्लेषण से लगता है कि इसमें शामिल किए जाने वाले तीन सरकारी अधिकारियों के अलावा, वास्तव में इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि बोर्ड में बहुसंख्या में विशेषज्ञ होंगे। इसलिए मेरे माननीय मित्र को माननीय सदस्य श्री भोले द्वारा सुझाए गए इस सिद्धांत को स्वीकार करना चाहिए कि उसे एक लोकतांत्रिक संस्था के तौर पर देखा जाना चाहिए। उनके दृष्टिकोण से नामांकन के सिद्धांत पर निर्वाचन-सिद्धांत अभिभावी होना चाहिए। यदि मेरे माननीय मित्र कहते हैं कि बोर्ड को एक लोकतांत्रिक संस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक सलाह देने वाली संस्था के रूप में देखा जाना चाहिए, तो ऐसा करने के

**बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 2176-77, 21 अप्रैल 1938

लिए उन्हें यह जरूर कहना चाहिए कि बोर्ड में बहुसंख्यक सदस्य शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञ होंगे, लेकिन मुझे संदेह है कि वह ऐसे संशोधन को मानेंगे या नहीं कि प्रेसिडेंसी की सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले तीन सदस्य उन व्यक्तियों में होने चाहिए, जो शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञ के रूप में विख्यात हैं। उन्हें इस मामले को इसी तरह अस्पष्ट नहीं छोड़ना चाहिए। जैसा कि सरकारों और स्वयं हमारे सामने कमजोर स्थितियां आती हैं, सरकार अपनी इस कमजोर स्थिति में हो सकती है कि ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त कर दे जो विशेषज्ञ न हों। इससे इस खंड का मुख्य उद्देश्य विफल जो जाएगा।

माननीय श्री बी.जी. खेर: स्वयं अपनी ही पार्टी के एक सदस्य द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधन के संबंध में जवाब के लिए मैं माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर का आभारी हूं। मैं जानता हूं कि मैं स्वयं इस संशोधन के विरोध में इतना जोरदार तर्क नहीं दे सकता था।

II*

(खंडानुसार वाचन)

माननीय अध्यक्ष: अब हम प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, संशोधन विधेयक संख्या 15 पर आगे विचार करेंगे। मैं समझता हूं कि पिछले मंगलवार को सदन में इस विधेयक पर विचार चल रहा था और जब बैठक स्थगित हुई, तो संशोधनों की समेकित सूची में संशोधन संख्या 91 पर बहस जारी थी। यह संशोधन माननीय श्री जमनादास मेहता ने प्रस्तुत किया था और यह इस प्रकार है :

खंड 12 के उपखंड (2) में 'और एक कर्मचारी होगा' शब्दों को निकाल दिया जाए। अब यह खंड संशोधित रूप में इस प्रकार होना चाहिए:

(2) प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति प्रांतीय सरकार द्वारा की जाएगी। उसका वेतन, अधिकार और कर्तव्य नियमानुसार निर्धारित होंगे।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! क्या मैं नियमानुसार आपत्ति उठा सकता हूं? संशोधन और उसका तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया है। इसलिए मैं इस विषय में कुछ सूचना प्राप्त करना चाहता हूं। इस संशोधन के द्वारा 'और प्रांतीय सरकार का एक कर्मचारी होगा' शब्दों को हटाना है, क्या मेरा यह कहना ठीक है? इसलिए इस संशोधन का तात्पर्य ऐसा लगता है. . .

माननीय अध्यक्ष: जिन शब्दों को हटाना है, वे हैं 'और एक कर्मचारी होगा'। 'प्रांतीय सरकार' शब्दों को हटाने का प्रस्ताव नहीं किया गया है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: इसलिए मैं समझता हूं कि उसकी नियुक्ति प्रांतीय सरकार द्वारा की जानी है, लेकिन वह प्रांतीय सरकार का कर्मचारी नहीं होगा। मेरा निवेदन है कि कानूनन यदि 'और एक कर्मचारी होगा' शब्दों को हटा भी दिया जाए, तो भी इस तथ्य के आधार पर कि उसकी नियुक्ति प्रांतीय सरकार द्वारा की जाती है, वह प्रांतीय सरकार का कर्मचारी ही रहेगा। इसलिए यह फैसला करना कठिन है कि संशोधन का समर्थन किया जाए या इसका विरोध। यदि संशोधन के माननीय प्रस्तावक चाहते हैं कि उसकी नियुक्ति प्रांतीय सरकार

* *बॉबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 3, पृ. 2647-49, 30 अप्रैल 1938

ही किया करे, तब यह तथ्य कि प्रांतीय सरकार का एक कर्मचारी है, केवल कानूनी निष्कर्ष है और केवल इन शब्दों के हटा दिए जाने से उसे प्रांतीय सरकार के एक कर्मचारी बने रहने में कोई बाधा नहीं आएगी। मैं इस पर कुछ प्रकाश डाले जाने के पक्ष में हूं।

माननीय अध्यक्ष: मैं ठीक से नहीं कह सकता कि जिस समय संशोधन प्रस्तुत किया गया था, माननीय सदस्य उपस्थित थे।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं उपस्थित था।

माननीय अध्यक्ष: मैं कानूनी निष्कर्षों के संबंध में सहमत होने में असमर्थ हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर:माननीय गृह मंत्री इस मुद्दे को स्पष्ट कर सकते हैं।

माननीय अध्यक्ष: मैं समझता हूं कि विवाद का विषय यह था कि जिस तरीके से स्कूल बोर्ड द्वारा अधिकारियों का चयन या इनकी नियुक्तियां की जाती हैं, वह एक आदर्श या उचित तरीका नहीं है, तो यह बात सरकार पर छोड़ दी जाए कि वह बंबई के नगरपालिका आयुक्त की तरह इनकी नियुक्तियां करे, लेकिन जब तक सेवा में रहेंगे,वे स्कूल बोर्डों के कर्मचारी होंगे और स्कूल बोर्डों का ही यह अधिकार क्षेत्र होगा कि यदि वे चाहें तो उन्हें निलंम्बित या बर्खास्त कर सकते हैं या स्कूल बोर्डों के अन्य कर्मचारियों की भांति उनके साथ व्यवहार कर सकते हैं। यही अभिप्राय है और मैं समझता हूं यह भी सुझाव दिया गया था कि सरकार स्कूल बोर्डों के चयन और नियुक्ति करने के लिए एक पैनल देगी। इसमें किसी विवाद या असंगति की संभावना नहीं है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: यदि प्रयोजन यह है कि वह स्कूल बोर्ड का कर्मचारी हो, तो वह 'और एक कर्मचारी होगा' शब्दों को हटाए जाने से प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि इस तथ्य के आधार पर कि प्रांतीय सरकार उसे नियुक्त करती है, वह कानूनन प्रांतीय सरकार का कर्मचारी होगा। किसी का कर्मचारी होना एक बात है और किसी के अधीन होना दूसरी। एक व्यक्ति किसी का सेवक हो सकता है, लेकिन वह किसी अन्य के अधीन भी हो सकता है। मेरा निवेदन है कि इन दोनों स्थितियों में भारी अंतर है।

माननीय अध्यक्ष: यह आवश्यक नहीं है कि इसका अभिप्राय हो कि क्योंकि उसकी नियुक्ति एक पक्ष द्वारा की गई है, तो वह अन्य पक्ष का कर्मचारी नहीं हो सकता। एक व्यक्ति किसी एक पक्ष द्वारा नियुक्त किए जाने पर भी अन्य पक्ष का कर्मचारी हो सकता है। मैं उम्मीद करता हूं कि माननीय सदस्य अपने उत्तर में यह स्पष्ट कर देंगे।

श्री जमनादास मेहता: जहां तक मेरा संबंध है, मैं नहीं मानता कि यह विवाद का विषय है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: यदि यह विवाद का विषय नहीं है, तो यह जानकारी प्राप्त करने का तो विषय है। इसके पक्ष में मत दिया जाए या विपक्ष में, यह निर्णय लेने के लिए मैं स्थिति समझना चाहता हूं।

माननीय अध्यक्ष: जहां तक जानकारी का प्रश्न है, उत्तर देने के लिए मैं यह बात माननीय प्रस्तावक पर छोड़ता हूं।

III*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैंने इस संशोधन पर बोलने का अवसर खो दिया

* *बांबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 2672-73, 30 अप्रैल 1938

है, परंतु यदि आप अनुमति दें तो एक प्रश्न है, जिसे मैं प्रधानमंत्री से केवल सूचनार्थ पूछना चाहता हूं।

माननीय अध्यक्ष: अधिक समय न लें।

डा. भीमराव अम्बेडकर: वह इस विषय पर बोलने वाले थे, पर मेरे विचार से वह भूल गए हैं। मैं प्रधानमंत्री जी से पूछना चाहता हूं कि क्या स्कूल बोर्ड का प्रशासनिक अधिकारी बोर्ड के अनुशासन के अधीन रहेगा या नहीं। मैं इस खंड से यह समझता हूं कि वह प्रांतीय सरकार का कर्मचारी होगा। परंतु स्कूल बोर्ड के सेवाकाल में क्या स्कूल बोर्ड के अनुशासन के अधीन रहेगा या नहीं?

माननीय श्री बी.जी. खेर: आप कैसे समझते हैं? हमने यह व्यवस्था कर दी है कि उसका वेतन, अधिकार और कर्तव्य नियमानुसार निर्धारित किए जाएंगे। स्कूल बोर्ड के अधिकारों को पहले से ही परिभाषित कर दिया गया है। माननीय सदस्य उस समय उपस्थित नहीं थे, जब मैंने सदन के समक्ष स्कूल बोर्डों के अधिकार और कर्तव्य विस्तार से प्रस्तुत किए थे। अब यह नियमानुसार निर्धारित किया जाएगा कि सही तौर पर प्रशासनिक अधिकारियों के महत्वपूर्ण मामलों में क्या अधिकार और कर्तव्य होंगे। इसलिए मैं नहीं समझता कि प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा स्कूल बोर्डों की इच्छाएं दबाए जाने का कोई खतरा निकट भविष्य में है।

माननीय अध्यक्ष: खतरे का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या वह स्कूल बोर्ड के अनुशासन के अधीन होगा?

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगा। एक अधिकारी सचिवालय में काम कर रहा है। मंत्री द्वारा एक आदेश दिया जाता है और अधिकारी उसकी अवज्ञा कर देता है। मंत्री के पास उसे प्रशासनिक सेवा विनियम के अंतर्गत चार या पांच तरीकों से सजा देने का अधिकार है। निश्चित रूप से अधिकारी को यह हक है कि वह कुछ परिस्थितियों में अपील कर सकता है। मैं यह जानना चाहता हूं कि स्कूल बोर्ड का प्रशासनिक अधिकारी के साथ संबंध अनुशासनात्मक नियंत्रण के मामले में उसी प्रकार होगा, जैसा कि मंत्री का किसी वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी के साथ है?

माननीय श्री बी.जी. खेर: नहीं।

बहस पुनः आरंभ*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर): महोदय! मैं माननीय सदस्य श्री मोरे के संशोधन में संशोधन प्रस्तुत करना चाहता हूं।

माननीय अध्यक्ष: क्या वह उससे अलग है?

डा. भीमराव अम्बेडकर: हां, अलग है। मेरा संशोधन इस प्रकार है। 'प्रशासनिक अधिकारी के पद से हटाने' के स्थान पर निम्नांकित शब्द होंगे:

स्कूल बोर्ड के अनुशासन के अधीन और स्कूल बोर्ड के अनुशासन को भंग करने पर स्कूल बोर्ड द्वारा पारित प्रस्ताव के अनुसार इस शर्त के साथ ऐसी सजा के पात्र होंगे कि प्रशासनिक

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली* डिबेट्स, खंड 3 पृ 2679–82 30 अप्रैल 1938

अधिकारी को अपील का अधिकार रहेगा, जैसा कि नियमों में व्यवस्था की जाएगी।

इस प्रकार मेरे संशोधन के साथ पूरा संशोधन इस प्रकार होगा:

प्रशासनिक अधिकारी स्कूल बोर्डों के अनुशासन के अधीन होंगे और स्कूल बोर्ड का अनुशासन भंग करने पर स्कूल बोर्ड द्वारा पारित प्रस्ताव के अनुसार इस शर्त के साथ ऐसी सजा के पात्र होंगे कि प्रशासनिक अधिकारी को अपील करने का अधिकार रहेगा, जैसा कि नियमों में व्यवस्था की जाएगी।

माननीय अध्यक्ष: 'पारित' शब्द के साथ 'स्कूल बोर्ड द्वारा' शब्द जोड़े जाएं और 'व्यवस्था' के स्थान पर 'निर्धारित' शब्द रखा जाए।

संशोधन इस प्रकार पढ़ा जाए-'उसके पद से हटाया जाना' से लेकर 'प्रशासनिक अधिकारी को तुरंत हटाया जाए' तक के शब्दों को निकाल दिया जाए और उनके स्थान पर निम्नांकित को रखा जाए:

स्कूल बोर्ड के अनुशासन के अधीन और स्कूल बोर्ड का अनुशासन भंग करने पर स्कूल बोर्ड द्वारा पारित प्रस्ताव के अनुसार इस शर्त के साथ ऐसी सजा के पात्र होंगे कि प्रशासनिक अधिकारी को अपील करने का अधिकार रहेगा, जैसा कि नियमों में निर्धारित किया जाएगा।

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर): महोदय! मैं जो संशोधन प्रस्तावित कर रहा हूं, वह इस संशोधन से नितांत भिन्न है, जो माननीय मित्र श्री मोरे ने प्रस्तावित किया है। श्री मोरे के संशोधन में प्रावधान है कि कुछ परिस्थितियों में स्कूल बोर्ड को सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासनिक अधिकारी को हटाने का अधिकार होगा। मेरा संशोधन श्री मोरे के संशोधन से बुनियादी तौर पर भिन्न है। मेरा संशोधन स्कूल बोर्ड को प्रशासनिक अधिकारी को हटाने का अधिकार नहीं देता। उसका उद्देश्य केवल यह है कि उस अवधि के दौरान जब प्रशासनिक अधिकारी किसी खास स्कूल बोर्ड की सेवा में हो तो स्कूल बोर्ड का उस पर अनुशासनात्मक नियंत्रण होगा। महोदय! यह समझा जाना चाहिए कि विधेयक का खंड 12 सिद्धांत रूप से असंगत है।

यह स्वीकृत सिद्धांत है कि एक अधिकारी जिस प्राधिकारी की सेवा में है, वह उसके अधीनस्थ होना चाहिए। खंड 12 द्वारा हमने व्यवस्था की है कि प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति प्रेसिडेंसी की सरकार द्वारा की जाएगी और उसी सरकार का कर्मचारी होगा। मेरे माननीय मित्र श्री जमनादास मेहता द्वारा प्रस्तुत इस संशोधन पर सदन में, जो अनेक सदस्य बोले, उन सभी ने इस दोषमुक्त विसंगति की ओर ध्यान दिलाया है। इसलिए जो कुछ कहा जा चुका है, उसे दोहराकर मैं सदन का समय नहीं लेना चाहता। खंड 12 को अधिनियमित करने का क्या परिणाम होगा? मुझे माननीय प्रधानमंत्री द्वारा अपनाई गई इस प्रक्रिया के कारण उनसे पूरी सहानुभूति है कि प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति प्रेसिडेंसी की सरकार द्वारा की जानी चाहिए और वह उसी सरकार का कर्मचारी होना चाहिए।

उनके प्रति मेरी सहानुभूति दो कारणों से है। पहला कारण यह है कि स्थानीय बोर्डों या स्कूल बोर्डों द्वारा प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति की जाती रही, तो उसका एक नतीजा

यह होगा कि प्रशासनिक अधिकारी को अपना सारा जीवन एक ही स्थान पर बिताना होगा, जो कि सिद्धांत रूप से निस्संदेह एक बुरी बात है, क्योंकि जब कोई अधिकारी किसी एक ही जगह पर सेवा में रहता है तो वह अपनी मित्र मंडली बना लेता है और इससे उसे अपने प्रशासनिक अधिकारों को पक्षपातपूर्ण तरीके से उपयोग करने के अवसर प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए इन प्रशासनिक अधिकारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जाना जरूरी है, जैसा कि जिलाधीश, जिला जज जैसे महत्वपूर्ण अधिकारियों को एक जिले से दूसरे जिले में भेजे जाने की व्यवस्था है। माननीय प्रधानमंत्री द्वारा अपनाई गई इस प्रक्रिया के कारण उनके प्रति मेरी सहानुभूति का दूसरा कारण यह है कि जब तक एक सरकार प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति नहीं करती, तब तक नियमित सेवा का ऐसा काडर नहीं बनाया जा सकता, जिसमें पदोन्नति के अवसर आदि हों। मेरी इस संबंध में पूरी सहमति है। परंतु, महोदय! मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि कम से कम अनुशासनात्मक नियंत्रण के उद्देश्य से सरकार को इन अधिकारियों को स्कूल बोर्डों के अधीन करने में क्या कठिनाई है। जैसा कि विधेयक में संकल्पना की गई है, मैं यह नहीं समझता कि स्थानीय बोर्ड मशीनरी के सही संचालन की आशा कैसे की जा सकती है, जब तक कि मेरे सुझावों पर अमल नहीं होता है।

अब मैं भारत सरकार अधिनियम के अधीन क्या हुआ है, उससे उदाहरण देकर बताना चाहूंगा। उदाहरण के तौर पर मैं भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों की स्थिति को लेता हूं। भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति भारत मंत्री द्वारा की जाती है। मेरा मानना है कि मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट जिन्होंने पढ़ी है, वे जानते होंगे कि उसे तैयार करते समय मंत्रियों को प्रभावी नियंत्रण हस्तांतरित करने के संबंध में जो सबसे बड़ी कठिनाई सामने आई, वह थी भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों का विरोध। इस सेवा के सदस्यों की आपत्ति थी कि क्योंकि उनकी नियुक्ति भारत मंत्री द्वारा की गई है, उन मंत्रियों द्वारा नहीं,जो तत्कालीन सुधारों के तहत अधिकृत किए जा रहे थे, वे इन मंत्रियों के नियंत्रण में कार्य नहीं कर सकते। दूसरी ओर, जो इस बात के पक्षधर थे कि भारतीय मंत्रियों को प्रभावी अधिकार सौंपे जाएं, उन्होने यह निर्णय लिया कि भारतीय मंत्रियों को उस समय तक प्रभावी अधिकार हस्तातंरित नहीं हो सकते, जब तक कि उन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को नियंत्रण में रखने के लिए वास्तविक अधिकार प्राप्त न हों, जो प्रशासन के माध्यम हैं। बहुत समय तक रस्साकशी चलती रही और यदि मुझे ठीक से याद है तो समझौते के तौर पर यह निर्णय लिया गया कि ली–कमीशन के अनुसार मध्यम मार्ग अपनाया जाए तथा वह मध्यम मार्ग वह हो सकता है, जो मैं अपने संशोधन द्वारा पेश कर रहा हूं। जिस मध्यम मार्ग का प्रशासनिक सेवा और भारतीय राजनीतिज्ञों, दोनों के दृष्टिकोण के अनुसार सुझाव दिया गया वह यह था कि प्रशासनिक अधिकारी पूरी तरह भारत मंत्री के अधीन रहेंगे और वे प्रशासनिक अधिकारी को द्विशासन–प्रणाली के अधीन स्थानांतरित विभागों में कार्य करते

हैं, उन पर मंत्रियों का अनुशासनात्मक नियंत्रण रहेगा। वर्गीकृत नियमों के अंतर्गत किसी उद्दंड प्रशासनिक अधिकारी को,जो मंत्री की अवज्ञा करता हो, उसे मंत्री द्वारा पांच प्रकार से दंडित किया जा सकता है। जो दंड निर्धारित किए गए थे, वे थे प्रताड़ना, पदावनति, प्रोन्नति अवरोध, स्थानांतरण और बर्खास्तगी। साथ ही, यदि कोई प्रशासनिक अधिकारी यह सोचता हो कि मंत्री ने उसे जो सजा दी है, वह युक्तिसंगत नहीं है, अन्यायपूर्ण है, या जातीय विद्वेष के कारण दी गई है, तो उसे अपील करने का अधिकार था। प्रशासनिक अधिकारी पहले गर्वनर के पास और अंततः भारत मंत्री के पास अपील कर सकता था, तथा मंत्री के आदेश को चुनौती दे सकता था। इस प्रकार दो विवादास्पद विचारों – नियंत्रण नहीं और पूर्ण नियंत्रण – पर समझौता हुआ और इस प्रकार जो फार्मूला निकाला गया, वह यह था कि प्रशासनिक अधिकारी भारत मंत्री के ही अधीन रहे और उसे वही अधिकारी बर्खास्त कर सकता है,जो उसे नियुक्त करता है, पर जब तक वह किसी विभाग में कार्यरत हो तो वह संबद्ध मंत्री के अनुशासन में कार्य करे। महोदय, मैंने जो संशोधन पेश किया है, वह केवल इसी फार्मूले के परिपालन से संबद्ध है। इससे मंत्री के नियुक्ति के अधिकार का हनन नहीं होता। इसके अनुसार प्रशासनिक अधिकारी का बर्खास्त करने का मंत्री का अधिकार नहीं छिनता, ना ही इस संशोधन का तात्पर्य यह है कि प्रशासनिक अधिकारी किसी स्कूल बोर्ड में कार्यरत होने के दौरान स्कूल बोर्ड का कर्मचारी माना जाए । इस संशोधन का आशय सीमित है। यह मात्र यही कहता है कि स्कूल बोर्ड में कार्यरत होने के दौरान वह बोर्ड के अनुशासन में रहे। फिर, स्कूल बोर्ड किस प्रकार का दंड दे और अधिकारी की अपील कैसी हो, ये ऐसे मामले हैं,जिनके बारे में मेरे संशोधन में कहा गया है कि सरकार नियम बनाकर निर्धारित करे। मैं यह नहीं कहता कि स्कूल बोर्ड प्रशासनिक अधिकारी को क्या सजा दे। मैं यह नहीं कहता कि अमुक मामले में अपील करने का अधिकार दिया जाए। सजा की व्यवस्था और अपील की सीमाएं, इन सभी मामलों को सरकार को नियमों द्वारा निर्धारित करना है। इस संशोधन में मात्र यह सुनिश्चित किया गया कि स्कूल बोर्ड में कार्यरत होने के दौरान अधिकारी को यह महसूस होना चाहिए कि स्कूल बोर्ड का उस पर नियंत्रण है। मैं यह बिल्कुल नहीं समझ पाता कि यदि इतना सा अधिकार भी स्कूल बोर्ड को नहीं है, तो एक प्रशासनिक अधिकारी यह कैसे समझेगा कि काम की दृष्टि से वह सचमुच स्कूल बोर्ड का कर्मचारी है। मैं माननीय प्रधानमंत्री से यह जानना चाहता हूं कि मान लें,जो अधिकारी उनके अधीन कार्य कर रहे हैं, उन पर उनका कोई नियंत्रण न हो और वह उन्हें किसी अवज्ञा के लिए दंडित न कर सकें, तो उनके अपने विभागों की क्या स्थिति होगी। मेरा निवेदन है कि सुचारू रूप से कार्य संपादन के लिए इतना अधिकार तो स्कूल बोर्डों को दिया जाए कि प्रशासनिक अधिकारी यह समझ सके कि वह इस बात के लिए बाध्य है कि वह स्कूल बोर्ड के उपयुक्त और कानूनी आदेशों का पालन करे। इसके साथ ही मैं अपने संशोधन की सदन में सिफारिश करता हूं।

6

बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम में संशोधन हेतु 1928 का विधेयक संख्या 12

निम्नांकित विधेयक* जिसे बंबई के गर्वनर की विधान परिषद की 19 मार्च 1928 की बैठक में विधान परिषद सदस्य डा. भीमराव अम्बेडकर को प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई, उसे बंबई विधान परिषद के नियम 20 के अधीन प्रकाशित किया जाता है:

1928 का विधेयक संख्या 12

1874 के बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम में और संशोधन का विधेयक

(1874 का बंबई अधिनियम 3)

जब कि बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम में संशोधन समीचीन है, वह अब इस प्रकार होगा: और जहां भी भारत सरकार अधिनियम की धारा 80 ग पर महामहिम गवर्नर की पूर्व अनुमति ली गई है, वह अब इस प्रकार परिपालित होगा:

1. यह अधिनियम बंबई वंशानुगत कार्य (संशोधन) अधिनियम 1928 कहलाएगा।

2. *1874 के बंबई अधिनियम 3 की धारा 9 में संशोधन--धारा9* खंड (1) का वाक्यांश 'चाहे सेवक को मेहनताना निश्चित किया गया हो या नहीं', इस प्रकार पढ़ा जाए :

किसी सेवक को मेहनताना निश्चित नहीं किया गया है।

3. *1874 के बंबई अधिनियम 3 में धारा 9 क का समावेश --- धारा* 9 के पश्चात निम्नांकित जोड़ा जाए:

9 क. (1) बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम 1874 (1874 का बंबई अधिनियम 3) के लागू होने से पूर्व,यदि किसी ब्रिटिश अदालत ने आदेश नहीं दिया हो या जिलाधीश

---

* *यह बोंबे गवर्नमेंट गजट*, भाग 5, 16 अप्रैल 1928 में प्रकाशित बंबई वंशानुगत कार्य विधेयक 1874 अधिनियम विधेयक का पाठ है। डा. अम्बेडकर का भाषण पृ. 88-103 पर है।

सहमत न हो तथा राजस्व खाते में स्वामित्व परिवर्तन न किया गया हो और कोई वतन या उसका अंश किसी ऐसे व्यक्ति को दे दिया गय है जो उस वतन बेगार का अत्यन्त का अत्यन्त भयानक एवं निकृष्ट रूप विशेष का वतनदार न हो, तो ऐसी हालत में जिलाधीश उस आदेश को अवैध घोषित कर दे और आदेश दे कि वह वतन या उसका भाग या उससे प्राप्त होने वाला लाभ उसी तिथि से दिया जाएगा, जब से जो वतनदार उसका अधिकारी था, उस वतनदार से तदनुसार वसूली की जाए या उसे भुगतान किया जाए।

(2) यदि वतन का वह भाग भूमि है तो जिलाधीश वतनदार को दिए जाने के आदेश दे।

4. *1874 के बंबई अधिनियम 3 की धारा 15 में संशोधन--धारा 15* के खंड 1 में नम्रांकित का समावेश किया जाए :

यह व्यवस्था की गई है कि प्रतिनिधि वतनदारों को संपूर्ण संगठन अथवा उनकी बहुसंख्या,जिन्हें अधिनियम की धारा 63 के अधीन वंशानुगत कार्य मिला हुआ है और उनके अधिकार में वतन भूमि है,तो उनको यह छूट होगी, बशर्ते कि वे जिलाधीश को लिखित आवेदन दें कि अनवरत सेवाकार्य से मुक्त किया जाए और यदि वे सर्वेक्षित मूल्यांकन के अनुसार भुगतान करने पर सहमत हों,तो उन्हें उस भूमि पर काबिज रखा जाए।

5. *1874 के बंबई अधिनियम 3 की धारा 19 में संशोधन--धारा* 19 से निम्नांकित को निरस्त किया जाए :

और यह फैसला करना कि भुगतान नकदी या उपज के रूप में किया जाए।

6. *1874 के बंबई अधिनियम 3 में नई धाराओं 19 क, 19 ख, 19 ग और 19 घ का समावेश:* धारा 19 के पश्चात निम्नांकित का समावेश किया जाए :

19 क. जब प्रतिनिधि वतनदारों का संपूर्ण संगठन या उनकी बहुसंख्या,जिन्हें वतन संपत्ति के लिए उपज लेने का अधिकार है, जिलाधीश से आवेदन करे कि उन्हें इसके बदले नकद भुगतान की व्यवस्था की जाए, तो जिलाधीश उसे सापेक्ष नकद भुगतान में बदलेगा।

19 ख. जब उपज के भुगतान को सापेक्ष नकदी में परिवर्तित कर दिया जाए, तो प्रतिनिधि वतनदारों का संपूर्ण संगठन या उनकी बहुसंख्या जिलाधीश से आवेदन कर सकती है कि उनसे वसूली कराई जाए जिन पर यह बनती है। जिलाधीश उनसे भू-राजस्व के साथ और उसी के भाग के रूप में नकदी वसूल करे और पात्र वतनदारों को सरकारी खजाने से भुगतान करे।

19 ग. जिन मामलों में यह पाया जाए कि सेवा का मेहनताना सरकार और किसान, दोनों को संयुक्त रूप से उपज के रूप में देना है, यदि उनसे प्रभावित प्रतिनिधि वतनदारों

का संपूर्ण संगठन अथवा उनकी बहुसंख्या जिनके उपज के भुगतान को नकदी में बदल दिया गया है, वे जिलाधीश से आवेदन कर सकते हैं कि वह यह निश्चित करे कि सरकार और किसान किस अनुपात में भुगतान करें। जिलाधीश इस संबंध में फैसला देगा और वह अंतिम होगा।

19 घ. प्रतिनिधि वतनदारों का संपूर्ण संगठन या उनकी बहुसंख्या को,जिन्होंने धारा 19 ग में वर्णित निर्णय का अनुरोध किया है, यह छूट होगी कि यदि वे जिलाधीश को अपने फैसले पर लिखकर आवेदन देते हैं,तो वे किसानों की सेवा से इंकार कर सकते हैं। यदि यह छूट लागू होती है,तो यह छूट पाने वाले वतनदार उपकर के उस अंश के अधिकारी नहीं होंगे, जो उन्हें किसानों से मिलता है।

7. *1874 के बंबई अधिनियम 3 की धारा 21 में संशोधन--धारा* 21 में वर्णित इस अवधि के स्थान पर निम्नांकित वाक्यांश पढ़ा जाए: अधिकतम दस वर्ष की अवधि।

8. *1874 के बंबई अधिनियम 3 की धारा 83 में संशोधन--धारा* 83 के स्थान पर यह धारा समाविष्ट की जाए:

83 धारा अधिनियम बन जाने पर धारा 18 की व्यवस्था को छोड़कर सरकार नियम बनाए जिसमें किसी वंशानुगत कार्य के दायित्वों का वर्णन हो :-

यदि इस प्रकार के नियम बनाए गए हैं,तो वे उस समय तक लागू नहीं होंगे, जब तक कि बंबई विधान परिषद के अगले अधिवेशन के पूर्व उनका प्रकाशन बंबई राजकीय गजट में नहीं हो जाता है और उनको उपरोक्त परिषद के अगले अधिवेशन में प्रस्तुत संकल्प के द्वारा निरस्त किया जा सकता है अथवा संशोधित किया जा सकता है।

उद्देश्यों और कारणों का विवरण

विधेयक के उद्देश्य हैं :

1. कार्यरत वेतनदारों के लिए बेहतर पारिश्रमिक की व्यवस्था करना।
2. क्षुद्र वंशानुगत ग्राम्य सेवकों के वेतन के रूपांतरण की अनुमति प्रदान करना।
3. बेलूते को नकदी में बदलना।
4. क्षुद्र वेतन धारक को किसानों की सेवा के दायित्व से मुक्त कराने की अनुमति देना।
5. कार्यरत वेतनदारों के दायित्व निर्धारित करना।

बंबई, 13 अप्रैल 1928

(हस्ताक्षर) भी.रा. अम्बेडकर
जी.एस. राज्याध्यक्ष,
बंबई के गवर्नर की विधान
परिषद में कार्यवाहक सचिव

I
वंशानुगत कार्य अधिनियम-संशोधन विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मैं 1928 के विधेयक संख्या 12 को प्रस्तुत कर रहा हूं,जिसे प्रथम बार पहली 'बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम 1874 में अगले संशोधन हेतु' पढ़ा जाए। यह विधेयक पटेल या कुलकर्णी से संबंधित नहीं है। इस विधेयक में वर्णित वंशानुगत कर्मी वंशानुगत कार्य अधिनियम के अंतर्गत कर्म करने वालों को कहा गया है। फिलहाल इन क्षुद्र कर्म करने वालों का अर्थ है, दक्खन के महार, गुजरात के बेठिया अथवा वर्थनिया, कर्नाटक के रामोशिस या जुगलिया तथा होलिया वर्ग से है। इन क्षुद्र धारकों में अधिकांश महार हैं और इस सदन में मेरी प्रस्तावित टिप्पणियां मोटे तौर पर क्षुद्र कर्मी प्रतिनिधि-स्वरूप महारों के बारे में होंगी।

महोदय! इस विधेयक के प्रावधानों को समझने के उद्देश्य से मेरे विचार में यह आवश्यक है कि सदन को उन ज्यादतियों और शिकायतों से अवगत कराया जाए, जिनके कारण मुझे यह विधेयक लाना पड़ा है। ये ज्यादतियां बहुत अधिक हैं, इसलिए मैं वास्तव में इनकी विशद् व्याख्या कर सदन का समय नहीं लेना चाहता हूं। मैं इस प्रथा पर, इस उत्पीड़न पर मोटे तौर से प्रकाश डालना चाहता हूं। महोदय! पहली बात तो यह है कि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि ये क्षुद्र वतन धारक वतन कानून के अनुसार सरकारी सेवक हैं। परंतु कहीं भी इनके दायित्वों का उल्लेख नहीं है। इसके बारे में कुछ पता नहीं है। दरअसल, इस बारे में सचमुच कोई कुछ नहीं कह सकता कि ये महार वतनदार किस विभाग से संबद्ध हैं। सच्चाई यह है कि प्रत्येक विभाग इनकी सेवाओं का दावा करता है। इन्हें सिंचाई विभाग में काम के लिए बुलाया जा सकता है, राजस्व विभाग में बुलाया जा सकता है, इन्हें टीकाकरण विभाग में तलब किया जा सकता है, शिक्षा विभाग में बुलाया जा सकता है, इन्हें स्वायत्तशासी विभाग भी बुला सकता है और मेरा ख्याल है कि इन्हें पुलिस विभाग भी बुला लेता है। यहां तक कि आबकारी विभाग की सेवादारी भी इनका काम है। मेरा निवेदन है कि यह एक विचित्र प्रथा है। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी जानता है कि वह किस विभाग से संबद्ध है और उसका क्या कार्य है। मैं समझता हूं कि किसी भी विभाग में कोई ऐसा कर्मचारी नहीं है, जिसे किसी भी विभाग में भृत्य के रूप में बुलाया जा सके, किंतु हर दृष्टि से महार ऐसे व्यक्ति हैं और प्रत्येक विभाग के हर कार्य के लिए भृत्य समझे जाते हैं। फिर, उसे कभी भी बुलाया जा सकता है, चाहे रात हो या दिन। कोई अन्य कर्मचारी कितने भी छोटे पद पर क्यों न हो, निश्चित घंटों में ही कार्य करता है। जिलाधीश के दफ्तर या कोई अन्य कार्यालय का हर चपरासी जानता है कि उसे एक निश्चित समय के लिए दफ्तर जाना है और निश्चित समय पर वापस घर आ जाना है। परंतु महारों के साथ ऐसा नहीं है। उन्हें न केवल दिन में काम पर बुलाया

* *बॉम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 23, पृ. 708-21, 3 अगस्त 1928

जा सकता है, अपितु रात को भी उन्हें काम पर बुलाया जा सकता है। यदि कोई अधिकारी किसी महार को रात में सेवाकार्य के लिए बुलाता है, तो चाहे आंधी, पानी हो या बिजली चमक रही हो या कोई अन्य कठिनाई हो,वह इंकार करने का दुस्साहस नहीं कर सकता।

तीसरी शिकायत यह है। महारों की जहां तक बात है, एक व्यक्ति का नाम सेवा पंजिका में दर्ज है और वह अकेला व्यक्ति नहीं है,जिसे सेवा करनी है, बल्कि उसका सारा परिवार सरकार के सेवाकार्य के लिए बाध्य है। यदि सेवा पंजिका में जिस व्यक्ति का नाम दर्ज है और जो काम करने के लिए बाध्य है, वह सेवाकार्य के लिए बाहर गया हुआ है, या सरकारी काम से अनुपस्थित रहने पर घर से कोई जवाब नहीं मिल रहा है, तो उसके पिता को सेवा के लिए बुलाया जा सकता है।उसके पिता के अनुपस्थित रहने पर,उसके दादा को सेवा के लिए बुलाया जा सकता है। परंतु उसके पिता या दादा का नाम रजिस्टर में दर्ज नहीं हो सकता। मेरा निवेदन है कि केवल पुरुष ही नहीं,बल्कि महिलाएं भी सरकारी सेवा में बुलाई जा सकती हैं। यदि सेवक अनुपस्थित है,तो उसकी पत्नी को सेवाकार्य के लिए बुलाया जा सकता है। यदि पत्नी भी अनुपस्थित है, तो उसकी मां को बुलाया जा सकता है। यदि उसकी मां अनुपस्थित है,तो उसके परिवार में छोटी उम्र की स्त्रियों को भी बुलाया जा सकता है। जरा कल्पना कीजिए कि एक 18 वर्षीय महार स्त्री को,किसी 18 वर्षीय पुलिस कर्मचारी द्वारा पांच-छह मील तक अपना सामान ले जाने के लिए बुलाया जाता है, तो इस स्थिति में उसके सामने जो खतरा है, वह कैसा है? महोदय! इस समय जो प्रथा मौजूद है, उसके अनुसार इस खतरे से कोई बचाव नहीं है। जो प्रथा इस समय मौजूद है,उसके अनुसार न केवल सेवक को सेवा करनी होती है, बल्कि उसका पूरा परिवार सेवाकार्य के लिए बाध्य है। मेरा निवेदन है कि यह एक क्रूर प्रथा है और किसी सरकारी विभाग में नहीं है।

अब मैं मेहनताने के प्रश्न पर आता हूं। वह मेहनताना भी क्या है,जो इन बेचारों को दिन-रात कड़ी मेहनत करके मिलता है। यदि मैं सदन को बताऊं तो उसे यकीन नहीं होगा कि जिस सेवा की उनसे अपेक्षा की जाती है, उस पर सरकारी खजाने से उनको सीधे कुछ नहीं मिलता। थाणे जिले में महार सेवक को डेढ़ रुपया महीना मिलता है। अहमदनगर में भी इतना ही मिलता है। पूर्वी खानदेश में उन्हें पौने दो रुपये दिए जाते हैं, जबकि पश्चिमी खानदेश में नौ आने और चार पाइयां मिलती हैं। नासिक जिले में 13 आने और चार पाइयां मिलती हैं। पूना में एक रुपया, एक आना और चार पाइयां मिलती हैं। सतारा में यह राशि दो आना और एक पाई है तथा शोलापुर में 3 आना और 3 पाइयां प्रतिमास दी जाती हैं। बंबई के उपनगरीय जिले में यह रकम साढ़े नौ रुपये से 5 आना प्रतिमास है। बेलगांव में सरकारी कोष से कोई वेतन नहीं दिया जाता है। मार्च 1925 के अधिवेशन में किए गए प्रश्न के उत्तर में सरकार से रत्नागिरी और कोलाबा जिलों के बारे में कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। यह सदन जान सकता है कि कितनी तुच्छ और अल्प राशि सरकार उस सेवा के लिए देती है, जिसकी

उनसे अपेक्षा की जाती है। महार वतनदारों की आय के दो साधन हैं। पहला साधन है,इनाम भूमि और दूसरा है,महार वतनदारों को ग्रामीणों द्वारा दिए जाने वाले बलूते। यह इनाम भूमि उन्हें अंग्रेज सरकार से नहीं मिली है, बल्कि प्राचीन सम्राटों की बख्शीश है। महार वतन इस देश के प्राचीन वतन हैं और यह तमाम भूमि उन्हें प्राचीन काल से प्राप्त है। मुझे पता नहीं है कि जो जमीन इन्हें प्राचीन काल में मिली थी,क्या अंग्रेज सरकार ने उसमें कोई बढ़ोतरी की है। कीमतें बढ़ गई हैं, रहन-सहन का दर्जा ऊपर उठ गया है। मुझे पता नहीं है कि अंग्रेज सरकार की स्थापना के बाद कितनी बार प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को वेतन वृद्धि मिली है। किंतु अंग्रेज सरकार ने वतनदारों के पारिश्रमिक की ओर निगाह तक नहीं डाली है। उन्होंने इन बेचारों को उसी हालत में छोड़ रखा है, जो प्राचीन सम्राटों की कृपा से इन्हें बख्शा गया है। महारों की संख्या कई गुना बढ़ गई है और इन्हें दी गई जमीन टुकड़ों में बंट-बंटकर इस स्थिति में पहुंच गई है कि उसका अब कुछ मूल्य ही नहीं रहा है। इनकी आय का स्रोत दूसरे साधन से है,जिसे बलूते कहा जाता है। महोदय! भुगतान के इस साधन की विशेषता भी इस सदन के ध्यान में लाने योग्य है। मैं दोहराता हूं कि महार सरकारी कर्मचारी हैं, लेकिन सरकार उन लोगों को मेहनताना देने की कोई जिम्मेदारी महसूस नहीं करती। अन्य सभी मामलों में सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वह अपने चपरासियों, क्लर्कों, अधिकारियों और नियोक्ताओं को वेतन दे। किंतु महारों के मामले में जहां तक बलूते का संबंध है, उसके लिए कोई ऐसा तरीका नहीं है कि सरकार इसका दायित्व माने कि उनका पारिश्रमिक मिलना चाहिए। इसका कारण यह है कि वेतन कानून के अधीन बलूते के भुगतान के बारे में महार किसानों की कृपा पर निर्भर है। यदि किसान उसे बलूते को देना चाहें, तो वह मिल सकता है। यदि साल भर काम कराने के बाद किसान उसे अंगूठा दिखा देता है, तो महार यह समझ लेगा कि उसकी मेहनत पानी में गई।

महोदय! मैं निवेदन करता हूं कि यह एक क्रूर और अन्यायपूर्ण प्रणाली है। यदि सरकार चाहती है कि ये लोग उसके लिए कार्य करें, तो यह नितांत आवश्यक है कि वह महारों को भुगतान की जिम्मेदारी ले। वह इस जिम्मेदारी से लापरवाह नहीं रह सकती और तीसरे पक्ष पर यह काम नहीं छोड़ सकती, जिसे रैयत कहा जाता है। परंतु मौजूदा प्रणाली में यही सब कुछ हो रहा है। महोदय! क्या इसका भरोसा है कि वतन जारी रहेगा? क्या इस बात का भरोसा है कि वतन से बेदखली हो सकती है या बहाली हो जाएगी? महोदय! इस बारे में कोई भरोसा नहीं है । इसका कारण स्पष्ट और सहज है । हर मामले में सेवा की अवधि उस अधिकारी की मर्जी पर निर्भर है, जिसके अधीन वह कार्य करता है। इस क्षेत्र में पाटिल, कुलकर्णी और मामलतदार वे अधिकारी हैं, जिनके अधीन महार को कार्य करना पड़ता है। महार अपने वतन को उस समय तक सुरक्षित नहीं समझ सकता, जब तक कि सरकार की सेवा के उपरांत, मेरा मतलब है वैध सेवा,जो एक सरकारी नौकर से अपेक्षित है, वह

स्वेच्छा से अपने मौजूदा अधिकारियों, यानि पटेल, कुलकर्णी और मामलतदार की बेगार नहीं करता। जब तक वह उनका कृपापात्र नहीं बनता, उसको कोई भरोसा नहीं हो सकता और वह कृपा प्राप्त करना इतना आसान नहीं है। यह कृपा दृष्टि तभी होती है, जब वह बेगार करे। इसके बावजूद कुछ नहीं कहा जा सकता कि पाटिल, कुलकर्णी ऐसी रिपोर्ट नहीं देगा कि महार ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है। यह रिपोर्ट बिल्कुल झूठी और बनावटी हो सकती है। ऐसे अनेक मामले हैं, जब पाटिल और कुलकर्णी ने ऐसी रिपोर्ट दी है और मामलतदार ने उन पर कार्रवाई की है तथा महारों का वतन वापस ले लिया गया है या बहाल हो गया है। पिछले कुछ वर्षों का मेरा अनुभव है कि जब मेरे सामने अनेक ऐसे मामले आए जहां महार वतन वापस लिए गए या बहाल हुए। मैंने अपनी तरफ से भरसक प्रयत्न किया और वरिष्ठ अधिकारियों से कहा, डिप्टी कलक्टर, सहायक कलक्टर और कलक्टरों से संपर्क किया कि मामलतदारों के फैसलों को बदला जाए, परंतु मुझे एक भी मामले में सफलता नहीं मिली। सारांश यह है कि मातहत अधिकारियों को यह विश्वास होता है कि उनके फैसले अटल हैं, चाहे वे सही हो या गलत हों। कानूनी आधार हो या नहीं। वह फर्जी गवाही पर किए गए हों या नहीं। वरिष्ठ अधिकारी उन्हें स्वीकार कर लेंगे। भरोसे की ऐसी भावना के आधार पर इन बदनसीब लोगों के उत्पीड़न और कष्टों की कोई सीमा नहीं है। मेरा निवेदन है कि इस प्रणाली का यह एक अन्य दोष है।

महोदय! यदि इस प्रथा से केवल कार्मिक महार ही प्रभावित होते और अन्य दलित वर्ग इससे मुक्त होते, तो शायद मैं इस मुद्दे को इस सिद्धांत से न उठाता। मुसीबत यह है कि इस प्रणाली के दुष्परिणाम इतने व्यापक और सर्वग्राही हैं कि वे पूरे दलित वर्ग को अपनी चपेट में ले लेते हैं। महोदय! सदन इस बात पर शायद विश्वास नहीं करेगा,यदि मैं कहूं कि वतन प्रथा के कारण गांवों का महार समुदाय परांजपे परिपत्र के लाभों पर दावा नहीं कर सकता कि उनके बच्चे स्कूलों में अन्य बच्चों के साथ बैठें। यद्यपि परिषद ने यह प्रस्ताव पारित कर दिया है कि दलित वर्गों के लोगों को धर्मशालाओं तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों के इस्तेमाल की अनुमति होनी चाहिए, फिर भी दलित वर्गों के लोग परिषद द्वारा प्राप्त इन विशेषाधिकारों के बारे में मांग नहीं कर सकते। जैसा कि मैं जानता हूं, यह परिषद इस पर विश्वास नहीं करेगी कि वतन-प्रणाली इस प्रकार की स्थिति के लिए जिम्मेदार है। परंतु महोदय! मैं केवल यही स्पष्टीकरण दे सकता हूं कि महार समुदाय प्रगति क्यों नहीं कर सका है? इसका कारण बहुत साधारण है। उदाहरण के लिए, जब कभी किसी विशेष गांव में कोई महार समुदाय किसी विशेष दिशा में उन्नति की कामना करता है और किसान उसे पसंद नहीं करते हैं, तो तत्काल ही किसान बलूते को देना बंद कर देते हैं और सामाजिक बहिष्कार की घोषणा कर दी जाती है। मुझे एक मामले की जानकारी है, जब गांव वालों ने बलूते को देना बंद कर दिया और सामाजिक बहिष्कार की घोषणा कर दी, क्योंकि किसी महार का

संबंधी गांव में जूते-मोजे पहनकर गया और गांव वालों ने उसके इस काम को पसंद नहीं किया। मैं एक घटना के विषय में जानता हूं,जब कि गांव वालों ने बलूते को देना रोक दिया और महार समुदाय के खिलाफ सामाजिक बहिष्कार घोषित कर दिया, क्योंकि एक महार ने गांव में अपने घर में खपरैल लगाने का साहस किया था। महोदय! ऐसी व्यवस्था जो समस्त जनता को दास बना देती है, उन्नति की भावना दबा देती है और आगे बढ़ने का रास्ता बंद कर देती है। वह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसे मेरे विचार में कोई भी विवेकशील और संवेदनशील व्यक्ति स्वीकार नहीं करेगा और न ही न्यायसंगत ठहराएगा। महोदय! इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि समस्त महार समुदाय निश्चित रूप से वतन-प्रणाली से परेशान है। किसी चुनौती की आशंका के बिना मैं अपने माननीय मित्र राजस्व मंत्री को बताना चाहता हूं कि समस्त महार समुदाय इस व्यवस्था से अत्यधिक दुखी है और इससे तुरंत छुटकारा पाने को आतुर है। मैं इन कुछ प्राथमिक टिप्पणियों के साथ सदन के समक्ष आज जो विधेयक है, उसके कुछ प्रावधानों को स्पष्ट करूंगा।

महोदय! मेरे विधेयक पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि मैं महार वतनदारों को दो भागों में विभाजित करना चाहता हूं। पहले वर्ग में वे वतनदार आते हैं,जो पूरी तरह से दुखी हैं और वतन-प्रणाली से किसी प्रकार संबंध नहीं रखना चाहते हैं। यह वर्ग तत्काल सेवा कार्य के बंधन से मुक्ति चाहता है। उनकी केवल एक ही शर्त है कि यदि वे वतन यानि सेवाकार्य के उत्तराधिकार को छोड़ दें, तब भी जो भूमि उनके कब्जे में है, उससे उन्हें वंचित नहीं किया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मैंने वर्तमान वतन अधिनियम के खंड 4 के द्वारा धारा 15 (1) में एक उपबंध जोड़ा है। इस उपबंध द्वारा मेरा सुझाव है कि वतनदार महारों का एक प्रतिनिधि संगठन अथवा अधिकांश महार कलक्टर को लिखित रूप में निवेदन करें कि वे सेवाकार्य नहीं करना चाहते हैं और अपनी भूमि का पूरा लगान देना चाहते हैं, तो कलक्टर को उन्हें सेवाकार्य की बाध्यता से मुक्ति देनी चाहिए। इस उपबंध का यही अर्थ है। सर्वप्रथम, मैं बताना चाहूंगा कि इस उपबंध का सिद्धांत नया नहीं है। यह सिद्धांत बड़ा पुराना है, जिससे सरकार परिचित है और जिसे सरकार ने स्वीकार किया है तथा अनेक अवसरों पर उसका पालन किया है। महोदय! इस सदन अथवा कम से कम सदन के अधिकांश माननीय सदस्यों को मालूम होगा कि इस देश में ब्रिटिश शासन की स्थापना से पूर्व गांवों में बारह प्रकार के सेवादार होते थे, जिन्हें बलूतेदार कहा जाता था। जब ब्रिटिश सरकार ने इस देश के प्रशासन की बागडोर संभाली, उन्होंने इन बारह अधिकारियों को तीन समूहों में वर्गीकृत कर दिया। एक तो वे अधिकारी थे,जिनकी सेवाओं की सरकार को आवश्यकता थी, दूसरे वे थे,जिनकी सेवाओं की केवल किसानों के लिए आवश्यकता थी और तीसरे वे थे,जिनकी दोनों को आवश्यकता थी। जिन ग्राम सेवकों की केवल किसानों को आवश्यकता थी, सरकार ने चर्चित गोर्डन समझौते के

तहत उनके वतन को रूपांतरित कर दिया, अर्थात उनके द्वारा पूरा निर्धारित राजस्व देने की सहमति पर,उन्हें अपनी भूमि पर पूरा कब्जा रखने की अनुमति दी गई। महोदय! मेरे विधेयक का उपबंध गोर्डन समझौते के सिद्धांत को मूर्तरूप देने के अलावा और कुछ नहीं है। अपने इस कथन के समर्थन में कि विधेयक का सिद्धांत नया नहीं है, मैं दूसरा जो उदाहरण देना चाहता हूं, वह यह है कि मुझे ज्ञात हुआ है कि 1923 में सरकार ने शेतसनदी वतनदारों के संबंध में एक प्रस्ताव जारी किया था। 13 अक्तूबर के उक्त प्रस्ताव संख्या 9,319 में सरकार ने यह तय किया कि सेवाकार्य नहीं करने वाले शेतसनदी वतनदारों को सेवाकार्य के बोझ से मुक्त कर दिया जाए, बशर्ते कि वे पूरे भू-राजस्व का भुगतान करने के लिए राजी हों।

महोदय! अब मैं सदन को एक हाल के उदाहरण की याद दिलाना चाहूंगा। मेरा तात्पर्य यहां जोशी विधेयक से है। जब जोशी विधेयक इस सदन में विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत किया गया, तभी यह स्पष्ट किया गया था कि जो जोशी सेवाकार्य नहीं करना चाहते हैं, उन्हें अपनी भूमि रखने की अनुमति दी जाए। मैं समझता हूं कि सरकार ने उस समय अपनी स्वेच्छा से ही विधेयक में एक उपबंध जोड़ दिया, जो गांव के जोशी समुदाय को भूमि पर कब्जा रखने की अनुमति देता है, बशर्ते कि वे पूरे भू-राजस्व का भुगतान करने को राजी हों। मेरे विधेयक का उपबंध जोशी विधेयक में पेश किए गए उपबंध से भिन्न नहीं है।

महोदय! अब मैं इस विषय पर कानूनी दृष्टि से भी तर्क देना चाहूंगा। मान लीजिए, उस उपबंध के न होने की स्थिति में एक महार वतनदार सेवाकार्य करने की बाध्यता से मुक्त होना चाहता है और मान लीजिए, सरकार अपने अधिकार का प्रयोग करके वतन को पुनः आरंभ करना चाहती है, तब सरकार क्या पुनर्ग्रहण करेगी? महोदय! मेरा निवेदन है कि सरकार केवल भू-राजस्व पुनर्ग्रहण करने की हकदार है तथा इससे अधिक और कुछ नहीं। अपने अनेक फैसलों के क्रम में बंबई उच्च न्यायालय की इनाम के संबंध में हमेशा यह मान्यता रही है कि अनुदान भू-राजस्व का होता है, भूमि का नहीं। यह बंबई उच्च न्यायालय का विचार है। महोदय! इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि साधारण तौर पर इस उपबंध को लागू किए बिना,जो महार सेवाकार्य नहीं करना चाहते हैं, सरकार उनके संबंध में अधिक से अधिक यह कर सकती है कि उन्हें अपनी भूमि पर पूरे भू-राजस्व का निर्धारण करवाने को कह सकती है, क्योंकि इनाम केवल भू-राजस्व से छुटकारे के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अनुदान में भूमि शामिल नहीं है। मैं जानता हूं. . .

सरदार जी.एन. मजूमदार: क्या महारों के संबंध में भी?

डा. भीमराव अम्बेडकर: हां, महारों के संबंध में भी। महोदय! मैं जानता हूं कि प्रिवी कौंसिल के दो फैसलों में न्यायाधीशों ने बताया था कि इस प्रकार की मान्यता को लागू करने का कोई औचित्य नहीं है। परंतु, महोदय, इन फैसलों के दिए जाने के बाद बंबई उच्च न्यायालय का भी एक फैसला है। मैं *बॉम्बे ला रिपोर्टर*-22, के पृष्ठ 275 का हवाला देता हूं, जिसमें उच्च न्यायालय ने प्रिवी कौंसिल के फैसले के बाद निर्णय लिया कि मान्यता

लागू करना सही है और जो कारण दिया गया है, वह भी काफी महत्वपूर्ण है। कारण यह है। 1852 के अधिनियम के पारित हो जाने के बाद 1854 में सरकार ने राजस्व से मुक्त भू-संपत्ति के हकदार के विषय में जांच-पड़ताल करते हुए 'पुनर्ग्रहण' शब्द के अर्थ को परिभाषित करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। मैं 1854 के प्रस्ताव संख्या 2,449 का हवाला देता हूं। प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पुनर्ग्रहण का अर्थ भूमि को वापस लेना नहीं है, अपितु निर्धारित राजस्व को पूरा वसूल करना है। बंबई उच्च न्यायालय का मत है कि इस फैसले का समादर करते हुए सरकारी अनुदान के संबंध में उनके निर्णय के अनुसार पुनर्ग्रहण का अर्थ भू-राजस्व से है, भूमि से नहीं है और यह अनुचित भी नहीं होगा। महोदय! इसलिए मैं कानूनी आधार पर भी कह सकता हूं कि महार वतनदारों से सरकार केवल भू-राजस्व पुनर्ग्रहण कर सकती है, भूमि नहीं।

सरकार शायद इस उपबंध पर वित्तीय आधार पर आपत्ति कर सकती है। इस विधेयक से पूर्व की बहस के दौरान सरकार ने स्पष्ट किया है कि यदि वतनों का रूपांतरण होता है, अर्थात यदि महारों को भू-राजस्व अदा करने पर अपनी वतन भूमि को अपने कब्जे में रखने की इजाजत दी जाती है, तो सरकार को इस स्थिति में एक वैतनिक एजेंसी को नियुक्त करना होगा और इस वैतनिक एजेंसी के पारिश्रमिक का व्यय-भार उनके खजाने पर एक अतिरिक्त बोझ होगा। महोदय! अब मेरा पहला निवेदन इस प्रकार है: मैं नहीं मानता हूं कि खजाने पर इन कारणों से कोई अतिरिक्त भार पड़ेगा। यदि महार वतन का रूपांतरण कर दिया जाए और महारों को सेवाकार्य से मुक्त कर दिया जाए तथा यदि सरकार एक वैतनिक एजेंसी नियुक्त करती है, तो भी सरकार के पास इस नई एजेंसी को भुगतान के लिए एक कोष होगा। सबसे पहले उनके पास महारों से वसूल किए गए भू-राजस्व से उपलब्ध एक कोष होगा। इसके अतिरिक्त सरकार को बलूते की वसूली का अधिकार होगा, क्योंकि सरकार के आदेश के अनुसार गांव की जनता निगरानी और सुरक्षा के बदले में भुगतान के लिए उत्तरदायी है। महोदय! मेरा निवेदन है कि इस नई वैतनिक एजेंसी के रख-रखाव के लिए इन दोनों को मिलाकर बनाया गया कोष पर्याप्त होगा। महार वतन के रूपांतरण के विचार से सरकार के भयभीत होने का एक कारण यह है कि सरकार यह मानती है कि पहले कितने ही लोग काम पर लगाने होंगे, मेरे पास सही आंकड़े नहीं हैं। लेकिन मेरा मानना है कि सरकार लगभग 64,000 महारों को बंबई प्रेसिडेंसी में काम पर लगा रही है। महोदय! मेरा निवेदन है कि नई व्यवस्था के तहत उन्हें इतनी अधिक संख्या में लोगों को काम पर लगाने की आवश्यकता नहीं होगी। इस समय उन्हें सरकार द्वारा इसलिए काम पर लगाया गया है, क्योंकि उनका खर्च किसानों पर पड़ता है। कुछ गांवों में 16 महारों को काम पर लगाया गया है। उदाहरण के तौर पर, कुछ अन्य गांवों में, जैसे नागर जिले के एक गांव में 32 महार काम पर लगे हैं। महोदय! मैं निवेदन करता हूं कि इस समय महार बहुत अधिक संख्या में काम पर लगाए

गए हैं। इस संख्या में अवश्य काफी कटौती की जा सकती है और जैसा कि मैं आशा करता हूं कि यदि कटौती होती है, तो वर्तमान संख्या का एक तिहाई पर्याप्त होगा और खजाने पर अतिरिक्त भार डाले बगैर लगान तथा बलूते से पर्याप्त पारिश्रमिक दिया जा सकेगा। मैं पूरी गंभीरता से पूछता हूं कि सरकार इस समस्त व्यय के भार को क्यों नहीं उठाती? सरकार सेवाकार्य के खर्च का भुगतान क्यों नहीं करती है? अन्य सरकारी कर्मचारियों के संबंध में सरकार ने साहसपूर्वक परिषद के समक्ष अतिरिक्त धन की मांग की है। महोदय! 1921 में सरकार ने ग्राम शिक्षकों का वेतन बढ़ाना मंजूर कर लिया। उसी वर्ष सरकार ने अधीनस्थ सेवाओं के कर्मचारियों के वेतन बढ़ाने के प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त सरकार ने तलाठियों के वेतन बढ़ाने के प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त सरकार में इन वर्गों के प्रति इतनी शक्ति, साहस और सहानुभूति है कि वह इनकी सेवाओं के पारिश्रमिक के लिए वित्तीय प्रस्ताव को परिषद के समक्ष रख सकती है, तो उसमें महारों के संबंध में यही शक्ति, साहस और सहानुभूति क्यों नहीं है? महोदय! मैं नहीं समझ पाता कि सरकार उस व्यवस्था को क्यों कायम रखे हुए है या उसमें वह क्यों भागीदार है, जो महामहिम की प्रजा के एक वर्ग को अन्य वर्गों का दास या गुलाम बनाकर रखती है। मेरा निवेदन है कि कानूनी, नैतिक अथवा वित्तीय आधार पर विधेयक की धारा 4 में मैंने जो सिद्धांत प्रतिपादित किया है, वह उचित और न्यायसंगत है।

महोदय! अब मैं महार वतनदारों के दूसरे वर्ग के विषय में चर्चा करना चाहता हूं, जो वतन प्रथा को जारी रखना चाहते हैं, जो सेवाकार्य करना चाहते हैं, बशर्ते कि उनकी शिकायतों को दूर कर दिया जाए। मैंने अपने विधेयक की धारा 6 में इन महारों के लिए एक उपबंध रखा है। इस धारा का यह उपबंध जिसे महार जनसंख्या के उस वर्ग के हितों को दृष्टिगत रखते हुए अधिनियमित करना है,जो गांवों में सेवाकार्य जारी रखना चाहते हैं, मुख्य रूप से बलूते व्यवस्था का पुनर्गठन है। मैंने सोच-समझकर 'मुख्य रूप से बलूते व्यवस्था का पुनर्गठन' शब्दों का प्रयोग किया है। यदि माननीय सदस्य अधिनियम में अधिनियमित की गई धाराओं का अध्ययन करेंगे, तो उन्हें ज्ञात होगा कि सर्वप्रथम बलूते को उपकर राशि में परिवर्तन करने के लिए एक प्रावधान है। दूसरे, उपकर राशि के साथ भू-राजस्व को वसूल करने का प्रावधान किया गया है। तीसरे, उपकर राशि को दो भागों में इस प्रकार विभाजित करने का प्रावधान है कि उसमें से एक भाग किसानों के प्रति की गई सेवाओं के लिए है और दूसरा सरकार के प्रति की गई सेवाओं के लिए। सरकार के प्रति की गई सेवाओं के लिए उपकर राशि का विभाजित भाग अनिवार्य होगा, जब कि किसानों के प्रति दी गई निजी सेवाओं के लिए उपकर राशि का विभाजित भाग वैकल्पिक होगा। वे किसान जो अपनी निजी सेवा के लिए महार को नियुक्त करना चाहते हैं, उन्हें केवल उपकर का वह अंश देना होगा, जो कि निजी सेवा के लिए निश्चित किया गया है। दूसरी

ओर यदि महार लोग किसानों की सेवा नहीं करना चाहते हैं और केवल सरकार की सेवा करना चाहते हैं, तो उपकर राशि का वह भाग जो निजी सेवाओं के लिए निर्धारित है, वे उस पर अधिकार खो देंगे।

महोदय! अब सदन यह सोच सकता है कि मैं नए प्रस्ताव रख रहा हूं। मैं जोर देकर कहना चाहता हूं कि इनमें से कोई भी प्रावधान नया नहीं है। ये वतन अधिनियम में पहले से ही विद्यमान हैं। केवल वर्तमान व्यवस्था में एक परिवर्तन है—पुनर्गठन। बलूते को उपकर राशि में परिवर्तित करने संबंधी पहला प्रावधान वतन अधिनियम की धारा 19 में पहले से ही विद्यमान है। अतः यह नया नहीं है। वर्तमान वतन अधिनियम के अंतर्गत कलक्टर को यह अधिकार है कि वह जब भी उचित समझे बलूते को उपकर राशि में परिवर्तित कर सकता है। मैं पुनः निवेदन करता हूं कि दूसरा प्रावधान कि भू-राजस्व के साथ ही उपकर की वसूली संबंधी प्रावधान भी नया नहीं है। यह पहले ही वतन अधिनियम में विद्यमान है। वतन अधिनियम की धारा 81 को देखने पर हमें ज्ञात होगा कि कलक्टर को वर्तमान अधिनियम के अधीन सभी हक, पारिश्रमिक और लाभ वसूली का यह मानकर अधिकार है कि वे बकाया भू-राजस्व हैं। अतः मेरा निवेदन है कि विधेयक की धारा 6 में कुछ नया नहीं है। मेरे विधेयक की धारा 6 में जो कुछ नया है, वह यह है कि निर्णय लेने का अधिकार कलक्टर के बजाय संबंधित पक्षों को दिया गया है। वर्तमान कानून मानता है कि ऐसे हालात उत्पन्न होंगे और तब मेरे विधेयक की धारा 6 के अंतर्गत विचाराधीन प्रावधान आवश्यक होंगे। अन्यथा, ऐसे प्रावधानों का वर्तमान कानून में कोई स्थान नहीं होता। मैं जो महसूस करता हूं वह यह है कि यद्यपि कलक्टर को भी निर्णय लेने का अधिकार है, परंतु यह आवश्यक नहीं है कि वह इस तथ्य से अवगत हो कि ऐसे हालात उत्पन्न हो गए हैं, जब उसके लिए निर्णय लेना आवश्यक हो गया है। मेरा कहना केवल यह है कि स्वयं संबंधित पक्षों को निर्णय लेने के संबंध में कलक्टर का मार्गदर्शन करना चाहिए, जिससे संबंधित पक्ष यदि चाहें कि बलूते की वसूली भू-राजस्व के साथ की जाए, तो कलक्टर को इससे ज्ञात हो जाएगा कि अपना निर्णय लेने का समय आ गया है। इसमें कुछ भी नवीन नहीं है, सिवाय इसके कि निर्णय का अधिकार कलक्टर के बजाय किसानों और महारों को हस्तांतरित हो जाएगा।

महोदय! तीसरा प्रावधान जो बूलते के दो विशेष भागों में निजी सेवाओं के लिए और दूसरा सरकारी सेवाओं के लिए विभाजित करने के संबंध में है, निस्संदेह नया है। परंतु मैं निवेदन करना चाहता हूं कि परिस्थितियों ने उसे अत्यधिक आवश्यक बना दिया है। सरकार के दृष्टिकोण के अनुसार किसान और सरकार के प्रति की गई सेवाओं के लिए बलूते संयुक्त भुगतान है। 3 मई 1899 को सरकार ने प्रस्ताव संख्या 3,074 पारित किया, जिसमें यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि किसान और सरकार के प्रति की गई सेवाओं के लिए बलूते

संयुक्त पारिश्रमिक है। अपने इस दृष्टिकोण के समर्थन में मुझे इतना अधिक पीछे जाने की आवश्यकता नहीं है। 1919 में सरकार ने सदन के समक्ष इस विषय पर उठाए गए सवाल के जवाब में जो कागजात रखे थे, उसके लिए सरकार ने सहायक सचिव के आदेश का सहारा लिया था, जिसमें इस प्रस्ताव पर स्पष्ट रूप से जोर दिया गया था कि बलूते का भुगतान केवल निजी सेवाओं के लिए ही नहीं है, सरकार के प्रति सेवाओं के लिए भी है। महोदय! अब मैं जो कहना चाहता हूं, वह यह है कि कुछ महार सरकार की तो सेवा करना चाहते हैं, परंतु किसानों की नहीं। मैं जानता हूं कि ऐसे भी किसान हैं, जो वर्तमान कानून द्वारा महारों जैसी कोई एजेंसी अपने ऊपर थोपे जाने को पसंद नहीं करते हैं। वे स्वेच्छा से जिसे चाहेंगे, उसे नियुक्त करेंगे। इसी तरह कुछ महार भी हैं, जो किसानों की सेवा नहीं करना चाहते हैं। वे स्वतंत्र निर्णय लेना चाहते हैं कि सेवा करें या न करें। परंतु वर्तमान कानून के अनुसार इस स्वतंत्रता से वे वंचित हैं। वे चाहें अथवा नहीं, सेवा कार्य के लिए बाध्य हैं। इसका कारण यह है कि बलूते संयुक्त पारिश्रमिक है और ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे यह मालूम किया जा सके कि सरकारी सेवाओं और निजी सेवाओं के लिए पारिश्रमिक के रूप में कितना बलूते है। सामाजिक प्रगति की प्रतिस्पर्द्धा के इन दिनों में किसानों और महारों के बीच रंजिश अधिक बढ़ी है और यह अधिक गहरी होती जाएगी, जब तक कि नियुक्ति की स्वतंत्रता और सेवा कार्य की स्वतंत्रता नहीं दी जाएगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसानों की निजी सेवाओं और सरकार के प्रति की गई सेवाओं के लिए देय बलूते का हिस्सा परिभाषित करना आवश्यक है। वर्तमान परिस्थितियों में यदि कोई महार सरकार के लिए सेवा कार्य नहीं करता है, तो बलूते का कोई विभाजन नहीं होने की वजह से किसान को उसे पूरे बलूते का भुगतान करना पड़ता है और इस प्रकार महार किसानों से लाभ उठाता है।

दूसरी ओर, यदि महार किसान के लिए सेवा कार्य नहीं करता है और केवल सरकार के लिए सेवा कार्य करता है, तो उसे पूरे बलूते को खोना पड़ता है। इसका कारण यह है कि सरकार यह नहीं जानती कि उसके प्रति की गई सेवाओं के लिए उसे कितने बलूते का भुगतान महार को करना है। इसे न जानने के नाम पर वह सारा भुगतान रोक लेती है और महारों का बेजा नुकसान कर देती है। अतः मेरा विचार है कि बेहतर प्रशासन और ग्रामों में शांति के लिए यह बहुत आवश्यक है कि बलूते का विभाजन किया जाए। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि यह कानूनी सिद्धांत के सर्वथा विपरीत है कि जनता के एक वर्ग के सेवा कार्य को जनता के दूसरे वर्गों पर थोपा जाए। ऐसी व्यवस्था को कायम रखना बड़ा ही नृशंसतापूर्ण है, जिसमें किसी अन्य नाई का बहिष्कार करके केवल एक विशेष नाई ही हमारी हजामत बना सके। परंतु वतन व्यवस्था ऐसी ही घृणित और नृशंस व्यवस्था है। मेरा मानना है कि सदन के वकील सदस्य जानते होंगे कि उच्च न्यायालय में ऐसा मुकदमा आया था, जिसमें एक नाई ने मुकदमा किया था कि अमुक गांव के यजमानों (किसानों) को उसके

अलावा बाहर के किसी अन्य नाई की सेवाएं प्राप्त करने का अधिकार नहीं है, चाहे वह हजामत बनाने में कुशल हो अथवा नहीं। यही बात महारों के संबंध में है। मेरे विधेयक का उद्देश्य अनुबंध से मुक्ति है। यदि किसान महारों को काम पर रखना नहीं चाहते हैं, तो उन्हें ऐसा करने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। यदि महार सेवा कार्य नहीं करना चाहते हैं, तो उनको सेवा कार्य न करने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। परंतु वर्तमान संयुक्त पारिश्रमिक व्यवस्था के अंतर्गत अनुबंध की इस स्वतंत्रता को नकार दिया गया है और वह सुलभ नहीं है। मेरी योजना में अनुबंध संबंधी इस स्वतंत्रता की व्यवस्था है, और मेरा विचार है कि कम से कम इस शताब्दी में जब कि हरेक समाज प्रतिष्ठा से अनुबंध की ओर बढ़ रहा है, हमें महारों और किसानों को अनुबंध की स्वतंत्रता देने से इंकार करके भारतीय समाज की प्रगति में बाधा नहीं डालनी चाहिए।

एक बात मैं यह कहना चाहूंगा कि जिस व्यवस्था की रूपरेखा मैंने इस विधेयक में दी है, वह पूर्ण रूप से मेरी नहीं है। इस व्यवस्था को मैंने बरार से लिया है। मध्य प्रांत तथा बरार में किसान और महारों के मध्य इसी तरह के झगड़े तथा गड़बड़ चल रही थी। दोनों पक्षों ने आंदोलन चला रखे थे। सरकार ने इस विषय में खोजबीन करके सुझाव देने के लिए एक कमेटी नियुक्त की थी। 1920 में कमेटी ने अपने सुझाव दिए और सरकार ने इस व्यवस्था को लागू किया, जिसे मैंने अपने विधेयक के प्रावधानों में मुख्य रूप से पुनः प्रस्तुत किया है। मेरा निवेदन है कि इस विधेयक के जो प्रावधान बरार कमेटी के सुझावों के परिणामस्वरूप हैं, यदि वे बरार के लिए समुचित हैं तो मेरा विचार है कि वे बंबई प्रेसिडेंसी के लिए अनुचित नहीं हो सकते, क्योंकि बरार व्यवस्था बंबई व्यवस्था की प्रतिकृति है। यहां तक कि बरार कमेटी की पूरी रिपोर्ट बंबई सरकार के प्रस्तावों पर आधारित है। विधेयक के ये प्रमुख प्रावधान हैं।

विधेयक में एक प्रावधान है, जिसकी संभवतः संक्षिप्त व्याख्या किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रावधान के अंतर्गत वतन अधिनियम की धारा 9 में निर्दिष्ट परिर्वतन प्रस्तुत किए गए हैं। मेरा अभिप्राय मेरे विधेयक के खंड 2 और खंड 3 से है। वतन अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत यह कहा गया है कि वतन भूमि को वतन परिवार से बाहर किसी अन्य को हस्तांतरित नहीं किया जाएगा। धारा 9 के अंतर्गत भी एक प्रावधान है, जिसमें कलक्टर को गैर-वतनदार को हस्तांतरित की गई किसी वतनदार की भूमि वापिस लेने का अधिकार दिया गया है। परंतु धारा 9 के अंतर्गत हस्तांतरण को अमान्य घोषित करना या न करना और ऐसी हस्तांतरित भूमि को वापिस लेना या न लेना पूर्ण रूप से कलक्टर के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। कलक्टर धारा 9 के अंतर्गत दिए गए अपने निर्णय के अधिकार को हमेशा वतनदार के पक्ष में प्रयोग करना पसंद नहीं करता। इससे कोई विशेष कठिनाई न होती हो, जब कि ऐसी हस्तांतरित भूमि वतन भूमि होते हुए भी स्थानापत्र रूप से काम करने

वाले किसी वतनदार को पारिश्रमिक के रूप में नहीं दी गई है। महोदय! परंतु मैं निवेदन करता हूं कि यदि किसी स्थानापन्न रूप में काम करने वाले व्यक्ति से इस स्पष्ट शर्त पर सरकार के लिए सेवा करने को कहा गया है कि उसे उसके कार्यों के पारिश्रमिक के बतौर दी गई उसकी वतन भूमि सदा उसके अधिकार में रहेगी, तो मेरे विचार से सरकार को ऐसी वतन भूमि वापस ले लेनी चाहिए, जो स्थानापन्न रूप में काम करने वाले व्यक्ति के हाथ से निकल चुकी है। मेरे द्वारा प्रस्तुत की गई धाराएं कलक्टर को उस वतन भूमि के हस्तांतरण को अमान्य घोषित करने के लिए बाध्य करती है, जो किसी स्थानापन्न व्यक्ति को पारिश्रमिक के रूप में दी गई है। इन धाराओं को प्रस्तुत करने में मैंने वतन भूमि को दो वर्गों में सुपरिचित विभाजन को आधार बनाया है, वह भूमि जो पारिश्रमिक के रूप में दी जाती है और दूसरी वह जो पारिश्रमिक के रूप में नहीं दी जाती । इस तथ्य के फलस्वरूप कि स्थानापन्न व्यक्ति को पारिश्रमिक के उद्देश्य से तत्काल ही भूमि का होना आवश्यक नहीं है। पारिश्रमिक के रूप में भूमि न दिए जाने के मामले में हो सकता है कि कलक्टर वतनदार के पक्ष में अपना निर्णय नहीं लेता है और हस्तांतरण को अमान्य घोषित कर देता है, तो शिकायत की अधिक गुंजाइश नहीं है। परंतु जब भूमि का स्पष्ट रूप से पारिश्रमिक के लिए आरक्षण किया गया है, तो मेरा विचार है कि कलक्टर को इस संबंध में निर्णय की स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए और उसे ऐसे सभी मामलों में हस्तांतरण को अमान्य घोषित करना चाहिए।

महोदय! मैं स्वीकार करता हूं कि इस विधेयक का प्रारूप तैयार करते समय मुझ से इसमें दो खामियां रह गई हैं और इसकी मैं स्वीकारोक्ति करता हूं, क्योंकि मैं बहुत न्यायसंगत रहना चाहता हूं। महारों के लाभ के लिए,मैं किसानों पर अतिरिक्त बोझ नहीं डालना चाहता हूं। सीधी सी बात यह है कि मैं वतन प्रथा का विरोधी हूं। मैं महारों की वतन प्रथा को समाप्त करने के लगातार प्रयास करता रहा हूं, यद्यपि मैं यह जानता हूं कि इससे निकट भविष्य में महारों को भारी क्षति होगी। परंतु मुझे पूरा विश्वास है कि वतन के ये बंधन ही उनके पिछड़ेपन के प्रमुख कारण हैं। मैं इस विषय में बहुत दूर की सोच रहा हूं और इसलिए मैं महारों की स्थिति किसानों से अच्छी बनाने के लिए कोई खास प्रयत्न नहीं कर रहा हूं और न ही कोई ऐसे प्रयत्न कर रहा हूं जिससे महारों को किसानों की कीमत पर लाभ मिले। सदन के माननीय सदस्य देखेंगे कि बलूते की व्यवस्था को मैंने अपने विधेयक में जिस तरह सुव्यवस्थित किया है, उससे किसानों पर कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ेगा। मैंने स्पष्ट रूप से 'समान' शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ है कि महारों को पारिश्रमिक देने के लिए किसानों पर कोई अतिरिक्त बोझ नहीं डाला जाएगा। इससे ज्ञात होगा कि मैं कितना न्यायसंगत रहना चाहता हूं। इसलिए मैं स्वीकार करता हूं कि मेरे विधेयक में दो खामियां हैं। उनमें से एक धारा 9 (विधेयक के खंड 2 और खंड 3 के साथ) को इस तरह बदलना है, जिससे कलक्टर के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह भूमि को वापस ले। उसमें एक प्रावधान होना चाहिए,

जिससे कलक्टर बेदखल किए गए गैर वतनदार को हरजाना दिलवा सके। मैं स्वीकार करता हूं कि भूमि किसी को भी विश्वसनीय ढंग से और पूर्ण प्रतिफल के साथ हस्तांतरित की गई होगी। यह समझने की बात है कि जब किसी हस्तांतरी को भूमि से वंचित किया जाता है, तो उसे हरजाना देना चाहिए। जब मैंने पहले इस विधेयक का प्रारूप तैयार किया था, तो उसमें मैंने व्यवस्था की थी कि कलक्टर को गैर-वतनदार की भरपाई करने का अधिकार होना चाहिए, परंतु कुछ सरकारी सदस्यों के सुझाव पर मैंने उसे वापस ले लिया। परंतु मैं प्रवर समिति में उस संशोधन के लिए तैयार हूं। दूसरे, मुझे यह भी व्यवस्था करनी चाहिए थी कि महारों को यह निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो कि वे किसानों की सेवा नहीं करेंगे, वैसे ही किसानों को यह निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे महारों को सेवा में नहीं रखेंगे। संबंधित प्रवर समिति में जाने पर, मैं विधेयक में इस संशोधन के लिए भी तैयार हूं। मेरे विचार से विधेयक में ये ही सब बातें हैं, जिनकी व्याख्या होनी चाहिए।

अपनी बात समाप्त करने से पूर्व मुझे माननीय राजस्व मंत्री को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस विधेयक को संपूर्ण महार समुदाय का समर्थन प्राप्त है। इस विषय पर कोई मतभेद नहीं है। वास्तव में, इस विधेयक पर कोई मतभेद हो ही नहीं सकता है और इसके सही कारण हैं। यह विधेयक कोई अनिवार्य विधेयक नहीं है। यह विधेयक पूरी तौर पर विवेक पर आधारित है। अगर महार वतनदार यह नहीं चाहते हैं कि इस विधेयक की धाराओं को क्रियान्वित किया जाए, उन्हें क्रियान्वित नहीं किया जाएगा। स्थिति जैसी है, वैसी ही रहने दी जाएगी। परिवर्तन तभी होगा, जब महार उसके लिए जरूरत महसूस करेंगे। इसे उनकी इच्छा के विरुद्ध उन पर थोपा नहीं जाएगा।

श्री पी.आर. चिकोडी: यह एकपक्षीय व्यवस्था है। इसे द्विपक्षीय होना चाहिए।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं जानता हूं कि मुझे वह संशोधन करना चाहिए, जो निकाल दिया गया है, लेकिन वह केवल प्रवर समिति में किया जाएगा। मेरा मानना है कि स्वयं महारों की ओर से इस विधेयक का विरोध नहीं हो सकता, क्योंकि विधेयक अनिवार्य नहीं है और यह उन्हें इसका लाभ उठाने को विवश नहीं करता। इसमें केवल उनके हितों के लिए निर्दिष्ट प्रावधान हैं, जिनका यदि वे चाहें तो लाभ उठा सकते हैं। इसलिए महारों ने इस विधेयक का विरोध नहीं किया है। उनकी ओर से वस्तुत: कोई विरोध हो भी नहीं सकता है। केवल यही नहीं कि उन्होंने विधेयक का विरोध नहीं किया, अपितु उन्होंने उसका हार्दिक स्वागत किया है। जब से मैं इस विधेयक को तैयार कर रहा हूं, मैंने किसी बात को महारों से छिपाया नहीं है। मैंने इस विधेयक के सिद्धांतों और प्रावधानों को संपूर्ण महार समुदाय के समक्ष अनेक सभाओं में प्रस्तुत किया है, जिससे कि वे इस विधेयक के संबंध में अपना मत अभिव्यक्त कर सकें और मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि संपूर्ण विधेयक और उसमें सम्मिलित सिद्धांत उनके द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिए गए हैं। इस कारण से कि सरकार को यह कहने

का कोई अवसर न मिले कि ये सभाएं मेरे द्वारा विधेयक का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से संचालित की गई थीं, मैं उन अधिकाश सभाओं से अनुपस्थित रहा, जो कि अन्य समुदायों के सदस्यों की अध्यक्षता में आयोजित की गई थीं। मेरे बिल्कुल पास बैठे मेरे माननीय मित्र श्री भोले इस बात पर मेरा समर्थन करेंगे कि बंबई में 5,000 से अधिक महार वतनदारों की सभा उनकी अध्यक्षता में हुई थी। हां, यह सच है कि कुछ लोगों ने महारों को यह कहकर कि इस विधेयक द्वारा उन्हें हानि हो सकती है, मूर्ख बनाने का प्रयास किया। लेकिन मैं मानता हूं कि माननीय सदस्य मेरे कथन की पुष्टि करेंगे कि महार समुदाय सर्वसम्मति से इस विधेयक का समर्थन करेगा। इस संबंध में मैं अपने माननीय मित्र श्री राजमा लखीचंद का उल्लेख करता हूं। उनकी अध्यक्षता में जलगांव में खानदेश के महार समुदाय के वतनदारों की सभा हुई थी, जहां मैने उन्हें इस विधेयक के प्रावधानों और सिद्धातों के बारे में बताया था। सामान्य अनुमान से लगभग 3,000 महार समुदाय के लोग सभा में उपस्थित थे। सभा भवन खचाखच भरा था और जब प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, तो किसी भी महार ने उसका विरोध नहीं किया। मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री थोराट इसकी पुष्टि करेंगे कि ऐसी ही एक सभा अहमदनगर जिले में भी हुई थी। वहां भी विधेयक को पूर्ण समर्थन मिला था। भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुई छोटी-मोटी सभाओं का उल्लेख करना मैं आवश्यक नहीं समझता हूं। मैं सदन को विश्वास दिला सकता हूं कि महार समुदाय इस विधेयक को पारित कराने के लिए कृतसंकल्प है, और मैं अपने माननीय मित्रों को बता सकता हूं कि यदि सरकार ने वित्त सुविधा, या किसी अन्य आधार पर इन लोगों को मुक्ति देने से इंकार किया, तो राजस्व विभाग और महार समुदाय के मध्य युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। यदि यह विधेयक पारित नहीं होता है, तो मैं भी परिषद में नहीं रहूंगा। मैं अपना शेष समय महार समुदाय को पूर्ण हड़ताल करने के लिए संगठित करने में व्यतीत करूंगा और माननीय राजस्व मंत्री को महसूस कराऊंगा कि इस विधेयक के सिद्धांत महार समुदाय के कल्याण के लिए अति आवश्यक हैं। मैं अपने अंतर्मन से कह रहा हूं, मैं कुछ भी छिपाना नहीं चाहता हूं। मैं अपने उद्देश्य के विषय में पूरी गंभीरता से कहना चाहता हूं। महोदय! मैं दलित वर्ग के लिए पिछले 3 वर्षों से हर संभव कोशिश कर रहा हूं। मेरे मार्ग में अनेक कठिनाइयां आईं और मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि महार समुदाय की प्रगति के लिए जिस सबसे बड़ी कठिनाई का मुझे सामना करना पड़ेगा, वह संभवत: वतन से संबंधित होगी। मुझे प्रसन्नता है कि महार समुदाय भी भली प्रकार समझता है कि उनकी प्रगति के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा वतन ही है। अत: मैं आशा करता हूं कि यह परिषद इस विधेयक को सर्वसम्मति से पारित कर देगी। इन शब्दों के साथ मैं विधेयक का पहला वाचन प्रस्तुत करता हूं।

इस पर प्रश्न किया गया।

II*

(बहस पुनः आरंभ)

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! वास्तव में इस सदन के गैर सरकारी सदस्यों द्वारा इस कार्यवाही में पूर्ण समर्थन देने के लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं। बहस से यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि इस विधेयक का विरोध करने वाले इसके विरुद्ध कोई ठोस तर्क प्रस्तुत कर सके हैं। मैं नहीं समझता कि मेरे लिए इस समय उनके द्वारा उठाई गई आपत्तियों का विस्तार से जवाब देना आवश्यक है। उन्होंने जो भी मुद्दे इस सदन के समक्ष उठाए हैं, उन्हें हम पूर्वाग्रह से ग्रस्त मुद्दे कह सकते हैं और ये मुद्दे ऐसे हैं, जिनका स्वयं विधेयक में निहित लाभों से कोई संबंध नहीं है। महोदय! मैंने अपने आरंभिक भाषण में स्वीकार किया है कि विधेयक में निस्संदेह कुछ खामियां हैं, जैसा कि मेरे सामने बैठे कुछ माननीय सदस्यों ने उल्लेख किया है। मैंने अपने आरंभिक भाषण में स्पष्ट रूप से कहा था कि मैं प्रवर समिति को पूरी स्वतंत्रता देता हूं कि वह जो भी संशोधन करना चाहे, कर सकती है। इस विषय में मुझे कोई आपत्ति नहीं है. . .

एक माननीय सदस्य: क्या सिद्धांतों में भी संशोधनों का?

डा. भीमराव अम्बेडकर : प्रवर समिति जो भी संशोधन करना चाहे, यहां तक कि सिद्धांतों में भी, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

सरदार जी. एन. मजूमदार: क्या सिद्धांत में भी?

डा. भीमराव अम्बेडकर: हां, मैं इस विधेयक को अधिकारियों की दया पर छोड़ने की अपेक्षा, सदन के गैर सरकारी सदस्यों द्वारा गठित प्रवर समिति पर छोड़ना चाहूंगा। ऐसा करने के लिए मैं तैयार हूं। विधेयक का परिणाम चाहे जो कुछ भी हो, परंतु मैं सदन के गैर सरकारी सदस्यों की प्रवर समिति पर इसे छोड़ता हूं। महोदय! मैं नहीं समझता कि इस प्रक्रिया से माननीय राजस्व मंत्री को कोई असुविधा होगी। मैं इस विधेयक में अधिकारियों के खिलाफ कोई दोषारोपण अथवा शिकायतें शामिल नहीं करना चाहता हूं। परंतु मैं यह कहने के लिए बाध्य हूं कि उन्होंने इस विषय के प्रति उतनी तत्परता, महत्व और ध्यान नहीं दिया है, जितना कि दलित वर्ग ने दिया है। मुझे याद है कि इस सदन में फरवरी 1923 को विशेष रूप से विधेयक के कुछ प्रावधानों पर विचार करने के लिए प्रस्ताव रखा गया था। सदन के गैर सरकारी सदस्यों से पूरे प्रस्ताव को अत्यधिक समर्थन मिला था। माननीय राजस्व मंत्री ने प्रस्तावक सदस्य को स्पष्ट रूप से इस शर्त पर प्रस्ताव वापस लेने को तैयार कर लिया था कि वह इस संबंध में तत्काल जांच-पड़ताल शुरू करेंगे। तब से चार या पांच वर्ष बीत गए हैं, परंतु कोई भी जांच-पड़ताल नहीं की गई है। महोदय! 1925 में मेरे पूर्ववर्ती

*_बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स_, खंड 23, पृ. 791-93, 4 अगस्त 1928

ने पुनः एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, जिसमें वही मुद्दे उठाए गए थे, जो इस विधेयक में हैं। एक बार फिर माननीय प्रस्तावक को इस स्पष्ट शर्त पर सरकार द्वारा प्रस्ताव वापस लेने को राजी कर लिया गया था कि इस मामले में वह स्वयं जांच-पड़ताल करेंगे। परंतु कुछ नहीं किया गया। मेरे विचार से मेरे मित्र माननीय राजस्व मंत्री को यह कहना शोभा नहीं देता है कि विधेयक को अचानक लाए जाने से वह आश्चर्य में पड़ गए हैं। इस विधेयक के प्रावधान, अर्थात वे मांगें जो दलित वर्ग वतन के संबंध में उठा रहे हैं, उनके सामने दीर्घकाल से चली आ रही हैं। यदि वह सचमुच ही अपने आपको तथ्य और आंकड़ों से लैस करना और मेरे सुझावों के स्थान पर अपने सुझाव देना चाहते हैं,तो महोदय! मेरा निवेदन है कि उनके पास ऐसा करने के लिए काफी समय था। उन्होंने उस अवसर का लाभ नहीं उठाया। फिर भी, मैं उन्हें एक अवसर और देने को तैयार हूं और मैं यह भी कहना चाहूंगा कि यदि विधेयक प्रवर समिति के सुपुर्द किया जाता है तो मैं प्रस्ताव रखने को तैयार हूं, ताकि प्रवर समिति इस रिपोर्ट को अगले जून में सदन के सामने रखे। इससे इस बीच मेरे माननीय मित्र को जांच-पड़ताल करने तथा अपनी पसंद के उन व्यक्तियों को, जिन्हें वह विशेषज्ञ समझते हैं, एक पृथक समिति नियुक्त करने के लिए नौ-दस महीने का समय मिल जाएगा। इस तरह वह अपने सुझाव तैयार कर सकेंगे और प्रवर समिति के सामने उन्हें संशोधन के लिए प्रस्तुत कर सकेंगे। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है और यदि मेरे माननीय मित्र इसे स्वीकार करते हैं, तो मैं पूरी तौर पर इस प्रक्रिया को मानूंगा। अब यह उन पर है कि वह क्या कहना चाहते हैं। परंतु जैसा कि मैंने शुरू में ही कहा था कि मैं इस विधेयक को सदन द्वारा गठित प्रवर समिति को सौंपने को तैयार हूं, मैं इसे अधिकारियों के भरोसे छोड़ना नहीं चाहता हूं। महोदय! अपने जवाब में मैं यही कहना चाहता हूं।

* * * * *

बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम में संशोधन हेतु 1937 का विधेयक संख्या 23 *

निम्नांकित विधेयक, जिसे विधान सभा की 17 सितंबर 1937 की बैठक में विधान सभा सदस्य डा. भीमराव अम्बेडकर को प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई, बंबई विधान सभा के नियम 20 के अधीन प्रकाशित किया जाता है :

1937 का विधेयक संख्या 23

1874 के बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम में संशोधन हेतु विधेयक

जब कि बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम, 1874 (बंबई 3, 1874) में संशोधन

* *बोंबे गवर्नमेंट गजट*, भाग 5, पृ. 101-05, 21 अक्तूबर 1937

समीचीन है, वह अब इस प्रकार परिपालित होगा :

1. *संक्षिप्त शीर्षक* – इस विधेयक को बंबई वंशानुगत कार्य (संशोधन) अधिनियम, 1937 कहा जाएगा।
2. *बंबई 3, 1874 की धारा 15 में संशोधन* – धारा 15, खंड 1 अब इस प्रकार पढ़ा जाएगा :

15. खंड 1 – जब कोई वतनदार या वतन परिवार के सदस्य का वतन पर अधिकार होता है, कलक्टर को लिखित रूप में निवेदन करता है कि उसे सेवाकार्य के दायित्व से स्थायी रूप से मुक्त किया जाए, तो कलक्टर यदि आश्वस्त है कि उसका आवेदन प्रामाणिक है,तो उसे सेवाकार्य से मुक्ति दे देगा।

खंड 2 – जिस दिन से उसे सेवाकार्य के दायित्व से मुक्त किया जाएगा,वह वतनदार नहीं रहेगा और वतन संबंधी किसी भी अधिकार का हकदार नहीं होगा सिवाए उसके जैसा कि खंड 3 में दिया गया है।

खंड 3 – हरेक वतनदार जो इस धारा के खंड 1 और खंड 2 के अंतर्गत सेवाकार्य के दायित्व से मुक्त किया गया है और जो पूरा भुगतान करने के लिए राजी है, उसे उस भूमि को रखने का अधिकार है, जिस पर उसका वतनदार की हैसियत से अधिकार था और उसे बंबई भू-राजस्व संहिता की धारा 3 (16) के अंतर्गत उस भूमि का दखलकार माना जाएगा।

खंड 4 – कलक्टर के लिए यह विधिसम्मत होगा कि सेवाकार्य से मुक्त आवेदक को भूमि का उसका भाग दे दे, यदि वह भूमि एक से अधिक वतनदार या वतन परिवार के संयुक्त अधिकार में है।

खंड 5 – सेवाकार्य से मुक्त आवेदक को जो भूमि रखने की अनुमति दी गई है, उसे स्थानापन्न वतनदार को पारिश्रमिक के रूप में दी गई वतन भूमि नहीं माना जाएगा।

3. खंड 2 बदलकर खंड 6 हो जाएगा।

4. खंड 3 बदलकर खंड 7 हो जाएगा।

5. खंड 4 में 'संयुक्त मालिकों की पूरी संख्या' शब्दों के बाद 'एक या ऐसे कुछ संयुक्त मालिक' शब्द जोड़े जाएंगे। खंड 4 को खंड 8 कहा जाएगा।

6. *1874 के बंबई 3 की धारा 16 का संशोधन* – धारा 16 में 'मौलिक' शब्द के स्थान पर 'मुख्यत:' होगा।

7. *1874 के बंबई 3 की धारा 19 में संशोधन* – धारा 19 में 'यह निर्णय लेना कि भुगतान उपज के रूप में या रुपये में किया जाएगा' शब्द हटा दिए जाएंगे।

8. *1874 के बंबई 3 की धारा 19 के बाद नई धाराएं 19 क, 19 ख, 19 ग और 19 घ को शामिल करना* – धारा 19 के बाद निम्नलिखित धाराएं शामिल की जाएंगी।

19 क. कलक्टर द्वारा उपज के रूप में वसूली के अधिकार को समान धन उपकर के रूप में परिवर्तित करना – जब वतनदारों के प्रतिनिधियों का पूरा संगठन अथवा उनमें से अधिकांश जिनको वतन की वसूली का अधिकार उपज के रूप में है, कलक्टर से उसको धन उपकर के रूप में बदलने का निवेदन करते हैं, तो कलक्टर उसे समान धन उपकर में बदल देगा।

19 ख. कलक्टर द्वारा धन उपकर की वसूली और भुगतान – जब उपज के रूप में वसूली के अधिकार को समान धन उपकर में परिवर्तित कर दिया गया है, तो वतनदारों के प्रतिनिधियों का पूरा संगठन अथवा उनमें से संबंधित अधिसंख्य प्रतिनिधि कलक्टर से आवेदन कर सकते हैं कि उनसे वसूली की जाए, जिन्हें भुगतान करना है। तब कलक्टर भू-राजस्व के साथ तथा उसके एक भाग के रूप में वसूली करेगा और यह निर्देश देगा कि इसे सरकारी खजाने से वतनदारों को भुगतान किया जाए।

19 ग. वतनदारों के आवेदन पर कलक्टर यह निर्णय लेगा कि सरकार की सेवाओं के लिए तथा किसानों की सेवाओं के लिए कितनी राशि देना वाजिब है – उपज के रूप में वसूली के अधिकार को सरकार और किसानों, दोनों के प्रति की गई सेवाओं के लिए सम्मिलित प्रतिलाभ मान लिया जाए, तो वतनदारों के प्रतिनिधियों का पूरा संगठन अथवा उनमें से अधिकांश जिनको उपज के रूप में वसूली का अधिकार धन उपकर में परिवर्तित हो चुका है, वे कलक्टर से आवेदन कर सकते हैं कि वह निर्णय करे कि उनकी सरकार के प्रति सेवाओं के लिए और किसानों के प्रति सेवाओं के लिए धन उपकर की कितनी राशि बकाया है, तो कलक्टर यह निर्णय करेगा। कलक्टर का दिया गया निर्णय अंतिम माना जाएगा।

19 घ. वतनदारों को किसानों की किसी भी सेवा को करने से इंकार करने का विकल्प – वतनदारों का पूरा संगठन अथवा उनमें से अधिकांश जिन्होंने उस निर्णय की मांग की है, जिसका उल्लेख खंड 19 ग में है, उन्हें किसानों की सेवाकार्य करने से इंकार की छूट है। बशर्ते कि वे इसके लिए कलक्टर को अपना निर्णय लिखित रूप में भेजें। यदि इस विकल्प का वतनदार प्रयोग करते हैं, तो किसानों के प्रति सेवाकार्य के लिए मिलने वाला धन उपकर का भाग उन्हें नहीं मिलेगा।

9. *1874 के बंबई 3 की धारा 21 में संशोधन* – धारा 21 में 'ऐसी अवधि' शब्दों के स्थान पर '10 वर्ष की अवधि' शब्दों का प्रयोग किया जाएगा।

10. *1874 के बंबई 3 की धारा 83 में संशोधन* – धारा 83 को अब इस प्रकार पढ़ा जाएगा:

83. धारा 18 की व्यवस्था को छोड़कर, सरकार को किसी भी वंशानुगत कार्य के कर्तव्यों से संबंधित कानून बनाने का अधिकार होगा। बशर्ते कि इस धारा के अंतर्गत

बनाए गए कानून अगला अधिवेशन शुरू होने से कम से कम एक माह पूर्व विधान-मंडल में प्रस्तुत किए जाएंगे और ये विधान-मंडल के प्रस्ताव द्वारा रद्द या परिवर्तित किए जाएंगे। यदि किसी कानून में परिवर्तन किया जाता है तो सरकार उसे स्वीकार करेगी और तदनुसार कानून को पुनः प्रकाशित करेगी अथवा यदि विधान-मंडल कानून को रद्द करता है, तो सरकार कानून को रद्द करेगी।

उद्देश्य और कारणों से संबंधित विवरण

विधेयक में तीन उद्देश्य निहित हैं। पहला, वतनदार की इच्छा पर वतन को परिवर्तित करने की अनुमति, दूसरा, वतनदारों के कुछ वर्गों को पारिश्रमिक के भुगतान की अधिक सुरक्षा व्यवस्था और तीसरा उद्देश्य वतनदारों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की कानून द्वारा विशेष व्याख्या की व्यवस्था होना।

धारा 2-4 प्रथम उद्देश्य को प्रभावशाली बनाने के लिए हैं। धारा 7-9 का आशय दूसरे उद्देश्य को कार्यान्वित करना है और धारा 10 विधेयक के तीसरे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए है -

(1) धारा 2 वतनदार को जो अपने वतन के भाग के रूप में भूमि पर अपना अधिकार खोए बिना सेवाकार्य के दायित्व से मुक्त होना चाहता है, ऐसा करने की अनुमति देती है। इस धारा से ऐसे वतनदार को अपनी भूमि रखने की अनुमति मिलती है। इससे सरकार को कोई हानि नहीं होती है, क्योंकि सरकार को उससे निर्धारित धन बरामद करने का अधिकार है।

(2) धारा 3 और 4 विधिवत हैं।

(3) धारा 5 द्वारा यह संभव है कि वतन के संयुक्त मालिकों में से एक या कुछ सेवाकार्य से मुक्ति के लिए आवेदन कर सकते हैं।

(4) धारा 6 का उद्देश्य 'मुख्यतः' शब्द के प्रयोग द्वारा यह ठीक-ठीक परिभाषित करना है कि समाज की सेवा के लिए उत्तरदायी कौन है।

(5) धारा 7 में यह व्यवस्था है कि कलक्टर को यह तय करने की स्वतंत्रता नहीं होगी कि वसूली उपज के रूप में की जाए या रुपयों में।

(6) धारा 8 अधिनियम में चार और नई धाराओं को जोड़ती है - धारा 19 (क) वतनदारों को उपज के रूप में भुगतान को परिवर्तित करके रुपयों में भुगतान करने के लिए कलक्टर को आवेदन करने का अधिकार देती है और कलक्टर से समान राशि में परिवर्तित करने की अपेक्षा की जाती है।

धारा 19 ख कलक्टर को बाध्य करती है कि यदि वतनदार चाहे तो वह धन उपकर की उगाही राजस्व के भाग के रूप में कर सकता है।

धारा 19 ग कलक्टर को उस वतनदार के संबंध में जिसका सरकार और किसानों को

दी गई सेवाओं के लिए पारिश्रमिक का भुगतान संयुक्त होता है, निर्णय लेने का अधिकार देती है कि कितना पारिश्रमिक सरकार की सेवाओं से है और कितना किसानों की।

धारा 19 घ वतनदारों को किसान की सेवा के दायित्व से मुक्त करने की छूट देती है, जिसके लिए उन्हें किसानों की सेवाओं के लिए पारिश्रमिक का वह अंश छोड़ना होगा, जिसका निर्धारण धारा 19 ग के तहत कलक्टर द्वारा किया गया है।

(7) धारा 9 वतन के लाभ के संबंध में कलक्टर द्वारा धारा 21 के तहत किए गए किसी भी समझौते के लिए अधिकतम समय 10 वर्ष निर्धारित करती है।

(8) धारा 10 की केवल यह अपेक्षा है कि कर्तव्यों का पालन निर्धारित कानूनों के अनुसार किया जाए।

(हस्ताक्षर) भीमराव अम्बेडकर
एच.के. चेनानी
सचिव, बंबई विधान सभा

पूना, 18 अक्तूबर 1937

* * * * *

वंशानुगत कार्य अधिनियम संशोधन विधेयक संख्या 23, 1937 *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : महोदय! मैं 1874 के बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम 3 में संशोधन के लिए विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूं।

विधेयक में तीन उद्देश्य निहित हैं। पहला, वतनदार की इच्छा पर वतन का परिवर्तन करने की अनुमति, दूसरा, वतनदारों के कुछ वर्गों को पारिश्रमिक के भुगतान की अधिक सुरक्षा-व्यवस्था और तीसरा उद्देश्य वतनदारों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की कानून द्वारा विशेष व्याख्या की व्यवस्था होना।

धारा 2-4 प्रथम उद्देश्य को प्रभावशाली बनाने के लिए हैं। धारा 7-9 का आशय दूसरे को कार्यान्वित करना है और धारा 10 विधेयक के तीसरे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए है।

धारा 2 वतनदार को जो अपने वतन के भाग के रूप में भूमि पर अपना अधिकार खोए बिना सेवाकार्य के दायित्व से मुक्त होना चाहता है, ऐसा करने की अनुमति देती है। इस धारा से ऐसे वतनदार को अपनी भूमि रखने की अनुमति मिलती है। धारा 3 और 4 विधिवत हैं।

धारा 5 द्वारा यह संभव है कि वतन के संयुक्त मालिकों में से एक या कुछ सेवाकार्य से मुक्ति के लिए आवेदन कर सकते हैं।

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 1, पृ. 1091-92, 17 सितंबर 1937। डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित विधेयक, पृ. 105-109 पर पुन: प्रस्तुत।

धारा 6 का उद्देश्य 'मुख्यत:' शब्द के प्रयोग द्वारा यह ठीक-ठीक परिभाषित करना है कि समाज की सेवा के लिए उत्तरदायी कौन है।

धारा 7 में यह व्यवस्था है कि कलक्टर को यह तय करने की स्वतंत्रता नहीं होगी कि वसूली उपज के रूप में की जाए या रुपयों में।

धारा 8 अधिनियम में चार और नई धाराएं जोड़ती है।

धारा 19 क वतनदारों को उपज के रूप में भुगतान को परिवर्तित करके रुपयों में भुगतान करने के लिए कलक्टर को आवेदन करने का अधिकार देती है और कलक्टर से भुगतान समान राशि में परिवर्तित करने की अपेक्षा की जाती है।

धारा 19 ख कलक्टर को बाध्य करती है कि वतनदार चाहे तो वह धन उपकर की उगाही राजस्व के भाग के रूप में कर सकता है।

धारा 19 ग कलक्टर को उस वतनदार के संबंध में जिसका सरकार और किसानों को दी गई सेवाओं के लिए पारिश्रमिक का भुगतान संयुक्त होता है, निर्णय लेने का अधिकार देती है कि कितना पारिश्रमिक सरकार की सेवाओं से है और कितना किसानों की।

अनुमति दी गई।

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मैं विधेयक प्रस्तुत करता हूं।

माननीय अध्यक्ष: विधेयक प्रस्तुत हुआ।

7
1937 के खोती व्यवस्था के उन्मूलन हेतु विधेयक संख्या 20 *

निम्नांकित विधेयक जिसे बंबई विधान सभा की 17 सितंबर 1937 की बैठक में विधायक डा. भीमराव अम्बेडकर को प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई है, उसे बंबई विधान सभा के नियम 20 के अधीन प्रकाशित किया जाता है।

1937 का विधेयक संख्या 20

खोती व्यवस्था के उन्मूलन हेतु विधेयक

जब कि यह उचित और आवश्यक है कि कृषि से राजस्व प्राप्त करने की जो व्यवस्था है, जिसे खोती व्यवस्था कहा जाता है, उसका उन्मूलन होना चाहिए और रैयतवादी व्यवस्था के सिद्धांतों को लागू करना चाहिए, क्योंकि यह उस क्षेत्र के लिए अधिक लाभप्रद है, जहां खोती व्यवस्था चालू है। एतद् द्वारा इसे इस प्रकार अधिनियमित किया गया है :

1. संक्षिप्त शीर्षक और विस्तार – इस अधिनियम को *खोती उन्मूलन अधिनियम, 1937* कहा जाएगा। इसे पूरी बंबई प्रेसिडेंसी में लागू किया जाएगा।

खोती व्यवस्था का उन्मूलन – इस अधिनियम के पारित होने के बाद सरकार के लिए सरकारी गजट में अधिसूचना द्वारा यह घोषित करना विधिसम्मत होगा कि अमुक क्षेत्र के अमुक खोत अथवा खोत लोगों के खोती व्यवस्था के अंतर्गत मिलने वाले अधिकारों को उस तिथि से समाप्त किया जाता है, जिसका उल्लेख उल्लिखित अधिसूचना से किया जा सकता है।

3. *अधिसूचना के बाद खोत को खोत के रूप में काम करने का अधिकार नहीं होगा और सरकार उसे काम देने अथवा उसे खोत के रूप में मान्यता देने के लिए बाध्य नहीं होगी–* ऐसी अधिसूचना जारी होने की तिथि से प्रचलित कानून, प्रथा और दस्तूर, *जिनके अनुसार खोत को खोत के रूप में काम करने का अधिकार है या जो सरकार को* खोत को काम

---

* *बोंबे गवर्नमेंट गजट*, भाग 5, पृ. 88–94, 21 अक्तूबर 1937

देने अथवा मान्यता देने के लिए बाध्य करते हैं, या जो खोत का अधिकार प्राप्त करते हैं, न्यायालय के किसी भी मुकदमें अथवा कार्यवाही में लागू नहीं होंगे।

4. *अधिसूचना के बाद खोत राजस्व के दायित्व से मुक्त होंगे* – ऐसी अधिसूचना के जारी होने की तिथि से देय राजस्व से संबंधित खोत सरकार के प्रति किसी भी दायित्व से मुक्त होंगे।

5. *खोत लोगों को मुआवजा* – (I) इस अधिसूचना के परिणामस्वरूप खोत के रूप में उसके अधिकारों की क्षतिपूर्ति के लिए सरकार के लिए यह न्यायोचित होगा कि वह खोत को उचित मुआवजा दे, लेकिन शर्त यह है कि यह मुआवजा खोत के रूप में उसके पास भूमि से संबंधित भू-राजस्व संहिता के तहत निर्धारित वसूली के एक प्रतिशत से अधिक नहीं होगा।

(II) सरकार का निर्णय मुआवजे की राशि के संबंध में अंतिम और निर्णयात्मक होगा।

(III) सरकार के लिए यह विधिसम्मत होगा कि वह खोत को मुआवजे की राशि नकदी, ऋणपत्र अथवा वार्षिकी या किसी भी अन्य रूप में दे और भुगतान के रूप या प्रणाली के संबंध में सरकार का निर्णय अंतिम और निर्णायक होगा।

6. *खोती व्यवस्था वाले गांवों के अधीनस्थ धारकों का दखलकार होना* – जब से किसी भी क्षेत्र में खोती व्यवस्था को उस अधिनियम के प्रावधानों के तहत समाप्त कर दिया गया है, सभी लोग जिनके पास उस क्षेत्र में भूमि है, चाहे वह खोत के प्रबंध में हो अथवा उसके लाभदायक उपयोग में हो, उन्हें उस भूमि का जो उनके अधिकार में है भू-राजस्व संहिता, 1879 की धारा 3 (16) के अंतर्गत उसका दखलकार माना जाएगा और उनके अधिकार तथा दायित्व अधिकृत भूमि पर वैसे ही होंगे, जैसे कि अहस्तांतरित भूमि पर दखलकारों के उल्लिखित संहिता के प्रावधानों के तहत हैं और उल्लिखित संहिता के सभी प्रावधान उन पर लागू होंगे।

7. *दखलकारी अधिकारों के दावों से संबंधित झगड़ों का निर्धारण* – किसी अमुक जोत का दखलकारी किसे होना चाहिए, यदि इस संबंध में कोई झगड़ा है,तो उस दावेदार को प्राथमिकता दी जाएगी, जिसका अधिसूचना से पूर्व 12 वर्ष में अधिकतम समय तक दखल रहा हो।

8. *दखलकारी के अधिकार किसी के बाधा डालने पर नष्ट नहीं होते* – अधिनियम के पारित होने के बाद अधीनस्थ धारक के अधिकारों में यदि कोई बाधा डालता है, तो धारा 6 के तहत उसके अधिकारों को कोई हानि नहीं पहुंचेगी।

9. *खोत लोगों द्वारा मुआवजे के अधिकारों और अधीनस्थ धारकों की दखलकारी के अधिकारों के झगड़ों की जांच-पड़ताल* - (I) सरकार के लिए यह न्यायोचित होगा कि वह जिस क्षेत्र में खोती व्यवस्था समाप्त हो गई है, वहां इस अधिनियम के तहत भूमि का

दखलकार बनने का दावा करने वाले इच्छुक व्यक्तियों के बीच जो झगड़े उठते हैं और जो झगड़े इस अधिनियम के तहत देय मुआवजे का दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच उठते हैं, उनकी जांच-पड़ताल और फैसला करने के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति करे।

(II) इस अधिनियम के अंतर्गत जांच-पड़ताल के उद्देश्य से अधिकारी को संबंधित पक्षों या उनमें से किसी भी पक्ष सहित गवाहों को बुलाने और उन्हें उपस्थित रहने तथा व्यवहार विधि सहिता, 1908 के तहत दीवानी अदालत के मुकदमें में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के अनुरूप दस्तावेजों को प्रस्तुत करने को बाध्य करने का अधिकार होगा।

(III) भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 9, 10, 11, 12, 13, 14 और 15 के प्रावधान इस अधिनियम के तहत मुआवजे की रकम निर्धारित करने और दखलकारी के अधिकार को मान्यता देने की कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(IV) अधिकारी के लिए यह न्यायोचित होगा कि खोत अथवा अधीनस्थ धारक को बाध्य करे कि वे सभी दस्तावेज, रिकार्ड और रजिस्टर जो उनके पास हैं या उनके अधिकार में हैं, उन्हें मुआवजे की राशि या दखलकारी के अधिकारों के झगड़ों के निपटान से संबंधित आवश्यक जांच-पड़ताल के लिए प्रस्तुत करें।

(V) अधिकारी अपना निर्णय कलक्टर को पेश करेगा और भूमि दखलकारी के अधिकार के दोषों अथवा मुआवजे के दावों के संबंध में दावे करने वालों को लिखित रूप में अपने निर्णय से सूचित करेगा।

(VI) यदि अधिकारी इस बात से स्वयं ही संतुष्ट नहीं है कि दावेदारों में से कौन मुआवजे का अधिकारी है, तो वह मुआवजे के भुगतान को स्थगित कर सकता है, जब तक कि कोई वैध दीवानी अदालत संबंधित व्यक्तियों के मुआवजे के दावे के अधिकार को निश्चित न करे।

10. अधीनस्थ धारकों के निर्देश जिनके दखलकारी के दावे को खारिज कर दिया गया है– (I) कोई व्यक्ति जो इस कारण पीड़ित है कि सरकार द्वारा विशेष रूप से नियुक्त किए गए अधिकारी ने उसके दखलकार होने के दावे को रजिस्टर करने से खारिज कर दिया है, तो वह एक लिखित आवेदन द्वारा कलक्टर से अपने दावे के प्रश्न पर मांग कर सकता है कि उसका दावा कलक्टर द्वारा जिला कचहरी को निर्णय के लिए जिसके न्यायक्षेत्र में सारी भूमि अवस्थित है अथवा सरकार द्वारा नियुक्त अभिकरण को सौंपा जाए।

(II) आवेदन में अधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय के विरुद्ध आपत्ति के कारण दिए जाएंगे, जिन्हें दावा खारिज करने का आदेश जारी किए जाने के 90 दिन के अंदर प्रस्तुत करना होगा।

(III) कलक्टर आवेदन को प्रसंग के अनुसार जिला न्यायालय अथवा अभिकरण को भेजेगा। आवेदन क्रमांकित होगा और आवेदक को वादी तथा उस व्यक्ति अथवा उन व्यक्तियों

को जिन्हें अधिकारी द्वारा दखलकार घोषित किया गया है, प्रतिवादी मानकर केस को रजिस्टर किया जाएगा।

(IV) ऐसे आवेदन दर्ज होने पर न्यायालय या अभिकरण निर्देश देगा कि प्रतिवादी या प्रतिवादियों को नोटिस किया जाए कि वे नोटिस में उल्लिखित तिथि पर उपस्थित होकर दावे का जवाब दें।

(V) आवेदन को मुकदमें के रूप में सुनवाई के लिए व्यवहार विधि संहिता, 1908 के प्रावधान के तहत साधारण रूप में रखा जाएगा जैसा कि यह अन्य ऐसे मुकदमों के लिए लागू होगा।

(VI) किसी भी मुकदमें में न्यायालय द्वारा या अभिकरण द्वारा दिए गए फैसले या आदेश पर कोई अपील नहीं की जाएगी।

11. लोगों द्वारा बयान दाखिल करना – (1) इस अधिनियम के पारित होने के तीन माह के अंदर कलक्टर एक लिखित नोटिस द्वारा हरेक खोत से नोटिस में उल्लिखित दिवस से पहले या उस दिवस पर हस्ताक्षरित बयान की मांग करेगा (यह दिन नोटिस जारी करने की तिथि से तीन माह बाद नहीं होगा) जिसमें यह व्यक्त किया जाएगा :

(I) सभी क्षेत्रों की सर्वेक्षित कुल संख्या, जिसका वह खोत अथवा अन्य रूप में वरिष्ठ धारक है,

(II) 1920 से हर वर्ष की सर्वेक्षित संख्या के अनुसार इस अधिनियम के पारित होने की तिथि तक जो व्यक्ति दखलकार रहे हैं, और

(III) प्रत्येक सर्वेक्षण क्रम में खोत के दावे, हक और स्वरूप का उल्लेख हो।

(2) समय-समय पर खोत उपधारा (I) के तहत प्रस्तुत बयान के बाद में होने वाले किसी भी परिवर्तन के लिए लिखित रूप में कलक्टर को सूचित करेगा।

(3) *बयान देने का दायित्व* – पूर्ववर्ती धारा के अंतर्गत प्रत्येक खोत से बयान की अपेक्षा की जाती है, जिसके लिए वह भारतीय दंड संहिता की धारा 175 और 176 के अनुसार कानूनी तौर से बाध्य है।

12. *बयान साक्ष्य माना जाए* – किसी भी केस या कार्यवाही में खोत या उसका प्रतिनिधि एक पक्ष है, तो तथ्यों की अपेक्षा धारा 11 के अनुसार खोत के बयान की प्रविष्टियां प्रामाणिक मानी जाएंगी।

13. *बयान न देने के लिए दंड* – (I) यदि कोई खोत धारा 11 की उपधारा (i) और (ii) में दिए गए प्रावधानों का पालन न करते हुए मांगे जाने पर बयान देने से इंकार करता है या बाद में होने वाले किसी परिवर्तन के विवरणों को बताने से इंकार करता है या अनदेखी करता है, तो उसे ऐसे हर अपराध के लिए दंडित किया जाएगा। जुर्माने की राशि 100 रुपये तक बढ़ाई जा सकती है।

(II) यदि कोई खोत धारा 11 की उपधारा (1) के अनुसार निर्धारित अवधि में बयान देने में आनाकानी करता है तो कलक्टर को अधिकार होगा कि उससे विलंब शुल्क लिया जाए जो कि प्रतिदिन 5 रुपये से अधिक नहीं होगा। यह भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा।

14. *प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करने की व्यवस्था* - उन सभी मामलों में जिनमें किसी खोत ने बयान दिया है, और उन सभी मामलों में जिनमें जांच-पड़ताल के दौरान दाखिल किए गए दस्तावेज और निर्णयों की प्रमाणित प्रतिलिपियां संबंधित पक्षों और उनके अधीन दावा करने वालों को सरकार से आवेदन करने पर सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित शुल्क देकर उपलब्ध कराने की व्यवस्था होगी।

15. *सरकार को कानून बनाने का अधिकार* - (1) सरकार के लिए यह न्यायसंगत होगा कि इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए नियम बनाए और विशेष रूप से निम्नलिखित का प्रबंध करे:

(I) प्रपत्र, विषय-वस्तु और अधिसूचना के प्रकाशन और तामील की व्यवस्था,

(II) मुआवजे की राशि का निश्चय और भुगतान की प्रणाली,

(III) निर्देश किए गए दावों की सुनवाई और फैसलों के लिए अभिकरण की स्थापना।

(IV) अधिनियम की कोई भी कार्यवाही के अंतर्गत दावेदार द्वारा किए गए आवेदन, निर्देश किए गए दावे, दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतिलिपियां, प्रविष्टियां और निर्णय से संबंधित फीस तथा मूल्य को तय करना, और

(V) संबंधित पक्षों द्वारा दस्तावेजों को प्रस्तुत करवाना और उनकी सुरक्षा।

(2) इस धारा के अंतर्गत कानून बनाने का अधिकार बोंबे गवर्नमेंट गजट के पूर्ववर्ती प्रकाशन की शर्तों पर निर्भर करेगा।

(3) इस धारा के तहत तैयार किए गए नियम विधान सभा में उसके अगले अधिवेशन से कम से कम एक माह पहले प्रस्तुत किए जाएंगे। उपरोक्त सभा के प्रस्ताव द्वारा नियम बदले या रद्द किए जा सकते हैं। यदि किसी कानून को परिवर्तित या रद्द किया जाता है, तो सरकार को परिवर्तन स्वीकार करना होगा और उसे कानून को तदनुसार पुनः प्रकाशित करवाना होगा या नियम को रद्द करना होगा।

उद्देश्यों और कारणों का विवरण

1. खोती व्यवस्था बंबई प्रेसिडेंसी में भू-धारण की एक लघु व्यवस्था है। यह अधिकतर रत्नागिरी जिले और कोलाबा तथा थाना जिले के कुछ भागों में प्रचलित है।

2. भू-धारण की खोती व्यवस्था की शर्तें कुछ मामलों में कानून से और कुछ में रिवाज व प्रथा से तथा शेष मामलों में अनुदान से नियंत्रित हैं। रत्नागिरी जिले में इस व्यवस्था की

शर्तों का नियंत्रण 1980 के बंबई अधिनियम 1 द्वारा नियंत्रित है। कोलाबा जिले में इसकी शर्तों का नियंत्रण रिवाज व प्रथा द्वारा होता है तथा थाना जिले में अनुदान द्वारा।

3. भू-धारण की खोत व्यवस्था इस मायने में भू-धारण की सामान्य रैयतवाड़ी व्यवस्था से भिन्न है, क्योंकि रैयतवाड़ी व्यवस्था में सरकार भूमि के दखलकारों से सीधे भू-राजस्व की वसूली करती है, जब कि खोती व्यवस्था में सरकार भू-राजस्व की वसूली के लिए खोत लोगों को नियुक्त करती है।

4. भू-धारण की खोती व्यवस्था जहां एक ओर खोत को बाध्य करती है कि यह सरकार को राजस्व का भुगतान करे, वहीं दूसरी ओर यह उसे स्वतंत्रता देती है कि वह अधीनस्थ धारकों के साथ जैसा चाहे व्यवहार करे और इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग खोत लोगों द्वारा इस सीमा तक किया जाता है कि न केवल बल प्रयोग करके अधीनस्थ धारकों से धन और सामान की वसूली की जाती है, बल्कि उन्हें गुलामों की तरह जीवन बिताने के लिए विवश किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से अधीनस्थ धारकों ने खोत लोगों के विरुद्ध एक बड़ा आंदोलन छेड़ रखा है और वे खोती व्यवस्था के उन्मूलन की मांग कर रहे हैं। खोत लोगों और अधीनस्थ धारकों के बीच संबंध इतने खराब हो गए हैं कि तीन खोत लोगों की अधीनस्थ धारकों द्वारा हत्या कर दी गई।

5. जहां भू-धारण की खोती व्यवस्था का एक लाभ भू-राजस्व की प्राप्ति को सुलभ कराना है, वहीं इससे होने वाले नुकसान इतने अधिक हैं कि बंबई प्रेसिडेंसी में शांति और व्यवस्था की स्थिति को भंग किए बिना इसे जारी नहीं रखा जा सकता है। अतः इस व्यवस्था का उन्मूलन अत्यावश्यक है।

6. विधेयक के उद्देश्य हैं -

(I) खोती व्यवस्था का उन्मूलन तथा सरकार और भूमि के उन धारकों के बीच सीधा संबंध स्थापित करना, जो खोत लोगों के लाभप्रद प्रबंध के अधीन हैं,

(II) खोत लोगों के अधिकारों को क्षतिपूर्ति के लिए उचित मुआवजे देने के प्रावधान करने,

(III) भू-राजस्व संहिता के अंतर्गत उन अधीनस्थ धारकों को वास्तव में जिनके कब्जे में भूमि है, उन्हें दखलकार का दर्जा देना, और

(IV) अन्य आकस्मिक प्रयोजनों के लिए प्रावधान करना।

(हस्ताक्षर) भीमराव अम्बेडकर

एच.के. चेनानी

सचिव, बंबई विधान सभा

पूना, 18 अक्तूबर 1937

* * * * *

खोती व्यवस्था के उन्मूलन हेतु विधेयक*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर, भायखला और परेल) : महोदय! मैं खोती व्यवस्था के उन्मूलन के लिए एक विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूं। प्रस्ताव के समर्थन में आपने हमें संक्षिप्त वक्तव्य देने का जो निर्देश दिया है, तो जहां तक मेरा संबंध है मेरे प्रस्ताव में मात्र उद्देश्यों और कारणों के विवरण का ही उल्लेख होगा। अध्यक्ष महोदय! मैं बताना चाहूंगा कि खोती व्यवस्था का उन्मूलन जैसे महत्वपूर्ण विधेयक के लिए उद्देश्यों और कारणों का इतना संक्षिप्त विवरण कभी भी तैयार नहीं किया गया है। खोत व्यवस्था, बंबई प्रेसिडेंसी में भू-धारण की एक लघु व्यवस्था है। यह अधिकतर रत्नागिरी जिले और कोलाबा तथा थाना जिले के कुछ भागों में प्रचलित है।

भू-धारण की खेती व्यवस्था की शर्तें कुछ मामलों में कानून से और कुछ में रिवाज और प्रथा से तथा शेष मामलों में अनुदान से नियंत्रित हैं। रत्नागिरी जिले में इस व्यवस्था की शर्तों का नियंत्रण 1880 के बंबई अधिनियम 1 द्वारा किया जाता है। कोलाबा जिले में इसकी शर्तों का नियंत्रण रिवाज और प्रथा द्वारा होता है तथा थाना जिले में अनुदान द्वारा।

भू-धारण की खोती व्यवस्था इस मायने में भू-धारण की सामान्य रैयतवाड़ी व्यवस्था से भिन्न है, क्योंकि रैयतवाड़ी व्यवस्था में सरकार भूमि के दखलकारों से सीधे भू-राजस्व की वसूली करती है, जब कि खोती व्यवस्था में सरकार भू-राजस्व की वसूली के लिए खोत लोगों को नियुक्त करती है।

भू-धारण की खोती व्यवस्था जहां एक ओर खोत को बाध्य करती है कि वह सरकार को राजस्व का भुगतान करे, वहीं दूसरी ओर यह उसे स्वतंत्रता देती है कि वह अधीनस्थ धारकों के साथ जैसा चाहे व्यवहार करे, और इस स्वतंत्रता का खोत लोगों द्वारा दुरुपयोग इस सीमा तक किया जाता है कि न केवल बल प्रयोग करके अधीनस्थ धारकों से धन और सामान की वसूली की जाती है, बल्कि उन्हें गुलामों की तरह जीवन बिताने के लिए विवश किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से अधीनस्थ धारकों ने खोत लोगों के विरुद्ध एक बड़ा आंदोलन छेड़ रखा है और ये खोती व्यवस्था के उन्मूलन की मांग कर रहे हैं। खोत लोगों और अधीनस्थ धारकों के बीच संबंध इतने खराब हो गए हैं कि तीन खोत लोगों की अधीनस्थ धारकों द्वारा हत्या कर दी गई।

जहां भू-धारण की खोती व्यवस्था का एक लाभ भू-राजस्व की प्राप्ति को सुलभ कराना है, वहीं इससे होने वाले नुकसान इतने अधिक हैं कि बंबई प्रेसिडेंसी में शांति और व्यवस्था की स्थिति को भंग किए बिना इसे जारी नहीं रखा जा सकता है। अतः इस प्रणाली का उन्मूलन

---

* *बॉबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 1, पृ. 1087-89, 17 सितंबर 1937, डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित विधेयक पृ. 111-116 पर पुनः प्रस्तुत।

अत्यावश्यक है।

विधेयक के उद्देश्य हैं :

1. खोती व्यवस्था का उन्मूलन तथा सरकार और उन धारकों के बीच सीधा संबंध स्थापित करना, जो खोत लोगों के लाभप्रद अधिकार के अधीन हैं;

2. खोत लोगों के अधिकारों की क्षतिपूर्ति के लिए उचित मुआवजा देने के प्रावधान करने,

3. भू-राजस्व संहिता के अंतर्गत उन अधीनस्थ धारकों को वास्तव में जिनके कब्जे में भूमि है, उन्हें दखलकार का दर्जा देना, और

4. अन्य आकस्मिक प्रयोजनों के लिए प्रावधान करना।

महोदय! इन शब्दों के साथ, मैं सदन से विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूं।

श्री एस.एल. करंडिकर (रत्नागिरी उत्तर) : अध्यक्ष महोदय! मैं इस विधेयक को प्रस्तुत करने का विरोध करता हूं (रुकावट)। सामान्य रूप से मैं विधेयक को प्रस्तुत करने का विरोध नहीं करता, क्योंकि निर्विरोध प्रस्तुत करने की अनुमति देना इस सदन में एक औपचारिकता बन गई प्रतीत होती है। परंतु एक कारण से इस विधेयक को प्रस्तुत करने का विरोध करना मैं अपना दायित्व समझता हूं।

अनुदान मांगों के समय जब इस सदन में भू-राजस्व के प्रश्न पर बहस की जा रही थी, माननीय राजस्व मंत्री ने हमें स्पष्ट रूप से बताया था और हमें यह आश्वासन दिया था कि प्रेसिडेंसी में भू-राजस्व नीति संबंधी पूरे मामले को किसी समय आगामी फरवरी में लिया जाएगा, अत: कुछ करने से पहले हमें इंतजार करना है। भू-राजस्व के किसी भी विषय पर हमें टुकड़ों में किसी विधान को स्वीकार नहीं करना चाहिए। अत: सरकारी पक्ष के सदस्य भी मुझसे सहमत होंगे कि टुकड़ों में जिस विधान का प्रस्ताव किया जा रहा है, उसे सदन में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

अनेक दूसरी टिप्पणियां हैं, जिनका मैं विरोध करना चाहूंगा, क्योंकि शुरू की टिप्पणियां सदन में पढ़ी गई थीं, परंतु मेरा विश्वास है कि इन सब विषयों पर विचार और बहस के लिए अभी काफी समय है। इसलिए मैं सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। परंतु मेरे विचार से यह सिद्धांत की बात है। सरकार ने हमें आश्वासन दिया है कि प्रेसिडेंसी में भू-राजस्व के पूरे मामले पर विचार-विमर्श सदन में प्रस्तुत किया जाएगा और जनवरी-फरवरी में किसी समय एक व्यापक विधान सदन में प्रस्तुत किया जाएगा। अपवाद के रूप में कोलाबा और रत्नागिरी से संबंधित इस विधान को प्रस्तुत करने का कोई औचित्य नहीं है। इन टिप्पणियों के साथ मैं विधेयक को प्रस्तुत करने का विरोध करता हूं।

माननीय अध्यक्ष: मेरे विचार से किसी भी अन्य सदस्य को इसे बहस मानकर इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं है। माननीय सदस्य जो विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति चाहते हैं, उन्हें जवाब देने का अधिकार है। और यदि यह जवाब देना चाहते हैं, तो मैं उन्हें अवसर दूंगा।

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मेरे माननीय मित्र श्री करंडीकर ने जो टीका-टिप्पणी की है, उसके संबंध में मैं नहीं समझता कि विस्तार से कोई उत्तर देने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा है कि माननीय राजस्व मंत्री ने सदन को आश्वासन दिया है कि वह पूरी राजस्व व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए एक नया विधेयक प्रस्तुत करेंगे। दुर्भाग्य से मैं उस समय उपस्थित नहीं था, जब यह आश्वासन दिया गया; और मैं व्यक्तिगत रूप से ठीक तरह से

जानता भी नहीं हूं कि सदन को दिए गए आश्वासन का विषय और सीमा क्या है? महोदय! परंतु मैं सदन से इस बारे में निवेदन करूंगा। खोती व्यवस्था स्वयं में एक स्वतंत्र व्यवस्था है। यह व्यवस्था भू-राजस्व संहिता के तहत नहीं आती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था इस प्रेसिडेंसी के भू-धारण की सामान्य प्रणाली का ही अभिन्न अंग नहीं है। यह बिल्कुल एक अलग विषय है। अत: ऐसी व्यवस्था जो सामान्य व्यवस्था के अंतर्गत न आती हो, उस पर विचार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती।

सदन से मेरा दूसरा निवेदन यह है कि यदि माननीय सरकारी पक्ष के सदस्य वास्तव में वही करना चाहते हैं, जिसका उन्होंने सदन को आश्वासन दिया है, और यदि मुझे लगता है कि वे जो उपाय इस विधेयक के विषय से संबंधित लाना चाहते हैं, उससे मुझे संतुष्ट होना चाहिए, मुझे विधेयक को वापस लेने में कोई संकोच नहीं होगा, यदि मैं महसूस करूंगा कि उनका विधेयक मेरे विधेयक से श्रेष्ठ है। मैं नहीं सोचता कि इस अवसर पर इससे अधिक कहने की आवश्यकता है।

विधेयक प्रस्तुत किया गया और अनुमति प्रदान की गई।

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मैं विधेयक प्रस्तुत करता हूं।

माननीय अध्यक्ष: विधेयक प्रस्तुत हो गया।

8
ग्राम पंचायत विधेयक *

I

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मैंने इस विधेयक के प्रभावी मंत्री महोदय द्वारा दिए गए भाषण को बहुत ही ध्यानपूर्वक सुना है। मैं यह भी कहना चाहूंगा कि मैंने उनके इस भाषण को अत्यधिक गंभीरता से लिया है। मुझे विश्वास है कि इस बारे में कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि इस विधेयक का संबंध कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण मसलों से है। इस विधेयक से जुड़े महत्वपूर्ण मसलों को ध्यान में रखते हुए,मैं यह कहने के लिए बाध्य हूं कि जहां तक यह प्रेसिडेंसी की ग्रामीण जनसंख्या से संबंधित नागरिक सुविधाओं को प्रभावित करता है, इसका संबंध न केवल स्वशासन से है, बल्कि इसका प्रभाव ग्रामीण जनसंख्या के जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति पर भी पड़ता है। सभी संबंधित पक्षों के प्रति न्याय की दृष्टि से मंत्री महोदय को इस विधेयक से संबद्ध निहितार्थों पर विचार-विमर्श के लिए अधिक समय देना चाहिए था, परंतु मंत्री महोदय ने विधेयक को विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत करने से पूर्व सात दिन का समय गुजर जाने दिया और मात्र कानूनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके उन्होंने आत्म-तुष्टि करने का ही प्रयत्न किया है। मेरे विचार से विधेयक पर विचार-विमर्श के लिए न केवल सात दिन, बल्कि सात महीने का समय नियत किए जाने की आवश्यकता है। मेरा सुझाव है कि अभी भी यह कोई गलत कदम नहीं होगा, यदि मंत्री महोदय विधेयक से संबंधित मसलों पर जनता की प्रतिक्रिया जानने के उद्देश्य से इसे प्रचारित करें। यह कदम उठाने के लिए मेरा उनसे विनम्र निवेदन है। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं, तो मैं उनके विचारार्थ दो अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत करना चाहूंगा। महोदय! मेरा कहना है कि वर्तमान सरकार इस विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए समक्ष नहीं है। सरकार इस तथ्य से अवगत है कि प्रशासन की वर्तमान प्रणाली एक बदनाम प्रणाली है। ऐसा मैं केवल दोषारोपण करने के उद्देश्य से नहीं कह रहा हूं। हम तथ्यों के बारे में जैसा जानते हैं, मैं उन्हें उसी रूप में

---

* *बॉबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 35, पृ. 1128-36, 6 अक्तूबर 1932

प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूं। महोदय! प्रेसिडेंसी की जनता का कोई भी वर्ग इस सरकार के प्रशासन और कार्यकलापों से संतुष्ट नहीं है। तथ्यों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने पर पता चलेगा कि इस प्रेसिडेंसी में एक ऐसा सशक्त वर्ग है, जो यह मानने को तैयार नहीं है कि इस सरकार को शासन करने का कोई नैतिक अधिकार प्राप्त है। महोदय! हमें यह भी मालूम है कि हमने नए संविधान को तैयार करने का कार्य प्रारंभ कर दिया है। हम जानते हैं कि हम भारत के लिए एक ऐसे संविधान का निर्माण करने जा रहे हैं जो जनता की सरकार के लिए, जनता द्वारा और जनता के लिए होगा। हमारा यह आशा करना उचित है कि नए संविधान को एक अथवा दो वर्षों की अल्प अवधि में तैयार कर लिया जाएगा और जनता के सभी वर्गों द्वारा पूर्ण समर्पित सरकार की स्थापना हो जाएगी। महोदय! इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैं मंत्री महोदय तथा सत्ता पक्ष के माननीय सदस्यों को यह बताना चाहूंगा कि उनकी वर्तमान स्थिति किसी कार्यवाहक से बेहतर नहीं है। महोदय! निर्विवाद रूप से एक रखवाला उस इमारत में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं कर सकता, जिसकी देखभाल के लिए उसकी नियुक्ति की गई है। अधिक से अधिक वह वास्तविक मालिक के आने के पूर्व के अंतराल में भवन को चालू हालत में बनाए रखने के लिए मरम्मत करवा सकता है।

मैं मंत्री महोदय को संसदीय मामलों का सादृश्य भी देना चाहूंगा। इंग्लैंड में जहां शताब्दियों से संसदीय व्यवस्था चल रही है, एक मंत्रिमंडल पराजित होता है, पराजित मंत्रिमंडल तत्काल त्यागपत्र न देकर तथा विपक्ष को सत्ता की बागडोर न सौंपकर चुनाव कराना पसंद करता है। ऐसी स्थिति में संविधान की यह स्वीकृत परंपरा है कि ऐसे मंत्रिमंडल को किसी भी तरह के विधान का दायित्व नहीं लेना चाहिए। वे केवल इतना कर सकते हैं कि जब तक मतदाता अपना निर्णय नहीं दे देते, तब तक प्रशासन की देखभाल करें, ताकि नई सरकार को पुरानी सरकार के किसी भी कार्य की वजह से शर्मिंदगी न उठानी पड़े। मैं मंत्री महोदय से पूछता हूं कि क्या वह संसदीय संविधान की परंपरा का पालन नहीं करना चाहेंगे? यह निर्णय मैं उन पर ही छोड़ता हूं।

महोदय! मैं कोई कारण नहीं समझ पाता कि मंत्री महोदय इस विधेयक को पारित करवाने के लिए इतनी जल्दबाजी क्यों दिखा रहे हैं, केवल सात दिनों की सूचना देकर? मुझे नहीं लगता कि इसके पीछे कोई बहुत बड़ा आग्रह है, इसकी कोई बहुत आवश्यता है, न ही इस प्रेसिडेंसी के लोगों ने इस विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए उन पर कोई अतिशय जोर डाला है। जहां तक मेरी जानकारी है, इस प्रेसिडेंसी की किसी भी राजनैतिक पार्टी ने इस मुद्दे को अपनी पार्टी का विषय नहीं बनाया है। मैं नहीं जानता कि उदारवादियों, दायित्वबोध वालों या गैर-ब्राह्मणों अथवा कांग्रेस के सदस्यों ने, जो पिछली विधान परिषद के समय इस सदन में थे, कभी इस बात पर जोर दिया हो कि ग्राम पंचायतों को शुरू करना उनके कार्यक्रम का मूलभूत तत्व है। मैं ऐसा कुछ नहीं जानता। यही नहीं, मुझे नहीं लगता कि जनसाधारण

इस विधेयक के लिए शोर मचा रहा है। यदि आप इस मुद्दे पर 1925 में तैयार की गई उस समिति की रिपोर्ट को पढ़ें, जिसे ग्राम पंचायत अधिनियम, 1920 की कार्यप्रणाली पर रिपोर्ट तैयार करने के लिए कहा गया था, तो आपको क्या मिलेगा? आपको यह मिलेगा कि मोटे तौर पर इस प्रेसिडेंसी में 30,000 गांव हैं। 1920 में यह अधिनियम लोगों को यह स्वतंत्रता देते हुए पारित किया गया था कि वे इस अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए स्वैच्छिक रूप से आवेदन दे सकते हैं। लेकिन इसका परिणाम क्या हुआ? परिणाम यह हुआ कि सिंध के लोगों ने ग्राम पंचायतों की शुरूआत करने का विरोध किया। इसीलिए हम सिंध प्रांत के एक भी गांव में पंचायत स्थापित हुई नहीं पाते हैं। मुख्य प्रेसिडेंसी में ये बहुत ही थोड़ी संख्या में हैं - 323 के लगभग। मैं मानता हूं कि यह लोगों की नागरिक चेतना की दुखद अभिव्यक्ति है। इसके अतिरिक्त, यह स्पष्ट प्रमाण है कि लोग ग्राम पंचायत की शुरूआत के लिए चिंतित नहीं हैं। मैं इस समय इसके कारणों में नहीं जाना चाहता, लेकिन मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र, स्थानीय स्वशासन मंत्री मानेंगे कि यह स्थिति का सही विश्लेषण है। यही नहीं, बल्कि मैं यह भी कहना चाहता हूं कि उन्होंने ग्राम पंचायतों के कार्यों में न्यायिक कार्य को जोड़ दिया है, ताकि उसे मीठी टिकिया की तरह ज्यादा आसानी से निगला जा सके। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मुझे लगता है कि मंत्री महोदय के लिए यही बेहतर होगा कि वह इस विधेयक को अनिश्चित काल तक स्थगित कर दें, ताकि लोगों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाली नई सरकार उसके आशय और गुण-दोषों पर विचार कर सके।

महोदय! अब इस विधेयक के गुणावगुण की बात करते हैं। मैं देख रहा हूं कि विधेयक के दो भाग हैं। पहला भाग स्थानीय स्वशासन के निकाय के रूप में पंचायत के कार्यों से संबंधित है। मैं बिना हिचक कहना चाहता हूं कि सिद्धांत रूप में मुझे हस्तांतरण की नीति पर कोई ऐतराज नहीं है, अगर यह पाया गया कि इस प्रेसिडेंसी की स्थानीय समितियों पर, स्थानीय समिति अधिनियम के द्वारा सौंपे गए कार्यों का अत्यधिक भार है और इस कारण अगर वे अपने कार्य कुशलता से नहीं निभा पाते, तो मैं कहूंगा 'स्थानीय समितियों का भार हल्का करने के लिए निश्चित रूप से पंचायतों को स्थापित किया जाए।' महोदय! अगर अपने हितों के लिए पंचायतों को स्थापित करने की इच्छा है, तो यह बड़ी खतरनाक व्यवस्था का प्रत्यावर्तन होगा। बहुतों ने ग्राम पंचायतों की पुरानी व्यवस्था की प्रशंसा की है। अनेक लोगों ने इसे 'ग्रामीण गणतंत्र' कहा है। इस ग्रामीण गणतंत्र की जो भी खूबियां हों मुझे यह कहने में रत्ती भर भी झिझक महसूस नहीं होती कि ये भारत के सार्वजनिक जीवन के विनाश का कारण रही हैं।

श्री पेस्टनशाह एन. वकील : प्रश्न।

डा. भीमराव अम्बेडकर : अगर भारत राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने में कामयाब नहीं हो पाया है, अगर भारत राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करने में कामयाब नहीं हो पाया है, तो

मेरे विचार से इसका मुख्य कारण ग्राम व्यवस्था का अस्तित्व में होना है। इसने लोगों को स्थानीय राष्ट्रीयता से, स्थानीय एकनिष्ठता से सराबोर कर दिया। इसमें विस्तृत नागरिक चेतना के लिए कोई स्थान नहीं बचा। कुछ भी नहीं। प्राचीन ग्राम पंचायतों के अंतर्गत, भारत संगठित लोगों का देश बनने के बजाए ग्रामीण समुदाय का एक जमघट बन गया, जिसमें आम राजा के प्रति सामान्य निष्ठा के सिवाए और कोई साझापन नहीं था। महोदय! मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि ऐसा केवल मेरा ही दृष्टिकोण नहीं है। 1925 में नियुक्त की गई समिति के एक सदस्य ने भी यही बात कही थी। मैं अपने मित्र श्री आर.जी. प्रधान के कथन का उल्लेख करता हूं। अपने बयान में उन्होंने कहा था :

> अत्यधिक ग्रामीण राष्ट्रीयता तथा ग्रामीण भावना, जिसका इन समुदायों ने पोषण किया है, वह पूर्णत: भारत की प्रादेशिक एकता या हमारे प्रत्येक प्राकृतिक क्षेत्रीय खंडों की जातीय एकता पर आधारित शक्तिशाली भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में घातक सिद्ध हुई है।

श्री पेस्टनशाह एन. वकील : क्या श्री आर.जी. प्रधान इतिहासकार हैं?

डा. भीमराव अम्बेडकर : मुझे नहीं लगता कि हमें यहां इतिहासकारों की आवश्यकता है; हमें इतिहासकारों से सावधान रहना चाहिए। आजकल जब आप राष्ट्रीय चेतना, समान राष्ट्रीयता और भारतीय नागरिकता की समान चेतना स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, मेरे विचार में हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जो इस प्रयास को निष्प्रभावित और कमजोर कर दे। मैं मामले के इस पहलू को यहीं खत्म करना चाहता हूं।

मेरी अगली आपत्ति पंचायतों के गठन से संबंधित है। जैसा कि माननीय सदस्य ने बताया है कि विधेयक में यह प्रावधान है कि ग्राम पंचायतों का निर्वाचन महिलाओं व पुरुषों, दोनों के वयस्क मतों के आधार पर किया जाएगा। जहां तक मेरा संबंध है, मैं तुरंत यह कहना चाहता हूं कि 'यहां तक तो ठीक है,' लेकिन मैं महोदय के समक्ष यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि दलित वर्गों के बारे में बात करते हुए मुझे यह कहते हुए जरा भी हिचक महसूस नहीं हो रही है कि वयस्क मतदान हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। महोदय यह भूल गए हैं कि दलित वर्ग प्रत्येक गांव में अल्पसंख्यक हैं, एक दयनीय अल्पसंख्यक, और हम मान लेते हैं कि वे वयस्क मताधिकार अपनाएंगे। इसके साथ मुझे विश्वास है कि वह यह भी मानेंगे कि वयस्क मतदान अल्पसंख्यकों को बहुमत में परिवर्तित नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, मैं आग्रह करूंगा कि अगर ये ग्राम पंचायतें बनती हैं, तो अल्पसंख्यकों के लिए उनमें विशेष प्रतिनिधित्व होना चाहिए। किसी भी कीमत पर दलित वर्गों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व होना चाहिए, अन्य निस्संदेह अपने लिए स्वयं बोलेंगे।

महोदय! मैं जानता हूं कि इस सदन में ऐसा एक वर्ग मौजूद है, जो तुरंत यह कहेगा कि यह सांप्रदायिकता है। मैं भी मानता हूं कि यह सांप्रदायिकता है। परंतु मुझे विश्वास हो

गया कि सांप्रदायिकता ही मेरी नीति होनी चाहिए। मुझे इस बात के लिए कोई शर्म महसूस नही होती।

श्री जे.बी. पेटिट : क्या यह राष्ट्रीयता के अनुकूल है?

डा. भीमराव अम्बेडकर : अवश्य ही। क्यों नहीं?

श्री जे.बी. पेटिट : मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मेरा विचार है कि सांप्रदायिकता के बिना भारत किसी तरह राजनीतिक प्रगति नहीं कर सकता। सांप्रदायिकता के बिना भारत के लिए कोई स्वशासन नहीं हो सकता। यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिस पर मैं बिना किसी चुनौती के भय से दृढ़ रहूंगा।

इसलिए दलित वर्गों का पक्ष लेते हुए मैं तब तक भारत के लिए स्वशासन के सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सकता, जब तक कि मुझे इस बात की संतुष्टि न हो जाए कि प्रत्येक स्वशासित संस्था में ऐसे प्रावधान हैं, जिसके अंतर्गत दलित वर्गों को उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए विशेष प्रतिनिधित्व देते हैं और जब तक ऐसा नहीं होता मुझे खेद है कि मेरे लिए विधेयक के पहले भाग पर अपनी सहमति देना संभव नहीं होगा।

महोदय! इस विषय में मुझे यह जानकर खुशी हुई कि इस मुद्दे पर विचार-विमर्श करने के लिए 1925 में जो समिति गठित की गई थी, उसके दो सदस्यों ने दलित वर्गों के लिए विशिष्ट प्रतिनिधियों की मांग का समर्थन किया था। मैं श्री आर.जी. प्रधान के कथन की ओर ध्यान दिलाता हूं। उन्होंने कहा था :

> मेरे विचार से ग्राम पंचायतों में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था नामांकन द्वारा करनी चाहिए। नामांकन या तो कलक्टर या जिले के स्थानीय बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा होना चाहिए। बेहतर तो यही होगा कि यह काम अध्यक्ष करें। दलित वर्गों के उचित प्रतिनिधित्व के हितों की दृष्टि से यह बहुत ही वांछनीय है और इससे भी बड़ी बात यह है कि उनका सामान्य स्तर उठाने के लिए तथा अन्य वर्गों को यह अहसास दिलाने के लिए कि वह एक अलग समुदाय है, प्रत्येक ग्राम पंचायत में दलित वर्ग का कम से कम एक सदस्य तो अवश्य होना चाहिए। इसलिए जहां भी इन वर्गों का कोई भी सदस्य चुनाव के द्वारा न चुना गया हो, वहां नामांकन का ही सहारा लेना चाहिए।

महोदय! मैं अपने माननीय मित्र श्री पी.आर. चिकोदी के कथन को उद्धृत करना चाहता हूं। उन्होंने भी एक पृथक विवरण में लिखा है, जो इस प्रकार है :

> मुझे लगता है कि उन गांवों में जहां दलित वर्ग के कम से कम पचास वयस्क व्यक्ति हों, वहां पंचायतों में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने के लिए कोई तरीका अपनाना होगा, चाहे नामांकन द्वारा या आरक्षित सीटों की व्यवस्था द्वारा। अभी इनके किसी भी प्रतिनिधि का आम निर्वाचन के द्वारा चुना जाना संभव नहीं लगता, ऐसे प्रयास

के विफल होने की सूचना मुझे विलंब से मिली है।

इस संदर्भ में मैं माननीय सदन के हिन्दू सदस्यों का ध्यान हाल ही में घटी घटनाओं की ओर भी दिलाना चाहता हूं। मैं हिन्दुओं व दलित वर्गों के मध्य हुए पूना समझौते की बात कर रहा हूं, जिस पर पिछले महीने की 24 तारीख को हस्ताक्षर किए गए। मुझे विश्वास है कि अनेक सदस्यों ने समझौते की शर्तें अवश्य पढ़ी होंगी, लेकिन मैं इसके एक खंड की ओर विशेष ध्यान दिलाना चाहता हूं। इस खंड में यह स्वीकार किया गया है कि समस्त स्थानीय निकायों में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के अधिकार को स्वीकृत किया जाएगा और समझौते के उस हिस्से को कार्यान्वित करने के लिए प्रयास किए जाएंगे। महोदय! मैं हिन्दू सदस्यों का ध्यान समझौते के उस हिस्से की ओर दिलाना चाहता हूं और मुझे यकीन है कि पिछले महीने की 24 तारीख से पहले जो कुछ भी विचार रहे हों, लेकिन वे अब समझौते की शर्तों का निष्ठापूर्वक पालन करेंगे।

महोदय! अब मैं विधेयक के दूसरे भाग पर आता हूं। मुझे शुरू में ही यह बता देना चाहिए कि जब मैंने इस विधेयक को पढ़ा था, मैं कहना चाहता था कि यह विधेयक अंशतः अच्छा और अंशतः खराब है। लेकिन पूरा विधेयक और विधेयक में निहित समस्त प्रावधानों को पढ़ने के बाद मैं अपना विचार बदलने को बाध्य हूं। अब मुझे लगता है कि यह पूरे का पूरा ही खराब है। इसका केवल कुछ ही भाग खराब नहीं है, बल्कि इसके अन्य भाग भी बहुत ही खराब हैं। महोदय! मैं ग्राम पंचायतों के विधेयक के न्यायिक प्रावधान के संदर्भ में कह रहा हूं। मैं नहीं जानता कि स्थानीय स्वशासन मंत्री महोदय के अनुसार न्यायपालिका के लिए अपेक्षित गुण क्या होने चाहिए, जिस पर दीवानी व फौजदारी मामले सुलझाने के लिए विश्वास किया जा सके। सदन में शुरू में ही उन्होंने जो परिचयात्मक टिप्पणी की थी, उस दौरान मैं इस बारे में उनके विचार जानने का इच्छुक था, पर वह इस मुद्दे पर चुप ही रहे। मेरे विचार से इस बात से सब सहमत होंगे कि दीवानी व फौजदारी मामलों का निर्वाह करने के कार्य को सौंपने से पहले, न्यायपालिका में तीन गुण होने आवश्यक हैं। वह कानून में प्रशिक्षित होनी चाहिए, अपने दृष्टिकोण में निष्पक्ष होनी चाहिए और मैं निवेदन करता हूं, वह स्वतंत्र होनी चाहिए। अब हमें इन तीनों गुणों को इस विधेयक के प्रावधानों में लागू करना चाहिए। मंत्री महोदय इस विधेयक में क्या प्रावधान रखते हैं? वह कहते हैं, 'हम वयस्क मताधिकार के द्वारा पांच अथवा सात सदस्यों की पंचायत का चुनाव करेंगे; ये व्यक्ति तीन वर्षों तक कार्यभार संभालेंगे। इन तीन वर्षों के दौरान ये न सिर्फ स्थानीय स्वशासी निकाय के कार्यों का निर्वाह करेंगे, बल्कि इसके साथ वे कुछ फौजदारी व दीवानी मुकदमों की न्यायिक जांच करने का भी काम करेंगे।' विधेयक के प्रावधान का यही स्तर है।

अब, मैं मंत्री महोदय से जो पहला प्रश्न पूछना चाहता हूं, वह है : इन पांच व्यक्तियों के पास जिनका चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होगा, क्या उनसे वह उम्मीद करते हैं कि

उन्होंने न्यायाधीश के कर्तव्यों का निर्वाह करने के लिए पर्याप्त न्यायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया होगा? महोदय! मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि न्यायिक निर्णयों के लिए परिपक्व निर्णय की जरूरत है; उन्हें विस्तृत वैधानिक ज्ञान की आवश्यकता है (ठहाका)। इसमें हंसने की कोई बात नहीं है, क्योंकि यह एक गंभीर मामला है। इस बात को ध्यान में लें। जब आई.सी.एस. के सदस्य हाई कोर्ट या न्यायपालिका में अपने लिए कुछ आरक्षित स्थानों की मांग करते हैं, तब हम बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। हमारी आपत्ति का कारण क्या है? अगर मैंने आपत्ति को सही ढंग से समझा है, तो वह यह है कि जिन व्यक्तियों ने आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की है, उनके पास कोई न्यायिक प्रशिक्षण नहीं होता, और न्यायिक प्रशिक्षण न होने के कारण, हम उनको न्यायिक अधिकार नहीं सौंप सकते। आपत्ति का यही मुख्य कारण है। हम न सिर्फ न्याय चाहते हैं, बल्कि ऐसे न्यायाधीश चाहते हैं, जो अपने कर्तव्य निभाने में कुशल हों। अब मैं मंत्री महोदय से यह पूछना चाहता हूं कि क्या वह सोचते हैं कि ऐसा जन समुदाय जो निरक्षर है, अज्ञानता और अंधविश्वासों से घिरा हुआ है, क्या वह ऐसे पांच अच्छे व्यक्तियों को चुन सकता है, जिन पर न्यायाधीश के कर्तव्यों का निर्वाह करने का कार्य सौंपा जा सके?

श्री एस.एम. कारभारी : क्या हम इतने बुरे हैं?

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं नहीं जानता। इस मामले में हमारे बीच मतभेद हो सकते हैं। लेकिन यह मेरा दावा है और अगर यह मान भी लिया जाए कि इन व्यक्तियों के लिए अपेक्षित वैधानिक प्रशिक्षण जरूरी नहीं है, तब भी हमें इतनी अपेक्षा तो करनी चाहिए कि उनको अपने उचित-अनुचित कर्तव्य, निष्पक्षता तथा नैतिकता का ख्याल हो। ऐसा जनसमुदाय जो जातिवाद से जकड़ा हुआ है, प्राचीन पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हो, जो समानता के भाव का उपहास उड़ाता हो और जो सामाजिक भेदभाव की धारणा से प्रभावित हो, तथा जो यह सोचता हो कि एक व्यक्ति ऊंचा, दूसरा नीचा है क्या उससे उम्मीद की जा सकती है कि उसके पास मात्र न्याय करने के लिए ही सहज भावना होगी? महोदय! मैं इस प्रस्ताव को नकारता हूं और निवेदन करता हूं कि हमारे लिए इन पंचों के हाथ में अपना जीवन, अपनी स्वतंत्रता और अपनी संपत्ति को सौंपने की उम्मीद करना उचित नहीं है।

अगला प्रस्ताव जो मैं इस सदन के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता हूं वह है : क्या इन पंचायतों से यह अपेक्षा करना संभव है कि ये न्यायाधीश का दायित्व निष्पक्षता से निभा सकेंगी? हम तथ्यों का सही विश्लेषण करें। मुझे विश्वास है कि इस सदन का कोई माननीय सदस्य इस बात से इंकार नहीं करेगा कि कुछ ही ऐसे गांव हैं जहां लोगों में आपसी रंजिश न हो, ब्राह्मणों और गैर ब्राह्मण के बीच झगड़े. . .

दीवान बहादुर डी.आर. पाटिल : ये हमेशा चलते रहेंगे।

डा. भीमराव अम्बेडकर : अगर वे ऐसा करते हैं, तो आपके लिए बहुत बुरा है। महोदय! मैं निवेदन करता हूं कि ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण के बीच गुट हैं। यह तथ्य ध्यान में रखते

हुए कि माननीय सदस्य श्री राव बहादुर काले मेरे सुझाव पर हंस रहे थे, मैं इस मामले में एक उद्धरण पेश करना चाहता हूं जो कि उनके ही जिले सतारा से संबंधित है। मुझे याद है कि एक बार सतारा जिले के किसी गांव में ब्राह्मण और गैर ब्राह्मणों में झगड़ा इतना बढ़ गया था कि गैर ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों के पूर्ण बहिष्कार की घोषणा की थी। उन्हें दाढ़ी बनवाने के लिए नाई नहीं मिला; उन्हें गांव के बनिए ने सामान नहीं बेचा, उन्हें अपने कार्यों के लिए कामगार नहीं मिले। ब्राह्मणों को या तो दाढ़ी बनानी पड़ती थी या दाढ़ी बनवाने के लिए सात मील दूर सतारा तक पैदल चलकर जाना पड़ता था। इस तरह दलित वर्गों और गैर-ब्राह्मणों के बीच झगड़े हैं।

एक माननीय सदस्य : वे खत्म हो गए हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : दुर्भाग्यवश खत्म होने के बजाए झगड़े आम हो गए हैं। न सिर्फ हिन्दुओं के बीच आपसी झगड़े हैं, बल्कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच भी झगड़े हैं और ये झगड़े कोई साधारण नहीं हैं, गंभीर हैं। मैं मंत्री महोदय से यह कहना चाहता हूं कि वह विचार करें कि क्या ऐसे वातावरण में निर्वाचित पंचायत विभिन्न जातियों और विभिन्न वर्गों को निष्पक्ष न्याय दे सकेगी? यह एक प्रस्ताव है और मैं निवेदन करता हूं कि इस पर सदन व मंत्री महोदय को गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

अगला प्रश्न मैं यह पूछना चाहता हूं कि माननीय महोदय जिस न्यायपालिका को अस्तित्व में लाना चाहते हैं, क्या वे उससे उम्मीद करते हैं कि वह एक स्वतंत्र न्यायपालिका होगी? महोदय! उनका प्रस्ताव क्या है? उनका प्रस्ताव यह है कि न्यायपालिका का निर्वाचन होगा, जैसा कि पंचायत के प्रावधानों का अर्थ है। जो पंचायत न्याय की व्यवस्था करेगी, उस पंचायत का चुनाव गांव की वयस्क जनता द्वारा किया जाएगा। मैं उनसे यह पूछना चाहता हूं कि वह न्यायाधीश जिसे जनसाधारण के मतों के आगे झुकना है, क्या वह न्याय करने से पहले दो बार सोचेगा नहीं कि कहीं न्याय करते हुए वह मतदाता विशेष की भावना को ठेस तो नहीं पहुंचा रहा है। मान लीजिए, हिन्दू-मुसलमानों के बीच दंगे होते हैं; और मुसलमान को एक अपराध के लिए जिसकी सुनवाई पंचायत द्वारा होनी है, पंचायत के समक्ष लाया जाता है; पंचायत का एक हिन्दू सदस्य यह सोचता है कि न्याय मुसलमान के पक्ष में है। क्या मंत्री महोदय और सदन यह मानता है कि वह व्यक्ति जिसे कुछ महीने या वर्ष के अंतराल में चुनाव लड़ना है, वह यह सोचेगा कि उसे अपनी सीट बचाने की अपेक्षा मुसलमान के प्रति न्याय करना चाहिए? वह क्या करेगा?

दीवान बहादुर डी.आर. पाटिल : दंगों के मामले ग्राम पंचायत के समक्ष नहीं आते हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं इसे एक उदाहरण की तरह प्रस्तुत करता हूं। यह किसी और अपराध के लिए हो सकता है।

महोदय! मैंने ऐसी न्यायपालिका कहीं नहीं देखी, जिसका निर्वाचन किया जाता है। केवल अमरीका में न्यायपालिका का चुनाव होता है, और आप जानते हैं, इससे समस्त

अमरीकी संघ में न्यायाधीश बदनाम हो गए और साधारण न्याय भ्रष्टाचार का दूसरा नाम बन गया है। मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र ऐसा प्रयोग यहां पर नहीं करना चाहेंगे। मैं सदन का ज्यादा समय नहीं लेना चाहता और इन बातों को ध्यान में रखते हुए मैं बस इतना ही कहना चाहता हूं कि मैं विधेयक के दूसरे भाग में सम्मिलित सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करता हूं कि दीवानी और फौजदारी, दोनों न्यायिक अधिकार पंचायत को सौंपे जाएं, जो वास्तव में एक निर्वाचित न्यायपालिका है। महोदय! इस प्रेसिडेंसी में चल रही गतिविधियों को देखते हुए और विशेषकर दलित वर्गों की स्थिति देखते हुए मैं यह कहने को बाध्य हूं कि जहां तक हमारा सवाल है, हम पंचायत की देख-रेख में संचालित न्यायपालिका पर कभी अपनी सहमति नहीं दे सकते। हमारी बहुत विशिष्ट या कह सकते हैं कि बहुत करुणाजनक स्थिति है। हमारा एक छोटा समूह है, जो गांव के एक किनारे पर बसता है। हमें कभी भी गांव के समाज का अनिवार्य अंग नहीं समझा जाता। गांव में रहने के बावजूद भी हम बाहरी व्यक्ति माने जाते हैं, जिसकी प्रगति को बाकी समुदाय ईर्ष्या से देखता है। मेरे माननीय मित्र, श्री कामथ अपना सिर हिला रहे हैं, इसलिए मुझे लगता है कि मैं राज्य समिति की रिपोर्ट उनके समक्ष पढ़ूं, जो मैं पढ़ना नहीं चाहता था। समिति की रिपोर्ट के पैरा 102 में गांव में दलित वर्गों की स्थिति का विस्तृत ब्यौरा दिया गया है। समिति के अनुसार:

> यद्यपि समस्त सार्वजनिक सुविधाओं के अधिकार दिलाने के लिए हमने दलित वर्गों के लिए विभिन्न उपाय प्रस्तुत किए हैं, हमें डर है कि उनका इस्तेमाल करने में लंबे समय तक मुश्किलें आएंगी। पहली मुश्किल है, रूढ़िवादी वर्ग का उनके विरुद्ध खुली हिंसा का भय। यह ध्यान में रखा जाए कि प्रत्येक गांव में दलित वर्ग अल्पसंख्यक हैं, जिसके विपरीत विशाल रूढ़िवादी वर्ग है, जो किसी भी कीमत पर दलित वर्गों के संभावित हमले से अपने हितों व सम्मान की रक्षा करने को हर समय तैयार रहता है। पुलिस के मुकदमें चलाए जाने के भय के कारण रूढ़िवादी वर्ग द्वारा हिंसा का सहारा लेने पर रोक लगी है और इसके परिणाम स्वरूप ऐसे मामले इक्का-दुक्का ही होते हैं।
>
> दूसरी मुश्किल दलित वर्ग की वर्तमान आर्थिक स्थिति से उत्पन्न होती हैं। प्रेसिडेंसी के अधिकांश भागों में दलित वर्ग आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं हैं। कुछ लोग रूढ़िवादी वर्ग की भूमि पर उनकी इच्छा से पट्टेदार की हैसियत से खेती करते हैं। कुछ रूढ़िवादी वर्ग के खेतों पर मजदूरी करके निर्वाह करते हैं, और अन्य रूढ़िवादी वर्ग द्वारा दिए गए खाने या अनाज पर निर्भर हैं, जो उन्हें गांव के नौकर के रूप में काम करने के लिए मिलता है। हमने ऐसी कई घटनाएं सुनी हैं, जब रूढ़िवादी वर्ग ने अपने गांवों में दलित वर्गों के विरुद्ध अपनी आर्थिक शक्ति को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। जब दलित वर्गों ने अपने अधिकारों का उपयोग करने की कोशिश की, तो उन्हें भूमि से बेदखल कर दिया गया, उनके रोजगार खत्म कर दिए गए और गांव के नौकर के रूप

में उन्हें पारिश्रमिक देना बंद कर दिया गया। इस बहिष्कार की योजना अक्सर इतने विस्तृत पैमाने पर की जाती है कि दलित वर्गों पर सार्वजनिक सड़कें इस्तेमाल करने के लिए रोक लगा दी जाती है और गांव के बनिए को कहा जाता है कि उनको दैनिक उपभोग की आवश्यक वस्तुएं न बेचें। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार, कभी-कभी छोटे-छोटे कारण भी दलित वर्गों के विरुद्ध सामाजिक बहिष्कार की घोषणा के लिए पर्याप्त होते हैं। ऐसी घटनाएं दलित वर्ग द्वारा सार्वजनिक कुओं से पानी लेने के अपने अधिकार के प्रयोग करने पर होती हैं, लेकिन ऐसे मामले भी कम नहीं हैं, जब केवल इसलिए सख्त बहिष्कार की घोषणा की गई कि दलित वर्ग के व्यक्ति ने जनेऊ धारण कर लिया, भूमि का एक टुकड़ा खरीद लिया, अच्छे कपड़े या आभूषण पहन लिए या दुल्हे को घोड़े पर बिठाकर गली में से बारात निकाल ली।

महोदय! यही हमारी स्थिति है। हम हर तरफ से घिरे हुए हैं और मैं ऐसे लोगों के हाथों में दीवानी या फौजदारी, दोनों न्यायिक अधिकार देने के लिए अपनी सहमति नहीं दे सकता, जो हमारे लक्ष्य व उद्देश्यों को असफल करने के लगातार तथा सुविचारित षड्यंत्र कर रहे हैं।

एक माननीय सदस्य : नहीं, नहीं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मुझे मंत्री महोदय द्वारा प्रस्तुत किए गए विधेयक में निहित उद्देश्य के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। अगर मैंने उन्हें ठीक समझा है, तो वह केवल यह चाहते हैं कि गांव वालों को सस्ता और सुगम न्याय मिले। मुझे लगता है कि अपने विधेयक में उन्होंने जो न्यायिक प्रावधान दिए हैं, उनके अंतर्गत यही उद्देश्य निहित है।

अगर ऐसी ही बात है, तो मेरे ख्याल से इसे करने का एक और बेहतर तरीका है। यह आवश्यक नहीं है कि पंचायतों को न्यायिक अधिकार दिए जाएं। हमारे यहां नगरों में पहले से ही अवैतनिक मजिस्ट्रेटों की पीठ हैं। इस व्यवस्था को विस्तृत रूप देना पूर्णतः संभव है, जिससे कि हम प्रत्येक जिले को न्यायिक परिमंडलों में विभक्त कर सकें, सुविधा के अनुसार जिसका क्षेत्र दो या तीन मील तक फैला हो, और उस मंडल में न्यायिक कार्यों का निष्पादन करने के लिए तीन या अधिक व्यक्तियों को सरकार नामांकित करे – मैं 'नामांकित' शब्द पर जोर देता हूं। ये तीनों व्यक्ति एक दिन परिमंडल में मैजिस्ट्रेट की हैसियत से बैठेंगे और फौजदारी मामलों को सुलझाएंगे। इस तरीके से आप सस्ता और सुगम न्याय पा सकते हैं। साथ ही आपके पास स्थानीय प्रभाव और निर्वाचन व्यवस्था के अवगुणों से मुक्त न्यायपालिका होगी। महोदय, मेरे ख्याल से यह व्यवस्था उद्देश्य को पूरा करेगी। जो कुछ भी हो, मैं साफ शब्दों में कह देना चाहता हूं कि अगर मंत्री महोदय जोर देते हैं कि विधेयक जिस रूप में है, उसे उसी रूप में उसके समस्त प्रावधानों के साथ पारित कर दिया जाए, विशेषकर वे प्रावधान जिन्हें वह सिद्धांत मानते हैं, तो मैं कहना चाहता हूं कि मैं इस विधेयक का विरोध करता हूं (तालियां)।

II
पंचायत में दलित वर्गों का नामांकन*

डा. भीमराव अम्बेडकर: माननीय अध्यक्ष महोदय! मुझे इस विधेयक के प्रभारी माननीय मंत्री महोदय को यह संशोधन प्रस्तुत करने के लिए देरी से ही सही, बधाई देनी चाहिए, जिसके अंतर्गत इस प्रेसिडेंसी के दो मुख्य अल्पसंख्यकों को कुछ न्याय दिलवाने का प्रयत्न किया गया है। मैं मंत्री महोदय का आभारी तो हूं ही, मुझे लगता है कि अपने माननीय मित्र श्री सिन्हा द्वारा किए गए संशोधन का मुझे समर्थन करना चाहिए। मैं नहीं जानता कि स्थानीय स्वशासन के माननीय मंत्री और मेरे माननीय मित्र जो कि विपक्षी दल की अग्रिम पंक्ति में बैठे हुए हैं, उन दोनों के बीच मेरे आने से पहले इस सदन में क्या बातें हुईं, पर मैं समझता हूं कि जैसा कि स्थानीय स्वशासन के माननीय मंत्री ने संशोधन का प्रारूप तैयार किया है, उस पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। अगर वह वैसा ही रहे, जिस रूप में उन्होंने संशोधन पेश किया है, तो विपक्ष उसे सहर्ष स्वीकार कर लेगा।

महोदय! अगर यही स्थिति है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे माननीय मित्र श्री मिट्ठा द्वारा प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार करने में विपक्ष के माननीय सदस्यों को क्या कठिनाई है। महोदय! जैसा मैं मंत्री महोदय और अपने मित्र श्री मिट्ठा की स्थिति को समझता हूं, दोनों के बीच मुझे बहुत ही मामूली अंतर दिखाई देता है। स्थानीय स्वशासन के माननीय मंत्री ने अपने संशोधन को बहुत मोटे तौर पर प्रस्तुत किया है। वह अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्यों की ग्राम पीठ पर नियुक्ति की व्यवस्था और इस सदन में निर्णय लेने का दायित्व कलक्टर को सौंपना चाहते हैं। यह भारी दायित्व उन्होंने अल्पसंख्यकों के नाम मोटे तौर पर व्यक्त किया है, चाहे वे कोई भी हों। मेरे माननीय मित्र श्री मिट्ठा एक कदम आगे बढ़ गए हैं और उन्होंने कहा है कि ऐसा करते समय कलक्टर को विशेष रूप से मुसलमान व दलित वर्गों को ध्यान में रखना चाहिए। महोदय! मेरी समझ में नहीं आता है कि जो माननीय सदस्य संशोधन को मोटे तौर पर स्वीकार करते हैं, उन्हें उसमें विशेष उल्लेख से क्या आपत्ति है। क्या वह मानते हैं, या नहीं कि प्रांतों में अल्पसंख्यक हैं और मंत्री महोदय के प्रावधान इन अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए हैं? अगर अल्पसंख्यक हैं, तो उनका नाम विशेष रूप से एक धारा में उल्लिखित करने में क्या हानि है? अगर संशोधन में यह स्वीकार है कि

---

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 37, पृ. 323-24, 10 फरवरी 1933, माननीय रूस्तमेज वकील ने ग्राम पंचायत अधिनियम की धारा 37 (2) में एक संशोधन पेश किया, जिसमें उन्होंने ग्राम पीठ में अल्पसंख्यक समुदायों के लिए न्यायोचित व उचित प्रतिनिधित्व की मांग की। इस संशोधन में, श्री मोहम्मद सुलेमान कासम मिट्ठा ने एक और संशोधन पेश किया है जो इस प्रकार है:

'बशर्ते कि जब ऐसे वर्ग में केवल मुसलमान या दलित वर्गों के सदस्य हों, तब कलक्टर यथा प्रसंग कम से कम मुसलमान या दलित वर्ग का एक सदस्य ग्राम पीठ के सदस्य के रूप में नियुक्त करे।' डा. अम्बेडकर ने श्री मिट्ठा के इस संशोधन का समर्थन किया।

अल्पसंख्यकों की रक्षा करना आवश्यक है और यदि हम प्रेसिडेंसी की स्थिति से अवगत हैं कि प्रत्येक गांव में कोई और अल्पसंख्यक नहीं है, तो भी निश्चित रूप से दलित वर्ग व मुसलमान हैं। मेरी समझ में नहीं आता है कि अगर इन विशेष अल्पसंख्यकों का धारा में उल्लेख किया जाए, तो क्या आपत्ति हो सकती है। या तो हम ईमानदार बन कर यह कहें कि ऐसी धारा की कोई आवश्यकता नहीं है,जो विशेष अधिकार व सुरक्षा प्रदान करती है, या यह मान लें कि ऐसे समुदाय हैं जिन्हें विशेष सुरक्षा की आवश्यकता है, और अगर हम कार्य करना चाहते हैं,तो उस समुदाय को स्पष्ट करें,जिसे सुरक्षा की आवश्यकता है।

राव बहादुर जी. के. चितले: वह सुरक्षा क्या है?

डा. भीमराव अम्बेडकर: अगर हम मौजूदा स्थिति का ईमानदारी से सामना करना चाहते हैं, तो अधमना बने रहने की कोई गुंजाइश नहीं है।

महोदय! पूर्व वक्ता माननीय राव बहादुर चितले ने दो प्रस्तावों का समर्थन किया है। सबसे पहले, उन्होंने कहा है कि मेरे माननीय मित्र श्री मिट्ठा द्वारा प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार कर हम संविधि को विकृत कर रहे हैं। महोदय! मैं अपने माननीय मित्र को यह याद दिलाना चाहता हूं कि ऐसी आपत्तियों के लिए बहुत देर हो गई है। हमारे पास किसी प्रांत विशेष के लिए संविधान नहीं होगा। हमारे पास किसी विशेष प्रांत के लिए नहीं, बल्कि सभी प्रांतों के लिए संविधान होगा, संपूर्ण भारत के लिए एक संविधान होगा, जो इस सिद्धांत को जैसा कि हम चाह रहे हैं, उतनी ही स्पष्टता से मान्यता देगा।

माननीय सदस्य गण: वाह!

डा. भीमराव अम्बेडकर: अब बहुत देर हो चुकी है। जो अपील मेरे माननीय मित्र ने इस सदन में प्रस्तुत की है, यह वही अपील है,जो गोलमेज सम्मेलन में अनेक निष्ठावान लोगों ने की थी और महोदय! हम जानते हैं कि वह सब असफल हुए और न सिर्फ असफल हुए, बल्कि संविधान के नष्ट होने की नौबत तक आ गई। अगर मैं अपने निजी अनुभव से कहूं कि अगर गोलमेज सम्मेलन असफल रही, तो वह इन्हीं निष्ठावानों के सैद्धांतिक दृष्टिकोण की वजह से हुई।

महोदय! भारत यूरोप नहीं है। भारत इंग्लैंड नहीं है। इंग्लैंड में जातिप्रथा नहीं है। हमारे यहां है। परिणामस्वरूप, जो राजनैतिक व्यवस्था इंग्लैंड के लिए ठीक है, वह यहां अनुकूल नहीं हो सकती। हमें इस वास्तविकता को समझ लेना चाहिए। महोदय! एक कदम आगे चलकर मैं यह भी कहना चाहूंगा कि भारतीय राजनीति के अन्य छात्र चाहे जो कुछ भी कहें, मैं इसी प्रस्ताव का समर्थन करता हूं कि अगर भारत के संविधान में कुछ भी अच्छा होने जा रहा है, तो वह सांप्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व के सिद्धांतों को मान्यता है।

माननीय सदस्यगण: वाह, वाह!

डा. भीम राव अम्बेडकर: मैंने जो कहा है, उसके लिए मैं शर्मिंदा नहीं हूं। मैं जानता हूं और कह रहा हूं कि यह भारत के संविधान का सबसे श्रेष्ठ हिस्सा बनेगा। हम नहीं चाहते

कि हमारा अधिकार मात्र मत पेटी में वोट डालने तक सीमित रहे और मुझे पता ही न चले कि हमारा प्रतिनिधि कौन है और हमारा प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई प्रतिनिधि होगा भी या नहीं। हम ऐसी व्यवस्था चाहते हैं, जिसमें न सिर्फ हमारे पास वोट डालने का अधिकार हो, बल्कि यह भी अधिकार हो कि हम अपने वर्ग के लोगों को सदन में लाएं, जो न सिर्फ विचार-विमर्श में, बल्कि निर्णय में हिस्सा भी लें। इसलिए मैं कहता हूं कि सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व कोई खराब चीज नहीं है, यह जहर नहीं है। यह इस देश में विभिन्न वर्गों की सुरक्षा करने के लिए श्रेष्ठ व्यवस्था है। मैं इसे संविधान की विकृति नहीं कहूंगा . . .।

डा. एम. के. दीक्षित: सजावट।

डा. भीमराव अम्बेडकर: हां, संविधान की सजावट। फिर मेरे माननीय मित्र पूछते हैं कि क्या हम इस सिद्धांत को न्यायपालिका में लागू कर सकते हैं? यदि मेरे माननीय मित्र मुझे विश्वास दिला दें कि वर्तमान न्यायपालिका में सांप्रदायिक आधार पर पक्षपात नहीं होता और एक ब्राह्मण न्यायाधीश जब ब्राह्मण वादी और ब्राह्मण प्रतिवादी के बीच निर्णय देने बैठता है, वह केवल न्यायाधीश की तरह फैसला करता है, तो शायद मैं उनके प्रस्ताव का समर्थन करूंगा। पर मैं जानता हूं कि हमारे यहां किस प्रकार की न्यायपालिका है। अगर मेरे माननीय मित्र और इस सदन के सदस्यों में धैर्य है, तो मैं अनेक ऐसी कहानियां सुना सकता हूं कि न्यायपालिका ने अपनी स्थिति का दुरुपयोग किया है और अनैतिकता बरती है (ठहाका)।

यह इसलिए है, क्योंकि हमें विश्वास नहीं है कि जिन्हें हम ग्रामवासी कहते हैं, जो एक-दूसरे से खून के रिश्ते से बंधे हैं, जो मित्रता तथा पारिवारिक संबंधों से जुड़े हुए हैं, वे राजनैतिक व न्यायिक अधिकारों का इस्तेमाल करके अन्य वर्गों को नीचा दिखाने के लिए षड्यंत्र नहीं रचेंगे। ऐसी प्रवृत्ति को रोकने के लिए हमें यह प्रावधान चाहिए।

महोदय! मुझे कोई संदेह नहीं है कि संविधान का यह एक बेहतर प्रावधान है और मैं दिल से अपने माननीय मित्र श्री मिट्ठा द्वारा रखे गए संशोधन का समर्थन करता हूं।

****

राव बहादुर आर. आर. काले *: महोदय! तब तो मैं इस प्रेसिडेंसी की न्यायपालिका के संदर्भ में अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर की टिप्पणियों पर आपत्ति करता हूं। उनकी इस बात से मुझे दुख हुआ है कि उन्होंने हमारी न्यायपालिका की सदाशयता और सहजता पर संदेह किया है, जिसे प्रिवी काउंसिल तक ने जब मामला ट्रिब्यूनल में गया था, सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया था। . . . उच्चतम ट्रिब्यूनल, यानी प्रिवी काउंसिल ने समय-समय पर दिए गए अपने निर्णयों में इसे संपूर्ण विश्व की सर्वश्रेष्ठ न्यायपालिका कहा है।

एक माननीय सदस्य: पूरे विश्व की?

राव बहादुर आर. आर. काले: हां, पूरे विश्व में। मेरा कहना है कि यह निश्चित रूप से एक गंभीर आक्षेप है कि न्यायपालिका सांप्रदायिक भावना से प्रभावित है। जब मैंने यह सुना कि मेरे माननीय मित्र डा.

---

* *बॉम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 37, पृ. 326-27, 10 फरवरी 1933

अम्बेडकर ने यह कहा है कि 'मैं जानता हूं कि किस तरह की न्यायपालिका हमारे यहां है, जो कि मामले सुलझाने में सांप्रदायिकता के निर्देश पर चलती है', तो मुझे बहुत दुख हुआ।

मौलवी सर रफीउद्दीन अहमद: ऐसा किसने कहा था?

राव बहादुर आर.आर.काले: माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर ने।

मौलवी सर रफीउद्दीन अहमद: आपका बहनोई।

राव बहादुर आर. आर. काले: बहनोई से आपका क्या मतलब है? यह मेरे पिता या बेटा भी हो सकते हैं। मैं निश्चित रूप से सदन में किसी के भी द्वारा लगाए गए ऐसे आक्षेप से नफरत करता हूं। वह चाहे मेरा बहनोई हो या पिता या मेरा बेटा, मैं परवाह नहीं करता। इस प्राधिकृत स्थान पर न्यायपालिका की संपूर्ण प्रणाली पर लगाए गए इस आरोप से मुझे बहुत दुख हुआ है, जबकि वह अपना बचाव करने के लिए यहां उपस्थित नहीं है। मुझे नहीं मालूम कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर को न्यायिक मामलों का कितना अनुभव है। हो सकता है, उन्हें कोई अनुभव हुआ हो, पर मेरा चालीस वर्षों से ज्यादा का अनुभव है, और मैं यह कह सकता हूं कि निचली अदालत से लेकर उच्च अदालत तक, जिसमें उच्च न्यायालय और छोटी अदालतें तक सम्मिलित हैं, मेरे सामने ऐसा कोई मामला नहीं गुजरा है, जहां न्यायाधीश ने मुकदमें का फैसला करते हुए सांप्रदायिकता के आधार पर पक्षपात किया हो। इसलिए मैं अपने माननीय मित्र द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव पर आपत्ति करता हूं। मैं डा. अम्बेडकर जैसे विचार रखने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति को समझ सकता हूं कि क्यों वे ग्राम पीठ में भी विशेष समुदाय का प्रतिनिधित्व चाहते हैं। यह उनकी मानसिकता को दर्शाता है।

श्री एल.आर. गोखले (पूना नगर): माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर यहां थे और मुझे खेद है कि वह चले गए हैं। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि जब उप न्यायाधीश को इस माननीय सदन में उन्हीं की उपस्थिति में बदनाम किया गया, तो न्यायपालिका से संबधित विपक्ष के माननीय सदस्यों ने विरोध में एक भी शब्द नहीं कहा।

श्री बी. एस. कामथ: महोदय! उनके मुद्दे पर आने से पहले, मैं यह अवश्य कहना चाहता हूं कि इस तीसरे पहर इस अवसर और क्या विशेष उद्देश्य से उनकी सेवा की मांग की गई थी या यह सुखद इत्तफाक था कि वह इस सदन में आए, मुझे वास्तविकता से कोई मतलब नहीं है, मैं यह मानता हूं कि इस तरह संसदीय कार्यवाही को ध्यान में रखते हुए सदन के दूसरे पक्ष की बात सुने बिना वक्ता का सदन से गायब हो जाना उचित नहीं है, वैसे ही जैसे धूमकेतु क्षितिज से विलीन हो जाता है। यह संसदीय शिष्टता के विरुद्ध और अनुदारता है . . .।

****

राव बहादुर जी. के. चितले * (जिला अहमदनगर) : (व्यवस्था का प्रश्न उठाते हुए) महोदय! मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा ब्राह्मण न्यायपालिका पर वर्ग के रूप में कल लगाया गया आक्षेप एक ऐसा उदाहरण है, जो मैंने इन परिषदों में कभी नहीं देखा, हालांकि वे इन अधिकारों का निष्पादन पिछले 12 वर्षों से कर रही हैं। इन परिस्थितियों में, अगर एक वर्ग की खुली निंदा की जाती है, मैं सोचता हूं कि दूसरा पक्ष इस बात पर ध्यान दे कि यह पक्ष अल्पसंख्यक वर्ग से आने वाले प्रत्येक अफसर की निंदा करने पर बल देगा। महोदय! मैं इसलिए सोचता हूं कि इस संदर्भ में एक आधिकारिक आदेश की व्यवस्था देना निहायत आवश्यक है, क्योंकि मुझे सत्ता पक्ष का जिनके हाथों में अपने मातहतों की प्रतिष्ठा निहित है, उनको बिल्कुल चुप बैठे देख दुख हुआ है।

माननीय श्री आर. डी. बेल: महोदय! . . . इससे पहले कि बहस आगे बढ़े, अगर कोई बहस होनी

**बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 37, पृ. 339-40,11 फरवरी 1993

है तो मुझे लगता है कि सदन को माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर द्वारा कहे सही शब्दों को जानना जरूरी है।

मौलवी सर रफीउद्दीन अहमद: महोदय! चूंकि इस बहस का संबंध माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर की उपस्थिति से है, इसलिए अगर यह बहस तभी हो जब वह यहां हों, तो ज्यादा प्रासंगिक होगी।

माननीय अध्यक्ष : . . . माननीय सदस्य सर रफीउद्दीन अहमद द्वारा दिया गया सुझाव माना नहीं जा सकता, और सदन डा. अम्बेडकर के इस सदन में आने का इंतजार नहीं कर सकता। उनका आना बहुत ही अनिश्चित है, इसलिए ऐसा नहीं हो सकता। पर इस बीच मुझे लगता है कि भाषण के सही शब्दों को जानना ठीक होगा और उसके बाद सदन निर्णय करने की बेहतर स्थिति में होगा। (जो कल कहा गया था, उसे पढ़ा गया)।

माननीय श्री आर. डी. बेल: अध्यक्ष महोदय! ऐसा भी तो हो सकता है कि माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर ने अभी तक अपने भाषण की टंकित प्रति न देखी हो और इसलिए आपके और माननीय सदस्य श्री कामथ द्वारा व्यक्त किए गए खेद में पूरी तरह भागीदार नहीं बन सके। उनके समर्थन में हम कह सकते हैं कि वह न कल उपस्थित थे और न ही आज उपस्थित हैं, जिससे उन्हें अपने इन शब्दों की व्याख्या करने का अवसर मिल पाता। फिर वह कैसे सफाई दे सकते हैं कि 'सरकार' का न्यायपालिका में पूरा विश्वास है।

माननीय अध्यक्ष: मुझे खुशी है कि सदन के माननीय गृह सदस्य ने अपना वक्तव्य दिया। उनके द्वारा दिए गए वक्तव्य के पश्चात सदन के पास जानने के लिए कुछ नहीं है।

मैं आगे कहना चाहता हूं कि निश्चित रूप से यह किसी भी विभाग के कार्य के लिए बड़ा आपत्तिजनक, अशोभनीय और अनुचित है। मैं व्यक्तिगत रूप से मानता हूं कि उन माननीय सदस्य, जिनका भाषा पर अधिकार है, या सोचते हैं कि उनके पास अभिव्यक्ति की देन है, वे उत्तेजना में आकर किसी क्षण हद से आगे बढ़ जाते हैं और बाद में खाली समय में सोचने पर पछताते हैं। जैसा कि सदन के माननीय सदस्य ने बताया, यह स्पष्ट है कि माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर ने अभी तक अपने वक्तव्य की टंकित प्रति नहीं पढ़ी है। मुझे यकीन है कि अगर वह पढ़ते, तो वह महसूस करते और उन्हें महसूस करना चाहिए, जैसा कि पूरा सदन महसूस कर रहा है। मैं स्वयं इस सदन के माननीय सदस्य को सचेत करना चाहता हूं कि समग्र न्यायपालिका जैसी सम्मानित संस्था की आम निंदा करना बिल्कुल अशोभनीय है। मुझे लगता है कि माननीय सदस्य गलत थे और उठाया गया मुद्दा भविष्य में सदन के मार्गदर्शन के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। मैं सरकारी पक्ष और विपक्ष के सदस्यों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से सहमत हूं। (तालियां). . .

III

डा. अम्बेडकर का वक्तव्य: अपने भाषण के संदर्भ में*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मेरे माननीय मित्र श्री मिट्ठा द्वारा प्रस्तावित संशोधन के संदर्भ में शुक्रवार को मैंने अपने भाषण में कुछ टिप्पणियां की थीं, उनकी उपयुक्तता के संबंध में आरोप लगाते हुए मेरे माननीय मित्र राव बहादुर चितले ने पिछले शनिवार को व्यवस्था का प्रश्न उठाया था, उसका स्पष्टीकरण देने के लिए मैं आपकी अनुमति चाहता हूं।

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 37, पृ. 400-403, 13 फरवरी 1933

महोदय! जब शनिवार को यह मुद्दा उठाया गया था, तभी मैं इसका स्पष्टीकरण देने को उत्सुक था। पर कार्यालय से मुझे अपने भाषण तथा व्यवस्था के प्रश्न पर दिए गए मेरे माननीय सदस्यों के वक्तव्यों की प्रतिलिपियां नहीं प्राप्त हो सकीं। मुझे कार्यालय में बताया गया कि परिषद की बैठक समाप्त होने से पहले मुझे प्रतिलिपि देना संभव नहीं है। परिणामस्वरूप, उस समय मुझे अपना स्पष्टीकरण स्थगित करना पड़ा। मुझे खेद है कि यह जाने बिना ही यह प्रश्न उठा दिया गया है कि अपने भाषण की टंकित प्रति को मैं सही मानता हूं या नहीं। मेरा निवेदन है कि न्याय के बुनियादी नियमों में से एक यह है, मैं अदब के साथ कहना चाहता हूं कि जब तक उन बातों के बारे में पूरी तरह आश्वस्त न हो लिया जाए, कोई निष्कर्ष न निकाला जाए। मुझे अफसोस है कि मुझे इस नियम का लाभ नहीं दिया गया। मेरे माननीय मित्र श्री कामथ द्वारा प्रस्तुत तर्क के आधार पर यह कहा गया कि मुझे इस शिष्टाचार का अधिकार नहीं है, क्योंकि शुक्रवार को भाषण देने के बाद मेरा अचानक चला जाना संसदीय शिष्टाचार के नियमों का उल्लंघन है। सबको हमेशा माननीय सदस्य श्री कामथ से शिष्टाचार सीखने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि जैसा कि हम सब जानते हैं कि वह भारतीय राजनीतिज्ञों की उस प्राचीन उदारवादी श्रेणी के हैं, जिन्होंने संसदीय जीवन व्यतीत करते हुए अपने बाल सफेद कर लिए हैं। इस मामले में मैं यह कहने की हिम्मत करूंगा कि शिष्टाचार के जिस नियम का आधार लिया गया है, वह यहां लागू नहीं होता। अगर मैंने नियमों को ठीक से समझा है, तो उसमें कहा गया है कि सदस्य को भाषण देने के बाद सदन नहीं छोड़ना चाहिए, बल्कि जवाब सुनने का इंतजार करना चाहिए। पर यह तभी लागू होता है, जब भाषण के दौरान सदस्य ने सदन के अन्य सदस्य की व्यक्तिगत रूप से अवमानना की हो। मेरा विचार है कि उस मामले में इसे लागू नहीं किया जा सकता, जहां सदस्य ने सामान्यत: प्रचलित तथ्यों के आधार पर सामान्य तर्क प्रस्तुत किए हों। अगर ऐसा नियम लागू करते हैं तो महोदय, प्रत्येक सदस्य जिसने विचार-विमर्श में भाग लिया हो, उसे प्रश्न पूछे जाने तक उपस्थित रहना चाहिए तथा बहस में प्रत्येक भाषण को सुनना चाहिए। मैंने माननीय सदस्य श्री कामथ को कोई चुनौती नहीं दी, या सदन के किसी माननीय सदस्य से कोई प्रश्न नहीं पूछे थे। मेरे लिए जवाब में सुनने को कुछ नहीं था, इसलिए मैं बैठने को बाध्य नहीं था और मुझे एक महत्वपूर्ण कार्य निबटाना था। बिना सुनवाई के दोषी नहीं ठहराने के नियम का लाभ मुझे न मिलने का दूसरा कारण यह भी है कि मैं पूर्ण-कालिक सदस्य नहीं हूं तथा किसी को भी निश्चित रूप से यह पता नहीं है कि कब मैं उपस्थित होऊंगा। मैं व्यवस्था के प्रश्न पर व्यक्त विचार का आदर करता हूं। मैं मानता हूं कि शायद मैं अपनी अनुपस्थिति की अनियमितता में ज्यादा नियमित हूं, यद्यपि उपयोगिता के मापदंड के अनुसार मैं अवश्य कहूंगा कि इस सदन का सदस्य होने के नाते जो भी कार्य करने के लिए मैं काबिल हूं, चाहे अंदर या बाहर, वह सममूल्यता के नीचे नहीं गिरेगा। चाहे मैं नियमित हूं या अनियमित, मुद्दा यह नहीं है। मेरे विचार में मुद्दा यह है कि माननीय सदस्य ने मामले को तभी क्यों नहीं उठाया था, जब मैं

बोल रहा था? अगर मैं व्यवस्था का प्रश्न उठाने की प्रक्रिया को सही ढंग से समझता हूं, जो प्रक्रिया यह होनी चाहिए कि जो सदस्य शिकायत करना चाहता है, वह तभी अध्यक्ष का ध्यान उस ओर आकर्षित करे, जब कि व्यवस्था का कथित उल्लंघन हो रहा हो। इसलिए मुझे यह बड़ा अजीब लगता है कि उस समय आहत पक्ष ने कुछ नहीं किया, एक रात सोचा और बिना नोटिस के अगली सुबह अपना दुख व्यक्त किया और फिर शिकायत की कि दोषी कठघरे में उपस्थित नहीं है। उचित प्रक्रिया यह होती कि जब मैं बोल रहा था, तभी उन्होंने तुरंत व्यवस्था का प्रश्न उठाया होता, या बिना पक्षपात से कहें तो उनको नोटिस देना चाहिए था।

व्यवस्था के प्रश्न के सार के संदर्भ में, मैं चाहता हूं कि मैंने जो कहा है कि टंकित प्रति को मैं सही रिकार्ड के रूप में स्वीकार नहीं करता, उसके अनुसार तो यह लगता है कि जैसे मैंने संपूर्ण न्यायपालिका पर बड़े पैमाने पर इल्जाम लगाया है, जो निश्चित रूप से न तो मेरी इच्छा थी, न ही मेरा उद्देश्य। प्रतिलिपि में लिखा है:

> एक ब्राह्मण न्यायाधीश जब एक ब्राह्मण वादी और ब्राह्मण प्रतिवादी के बीच मामला सुलझाने के लिए निर्णय करने बैठता है, तो वह मात्र न्यायाधीश की तरह निर्णय करता है . . .।

यह सही नहीं है, मैं उस मामले की बात नहीं कर रहा था, जिसके झगड़े में ब्राह्मण भागीदार थे। मैं उस मामले की बात कर रहा था, जहां वादी, प्रतिवादी ब्राह्मण व गैर-ब्राह्मण थे। फिर 'बिना सांप्रदायिक पक्षपात के' शब्दों के बाद 'केवल न्यायाधीश की तरह निर्णय करते हैं' छूट गया है। जो महत्वपूर्ण शब्द मैंने अर्थ को सीमित करने के लिए प्रयोग किए थे, वे इस वाक्य 'न्यायपालिका ने अपनी प्रतिष्ठा का हनन किया और दुरुपयोग किया है' में से छूट गए हैं।

इस सुधार से यह प्रमाणित हो जाएगा कि समग्र न्यायपालिका की निंदा करने का मेरा कोई इरादा न था, न ही मैं उसके समग्र आचरण पर कोई निर्णय देना चाहता था। दूसरे, न्यायिक सेवा में ब्राह्मणों के ऊपर प्रतिकूल टिप्पणी करने का भी मेरा कोई इरादा न था। वास्तव में, मैं यह कहना चाहता हूं कि जब मैंने ब्राह्मण न्यायपालिका का उल्लेख किया, तो मेरा आशय उनकी विशेष निंदा के लिए नहीं था। मैंने तो मुद्दे को सामान्य रूप से उठाया था और ब्राह्मणों का उदाहरण स्पष्टीकरण के लिए दिया था। यह इस तथ्य से प्रमाणित हो जाता है कि अपने भाषण के अंत में इसके गठन में किसी भी तत्व को विशिष्ट माने बिना मैंने न्यायपालिका का सामान्य रूप में जिक्र किया था। इसलिए जो तर्क मैं कर रहा था, उसके लिए यह महत्वपूर्ण है कि मेरा समग्र न्यायपालिका की निंदा करना या विशेष अभिज्ञान के लिए किसी विशेष तथ्य को अलग कर देना, नितांत अनावश्यक था। माननीय सदस्य राव बहादुर चितले द्वारा उठाए गए मुद्दे का मैं जवाब दे रहा था कि न्यायपालिका का सांप्रदायिक

झुकाव है या नहीं। मेरा उनको जवाब यह था कि सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत हम रहते हैं, उसके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक झुकाव आवश्यक है। मैंने स्पष्टीकरण के रूप में ब्राह्मण न्यायाधीश की बात कही है, क्योंकि मैं एक प्रतिपक्षी को जवाब दे रहा था, जो संयोगवश ब्राह्मण था। अगर मेरा प्रतिपक्षी गैर–ब्राह्मण या मुसलमान होता, तो मैं उनका उदाहरण देने में नहीं हिचकिचाता। महोदय! मैं नहीं जानता कि क्या आप उस वक्तव्य को, जो आरोप लगाता है कि न्यायपालिका सांप्रदायिक मामलों में सांप्रदायिक झुकाव दर्शाती है, अनुचित कहेंगे। इसका निर्णय मैं आप और इस सदन पर छोड़ता हूं। मैं यही कहना चाहता हूं कि इस आधार को भारतीय दंड विधान संहिता तक ने मान्यता दी है। हमारे यहां भारतीय दंड विधान संहिता के अंतर्गत एक धारा है, जो किसी वादी–प्रतिवादी को यह अनुमति देती है कि वह अपने केस को (दूसरी कचहरी में) स्थानांतरण के लिए मांग करने की इस आधार पर अनुमति देती है, कि वह न्यायाधीश पक्षपाती है। हमारे यहां भारतीय दंड विधान संहिता में यह प्रावधान है, जिसके अंतर्गत एक न्यायाधीश को उस मामले को जिसमें उसका अपना स्वार्थ होता है, निबटाने से रोका जा सकता है। दूसरे, यह दृष्टिकोण कि न्यायपालिका पक्षपाती है, वह सांप्रदायिक आचरण के मुद्दे पर सांप्रदायिक पक्षपात प्रदर्शित करेगी, इसे विधेयक में भी मान्यता दी गई है। अधिकांश माननीय सदस्यों को यह याद होगा कि विधेयक मूल रूप से इस सिद्धांत पर आधारित है कि संपूर्ण ग्राम पीठ निर्वाचित पंचायत होनी चाहिए। प्रथम वाचन में मैंने अनुरोध किया था कि प्रतिबद्ध न्यायपालिका के गठन को इस सिद्धांत पर आधारित करना उचित नहीं है और मुझे लगता है कि उसकी प्रतिक्रियास्वरूप न्यायपालिका के उस भाग में परिवर्तन की व्यवस्था की गई। महोदय! मैं उसे सांप्रदायिक झुकाव के अस्तित्व का प्रमाण मानता हूं। अंत में, जिन्होंने व्यवस्था का मुद्दा उठाया है, उन्होंने भी व्यवस्था के प्रश्न पर अपने भाषण में मैंने जो कहा, उसको मान्यता दी है। उन्होंने इन अनिष्टकारी शब्दों में माननीय गृह सदस्य को धमकी दी है: 'अगर माननीय गृह सदस्य मेरा खंडन नहीं करते हैं,' तो माननीय सदस्य अल्पसंख्यक के हर अधिकारी पर आक्रमण करना आवश्यक समझेंगे। ऐसी कारगुजारी उस वक्त तक संभव नहीं है, जब तक कि उन्हें मेरे द्वारा उल्लिखित तथ्यों के अस्तित्व में विश्वास न हो। मेरे माननीय मित्र को जिस बात ने दुख पहुंचाया है, वह मुख्य मुद्दा नहीं था, बल्कि एक उदाहरण को लेकर झमेला किया गया। अगर मैंने अपनी बात मुसलमान या गैर ब्राह्मण का उदाहरण देते हुए की होती, तो व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया जाता, संभवतया मुक्त कंठ से मेरी प्रशंसा की जाती। बस यही मुझे कहना है।

13 फरवरी 1933 को डा. अम्बेडकर द्वारा वक्तव्य के बाद, माननीय अध्यक्ष ने अम्बेडकर के भाषण में निहित आलोचना का स्पष्टीकरण किया, परिषद में शिष्टाचार व भाषण के गुणावगुण पर विवेचन किया और अंत में कहा:

मुझे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना है। माननीय सदस्य द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण स्वीकार

कर लेना चाहिए, कि उनका अभिप्राय संपूर्ण न्यायपालिका की निंदा करना नहीं था, बल्कि वह यह कहने का प्रयास कर रहे थे कि ऐसी घटनाएं घटी हैं, जब न्यायपालिका में सांप्रदायिकता के आधार पर पक्षपात होते देखा गया है।

IV*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! क्या आप स्पष्ट करेंगे? आपने जो कहा मेरी समझ में नहीं आया है। मुझे आपकी यह बात तो समझ में आई है कि विधेयक के तीसरे वाचन के समय माननीय सदस्य उसका उस मुद्दे पर विरोध नहीं कर सकते, जिसको पहले उठाया ही नहीं गया था, या दूसरे वाचन के समय उस मुद्दे पर विधेयक को अस्वीकार कर दिया हो। क्या मैं सही हूं? अगर मुद्दा दूसरे वाचन में न लिया गया हो या किसी एक मुद्दे पर दूसरे वाचन के दौरान कोई एक सदस्य या विपक्ष सदन में हार जाए, तो वही विपक्ष उसी प्रश्न पर विधेयक के तीसरे वाचन का विरोध नहीं कर सकता है। महोदय! क्या यह ठीक है?

माननीय अध्यक्ष: नहीं, नहीं! कुछ दिन पहले इस सत्र में जब पहली बार अवसर आया, मैंने अपना निर्णय दिया था। तब माननीय सदस्य उपस्थित नहीं थे। मैं उनके लिए दोहराऊंगा। माननीय सदस्य एक संवैधानिक वकील होने के नाते, अच्छी तरह से जानते हैं कि एक विधेयक का वाचन तीन बार होता है। विधेयक की पहली अवस्था में, यानी प्रथम वाचन में उसके सिद्धांतों पर विचार-विमर्श होता है। उसके बाद अगर विधेयक को प्रवर समिति के सुपुर्द किया जाता है, तो प्रवर समिति की स्वीकृति के पश्चात सदन विधेयक की आलोचना करने की स्थिति में होता है और अगर इसे प्रवर समिति को नहीं सौंपा जाता है, तब दूसरे वाचन के दौरान विधेयक को खंड-प्रतिखंड परखा जाता है तब संशोधन किए जाते हैं। माननीय सदस्य जो कुछ भी करना चाहते हैं, वह इस वाचन के दौरान कर सकते हैं। सदन में अन्य माननीय सदस्यों की तरह माननीय सदस्य भी हो सकते हैं, जो शायद विधेयक के दूसरे वाचन के दौरान उपस्थित नहीं थे। वह अब तीसरे वाचन के दौरान आते हैं। वह विधेयक का विरोध कर सकते हैं, जब विधेयक पहले वाचन से दूसरे वाचन में जाता है, और खंड-प्रतिखंड निरीक्षण करने की अवस्था में उसका स्वरूप बदल जाता है। तब माननीय सदस्य तीसरी अवस्था में तीसरे वाचन पर उन विशेषताओं पर उंगली उठाते हुए, जो दूसरे वाचन के दौरान शामिल की गई थीं और जो उन्हें आपत्तिजनक लगीं, उन पर आपत्ति कर सकते हैं। बस यही मेरा निर्णय है, मैं किसी भी माननीय सदस्य को तीसरे वाचन में विरोध करने से नहीं रोकता हूं। हम माननीय सदस्य राव साहब कुलकर्णी का उदाहरण लें। उन्होंने कई संशोधन प्रस्तुत किए थे, जिन्हें स्वीकृत नहीं किया गया और उन्होंने उन्हीं आधारों पर फिर से तीसरे वाचन का विरोध किया है। उनका कहना है कि वह विधेयक का इसलिए विरोध कर रहे हैं, क्योंकि वह अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं करता है और उन्होंने जो संशोधन प्रस्तुत किए, उन्हें स्वीकृत नहीं किया गया अथवा उन पर विचार नहीं किया गया, और उन्होंने अब तीसरे वाचन में उसका विरोध किया है, क्योंकि यह उनके दृष्टिकोण से संतोषजनक नहीं है। इसी तरह चाहे किसी माननीय सदस्य ने कोई संशोधन प्रस्तुत किया हो या नहीं, वह तीसरे वाचन में उसका विरोध कर सकते हैं, लेकिन उन्हें दूसरे वाचन में किए गए परिवर्तन या नहीं किए गए परिवर्तनों तक अपने को सीमित रखना होगा, और वह पहले वाचन पर न जाएं तथा सामान्य सिद्धांतों के संबंध में बार-बार उन तर्कों को न दें जिनके लिए उचित समय पहला वाचन था।

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 37, पृ. 2197-98, 24 मार्च 1933

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मेरा मानना है कि आपकी टिप्पणियां तर्कों के इस्तेमाल तक सीमित हैं, मुद्दों पर नहीं। मैं इसी बात को अलग ढंग से पेश करता हूं। मैं अपना ही उदाहरण देता हूं। मैं कुछ सिद्धांतों पर विधेयक का विरोध करता हूं। मेरा मानना है कि जिन सिद्धांतों पर यह विधेयक आधारित है, वह गलत है और यह सदन जिसने बहुमत से विधेयक को स्वीकार किया है, वह मेरे विरुद्ध है और उन सभी माननीय सदस्यों के विरुद्ध है, जिनका दृष्टिकोण मेरे जैसा है। क्या मैं इस विधेयक के तीसरे वाचन का विरोध करने का हकदार नहीं हूं, क्योंकि मैंने पहले वाचन में जिन सिद्धांतों का विरोध किया था, वे विधेयक में मौजूद हैं?

माननीय अध्यक्ष: नहीं, यह मेरा निर्णय नहीं है। माननीय सदस्य ऐसा नहीं कर सकते और उन्हें इसका अधिकार भी नहीं है, क्योंकि उनके पास तीसरे वाचन से पहले ऐसा करने का अवसर था।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मान लीजिए, तर्क को थोड़ा आगे बढ़ाते हुए, मेरे संशोधन विधेयक के दूसरे वाचन में रद्द कर दिए जाते हैं, और सदन में विधेयक को उसके मूल सिद्धांतों के साथ स्वीकार कर लिया जाता है तो क्या मुझे विधेयक के तीसरे वाचन का विरोध करने का अधिकार नहीं मिलता है? इस आधार पर कि जिन प्रावधानों का मैंने विरोध किया अब तक इसमें मौजूद हैं?

माननीय अध्यक्ष: नहीं, मैं अपने निर्णय पर अडिग हूं। वह ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि सदन के समक्ष उन्होंने अपने विचार रखे और बहुमत ने उनके विरुद्ध निर्णय लिया। अब हम तीसरे वाचन की अवस्था में हैं। वरना तीनों अवस्थाओं का कोई महत्व नहीं रहता।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! आपके निर्णय के पश्चात अल्पसंख्यकों के पास, जिन्होंने प्रत्येक अवस्था में विधेयक का विरोध किया है, यही विकल्प है कि वे इसके विरुद्ध मत दें, अन्यथा अगर बहुमत यह निर्णय करेगा कि यह विधेयक अच्छा है और अल्पसंख्यक उसका विरोध करेगा, तो अल्पसंख्यकों के पास अपनी आपत्ति को दर्ज करने का कोई अवसर न होगा।

माननीय अध्यक्ष: यह बिल्कुल सही है। अल्पसंख्यकों को तीसरे वाचन के दौरान विधेयक के विरुद्ध मत देने का अधिकार है। वे मत विभाजन करा सकते हैं और इसके विरुद्ध मत दर्ज कर सकते हैं। लेकिन प्रथम वाचन में नीतिगत मामलों पर बहस करना गलत होगा।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! बिल्कुल सही। आपका कथन इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता है कि हमारे अधिकारों पर रोक लगाई जाती है।

माननीय अध्यक्ष: नहीं, यह ठीक है।

9
स्थानीय बोर्ड अधिनियम-संशोधन विधेयक *

I*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर): अध्यक्ष महोदय! पूना समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद मैं पृथक निर्वाचन के मामले पर विचार-विमर्श करने के लायक नहीं रहा हूं। इसलिए, मैं विधेयक के उस भाग के बारे में कुछ नहीं कहूंगा, जिसका संबंध विभिन्न अल्पसंख्यकों के लिए प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने से है और जिसके लिए इस विधेयक में प्रावधान रखा गया है। संभवत: मेरे लिए इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि संयुक्त बनाम पृथक निर्वाचन के इस जटिल प्रश्न को मैं किस नजरिए से देखता हूं। महोदय! मैं इसे इस ढंग से देखता हूं कि यदि विभिन्न अल्पसंख्यकों के लिए संयुक्त निर्वाचन प्रणाली लागू की जाती है, तो इसका क्या प्रभाव होगा। मेरे विचार से यह होगा कि पांच वर्षों में चुनाव के समय एक दिन हिन्दू और मुसलमान सामूहिक रूप से मतदान केंद्र पर जाएंगे। मुझे नहीं पता कि संयुक्त निर्वाचन के परिणामस्वरूप इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है। (व्यवधान)। कृपया, मुझे पांच वर्षों की शेष अवधि के बारे में अपनी बात कहने दें। उदाहरण के तौर पर, मैं कह सकता हूं कि चुनाव के दिन के अलावा मुसलमान पृथक जीवन बिताने में विश्वास करेंगे, अपने आपमें सीमित समाज के रूप में। मुझे नहीं लगता है कि संयुक्त निर्वाचन के परिणामस्वरूप, मुसलमान और हिन्दू एक ही चाल में इकट्ठा रहने लगेंगे। मैं नहीं समझता हूं कि संयुक्त निर्वाचन के परिणामस्वरूप मुसलमानों और हिन्दुओं के अंतर्जातीय विवाह होने लगेंगे। मैं नहीं मानता हूं कि संयुक्त निर्वाचन के परिणामस्वरूप, हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ भोजन करेंगे। महोदय! ऐसी स्थिति में मेरा सुविचारित मत है कि अगर हम एकता स्थापित करना चाहते हैं, तो यह काम किसी एक दिन को तय करने से नहीं होगा, चाहे वह दिन कितना ही पवित्र क्यों न हो, जब हिन्दू और मुसलमान, दोनों

* *बॉम्बे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 2, पृ. 326-29, 18 जनवरी 1938

एक ही मतदान केंद्र पर आएंगे। अगर हम वास्तव में एकता स्थापित करने के तरीके ढूंढना चाहते हैं, तो हमें सामाजिक बंधनों को तोड़ देना होगा। मैं यह कहना चाहता हूं कि इस मामले में हिन्दू समुदाय को पहल करनी होगी, क्योंकि वह एक बहुत ही गैर-मिलनसार समुदाय है। अगर अन्य समुदाय पृथक जीवन बिताते हैं, तो इसके लिए हिन्दू समुदाय पूरी तरह इसलिए दोषी है, क्योंकि वह निर्दिष्ट हितों को अपने ही हित समझता है। इसलिए मैं यह विचारपूर्वक कहता हूं कि इस समस्या के निदान के लिए ऐसी योजना प्रस्तुत करने का कोई महत्व नहीं है, जो प्रभावहीन है और पांच या तीन वर्षों के अंतराल में केवल एक दिन के लिए लागू हो। इसके परिणामस्वरूप कुछ नहीं होगा और न ही इससे कोई लाभ प्राप्त होगा। आप इसे प्रयोग के तौर पर कर सकते हैं। मैं अपने मुसलमान भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि वे उनको यह मौका दें और देखें कि कोई विशेष सुरक्षा दोनों समुदायों को अलग न रहने का अवसर प्रदान करती है या नहीं। पूना समझौते पर हस्ताक्षर करने के कारण मैं पृथक निर्वाचन का समर्थन नहीं कर सकता हूं।

अब मैं विधेयक के दूसरे पहलू को लेता हूं और यह कहकर अपनी बात शुरू करता हूं कि विधेयक जिस रूप में पेश किया गया है, हमारी वर्तमान स्थिति से निश्चित रूप से एक कदम आगे है। लेकिन इस विधेयक में कुछ विशेष नहीं है। यह निरर्थक है और इसमें कुछ भी तो नहीं है, सिवाय इसके कि मंत्री महोदय ने अपने भाषण के दौरान बताया है कि स्थानीय निकायों को पुनर्गठित करने के संबंध में वह क्या करना चाहते हैं, विधेयक जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, उससे अवश्य ही हमें कुछ भी जानकारी नहीं मिलती है। विधेयक में सिर्फ इतना ही कहा गया है कि सरकार को इस या उस काम के लिए नियम बनाने के अधिकार दिए जाएं। इसके अलावा, विधेयक में और है क्या? अगर इस विधेयक के साथ उद्देश्यों व कारणों का विवरण संलग्न नहीं होता, तो हमें यह भी पता नहीं चलता कि विभिन्न अल्पसंख्यकों के लिए प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए सरकार किन सिद्धांतों को अपना रही है। मैं सोच-समझकर कह रहा हूं कि ये संवैधानिक प्रश्न हैं। यह सामान्य विधान को लागू करने का प्रश्न नहीं है, जैसा कि इस समय परिपाटी बन गई है और जो नितांत पाखंडपूर्ण है कि सरकार को नियमों द्वारा नीति को क्रियान्वित करने के लिए स्वीकृति दी जानी चाहिए। हम सरकार को कुछ करने के लिए अपने हिस्से के अधिकार सौंप रहे हैं। हम उन्हें कराधान संबंधी कुछ अधिकार दे रहे हैं। हम उन्हें निर्वाचित प्रतिनिधित्व देने का अधिकार सौंप रहे हैं। मैं पूर्णरूप से विचार करने के पश्चात निवेदन करता हूं कि यह संवैधानिक प्रश्न है और इसलिए इसका ब्यौरेवार समाधान इस सदन में ही होना चाहिए। इसे कार्यपालिका की इच्छा पर नहीं छोड़ना चाहिए। भारत सरकार अधिनियम का ही उदाहरण लें। इस विधेयक में क्या समाहित है? यह विधेयक मताधिकार पर विचार करता

है। यह उन समुदायों की बात करता है, जिन्हें प्रतिनिधित्व मिलना है। यह निर्वाचन-क्षेत्रों और मतदान के तरीकों की बात करता है। भारत सरकार अधिनियम को देखें। वह क्या कहता है? क्या उसने अल्पसंख्यकों के लिए सीटों के प्रश्न को कार्यपालिका की इच्छा पर छोड़ दिया है? क्या उसने निर्वाचन-क्षेत्रों को विभाजित करने के प्रश्न को कार्यपालिका की इच्छा पर छोड़ दिया है? क्या उसने मतदान के तरीकों से संबंधित प्रश्न को कार्यकारिणी की इच्छा पर छोड़ दिया है? ऐसा कुछ नहीं है। यह सब कुछ परिषद के आदेशों से किया गया है और ये आदेश उसी तरह भारत सरकार अधिनियम का भाग हैं, जिस तरह भारत सरकार का अधिनियम स्वयं है। इसलिए संविधान के अनुरूप ही हमें कार्य करने की जरूरत है। इस विधेयक के विषय में यह मेरा पहला निवेदन है।

जहां तक अन्य विषयों का संबंध है, मैं विधेयक के प्रभारी माननीय मंत्री महोदय से सबसे पहले जो बात जानना चाहता हूं, वह यह है कि उन्होंने उद्देश्य व कारणों के विवरण में बहुत ही उदारता से कहा है कि विभिन्न अल्पसंख्यकों को सीटें प्रदान करने के लिए वह जिन सिद्धांतों का पालन करना चाहते हैं, वे सिद्धांत जनसंख्या पर आधारित हैं। मैं इसके लिए उनका आभारी हूं। पर मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि अगर यही वह सिद्धांत हैं, जिसके आधार पर वह विभिन्न अल्पसंख्यकों को सीटें प्रदान करना चाहते हैं, तो वह इस सिद्धांत को धारा में ही सम्मिलित क्यों नहीं करते हैं? उद्देश्य व कारणों के विवरण में दिए गए सिद्धांतों का हमें लाभ मिल सकेगा, इसकी क्या गारंटी है? हमें भिक्षादान नहीं चाहिए। हमें चाहिए अपने अधिकार, जिन्हें हम कार्यपालिका की इच्छा पर नहीं छोड़ना चाहते। हम चाहते हैं कि इसका निश्चित रूप से निर्धारण कानून के द्वारा हो। व्यावहारिक दृष्टि से जिस दूसरी बात से हमारा संबंध है, वह निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था का प्रश्न है। मुझे अपने माननीय मित्र की ज्यादा फिक्र है, जो एक विधायक की हैसियत से सदन में आ नहीं सके। मैं जानना चाहता हूं कि इन निकायों के बनाने के लिए किस तरह निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था की गई है। यह क्या एकल सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र होगा या बहुसदस्यीय? उद्देश्य व कारणों के विवरण में भी कुछ नहीं बताया गया है। ऐसा क्यों है? अगर कार्यपालिका यह चाहती है कि अब से वे एकल सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था को अपनाएंगे, तो हमें इस बात का पता होना चाहिए, क्योंकि यही इस बात का निर्णय करेगा कि हमें विधेयक का समर्थन करना है या विरोध। ऐसा नहीं किया गया है।

तीसरा मुद्दा जिसके बारे में मैं सबसे ज्यादा चिंतित हूं, वह है मतदान-प्रणाली का प्रश्न। क्या मतदान-प्रणाली निश्चित होगी या वह विभाजनात्मक प्रणाली होगी? यह बात भी स्पष्ट नहीं है। मैं चाहता हूं कि सदन में यह सब विषय स्पष्ट व निश्चित हो जाएं। मैं आशा करता हूं कि माननीय मंत्री महोदय मेरी समस्त शंकाओं का निवारण करेंगे और जिन सिद्धांतों का मैंने जिक्र किया है, उन्हें विधेयक में सम्मिलित करेंगे, ताकि हम जान सकें कि हमारे

अधिकार क्या हैं? इस विधेयक में निहित सब कुछ नियमों के द्वारा करने का प्रयत्न किया गया है, लेकिन माननीय मंत्री महोदय तो इस सदन के समक्ष इन नियमों को रखना भी नहीं चाहते हैं, ताकि कहीं सदन को यह पता न हो जाए कि वास्तव में कार्यपालिका ने क्या किया है। इस विधेयक के संबंध में बस इतना ही कहा जा सकता है। जो मैं पहले ही कह चुका हूं, उसे दोहराना नहीं चाहता हूं। मैं इसे स्पष्ट रूप से मात्र एक संवैधानिक प्रश्न मानता हूं। यह स्थानीय प्राधिकरण को संविधान देने का मुद्दा है, जो कुछ चीजों को कराधान द्वारा लोगों को दंडित करने जैसे निर्दिष्ट काम करने के कानूनी अधिकार से संपन्न होता है। निश्चित रूप से हम इन अधिकारों को कार्यपालिका के सुपुर्द कर सकते हैं, यदि कार्यपालिका सदन को यह बताने के लिए सहमत हो कि जिन अधिकारों की वह हमसे मांग करती है, उसने अधिकारों का उपयोग किस प्रकार किया है। इन्हीं टिप्पणियों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

II*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! आपको प्रस्तुत की गई रिपोर्ट से यदि आप बता सकें, तो मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या संशोधन के प्रस्ताव ने मत विभाजन में मतदान किया है।

माननीय श्री बी.बी.खेर: क्या मैं जान सकता हूं कि क्या किसी माननीय सदस्य को यह जानने का अधिकार है कि एक व्यक्ति ने किस ढंग से मत दिया है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मत विभाजन इसलिए किए जाते हैं, ताकि न सिर्फ सदन, बल्कि जनता को भी विस्तृत रूप से पता चले कि सदस्यों ने कैसे मत दिया है।

माननीय अध्यक्ष: मुझ से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि सिर्फ एक माननीय सदस्य की सूचना के लिए मैं उन सभी सदस्यों की सूची पढ़ूं, जिन्होंने मत दिया है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: सदन को यह जानने का हक है कि संशोधन के प्रस्तावक ने किसके पक्ष में मत दिया है, क्योंकि मेरा मानना है कि सदन को यह जानने का अधिकार है कि क्या किसी व्यक्ति ने इस सदन की प्रक्रिया का उल्लंघन किया है।

माननीय अध्यक्ष: माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर के कथन के अनुसार नाम बताने से पहले मैं स्थिति को स्पष्ट कर देना चाहता हूं। संशोधन के प्रस्तावक श्री फड़के ने मुस्लिम समुदाय के लिए पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों को समाप्त करने के उद्देश्य से संशोधन प्रस्तुत किया है। ऐसा ही संशोधन माननीय सदस्य श्री चुंद्रीगर द्वारा प्रस्तुत किया गया था। उनका उद्देश्य विधेयक में प्रस्तावित मुस्लिम समुदाय के लिए विकल्प को अस्वीकार करना था और पृथक निर्वाचन-क्षेत्र को बनाए रखना था। इस खास मामले में हुआ यह है कि हालांकि दोनों माननीय सदस्यों के संशोधनों की रूपरेखा व शब्दावली एक समान थी, किंतु दोनों के उद्देश्य भिन्न थे। यह केवल एक संयोग था कि माननीय सदस्य श्री फड़के का संशोधन विचार-विमर्श के लिए लिया गया और इसलिए माननीय सदस्य श्री चुंद्रीगर अपना संशोधन प्रस्तावित नहीं कर पाए। अगर माननीय सदस्य श्री चुंद्रीगर का संशोधन प्रस्तावित हो जाता, तो माननीय सदस्य श्री फड़के का संशोधन प्रस्तावित

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 2, पृ. 501-02, 22 जनवरी 1938

नहीं हो पाता और शायद जो मुश्किल अब माननीय सदस्य श्री फड़के के सामने है, वह माननीय सदस्य श्री चुंद्रीगर महसूस कर रहे होते। इसलिए, इस स्पष्टीकरण को देने के बाद मैं विभाजन सूची देखकर बताऊंगा कि माननीय सदस्य श्री फड़के ने मत दिया भी है कि नहीं और दिया है तो मत समर्थन अथवा विरोध में दिया है।

श्री इस्माइल आई. चुंद्रीगर: महोदय! क्या मैं संभावित गलतफहमी को स्पष्ट कर सकता हूं? यह कहना सही नहीं है कि मैंने संशोधन प्रस्तावित नहीं किया था। महोदय! वास्तव में, आपने आदेश दिया था कि मेरे लिए यह प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं था, क्योंकि माननीय सदस्य श्री फड़के द्वारा उन्हीं शब्दों में एक संशोधन पहले प्रस्तुत हो गया है।

माननीय अध्यक्ष: मेरा आशय यह कहने का नहीं था कि माननीय सदस्य श्री चुंद्रीगर ने संशोधन प्रस्तुत करने से मना किया था, या वह अपना संशोधन प्रस्तुत करने को उत्सुक नहीं थे। ऐसा नहीं था। वह संशोधन प्रस्तुत करने को उत्सुक थे, लेकिन इस सदन की यह प्रथा है कि जब किसी प्रस्ताव को अनेक सदस्यों द्वारा प्रस्तावित किया गया हो, तो सुविधा के लिए केवल एक ही सदस्य द्वारा उसे प्रस्तावित किया जाता है। ऐसा नहीं कि श्री चुंद्रीगर संशोधन प्रस्तुत करने के लिए अनिच्छुक थे।

माननीय सदस्य, मैं दोहरा रहा हूं कि संशोधन के प्रस्तावक श्री फड़के ने पृथक मतदान समाप्त करने के उद्देश्य से जब यह पाया कि उनका पहला संशोधन रद्द हो गया है और पृथक मतदान व्यवस्था बरकरार है, तो उन्होंने संशोधन के विरुद्ध मत दिया।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं एक और प्रश्न पूछना चाहता हूं और मामले में आपका आदेश चाहता हूं कि क्या सदन का सदस्य, जिसने संशोधन प्रस्तुत किया हो, वह उसके विरुद्ध मत दे सकता है?

माननीय अध्यक्ष: मेरे ख्याल से उल्लेख से स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति को अंत तक अपना विचार बदलने का अधिकार है (ठहाका)। . . .

****

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर): मुझे खेद है, लेकिन मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, वह यह कि इस विषय से संबंधित इस दल की इच्छाओं को सरकार को मानना चाहिए था। अगर मेरे मित्र श्री गायकवाड़ द्वारा प्रस्तावित संशोधन स्वीकार कर लिया जाता, तो किसी को नुकसान नहीं पहुंचता, देश के हितों को हानि नहीं पहुंचती। जब स्थिति यह है कि सरकार अपने बहुमत को अत्याचारपूर्ण रूप से इस्तेमाल करना चाहती है, तो मुझे लगता है कि हमें अपना असंतोष सदन छोड़कर और बाकी दिन की कार्यवाही का बहिष्कार कर प्रकट करना चाहिए।

माननीय श्री बी.जी. खेर: मुझे उम्मीद है कि माननीय सदस्य (डा. अम्बेडकर) मुझे कुछ शब्द कहने का मौका देंगे।

यह बहुत दुखद बात है कि इस देश में जाति व धर्म से संबंधित छोटे से छोटा मुद्दा बहुत संवेदनशील है। जैसा कि स्वतंत्र लेबर पार्टी के माननीय नेता जानते हैं, बहुत समय से हमारी भाषा से 'अस्पृश्य' शब्द को निकालने का प्रयास चल रहा है, क्योंकि यह शब्द अत्यधिक दुखद संबंधों की याद दिलाता है। मैं माननीय सदस्य श्री गायकवाड़ से सहमत हूं कि मात्र नाम बदलने से हम उस उद्देश्य में सफल नहीं हो

पाएंगे। इस दिशा में वर्तमान धारा एक प्रयास है, जो अस्पृश्यता को हटाने के लिए है।

हमने एक नया नाम देने की कोशिश की है, हम कहना चाहते थे, 'परिशिष्ट वर्ग'। लेकिन 'परिशिष्ट वर्ग' अंग्रेजी शब्द 'शिड्यूल्ड कास्ट' का अनुवाद है और हमने सोचा है कि मराठी भाषा में प्रस्तुत करने के लिए बहुत ही असंगत शब्द है। अगर अंग्रेजी अभिव्यक्ति 'शिड्यूल्ड कास्ट' को इस्तेमाल करने के बजाए यदि हम इस अभिव्यक्ति का पर्याय चाहते हैं, तो विकल्प के रूप में हमें 'परिशिष्ट वर्ग' को स्वीकार करना पड़ेगा जो इस वर्ग का निर्देश करता है। मैं उनकी भावनाओं को अच्छी तरह से समझ सकता हूं कि वह बाकी हिन्दुओं से उनको भिन्न मानने के प्रयास को पसंद नहीं करते, किंतु विधान के उद्देश्य के लिए, इस वर्ग की स्थिति को बेहतर बनाने के लक्ष्य को पाने के लिए, हमें उन्हें अन्य हिन्दुओं से अलग दिखाना होगा। हम उन्हें अस्पृश्य या किसी और नाम से पुकार सकते हैं और इतने विशाल हिन्दू समुदाय को भिन्नता दिखाने के लिए जितने कम नामों का इस्तेमाल करें, उतना अच्छा होगा। पर मैं जानता हूं कि पिछले चार–पांच वर्षों से अगर पूरे देश में नहीं तो कम से कम देश के अनेक हिस्सों में 'हरिजन' शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। यह शब्द 'शिड्यूल्ड कास्ट' के पर्याय के रूप में इस्तेमाल करने का प्रयास है, जिसे माननीय सदस्य, स्वतंत्र लेबर पार्टी के नेता का समर्थन मिलना चाहिए था। लेकिन यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि उन्होंने इस प्रश्न को उस दृष्टिकोण से नहीं देखा है। अगर वह किसी और नाम का सुझाव देते हैं जो अनुसूचित वर्ग के लिए उपयुक्त है, तो मैं उम्मीद करता हूं कि उनकी भावनाओं की कद्र करना संभव होता। विकल्प के रूप में मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वह इस धारा का आशय यह न लगाएं कि यह किसी भी रूप में दुर्भाग्यवश अछूत कहलाने वाले विस्तृत वर्ग के लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंचाने का है, बल्कि उस अभिव्यक्ति को मान्यता देने की इच्छा है जो लंबे समय से प्रचलन में है। मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वह यह न समझें कि 'हरिजन' शब्द या उनकी परिभाषा में उनके संप्रदाय की अवमानना करने का प्रयास किया गया है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! जैसा कि आपने आदेश दिया है कि यह अवसर भाषण देने के लिए नहीं है, मैं कोई भाषण नहीं दूंगा। मैं सिर्फ यही कहूंगा कि मैं किसी बेहतर नाम का सुझाव देने की स्थिति में नहीं हूं, लेकिन मैं यह अवश्य कहूंगा कि अब व्यावहारिक रूप से 'हरिजन' शब्द 'अस्पृश्य' शब्द का पर्यायवाची बन गया है, इसके अतिरिक्त इस नाम में और कुछ नहीं है, और मैं मानता हूं कि अगर माननीय प्रधानमंत्री हमारी तरह से ही सोचते हैं कि 'हरिजन' शब्द की अभिव्यक्ति 'अछूत वर्ग' के समान बन गई है, तब यह उनका कर्तव्य हो जाता था कि वह उस समय इस शब्द को वापस ले लेते और बाद में किसी वैकल्पिक नाम को ढूंढने के दृष्टिकोण से हमसे इस मुद्दे पर विचार–विमर्श करते। उनके तर्कों से हमें कोई विश्वास प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए मैं इस सदन से जाता हूं।

(डा. भीमराव अम्बेडकर और स्वतंत्र लेबर पार्टी के अन्य सदस्य सदन से चले जाते हैं।)

10
छोटे किसान राहत विधेयक *

I

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मुझे संदेह है कि आपने मुझे,जो दस मिनट का समय दिया है, क्या मैं इस विधेयक के संबंध में वह सब कुछ जो मैं कहना चाहता हूं, कह पाऊंगा। फिर भी, मैं अपनी तरफ से पूरी कोशिश करूंगा और अपनी बातें बहुत संक्षेप में ही कहूंगा।

इस विधेयक का आशय उन दो समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना है, जो इस प्रेसिडेंसी के किसानों को प्रभावित करती हैं। पहली समस्या बिखरे हुए खेतों की है और दूसरी समस्या छोटे खेतों की है। मैं नहीं मानता कि माननीय सदस्य,जिन्होंने मेरे माननीय मित्र, भूमि बंदोबस्त आयुक्त, का भाषण सुना है, इससे इंकार करेंगे कि बिखरे हुए खेत एक बुराई है और इस बुराई को जहां तक संभव हो, दूर करना चाहिए। मैं उनसे सहमत हूं कि बिखरे हुए खेतों के होने से बहुत अधिक परेशानियां हैं और जहां तक विधेयक का उससे संबंध है, मैं इससे सहमत हूं कि इनकी चकबंदी होनी चाहिए। छोटे खेतों के प्रश्न पर मैं अवश्य कहूंगा कि मैं विधेयक प्रस्तुत करने वाले माननीय सदस्य से इस बात पर असहमत हूं कि छोटे खेत लाभदायक नहीं हैं। महोदय, माननीय सदस्य श्री एंडरसन ने हमें आंकड़ों से बोझिल कर दिया है, जो यह बताते हैं कि वर्तमान खेत कितने छोटे हैं और उन खेतों के छोटे होने से कितनी कठिनाइयां होती हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि छोटे खेतों के होने से कठिनाइयां हैं, लेकिन मैं यह नहीं मानता कि छोटे खेत निश्चित रूप से अलाभकारी या अनुत्पादक हैं। जिस तरह से अनुत्पादकता शब्द का प्रयोग विधेयक प्रस्तुत करने वाले माननीय सदस्य या बंदोबस्त आयुक्त द्वारा किया गया है, इसका अर्थ मेरी समझ में नहीं आता है। महोदय! जैसा कि मैं इस शब्द को समझता हूं, मैं कहना चाहता हूं कि खेत का उत्पादक होना या अनुत्पादक होना अनिवार्य रूप से आकार पर निर्भर नहीं करता, जिसे हम अर्थशास्त्र

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 21, पृ. 607-10, 10 अक्तूबर 1927

में उत्पादन के अन्य कारक कहते हैं, यह उस पर निर्भर करता है या वास्तव में उसके साथ ही बदलता है। यह श्रम के साथ बदलता है। वह पूंजी के साथ बदलता है। उदाहरण के लिए यदि एक किसान के पास अधिक श्रम लगाने के साधन हैं और उसके पास विनियोग करने के लिए कोई बड़ी पूंजी नहीं है, तो मेरा निवेदन है कि उस आधार पर यदि यह खेत छोटा है तो भी उसे अनुत्पादक कहना उचित नहीं है। मेरा यह दृष्टिकोण होने के कारण, महोदय! मैं विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्य से और भूमि बंदोबस्त आयुक्त से यह सुनना चाहता था कि हमारे देश में पूंजी का बाहुल्य है और बेहद कुशल उत्पादन के लिए हमारे पास बहुत अधिक कृषि उपकरण हैं। अगर उन्होंने यह बताया होता तो हम उनसे सहमत हो सकते थे कि छोटे खेतों से उत्पादन अलाभकारी हो सकता है, क्योंकि उनमें हमारे पास जो उपकरण हैं, उनका उपयोग नहीं हो सकता। लेकिन, महोदय! मैं यह जरूर स्वीकार करता हूं कि माननीय सदस्य, भूमि बंदोबस्त आयुक्त, ने इस मुद्दे को पूरा ही छोड़ दिया है। मैं उनसे यह सुनना चाहता था कि किसानों के पास काफी अधिक पूंजी के साथ अधिक संख्या में हल एवं पशु हैं और वे उनका इस्तेमाल इसलिए नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उनके खेत बहुत छोटे हैं। जहां तक मैं इस समस्या को समझ पाया हूं, मैं पाता हूं कि बजाय इसके कि किसान के कार्य के लिए उपलब्ध पूंजी बहुत अधिक है और वह बर्बाद हो रही है, क्योंकि उसके खेत छोटे हैं, स्थिति उसके विपरीत है, जैसा कि हमें बताया गया है। महोदय! उदाहरण के लिए मैं पाता हूं कि मद्रास प्रेसिडेंसी में तीन एकड़ जमीन पर एक हल है। बंबई प्रेसिडेंसी में छह एकड़ के लिए एक हल है। पंजाब में प्रत्येक दो एकड़ के लिए एक हल है। मैं यह विवरण सरकारी आंकड़ों से पढ़ रहा हूं। ये किसानों के पूंजी उपकरण से संबंधित आंकड़े हैं और यदि स्थिति को मेरे अनुसार देखा जाए, तो खेत का उत्पादक या अनुत्पादक होना उसके आकार पर नहीं, बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि किसान के पास खेत के आकार के अनुरूप पूंजी है कि नहीं। इसलिए मेरा मानना है कि वर्तमान परिस्थितियों में खेतों को और छोटा कर दिया जाए। मेरा यह तर्कसंगत मत है और मैं इसका सामना करने से नहीं डरता। इसलिए मेरी समझ में नहीं आता है कि खेतों को बड़ा करने की क्या उपयोगिता है, यदि उदाहरण के लिए किसान के पास जमीन पर खेती करने के लिए साधन नहीं हैं। मेरी समझ में नहीं आता है कि खेतों के क्षेत्र में की गई बढ़ोतरी किसान की पैदावार को कैसे बढ़ाएगी, जब कि उसके पास जमीन पर खेती करने के लिए आवश्यक श्रम और पूंजी नहीं है।

फिर, हमें यह तथ्य भी याद रखना होगा कि हमारा देश कृषि प्रधान देश है और हमारी जमीन ऊसर हो चुकी है। हम हजारों वर्षों से इस पर खेती कर रहे हैं और चाहे हम जो भी प्रयास कर लें, हम अपनी जमीन की उत्पादकता को उस स्तर तक, उदाहरण के लिए अमरीका की जमीन के स्तर तक जहां की जमीन अभी जोती भी नहीं गई, नहीं ले जा सकते।

हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए। ऐसा होने के कारण, महोदय! समस्या का समाधान खेतों का आकार बढ़ाने से नहीं हो सकता, बल्कि सघन खेती से हो सकता है, अर्थात जिस तरह के हमारे खेत हैं,उनमें ज्यादा पूंजी और ज्यादा श्रम लगाकर। इसलिए मैं सोचता हूं कि विधेयक का वह हिस्सा जो खेतों का आकार बढ़ाने के संबंध में है, पूरी तरह अनावश्यक है। लेकिन यह मानते हुए कि हम अपनी कृषि भूमि की चकबंदी करें और अपने खेतों का आकार बड़ा करें, मैं सोचता हूं कि इस विधेयक द्वारा प्रस्तावित इस्तेमाल होने वाले तरीकों की, जितनी सावधानी विधेयक प्रस्तुत करने वाले ने दिखाई है, उससे कहीं ज्यादा सावधानी से जांच करनी चाहिए। महोदय! अब जो तरीके इस विधेयक में मुख्यतया इस्तेमाल किए गए हैं वे हैं, पहला, अचल संपत्ति के बंटवारे पर नियंत्रण और दूसरा, चकों की बिक्री। अब मैं मानता हूं कि इस मुद्दे पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि यदि ये दो तरीके अपनाए जाते हैं, तो हमारी कृषि पर आधारित जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा भूमिहीन हो जाएगा और यह देश के सर्वाधिक हित में नहीं है कि गरीब तबकों को इस ढंग से और गरीब कर दिया जाए। महोदय! मैं यह बताना चाहता हूं कि यद्यपि हिन्दू कानून कई तरह से बहुत त्रुटिपूर्ण है, तथापि उत्तराधिकार का हिन्दू कानून लोगों का बहुत बड़ा रक्षक रहा है। हिन्दू धर्म द्वारा स्थापित सामाजिक और धार्मिक एकछत्रवाद ने लोगों के एक बहुत बड़े वर्ग को निरंतर दासता में जकड़े रखा है। यदि इस दासता में भी उनकी दशा सहनीय है तो इस कारण से कि उत्तराधिकार के हिन्दू कानून ने कुबेरपतियों के निर्माण को रोका है। महोदय! हम सामाजिक दासता से आर्थिक गुलामी को जोड़ना नहीं चाहते। यदि आदमी सामाजिक रूप से स्वतंत्र नहीं है, तो उसे आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने दीजिए। इसलिए मैं उस न्यायपूर्ण और उत्तराधिकार की समतामूलक व्यवस्था को समाप्त करने के पूर्णतया खिलाफ हूं। इस समय विधेयक प्रस्तुत करने वाले माननीय सदस्य को मैं एक विनम्र सुझाव देना चाहूंगा। मैं विधेयक के प्रथम वाचन पर इस शर्त पर अपना समर्थन देने के लिए तैयार हूं, यदि वह विधेयक में पेश किए गए जमीन की चकबंदी और अभिवर्धन के तरीकों पर न अड़े रहें। महोदय! मेरा विचार है कि बेहतर तरीका यह होगा कि सामान्य क्षेत्रों के लिए सहकारी कृषि अपनाई जाए और उसमें स्थित छोटी जोतों के मालिकों को, बिना उनके निजी स्वामित्व को समाप्त किए खेती में शामिल होने के लिए विवश किया जाए। अगर ऐसा किया जाता है, और इस विधेयक में इसके लिए कोई प्रावधान किया जाता है, तो मैं इस विधेयक का निश्चय ही समर्थन करूंगा। (श्री एफ. जी. एच. एंडरसन से असहमति जताई)। माननीय सदस्य श्री एंडरसन, बंदोबस्त आयुक्त, अपना सिर हिला रहे हैं। लेकिन मैं माननीय सदस्य को कह सकता हूं कि जो तरीका मैं सुझा रहा हूं, वह मेरा अपना नहीं है, बल्कि यह व्यवस्था इटली और फ्रांस में प्रचलित है और इंग्लैंड के कुछ हिस्सों में इसको अपनाना अत्यधिक फायदेमंद रहा है। मैं इस संबंध में सदन के माननीय नेता को निश्चय ही सुझाव दूंगा कि वह श्री ओटा राथफेल्ड ने अपनी पुस्तक

इंप्रेशन आफ दि को-आपरेटिव मूवमेंट इन फ्रांस एंड इटली में जो विचार व्यक्त किए हैं, उस पर ध्यान पूर्वक मनन करें। मैं उक्त पुस्तक का एक पैरा यहां उद्धृत कर रहा हूं:

> समग्र रूप से यह आंदोलन बहुत बड़ी क्षमता रखता है। यह युद्ध के समय से ही फ्रांस में अपनाया गया है, और इससे अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। रोमानिया में इस प्रकार की सहकारिता देश की कृषि में क्रांति पैदा कर रही है। यह संभव है कि सामान्य रूप से सहकारी खेती से दक्कन की गरीबी से पीड़ित अविकसित खेती की उन समस्याओं का जो अनुत्पादक भूमि और संपत्ति के अत्यधिक उपखंडन पर केंद्रित हैं, कोई समाधान खोज निकाला जाए।

इस प्रकार के समाधान से उत्तराधिकार की परंपरा में क्रांतिकारी हस्तक्षेप नहीं हो पाएगा, जिसकी वकालत गैर-किसान वर्ग के भटके हुए सुधारक अक्सर करते हैं और ऐसा करने से,जो परिणाम आएंगे, वे परिवार परिसीमन में बाधा नहीं डालेंगे, लेकिन ऐसा होने का डर है, अगर नई पीढ़ी को कानूनी हस्तक्षेप से संपत्ति से वंचित किया जाता है।

महोदय! हम देखते हैं कि इस प्रकार की व्यवस्था सफलता के साथ अन्यत्र आजमाई गई है। मैं यह कहते हुए अपना वक्तव्य समाप्त करूंगा कि यदि सदन के माननीय नेता इन सब सुझावों पर ध्यानपूर्वक विचार करते हैं और प्रवर समिति में सिद्धांत के आधार पर सुझाए गए किसी संशोधन पर एतराज नहीं करते हैं तथा विधेयक में प्रस्तावित भू-संपत्ति की चकबंदी और विस्तारीकरण पर अड़े नहीं रहते हैं, तो मुझे विधेयक के प्रथम वाचन का समर्थन करने में कोई आपत्ति नहीं है।

****

II*

(असहमति का ब्यौरा)

बंबई के गवर्नर की परिषद की कार्यवाही

बंबई के गवर्नर की विधान परिषद के सचिव द्वारा

विधान परिषद कार्यालय

परिषद हाल, पूना, 10 जुलाई 1928

सं. 894- बोंबे गवर्नटमेंट गजट, भाग 5, पृ. 34--39

जून 1928 में प्रकाशित 1927 के विधेयक संख्या 16 (कृषि भूमि के अत्यधिक विभाजन को रोकने और ऐसी भूमि की चकबंदी को बढ़ाने वाले कानून) से संबंधित प्रवर समिति की रिपोर्ट पर दी गई पाद टिप्पणी का उल्लेख करते हुए यह सूचित किया जाता है कि विधायक डा. भीमराव अम्बेडकर ने प्रवर समिति की रिपोर्ट पर नीचे दिखाए गए असहमति के ब्यौरे के साथ दस्तखत किया है:

---

* *दि बोंबे गवर्नमेंट गजट*, भाग 5, पृ. 64-65, 12 जुलाई 1928

(विधायक डा. भीमराव अम्बेडकर की असहमति का ब्यौरा)

1. इस विधेयक का भाग 1 इस धारणा के साथ शुरू होता है कि लाभकारी खेती के लिए आज हमारे पास जो खेत हैं, उनसे बड़े खेतों की हमें आवश्यकता है। मैं इस धारणा से बिल्कुल भी सहमत नहीं हूं। लेकिन यह मानते हुए कि यह धारणा सही है, जिस मुख्य प्रश्न के बारे में हर व्यक्ति को खुद को इस भाग पर सहमति जताने से पूर्व संतुष्ट करना होगा, वह यह है कि 'क्या यह विधेयक मौजूदा छोटे खेतों से बड़े खेतों को बनाने की समस्या को इस प्रकार सुलझा पाएगा कि इस पर कोई गंभीर आपत्ति नहीं उठे?'

2. मानक इकाई जो एक बार निश्चित की गई है, उसको बरकरार रखने के लिए विधेयक में दो क्रियाविधि अपनाई गई हैं। पहली मानक खेतों से छोटे खेतों के मालिकों को कड़ा दंड देती है, ताकि उसके लिए छोटे खेत का स्वामित्व लाभ के बजाए, बोझ बन जाए। दूसरी छोटे खेत के स्वामित्व पर रोक लगाती है और इसमें व्यवस्था की गई है कि भविष्य में छोटे खेत अस्तित्व में ही न आएं। दूसरी क्रियाविधि के उदाहरण के रूप में बंटवारे पर लगी रोक का उल्लेख किया जा सकता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि विधेयक द्वारा अपनाई गई क्रियाविधि से लोगों के स्वामित्व का अधिकार खतरे में पड़ जाता है।

3. मैं इस क्रियाविधि पर तीन कारणों से एतराज करता हूं। पहला, यह संपत्ति के अधिकार को आंच पहुंचाता है। अगर व्यवस्था राज्य के स्वामित्व और भूमि के प्रबंध की होती, तो संपत्ति के अधिकार पर चोट करना इतना गंभीर चिंता का विषय नहीं बनता। लेकिन व्यवस्था ऐसी है कि दूसरों की कीमत पर कुछ भू-स्वामियों की समृद्धि होगी। मेरे दिमाग में इसे लेकर कोई शंका नहीं है कि इस विधेयक में अपनाई गई क्रियाविधि कुछ भू-स्वामियों को भूमिहीन मजदूरों में बदल देगी। कुल कितने लोगों की इससे दुर्दशा होगी, इसकी कल्पना करना कठिन है। हर चीज इस पर निर्भर हो जाएगी कि मानक खेत कितने बड़े होते हैं। अगर वास्तविक खेत से मानक खेत बहुत अधिक बड़ा हुआ, तो यह एक बहुत बड़े वर्ग पर प्रभाव डालेगा, बजाए इसके कि मानक खेत वास्तविक खेत के लगभग बराबर हो। विस्थापन की विशालता अज्ञात है और उसे तभी जाना जा सकेगा, जब मानक परिभाषित हो जाएगा। पर चूंकि बहुसंख्य किसान छोटे खेतों के मालिक हैं, इसलिए आशंका व्यापक है। मुख्यतः इसी डर से विधेयक के प्रति विरोध उत्पन्न होता है और मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूं कि यह विरोध निरर्थक है। मैं समाज के आर्थिक आधार में इस प्रकार के आमूल परिवर्तन की संभावना को शांत भाव से नहीं देख सकता।

4. विधेयक की क्रियाविधि के संबंध में मेरी दूसरी आपत्ति यह है कि वह निष्पक्ष होगा और मोटे तौर पर स्थिति वही बनी रहेगी। छोटे खेत के पड़ोसी खेत-मालिकों को पूर्वक्रम का अधिकार दिया है, जिसका उद्देश्य सटे हुए छोटे खेतों का समूह बनाना है। लेकिन इस पूर्वक्रम का अधिकार केवल तभी काम में आ सकेगा, जब मालिक खेत बेचना चाहेगा और

पड़ोसी किसान मालिक की शर्तों को स्वीकार करने को तैयार हो। पूर्वक्रम का अवसर ही शायद नहीं आएगा, क्योंकि छोटे खेत का मालिक (मैं पुराने टुकड़ों की बात कर रहा हूं) इसको अपने पास रखना चाहेगा। दूसरी तरफ, पूर्वक्रम का अवसर आ सकता है, लेकिन यह निष्फल हो सकता है, क्योंकि छोटे खेतों को जल्दी ही मिला देने की इच्छा के बावजूद किसी भी स्थिति में मौजूदा छोटे खेत अनिश्चित-काल तक बने रहेंगे।

5. इन सबके अलावा मेरा विचार है कि विधेयक के भाग 1 की क्रियाविधि विधेयक की दृष्टि से अपनाए गए उद्देश्य का अतिक्रमण करती है। विधेयक का उद्देश्य इस समय की स्थिति की अपेक्षा ज्यादा बड़े खेतों को एक जोत के अंतर्गत लाना है। अब मैं महसूस करता हूं कि यदि हम विभिन्न मालिकों के छोटे खेतों को खेती के लिए एक बना सकते हैं, तो हमें वहीं रुक जाना चाहिए और उन्हें एक व्यक्ति के स्वामित्व में तब तक लाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, जब तक कि यह सिद्ध नहीं हो जाता है कि संघटित खेती के लिए एक मालिक का होना जरूरी है। मुझे पक्का विश्वास है कि मानक आकार के सहकारी खेतों की स्थापना हमें वह सब कुछ देगी, जो हम विधेयक के अंतर्गत चाहते हैं और छोटे खेतों के मालिकों को विनाश से बचा लेगी। इस योजना के तहत किसान का स्वामित्व सुरक्षित रहेगा, सिवाए इसके कि उसे अपने खेत पर खेती करने की स्वतंत्रता नहीं होगी, जब तक कि वह अपने खेत के साथ लगे हुए खेत या खेतों के साथ इसे संघटित करने के लिए सहमत न हो जाएं, जिससे कि पूरा क्षेत्र इस प्रकार की खेती के लिए मानक आकार के बराबर या उससे बड़ा हो जाए। इस प्रकार का करार यदि भूमि के संबंध में व्यवहार में आता है, तो उस नियंत्रण की आवश्यकता को पूरी तरह खत्म कर देगा, जिसे विधेयक हस्तांतरण और बंटवारे पर थोपना चाहता है, क्योंकि जो कोई भी खेत के टुकड़े को प्राप्त करेगा, वह सहकारी खेत के कृषि कार्य के प्रबंध में बाधा डालने में सक्षम नहीं हो पाएगा। इस करार के कारण नए मालिक मिल-जुलकर खेत पर कृषि कार्य करने के लिए बाध्य होंगे। सहकारी खेती साझेदारों की कंपनी के समान होगी, जिसमें साझेदार के बदल जाने पर भी कंपनी बनी रहती है। यह योजना अपने परिचालन में सरल है और वर्तमान विधेयक की बुराइयों को निरस्त कर देती है।

6. मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि इस योजना पर क्या आपत्ति हो सकती है। वास्तव में, इस प्रकार की व्यवस्था कई यूरोपीय देशों और खासकर इटली में काम कर रही है। लेकिन जिसे मैंने ऊपर रेखांकित किया है, उस योजना के समर्थन के लिए इतना दूर जाने की जरूरत नहीं है। मेरा सौभाग्य है कि मैं यह कहने में सक्षम हूं कि विधेयक स्वयं कुछ हद तक मेरे द्वारा बनाई गई योजना को स्वीकार करता है। मूल विधेयक के खंड 19 का, जिसकी संगति प्रवर समिति के द्वारा संशोधित विधेयक के खंड 21 से बैठती है, उल्लेख बताएगा कि जब तक नए टुकड़े को सटे हुए खेत से जोड़ नहीं दिया जाए, इस पर कोई खेती नहीं

हो पाएगी। मेरा निवेदन है कि यह और कुछ नहीं, केवल सहकारी योजना है, जिसका सुझाव मैंने ऊपर दिया है। मेरे और प्रवर समिति के बीच अंतर केवल यह है कि यह सहकारी योजना को नए टुकड़ों तक सीमित कर देता है, जब कि मेरा प्रस्ताव इसे सभी टुकड़ों पर लागू करने का है। दोनों में मैं समझता हूं कि मैं ही सही हूं, जब मैं यह कहता हूं कि प्रवर समिति को प्रमाणित करना होगा कि यह योजना क्यों एक के लिए ठीक है और दूसरे के लिए नहीं। मेरे पास नए और पुराने टुकड़ों के बीच के भेदभाव को प्रमाणित करने के लिए कोई दलील नहीं है।

7. ऊपर बताए गए कारणों के आधार पर मैं विधेयक के भाग 1 का समर्थन नहीं कर सकता, हालांकि मैं इसके लक्ष्यों एवं प्रयोजनों के विरुद्ध नहीं हूं। इसके भाग 2 के संबंध में, मुझे कोई आपत्ति नहीं हैं, जो अब केवल चकबंदी तक सीमित है। फिर भी, मैं यह कहता हूं कि मेरी योजना के तहत चकबंदी के लिए अलग प्रावधान अनावश्यक होगा। सहकारी खेत बड़ी और चकबंद भू-संपत्ति, दोनों ही होगा।

III*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : महोदय! चूंकि मैं नियम 19 को समझने में कुछ कठिनाई अनुभव कर रहा हूं, अत: एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। निस्संदेह यह वह मसला है, जिसमें पहली बार अध्यक्ष द्वारा तय किया जाएगा कि क्या एक खास संशोधन या एक खास विधेयक को पूर्व अनुमोदन की जरूरत है। खंड (2) के अनुसार अध्यक्ष के विचार में मसले को पूर्व अनुमोदन की जरूरत है, तो अध्यक्ष सूचना प्राप्ति के बाद जितनी जल्दी हो सके विधेयक या संशोधन को गवर्नर के पास भेजेगा और अधिसूचना को कार्यवाही की सूची में तब तक नहीं रखा जाएगा,जब तक कि गवर्नर द्वारा अध्यक्ष को यह संकेत नहीं दिया जाता है कि पूर्वाभिष्ट अनुमोदन की अनुमति दी गई है। खंड (3) सुविचारित रूप से कहता है:

> कोई विधेयक या संशोधन विधेयक या संशोधन है या नहीं, अगर ऐसा कोई विवाद उठता है जिसको बिना पूर्व अनुमोदन के लाया नहीं जा सकता, तो इस विवाद को उस अधिकारी के पास भेजना होगा, जिसको जरूरत पड़ने पर पूर्व अनुमोदन की अनुमति देने का अधिकार है और इस अधिकारी का निर्णय अंतिम होगा।

खंड (2) में जिस विवाद के उठने की अपेक्षा की जाती है, वह अध्यक्ष और उस सदस्य के बीच है, जिसने संशोधन या विधेयक की सूचना दी है। अगर वह सदस्य जिसने संशोधन या विधेयक की सूचना दी है, यह महसूस करता है कि उसके विधेयक या संशोधन को पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है, तो खंड (3) उसे इस मामले को अंतिम अधिकारी,

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 2, पृ. 617-19, 24 जनवरी 1938

गवर्नर तक भेजने की अनुमति देता है। इसलिए मुझे लगता है कि मैं स्पष्ट रूप से कहूंगा कि मैंने कोई संशोधन प्रस्तुत नहीं किया है और मैं इसलिए इससे सीधे संबंधित नहीं हूं कि यह मसला इतना महत्वपूर्ण है कि, अगर आपको एतराज न हो तो, इस पर इस सदन में बहस होनी चाहिए। विधेयक लाने के हमारे अधिकार भारत सरकार अधिनियम के तहत इतने सीमित हैं कि अगर हमें इसकी उन कुछ धाराओं का लाभ नहीं दिया जाए जो हमें आवश्यक अधिकार देती हैं, हालांकि वे कम हैं, तो यह सदन अनिवार्य कानूनों को लाने के अपने यथासंभव प्रयास में बहुत अधिक अक्षम हो जाएगा। इसलिए मैं यह सचमुच जानना चाहता हूं कि क्या आपका यह विचार है कि नियम 19 के अंतर्गत अध्यक्ष अंतिम अधिकारी है और यह कि उस अधिकारी के पास सक्षम अपील करने का कोई अधिकार नहीं है, जिसमें पूर्व अनुमोदन देने की शक्ति निहित है।

अगर आप अनुमति दें, तो मैं भारत सरकार अधिनियम की धारा 299, उपधारा (3) का उल्लेख इस विधेयक के संदर्भ में करना चाहूंगा, जिसके लिए मेरे विद्वान मित्र ने अनुमति मांगी है। अगर मैं इस विधेयक को समझता हूं, तो पारिभाषिक रूप में इसे समाधान का उपाय कहा जा सकता है।

माननीय अध्यक्ष: हमें दोनों मुद्दों से अलग रहना चाहिए। एक मुद्दा जिसे माननीय सदस्य श्री पारूलेकर ने उठाया है, नियम 19 की व्याख्या से संबंधित है कि क्या जब कोई विवाद माननीय सदस्य और अध्यक्ष के बीच उठता है, तब अध्यक्ष ही निर्णायक अधिकारी होता है। यह एक मुद्दा है। मैंने नियम 19 की जो व्याख्या की है, वह बता दी है। जहां तक इस प्रश्न का संबंध है कि क्या माननीय सदस्य श्री पारूलेकर द्वारा लाए गए संशोधन को धारा 299 (3) के तहत अनुमोदन की जरूरत है, यह एक स्वतंत्र प्रश्न है। मैं पहले ही माननीय सदस्य को बता चुका हूं कि उनके संशोधन के प्रश्न पर इस सदन में कोई भी बहस करने का मेरा इरादा नहीं है। मैं इस संबंध में निश्चय कर चुका हूं। यदि माननीय सदस्य नियम 19 के उपनियम (3) पर कोई तर्क प्रस्तुत करते हैं, तो मैं उन्हें सुनने के लिए तैयार हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: जब तक मुझे यह स्पष्ट करने की अनुमति नहीं दी जाती है कि विधेयक भारत सरकार अधिनियम की धारा 299 की उपधारा (3) की सीमा में नहीं आता है, मेरे लिए नियम 19 (3) पर तर्क करना व्यर्थ है। यदि मुझे आपको संतुष्ट करना है कि नियम 19 (3) उस व्यथित सदस्य को, जिसका संशोधन अस्वीकार कर दिया गया है, गवर्नर को अपील करने का अधिकार देता है,तो मेरा यह मानना है कि धारा 299 (3) पर विचार किया जाना चाहिए। अगर आप मुझे यह तर्क देने की अनुमति देने को तैयार नहीं हैं कि वास्तव में क्यों यह विधेयक भारत सरकार अधिनियम की धारा 299 की उपधारा (3) के द्वारा निरस्त किए जाने योग्य अहितकारी नियम के अंतर्गत आता है, तो मेरे लिए बहस करना बेकार है। भारत सरकार अधिनियम की धारा 299 की उपधारा (3) को पढ़कर मुझे ऐसा लगता है कि विधेयक तब तक स्थगित रखना पड़ेगा, जब तक कि यह व्यथित सदस्य को सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान पर बहस करने से रोकता है। यह समूचे मुद्दे को खटाई में डालने की बात है। अगर मुझे अवसर दिया जाता है तो मैं स्पष्ट कर दूं कि यह कैसे किया जा रहा

है। मैंने इस पर काफी विचार किया है। न तो यह विधेयक और न ही मेरे माननीय मित्र श्री पारूलेकर या मेरी पार्टी के सदस्यों द्वारा लाया गया संशोधन धारा 299 की उपधारा (3) की शर्तों के अंतर्गत आते हैं। अगर आप मुझे अनुमति देंगे, तो मैं इसे दो मिनट में बता दूंगा।

माननीय अध्यक्ष: जहां तक वैयक्तिक संशोधन का सवाल है, मैंने इस पर एक निर्णय दे दिया है। अब, अगर किसी विशेष संशोधन या इसके संबंध में मैंने जो निर्णय दिया है, उसका उल्लेख किए बिना माननीय सदस्य यह कहना चाहते हैं कि समूचा विधेयक धारा 299 की सीमा में नहीं आता है, तो यह एक अलग मुद्दा होगा। मैं इस मुद्दे पर उनको बोलने का अवसर देने को तैयार हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं आपका कृतज्ञ हूं। जैसा कि मैं कह रहा था, यह विधेयक एक ऐसा विधेयक है, जिसे केवल समाधान का उपाय कहा जा सकता है। कोई व्यक्ति अदालत से आदेश प्राप्त कर सकता है। इस आदेश का मतलब है कि किसी आदमी के खिलाफ उसके कुछ अधिकार हैं। यह विधेयक जो कुछ कहता है, वह यह है कि उस व्यक्ति ने किसी ऋणदाता या किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ आदेश के परिणामस्वरूप जो भी अधिकार प्राप्त किए हों, वे अधिकार एक निश्चित दिन तक प्रभाव में नहीं आ सकते, यानी 31 मार्च 1939 तक। मैं समझता हूं कि विधेयक का सार यही है। इसलिए यह उपाय अधिकारों को क्रियान्वित करने के संबंध में है, इसका अधिकारों को संशोधित या समाप्त करने से कोई संबंध नहीं है। यह मेरा पहला निवेदन है। मैं किसी व्यक्ति को प्राप्त अधिकार की समाप्ति अथवा उसमें संशोधन और उस अधिकार को लागू करने में देर या उसके स्थगित करने के बीच में अंतर करूंगा।

दूसरे, धारा 299 की उपधारा (3) भूमि के अधिकारों की समाप्ति अथवा संशोधन से ही संबंध रखती है। इस विधेयक का मकसद केवल जमीन के अधिकारों को लागू करने तक सीमित नहीं है। इसका संबंध कर्ज और बेदखली से भी है।

जिस अंतर की मैं बात कर रहा हूं, उसका अर्थ है कि अधिकारों का कार्यान्वयन स्थगित करना एक बात है और उसकी समाप्ति या संशोधन दूसरी। विधेयक का उद्देश्य केवल इतना है कि किसी पक्ष ने यदि अदालत से फैसला ले लिया है, तो उसे स्थगित रखा जाए। इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि जमीन का अधिकार समाप्त कर दिया जाए या उसमें संशोधन कर दिया जाए। अत: मेरा निवेदन है कि विधेयक और संशोधन में ऐसा कुछ नहीं है कि जमीन के अधिकार को समाप्त कर दिया जाए या संशोधित कर दिया जाए। यह अहितकारी धारा 299 (3) के अंतर्गत नहीं आता।

* * * * *

डा. भीमराव अम्बेडकर*: अगर महामहिम उन संशोधनों पर जो उन्हें दिए गए हों अनुमति दें, तो क्या आप इस विधेयक पर बहस स्थगित कर देंगे ? महामहिम संशोधन की अनुमति उसी प्रकार दे सकते हैं, जिस प्रकार उन्होंने विधेयक के मामले में किया है। ऐसी स्थिति में क्या होगा ?

माननीय अध्यक्ष: मुझे निश्चय ही इस बात से प्रसन्नता होगी कि प्रत्येक प्रस्तावित संशोधन पर इस सदन में बहस करने का पूरा अवसर मिले और कोई भी संशोधन अनुमति के अभाव में रद्द न कर दिया जाए। इसलिए मैंने अपनी कठिनाई का जिक्र किया जब सदस्यों ने आज अपराह्न में संशोधन प्रस्तावित किया। जब कि उनके सामने लंबे समय से विधेयक विचाराधीन था। मेरी यही कठिनाई है। यही कारण है कि मैंने कहा था कि जितनी जल्दी संभव हो, संशोधन प्रस्तावित किए जाए। तीन माननीय सदस्यों ने आज संशोधन प्रस्तावित किया है। उनमें से सबका निरीक्षण करना और यह निश्चित करना कठिन है कि क्या उनमें से किसी को अनुमति की जरूरत है। इस संबंध में मतभेद की संभावना हो सकती है। इसलिए मैं नहीं जानता कि क्या अभी प्रस्तुत किए गए सभी संशोधनों के संबंध में सूचना की व्यवस्था समाप्त करना मेरे लिए संभव होगा। लेकिन जहां तक पूर्व संशोधनों का प्रश्न है, मैं निश्चय ही कोशिश करूंगा और देखूंगा कि सदस्य उन्हें प्रस्तुत करने का अवसर पा सकें।

11

बंबई पुलिस अधिनियम संशोधन विधेयक *

I

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : महोदय! हमारे सम्मुख लाए गए विधेयक में मैं निम्नांकित संशोधन प्रस्तावित करने का निवेदन करता हूं :

उपधारा (2 ख) के बाद निम्नांकित को जोड़ा जाएगा, यथा –

(12 ग) (1) यदि प्रेसिडेंसी की सरकार संतुष्ट है कि बंबई नगर या इसके किसी भाग में शांति या व्यवस्था दो समुदायों अथवा उसके वर्गों, गिरोहों या गुटों के झगड़े के फलस्वरूप भंग होती है या भंग होने की आशंका है, तो यह सरकारी गजट में इस घोषणा (जिसका अब से आपातकाल की घोषणा से उल्लेख किया जाएगा) के द्वारा यह निर्देश कर सकता है कि आपातकाल लागू हो गया है।

(2) आपातकाल की घोषणा–

(क) किसी अगली घोषणा द्वारा वापस ली जा सकती है, और

(ख) एक महीने की समाप्ति के बाद उसका परिपालन बंद हो जाएगा, अगर इस अवधि की समाप्ति के पूर्व इसका नवीकरण नहीं किया जाता है।

(3) प्रेसिडेंसी को सरकार द्वारा खंड (1) के तहत आपातकाल की घोषणा कर दिए जाने के बाद जब भी पुलिस आयुक्त को यह लगे कि बंबई नगर में किसी व्यक्ति की उपस्थिति, गतिविधियां या कार्य कोई खतरा या संकट पैदा कर रहा/रहे हैं या करने वाले हैं या उचित संदेह हो कि यह व्यक्ति शांति अथवा व्यवस्था भंग करने वाले षड्यंत्र करने का इरादा रखता है, तो यह (पुलिस आयुक्त) मुनादी कराकर या किसी अन्य तरह से, जो भी ठीक लगे, उस संदिग्ध आदमी को ऐसा आचरण करने के लिए निर्देश देगा, जो कि झगड़े या शांति भंग को रोकने के लिए अत्यावश्यक माने जाते हैं या वह

---

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 24-25,27 अप्रैल 1938

अपने आपको ऐसे स्थान/स्थानों पर ऐसे मार्ग/मार्गों से निश्चित समय तक हट जाएगा, जैसा पुलिस आयुक्त ठीक समझे।

(4) पुलिस आयुक्त के द्वारा दिए गए आदेश से परेशान व्यक्ति खंड (3) के तहत इस आदेश के जारी होने के दस दिनों के अंदर प्रेसिडेंसी की सरकार को अपील कर सकता है।

(5) खंड (4) के तहत अपील के परिणाम तक, खंड (3) के तहत पुलिस आयुक्त का आदेश निर्णयात्मक होगा।

(6) इस धारा में कोई व्यवस्था नहीं है कि कोई पुलिस अधिकारी इस बात के लिए बाध्य हो कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध उसने खंड (3) के अंतर्गत कार्रवाई की है, उसे या अदालत को यह बताना जरूरी हो कि उसकी सूचना का स्रोत क्या है या सूचना के तत्व क्या हैं? यदि पुलिस आयुक्त को यह अंदेसा हो कि सूचना देने वाले का नाम या पता खुल जाएगा।

(7) खंड (3) के अंतर्गत पुलिस आयुक्त का खंड (4) के तहत प्रेसिडेंसी की सरकार द्वारा दिया गया कोई आदेश आपातकाल की घोषणा के लागू रहने की समाप्ति के बाद प्रभावी नहीं रहेगा।

उपरोक्त खंड (2) के बाद निम्नांकित उपखंड जोड़ा जाएगा, यथा (3) उप-धारा (3) में शब्दों, कोष्ठकों, खंड और अक्षर 'या (2क)' के लिए, यह विकल्प दिया जाना चाहिए, यथा

'(2क) या (2ग)'

प्रश्न प्रस्तावित

* * * * *

डा.भीमराव अम्बेडकर* : महोदय! इससे पहले कि मैं अपने प्रस्तावित संशोधन की विशेषताएं बताऊं, मैं समझता हूं कि यह उचित होगा यदि मैं सदन को संशोधन की आवश्यकता बताऊं। माननीय गृह मंत्री ने विधेयक को प्रस्तावित करते हुए कहा है कि बंबई नगर और इसके नागरिक उन कुछ अवांछित तत्वों के शिकार हैं, जो समाज के कमजोर वर्गों को आतंकित और आहत करते हैं, और कमजोर वर्गों में इन खतरनाक लोगों के खिलाफ अदालत में जाने और इनके लिए सजा का आदेश प्राप्त करने के लिए न तो दृढ़ निश्चय और न ही इच्छा है और परिणामस्वरूप वह समझते हैं कि पुलिस आयुक्त को उन लोगों के हित में जो इन खतरनाक तत्वों के द्वारा पीड़ित हैं, अधिकार देना है ताकि वह इन तत्वों के खिलाफ कार्रवाई कर सकें। महोदय, उन्होंने जो कहा है, उससे मैं सहज ही सहमत हूं कि उन्होंने जिस खतरे का उल्लेख किया है, वह यथार्थ है।

---

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 2430-33, 27 अप्रैल 1938

सदन मुझे ऐसा कहने की अनुमति दे, मैं इनके द्वारा उल्लिखित खतरे से भलीभांति परिचित हूं। मैंने जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा बंबई नगर में बिताया है, जिसे मैं अपराध जगत कह सकता हूं। 1911 से 1933 तक मैं विकास न्यास की चाल में मजदूरों और निम्न वर्ग के बीच रहा हूं, और मैं पुलिस आयुक्त या माननीय गृह मंत्री से भी अच्छी तरह जानता हूं कि कैसे ये गरीब लोग उनके द्वारा सताए जाते हैं जो मवाली या दादा कहलाते हैं, कैसे उन आहत लोगों के लिए न्याय पाना पूर्णत: असंभव है, क्योंकि वे खुद ही ज्यादा सताए जाने के भय से अदालत में नहीं जाते और उन्हें दोषी ठहराने की कोशिश नहीं करते। इसलिए मैं समझता हूं कि जो विधेयक लाया गया है, वह मामले की स्थिति को देखते हुए पूर्णत: न्यायसंगत है। लेकिन मैंने यह महसूस किया है कि एक और खतरा है, जिससे यहां के लोग अभिशप्त हैं और जिसके लिए उन्होंने विधेयक में कोई प्रावधान नहीं किया है। महोदय, जिस स्थिति का मैं उल्लेख कर रहा हूं, वह जिन्हें हम सांप्रदायिक दंगे कहते हैं, उनसे उत्पन्न होती है। बंबई नगर में हुए सांप्रदायिक दंगों से संबंधित कुछ आंकड़े यहां मेरे पास हैं। 1851 से 1938 के बीच बंबई नगर में कुल 9 सांप्रदायिक दंगे हुए। पहला दंगा 17 अक्तूबर 1851 को हुआ। यह मुसलमानों और पारसियों के बीच हुआ था। दूसरा दंगा 1874 में हुआ, यह भी मुसलमानों और पारसियों के बीच हुआ था। तीसरा दंगा 1893 में हुआ और यह हिन्दू और मुसलमानों के बीच हुआ था। पांचवां दंगा 1932 में, छठा 1933 में, सातवां 1936 में, आठवां 1937 में और नवां 17 अप्रैल 1938 में हुआ था। ये सभी दंगे हिन्दू और मुसलमानों के बीच हुए। 1893 के दंगे में 80 लोग मारे गए, 60 मंदिर तोड़े गए, 7 मस्जिदें ध्वस्त हुईं और 27 दुर्ग तोड़े गए। मेरे पास अन्य के बारे में कोई आंकड़े नहीं हैं। 1929 में हुए दंगे में 51 लोग मारे गए और 120 से अधिक लोग घायल हुए (इसके सही आंकड़े नहीं हैं)। जिस तीव्रता से ये दंगे हुए, यह भी दिलचस्प और महत्वपूर्ण है, जिसे सदन को ध्यान में रखना चाहिए। जैसा कि मैंने आपको बताया है, पहला दंगा 1851 में हुआ, दूसरा दंगा पहले दंगे के 23 साल के बाद हुआ, तीसरा दूसरे के 19 साल के बाद, चौथा तीसरे के 36 साल बाद, पांचवां चौथे के तीन साल बाद, छठा पांचवें के एक साल बाद, सातवां छठे के 3 साल बाद, आठवां सातवें के एक साल के भीतर हुआ और नवां आठवें के बाद एक साल से कम समय में हुआ। अब, हममें से जो इन तथ्यों और जिम्मेदारी के प्रति सचेत हैं, वे इससे सहमत होंगे कि सभ्यता के निरंतर पतन, और हर साल इन दोनों समुदायों के बीच होने वाले रक्तपात का कोई समाधान होना चाहिए। मैं इन दंगों के कारणों में नहीं जाना चाहता, चाहे वे राजनैतिक हों, चाहे वे धार्मिक हों या आर्थिक हों। उससे हमारा कोई मतलब नहीं है। यह एक वास्तविक तथ्य है कि एक मुसलमान बिना किसी की परवाह किए एक हिन्दू को छुरा घोंप देता है, और एक हिन्दू बिना किसी की परवाह किए एक मुसलमान को मार देता है। इस विभीषिका को हम कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। मैं मानता हूं कि अब समय

आ गया है कि जब कुछ उपाय किए जाने चाहिएं, ताकि प्रेसिडेंसी के अधिकारी तत्परता और प्रभावशाली ढंग से इस खतरे से निपट सकें ।

इस संशोधन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए जिस बात पर मैं सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह यह है कि मेरे संशोधन की धारा (3) पुलिस आयुक्त को किसी भी व्यक्ति को बंबई प्रेसिडेंसी की सीमा से निष्कासित करने का अधिकार देती है, यदि पुलिस आयुक्त के पास ऐसा विश्वास करने के पर्याप्त कारण हों कि अमुक व्यक्ति इस तरह से काम कर रहा है कि उसकी उपस्थिति या गतिविधियां या उसके कारनामे दंगों के लिए जिम्मेदार हैं । यही इस विधेयक का प्रमुख उद्देश्य है । मैं पूर्णत: सहमत हूं कि इस विधेयक की यह धारा अमुक व्यक्ति पर प्रतिबंध लगाती है । महोदय! लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि मैं उस वर्ग से आता हूं, जिसे समाज के किसी अन्य वर्ग से ज्यादा स्वतंत्रता की जरूरत है । मैं पेशे से वकील हूं और मैं स्वतंत्रता का महत्व समझता हूं। लेकिन मैं जिस वर्ग से आता हूं, उसके हितों की दृष्टि से स्वतंत्रता की तमाम अभिलाषाओं और इस तथ्य के कारण भी कि मैं पेशे से वकील हूं, मुझे यह कहना पड़ रहा है कि ऐसे अवसर भी आते हैं, जब समाज के अधिसंख्य लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा करने के साथ, समाज के गुंडों और अपराधी तत्वों की स्वतंत्रता को निलंबित किया जा सकता है। मुझे इस संबंध में कोई आपत्ति नहीं है। इसलिए जिस एक बात से मैं चिंतित हूं और जिससे सदन के सदस्यों को भी चिंतित होना चाहिए, वह यह है कि क्या ऐसे रक्षोपाय किए गए हैं, ताकि पुलिस आयुक्त को,जो हम स्वैच्छिक अधिकार दे रहे हैं, उसका दुरुपयोग नहीं किया जाएगा । यही एक मात्र प्रश्न है जिसके प्रति इस सदन को, अवसर की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, चिंतित होना चाहिए ।

महोदय! अब सदन से मेरा निवेदन है कि इस संशोधन में रक्षोपायों के पर्याप्त प्रावधान हैं ।इसलिए मैं संक्षेप में उन रक्षोपायों का उल्लेख करूंगा । पहला उपाय यह है कि इस संशोधन के तहत पुलिस आयुक्त व्यावहारिक रूप में विधायिका या जनता की जानकारी के बिना अपने स्वैच्छिक अधिकारों का उपयोग कभी नहीं कर सकता है। माननीय सदस्य देखेंगे कि वह कभी ऐसा इसलिए नहीं कर सकता, क्योंकि आपातकाल की घोषणा जारी होने के बाद ही पुलिस आयुक्त को यह अधिकार दिया जाएगा । आपातकाल की घोषणा जारी होने से पहले पुलिस आयुक्त इस अधिकार का उपयोग नहीं कर सकेगा । यही एक बात है जिसे इस संशोधन में दिए गए प्रावधान के संबंध में हमें ध्यान में रखनी है। यह अधिकार आपातकाल की घोषणा होने के बाद ही प्रभावी होंगे और इसमें विधायिका के दृष्टिकोण से भी एक निश्चित फायदा है । वह यह है कि अगर बिना किसी कानून के सरकार आपातकाल की घोषणा करती है, तो इस सदन को स्थगन प्रस्ताव लाने का और गलत ढंग से आपातकाल की घोषणा करने के लिए सरकार की निंदा करने का मौका रहेगा । मेरा निवेदन है कि यह

एक नियंत्रण है जो यह संशोधन विधायिका को यह देखने के लिए देता है कि इस अधिकार का दुरुपयोग न हो । दूसरा फायदा जो कि यह संशोधन देता है, वह यह है, यह हो सकता है कि सरकार आपातकाल की घोषणा कर दे और इसे वापस लेने या निरस्त करने से इंकार कर दे, जिससे कि इस तथ्य के बावजूद कि आपातकाल खत्म हो गया है, पुलिस आयुक्त इन अधिकारों का उपयोग करता रहे, तो इसके संबंध में संशोधन में जो प्रावधान दिया गया है, उसके प्रति मैं सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा । इस संशोधन द्वारा यदि सरकार इसका नवीकरण न करे, तो घोषणा के एक महीने के बाद आपातकाल खत्म हो जाएगा। इससे इसमें फिर से पर्याप्त रक्षोपाय कर दिया गया है कि एक महीने के बाद अधिकार समाप्त हो जाएगा ।

एक अन्य रक्षोपाय जिसकी तरफ मैं सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह है उपधारा (6) जो बहुत महत्वपूर्ण है । यद्यपि यह संशोधन पुलिस आयुक्त को ऐसे व्यक्ति को निर्वासित करने का अधिकार देता है, जो उसके विचार में सांप्रदायिक दंगे करा रहा है, तथापि निर्वासन के इस अधिकार में एक पाबंदी यह जोड़ी गई है कि जैसे ही आपातकाल की घोषणा की अवधि खत्म होती है, वैसे ही यह आदेश स्वयमेव खत्म हो जाता है, ताकि जो आदमी पुलिस के द्वारा निर्वासित किया गया है, वह बंबई वापस लौट सके । वह भी, मैं कहता हूं कि एक रक्षोपाय है ।

एक दूसरा रक्षोपाय जिसकी तरफ मैं सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह यह है कि इसमें पुलिस आयुक्त के आदेश के खिलाफ प्रेसिडेंसी की सरकार से एक अपील की व्यवस्था है । इससे कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन कुछ तो पड़ेगा ही ।

अब मैं अन्य प्रस्तावित संशोधनों के संबंध में केवल एक-दो बातें कहना चाहूंगा । मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र गृह मंत्री इससे सहमत होंगे कि कल जब हमने इस संशोधन की धारा (1) तैयार की तब इस बात पर सबकी सहमति थी कि यह धारा श्रम संबंधी झगड़े या अन्य झगड़ों के लिए प्रयुक्त नहीं होगी, सिवाय उन झगड़ों के जो समुदायों के बीच, एक मायने में धार्मिक समुदायों के बीच, या गुटों द्वारा धार्मिक मतभेदों के कारण होते हैं। मेरे विचार में यह सब पूर्णरूप से सांप्रदायिक दंगों तक सीमित हैं। और मैं माननीय गृह मंत्री द्वारा दिए गए इस आश्वासन से पूरी तरह से संतुष्ट हूं कि इसको किसी अन्य पर लागू करने का इरादा नहीं है । किंतु अगर इस सदन के माननीय सदस्य यह चाहते हैं कि इसमें कोई कमी या बचाव का रास्ता न रह जाए जिनकी वजह से कार्यपालिका इस धारा के प्रावधानों का उपयोग निर्धारित उद्देश्यों के अलावा अन्य उद्देश्यों से करे, तो मैं इसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए पूरी तरह उनके साथ हूं ।

'उपस्थिति' शब्द के संबंध में मुझे यह जरूर कहना है कि मैं इस संशोधन का समर्थन नहीं कर सकता कि इस शब्द को निकाल दिया जाए । 'उपस्थित' शब्द जरूर रहना चाहिए।

मैं एक उदाहरण दूंगा । एक साधु बंबई आता है । वह किसी समुदाय में स्वीकार्य है, किसी दूसरे समुदाय में स्वीकार्य नहीं है । एक फकीर बंबई आता है, समाज का एक वर्ग उसका आदर करता है, दूसरा वर्ग उसे अस्वीकार करता है। इसी मुद्दे पर सांप्रदायिक दंगा शुरू होता है। क्या यह आवश्यक नहीं होगा कि दंगों को कुचलने के लिए बंबई नगर में इस आदमी को उपस्थित ही न रहने दिया जाए । निस्संदेह यह एक अतिरंजित उदाहरण हो सकता है, किंतु एक अतिरंजित उदाहरण ही हमारे द्वारा दिए गए किसी अधिकार की वैधता और प्रभाव को जांचने का एकमात्र तरीका है । इसलिए मैं निवेदन करता हूं 'उपस्थित' शब्द जरूरी है और इसे विधेयक में बना रहना चाहिए ।

दूसरे संशोधन के संबंध में मेरे विचार सुस्पष्ट हैं, क्योंकि हमारा इरादा यह है कि विधेयक सांप्रदायिक दंगों के अलावा अन्य किन्हीं दंगों पर लागू न हो । इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं और मुझे उम्मीद है कि सदन इसे स्वीकार करेगा ।

डा. भीमराव अम्बेडकर* (बंबई नगर): महोदय! मैं यह जानकर बहुत खुश हूं कि जो संशोधन मैंने पेश किया था, उसे कई माननीय सदस्यों का समर्थन मिला है जिन्होंने विधेयक के पहले वाचन पर वक्तव्य दिया था । मैं नहीं समझता कि विपक्ष के माननीय नेता ने मेरे संशोधन का विरोध किया है, यद्यपि उन्हें विधेयक के संबंध में बहुत कुछ कहना था। मेरे माननीय मित्र, राव बहादुर चितले ने संशोधन का समर्थन किया है और मेरे मित्र जमनादास मेहता का विरोध, यदि मुझे ऐसा कहने की अनुमति हो, तो मौलिक नहीं है, बल्कि रणनीतिगत है । इस दृष्टि से मेरे लिए यह जरूरी नहीं है कि उन टिप्पणियों पर वास्तव में लंबे उत्तर दिए जाएं। लेकिन दो बातें हैं, जिनका मैं उल्लेख करना चाहता हूं । निस्संदेह यह एक आपातकालीन उपाय है और आपातकालीन उपाय के रूप में, इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता पर पर्याप्त प्रतिबंध लगाए गए हैं ।

माननीय अली मोहम्मद खान देहलवी : मैं माननीय सदस्य की बात में संशोधन करना चाहता हूं। मैं नहीं जानता कि माननीय सदस्य को यह कहने का क्या अधिकार है कि यह एक आपातकालीन उपाय है, जिसे माननीय प्रस्तावक स्वीकार नहीं करते ।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं केवल अपने संशोधन के संबंध में जवाब दे रहा हूं । मेरा संशोधन एक आपातकालीन संशोधन है और जैसा कि मैंने अपने वक्तव्य में स्वीकार किया है, इसमें व्यक्ति पर प्रतिबंध शामिल है । मैं इस संबंध में निवेदन करना चाहता हूं कि अगर वे भद्र पुरुष जिन्होंने मेरे संशोधन के संबंध में वक्तव्य दिया है, इस तथ्य को बढ़ा-चढ़ाकर और इस पर जोर देते हुए कि इसमें प्रतिबंध शामिल है, मैं आदर के साथ उनका ध्यान डिफेंस आफ द रेल्म ऐक्ट जो इंग्लैंड में और डिफेंस आफ इंडिया ऐक्ट जो भारत में युद्ध के दौरान पारित हुए थे, की ओर दिलाना चाहता हूं। ये दोनों आपातकालीन उपाय थे और अगर उन

*_बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स_, खंड 3, पृ. 2471-73, 27 अप्रैल, 1936

उन भद्र पुरुषों में से कोई अधिनियम के प्रावधानों को पढ़ते तो वे जान जाते कि यह संशोधन बहुत नरम संशोधन है और इसे भी याद रखना चाहिए कि यह आपातकालीन विधान–'डिफेंस आफ रेल्म ऐक्ट'और'डिफेंस आफ इंडिया ऐक्ट'–चार साल तक बने रहे।'डिफेंस आफ रेल्म ऐक्ट'1914 में परित हुआ और 1919 तक नहीं हटाया गया तथा पुलिस अफसरों को दिए गए अधिकार इस संशोधन के प्रस्तावित अधिकारों से काफी ज्यादा थे। मैं उस समय एक छात्र के रूप में इंग्लैंड में था। इसलिए आपातकाल का ध्यान रखते हुए मैं निवेदन करता हूं कि जो अधिकार पुलिस आयुक्त को दिए गए हैं, वे अनुचित रूप से व्यापक नहीं कहे जा सकते हैं।

दूसरे मामलों के संबंध जैसे कि यह एक स्थाई उपाय है, मैं सदन का ध्यान भारत सरकार अधिनियम की धारा 102 में शामिल प्रावधानों की ओर आकर्षित करता हूं, जो इस अवसर के लिए बहुत ही उपयुक्त और प्रासंगिक हैं। भारत सरकार अधिनियम की धारा 102 में ठीक वही है, जो यह संशोधन प्रस्तावित करता है। उसमें भी गवर्नर जनरल को अपने स्व–विवेक से आपातकाल की घोषणा करने का अधिकार दिया गया है और उस घोषणा के दौरान गवर्नर जनरल शांति और व्यवस्था को बरकरार रखने के लिए कोई भी कानून जरूरी अध्यादेश द्वारा पारित करने के लिए अधिकृत है...

माननीय मोहम्मद खान देहलवी : जिसे देश स्वीकार नहीं करता है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: खैर, यह भारत सरकार अधिनियम में शामिल है। इसी प्रकार, उसी धारा में एक प्रावधान है कि आपातकाल की घोषणा छह महीने तक ही लागू रहेगी। मैं संगत प्रावधानों को पढूंगा :

> इस अध्याय की पूर्व धाराओं की किसी भी बात के रहने के बावजूद यदि गर्वनर जनरल ने स्व विवेक से घोषणा द्वारा यह प्रख्यापित किया है कि इस अधिनियम में 'आपातकाल की घोषणा' के रूप में उल्लिखित गंभीर आपातकाल की स्थिति बनी हुई है, जिससे भारत की सुरक्षा को युद्ध अथवा आंतरिक गड़बड़ के कारण चुनौती मिली है, तो संघीय विधान पालिका को यह अधिकार होगा कि वह राज्य या उसके किसी हिस्से के लिए प्रांतीय विधायी सूची (प्रोविंशियल लेजिस्लेटिव लिस्ट) में गिनाए गए किन्हीं मामलों से संबंधित कानून बना सके।
>
> उपखंड (4) के अनुसार :
>
> संघीय विधायिका द्वारा बनाया गया कानून जिसे वह अन्यथा नहीं बनाती,लेकिन आपातकाल की घोषणा के मुद्दे की वजह से जिसे बनाने के लिए यह सक्षम बनी है, इस घोषणा के प्रभावी न रहने के बाद छह महीने की अवधि की समाप्ति के पश्चात प्रवृत्त नहीं रहेगा, परंतु यह उन प्रसंगों के संबंध में प्रभावी नहीं रहेगा, जो उक्त अवधि के भीतर हो गए हों या होने के लिए छोड़ दिए गए हों।

इसलिए सदन से मेरा निवेदन है कि'डिफेंस आफ रेल्म ऐक्ट'और'डिफेंस आफ इंडिया

ऐक्ट तथा धारा 102 के प्रावधानों को मद्देनजर रखते हुए हम वास्तव में कुछ भी असामान्य नहीं कर रहे हैं।

एक टिप्पणी जो मेरे माननीय मित्र श्री जमनादास मेहता ने की वह यह है कि यद्यपि मेरी इच्छा इन आपातकालीन अधिकारों को सांप्रदायिक झगड़ों और सांप्रदायिक दंगों तक सीमित करना थी, तथापि इस संशोधन में प्रयुक्त भाषा ऐसी नहीं है, जो अंत में इस संशोधन के कार्यान्वयन को सांप्रदायिक दंगों तक सीमित रख सकेगी। उनका तर्क यह था कि 'संप्रदाय' शब्द का अनिवार्य मतलब धार्मिक संप्रदाय ही नहीं होता और इसका प्रयोग व्यावसायिक संप्रदाय, औद्योगिक संप्रदाय और श्रमिक संप्रदाय के रूप में होता है और दूसरे, सरकार अपने अधिकारों का उपयोग इस विधान को श्रमिक विवादों के संबंध में भी करेगी।

अब, इस मुद्दे पर मेरा पहला निवेदन यह है कि घोषणा का यह हिस्सा निश्चित रूप से व्याख्या का विषय नहीं होने जा रहा है, क्योंकि यह सरकार के स्व विवेक के आधार पर तय होने वाला मामला है। इसे किसी अदालत में नहीं ले जाया रहा और आपातकालीन घोषणा अदालत में कोई मसला नहीं बन सकती कि यह उचित रूप में लागू हुई है या नहीं। अदालत का काम तो केवल यह देखना है कि क्या घोषणा जारी हो गई है या नहीं, यह घोषणा उचित रूप से जारी हो गई है या नहीं — यह सरकार का मामला है और अगर सरकार ने घोषणा का उपयोग ऐसे ढंग से किया है, जैसा कि मेरा अथवा विपक्ष के किसी सदस्य का इरादा नहीं था, तो यह सरकार इस सदन के समक्ष उत्तरदायी रहेगी।

जिस दूसरी बात का मैं निवेदन करना चाहता हूं वह यह है कि मैं स्वीकार करता हूं कि 'कम्यूनिटी' शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है लेकिन यहां आने से पहले मैंने अपने आपको संतुष्ट करने के लिए आक्सफोर्ड डिक्शनरी को देखा, क्योंकि मैं श्री जमनादास जी से ज्यादा चिंतित हूं कि यह उपाय श्रमिक झगड़ों में लागू नहीं होना चाहिए।

जमनादास एम. मेहता : बस, इतने ही चिंतित, ज्यादा नहीं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: अगर आप मुझे कहने की अनुमति देंगे, तो मैं ज्यादा चिंतित हूं। इसलिए मैं कहता हूं कि यदि आप बेहतर भाषा का सुझाव दे सकते हैं, तो मैं आपके द्वारा प्रस्तावित किसी भी परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए पूरी तरह तैयार हूं, लेकिन जहां तक मैं इस शब्द को समझने में सक्षम हूं और जहां तक किसी मानक शब्द कोश की सहायता ली जा सकती है, मुझे इस बात को लेकर लेशमात्र भी शंका नहीं है कि शब्द व्युत्पत्ति शास्त्र की दृष्टि से और बुनियादी तौर पर 'कम्यूनिटी' शब्द धार्मिक संप्रदाय (समाज) के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। इसका अभिप्राय उन व्यक्तियों से होना प्रतीत होता है, जो किसी धार्मिक संप्रदाय (समाज) के सदस्य हैं। धार्मिक संप्रदाय 'कम्यूनियन' एक धार्मिक शब्द है। कोई व्यक्ति उस समय धार्मिक समाज का अंग नहीं रहता, जब किसी धर्माधिकारी द्वारा समाज से उसका बहिष्कार कर दिया जाता है, उसका संप्रदाय में रहना समाप्त हो जाता है। यह इस शब्द की उत्पत्ति का मूल है। मैं इस बात से पूर्णतः सहमत हूं कि यह ऐसा शब्द

नहीं है, जिसका श्रम, हड़ताल या किसी अन्य परिस्थिति में प्रयोग किया जाए। अत: मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर मेरे विद्वान और माननीय मित्र सोचते हैं कि यही पर्याप्त नहीं है और दूसरा शब्द जरूरी है, तो मैं उस स्थिति में उनकी पूरी मदद करने के लिए तैयार हूं। इन शब्दों के साथ मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं।

* * * * *

डा. भीमराव अम्बेडकर*: महोदय! मैं समझता हूं कि मेरे द्वारा प्रस्तुत संशोधन में, जैसा कि यह प्रस्तुत किया गया है, एक बहुत ही सारगर्भित अंश नहीं है, जिसको मैं शामिल करना चाहता था, क्योंकि सम्मेलन के समय जो प्रारूप मुझे दिया गया था, मैं उस पर काम कर रहा था। अगर आप मुझे मेरे संशोधन में अनुपूरक जोड़ने की अनुमति दें, तो यह पूर्ण हो जाएगा। संशोधन इस प्रकार है :

खंड 2, उपखंड (1) (I) में निम्नांकित को उपखंड (क) जो 'कि यह उपस्थिति' आदि से प्रारंभ होता है के स्थान पर जोड़ दें, अर्थात :

(क) कि बंबई नगर की सीमा में कोई व्यक्ति आदतन गैरकानूनी कामों में लगा हुआ है,जो नगरवासियों के लिए एक खतरा है और जो इतना दुस्साहसी और खतरनाक है कि शहर में उसकी मुक्त उपस्थिति संकट पैदा करने वाली है और जो बल प्रयोग या हिंसा अथवा भारतीय दंड संहिता के अध्याय 12, 16, अथवा 17 के तहत किसी दंडनीय अपराध में आदतन संलग्न है, और जिसके विरुद्ध आयुक्त के विचार में गवाह खुलकर गवाही देने के लिए आगे नहीं आते हैं, या

* * * * *

डा. भीमराव अम्बेडकर**: महोदय! इससे पहले कि मैं अपने संशोधन के समर्थन में अपनी बात कहूं, मेरे लिए शायद यह जरूरी है कि मैं दो प्रारंभिक टिप्पणियां करूं। पहली टिप्पणी जो मैं करना चाहता हूं, वह यह है। इस अधिनियम की धारा 27 में संशोधन के लिए मेरे मित्र माननीय गृह मंत्री जो विधेयक लाए हैं, उसका समर्थन मैं क्यों करता हूं, इसका कारण यह है। कल की बहस के दौरान बहुत कुछ कहा जा चुका है कि यह संशोधन पुलिस आयुक्त को मूलधारा 27 द्वारा प्रदत्त अधिकारों से ज्यादा अधिकार देता है। समग्र विधेयक के अनुप्रयोग को देखते हुए मुझे इस बारे में थोड़ी भी शंका नहीं है कि संशोधित धारा 27 मौजूदा धारा 27 से बहुत ही नरम होगी।

इसीलिए मैं आदेशों के निलंबन के लिए और इस अधिनियम को पारित करने में गृह मंत्री महोदय की मदद करने के लिए सहमत हुआ।

मैं जो दूसरी टिपणी करना चाहता हूं, वह यह है। पार्टियों के सम्मेलन में जहां हम लोगों

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली* डिबेट्स, खंड 3, पृ. 2497, 27 अप्रैल 1938

** *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 3, पृ. 2499-2501, 27 अप्रैल 1938

के बीच इस संशोधन पर बहस हुई, मैंने यह जरूर कहा था कि मैं इस उपाय का समर्थन करूंगा। जिन प्रस्तावों पर बहस के समय उन पर सहमति हो गई थी, मेरे मित्र गृह मंत्री महोदय कहेंगे कि सम्मेलन में यह रुख अपनाने के बाद अब मेरा इसमें संशोधन प्रस्तुत करना कुछ अटपटा सा लगता है। महोदय! मैं इस को स्पष्ट करना चाहता हूं। जब मैं गृह मंत्री महोदय का समर्थन करने को सहमत हुआ, तब तक संशोधन इस विधेयक के सिद्धांतों तक ही सीमित था। विधेयक में समाविष्ट सिद्धांत, यदि मैं इस विधेयक को ठीक-ठीक समझता हूं, तो वह ऐसा है। बंबई नगर में कुछ अपराधी सक्रिय हैं, जिनके आतंक से पीड़ित खुद अदालत में गवाही देने आगे नहीं आते। इसलिए नियमित मुकदमा नहीं चल पाता। यही जैसा कि मैंने कहा है, विधेयक का सिद्धांत है। मैं भी उसकी मुख्य बात की सत्यता पर कायम हूं। मैं अपने सिद्धांत से भटक नहीं रहा। मैं सिर्फ यही करना चाहता हूं कि ऐसे व्यक्तियों की कोटि निश्चित कर ही जाए,जिसके खिलाफ पुलिस आयुक्त बिना किसी नियमित मुकदमें के कारवाई कर सकता है, क्योंकि उनके विरुद्ध सूचना देने वाले अदालत के सामने आने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए मेरी राय में संशोधन तफसील का संशोधन है, न कि कोई सिद्धांतगत संशोधन।

अब, महोदय! संशोधन पर आते हुए सबसे पहले जिस बात की ओर मैं सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं वह यह है। इसका पाठ इस प्रकार है :

> कि किसी व्यक्ति की बंबई नगर में उपस्थिति, गतिविधियां या चेष्टाएं जिससे/जिनसे खतरा या संकट उत्पन्न होता है अथवा जिनसे ऐसा होने का अंदेशा है या जिसका ऐसा करने का प्रयत्न है या पर्याप्त संदेह उत्पन्न करते हैं कि यह व्यक्ति गैर-कानूनी प्रवृत्तियों को प्रश्रय दे रहा है।

इस पर ध्यान दें कि इसकी भाषा अत्यधिक नरम है। दूसरे मुझे ऐसा लगता है कि वह व्यक्ति जो एकमात्र गैर-कानूनी काम करता है,जिसके फलस्वरूप खतरा या संकट या पर्याप्त संदेह उत्पन्न होता है, तो पुलिस आयुक्त को जो अधिकार हम दे रहे हैं, उसके तहत वह उसे पकड़ कर तड़ीपार कर सकता है। मुझे विश्वास है कि न तो गृह मंत्री महोदय का यह इरादा था और न ही मेरी ऐसी मंशा थी। अगर मैं माननीय गृह मंत्री का दृष्टिकोण ठीक-ठीक समझा हूं, तो उन्होंने अपने विधेयक संचालन भाषण में कहा था कि प्रस्तावित संशोधन के तहत अधिकार मांगने का उनका मुख्य उद्देश्य (उनके ही शब्दों में) पक्के मवालियों को पकड़ना है। अगर मैं 'पक्का मवाली' शब्दों का अर्थ समझता हूं, तो मेरा मानना यह है कि पक्का मवाली वह व्यक्ति है, जो आदतन ऐसी वारदातें करता है, जो खतरनाक और दुस्साहसी होता है और जो आदतन गैर-कानूनी कामों में लिप्त होता है। अगर माननीय गृह मंत्री का यह इरादा है,तो उन्हें उन इरादों को, जिन्हें उन्होंने सदन में स्वीकार किया है, स्पष्ट शब्दों में कानून में समावेश करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसलिए इस दृष्टिकोण से मैंने उनकी भाषा को संशोधित करने की कोशिश की है, इस बात पर जोर देते हुए कि वह

व्यक्ति निश्चित रूप से आदतन ये सब कुछ कर रहा है:

कि बंबई नगर की सीमा के अंदर कोई व्यक्ति आदतन गैरकानूनी गतिविधियों में लिप्त है, जो नगरवासियों के लिए इतना खतरनाक है और दुस्साहसी है कि नगर में उसकी मुक्त उपस्थिति ज्यादा संकट पैदा करने वाली है और जो आदतन इनमें लिप्त...

संशोधन का शेष हिस्सा माननीय सदस्य पाटस्कर के संशोधन के समान ही है। मैं मान लेता हूं कि माननीय गृह मंत्री को उस संशोधन के आधिकारिक शासकीय संशोधन बन जाने पर कोई आपत्ति नहीं है।

मैंने जो करने की कोशिश की है, वह कुछ भी नया नहीं है। मैंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 110 से शब्द लिए हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 110 पुलिस को उस व्यक्ति पर, जो आदतन डकैत हो, प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष मुकदमा चलाने का अधिकार देती है। मैंने धारा 110 की उपधारा (क) और उपधारा (च) के शब्द लिए हैं। यह तर्क दिया जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 110 के अंतर्गत, यद्यपि कोई आदमी आदतन डकैत है अथवा कोई आदमी आदतन दुस्साहसी और खतरनाक चरित्र वाला है, तो भी बिना मुकदमे के उसके खिलाफ कार्रवाई नहीं की जा सकती। आप उसके खिलाफ कार्रवाई क्यों करना चाहते हैं, क्योंकि वह बंबई नगर में है ? इस पर मेरी सफाई यह है कि हम उन मामलों के बारे में बात कर रहे हैं, जिनमें लोग अदालत में गवाही देने के लिए तैयार नहीं हैं और यही कारण है कि मैंने पुलिस आयुक्त को न्यायिकोत्तर और कानूनोत्तर अधिकार देने पर अपनी सहमति दी है। ऐसे अधिकार देने में यह आवश्यक है कि ऐसे लोगों की कोटि को निश्चित और परिभाषित किया जाए, जिनके खिलाफ कार्रवाई हो सकती है। मेरा निवेदन यह है कि सदन के लिए इस कोटि को परिभाषित करना उचित होगा। यह कह कर कि व्यक्ति आदतन गैर कानूनी काम कर रहा है, न कि संयोगवश। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन सदन के सुपुर्द करता हूं।

II*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : महोदय! मुझे यह जानकर बहुत खेद हुआ है कि मेरे संशोधन ने, जिस रूप में मेरे द्वारा इसे शब्दांकित किया गया है, उसने एक गलत धारणा पैदा कर दी है और जो प्रभाव मैं इसके द्वारा उत्पन्न करना चाहता था, उससे यह बहुत अलग है। मैं इस मौके पर एक ही बात कहना चाहूंगा। मैं मानता हूं कि यह ऐसा अवसर नहीं है,जब हममें से कोई भी इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बना ले। मैं यह बात फिर से कहना चाहता हूं, क्योंकि मैं समझता हूं कि यह अवसर बहुत ही महत्वपूर्ण है। महोदय! मैं यह भी कहना चाहता हूं कि माननीय गृह मंत्री ने अपना जवाब देते समय इस बात को ध्यान में नहीं रखा

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 3, पृ. 2509-12, 28 अप्रैल 1938

कि उनको आपातकाल से निपटने के लिए हमने काफी अधिकार दिए हैं और जो अधिकार उनको मेरे संशोधन के द्वारा दिए गए हैं, अपने आप में इतने व्यापक हैं कि इनसे वह उन व्यक्तियों से भी निपट सकते हैं, जो बुरे इरादे रखते हों। महोदय! आपातकाल से निपटने के लिए यथासंभव व्यापक अधिकार गृह मंत्री को दे देने के बाद इस पक्ष के सदस्यों को सामान्य अवसरों से निपटने के लिए उन्हें अधिकार देने के मामले में छिद्रान्वेषण का रवैया अपनाना बिल्कुल सही है। वह पूरी तरह इस बात को भूल गए हैं कि विचाराधीन विधेयक सामान्य अवसरों के लिए अधिकार देता है। इसका असामान्य अवसरों से कोई संबंध नहीं है और इसलिए मुझे ऐसी कोई संभावना नहीं दिखाई देती, जिसमें मेरे संशोधन के तहत दिए गए अधिकारों का उपयोग करते हुए पुलिस आयुक्त परिस्थिति से निपटने में सक्षम नहीं होगा। इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि मेरे इस संशोधन को स्वीकार करना जनता और सभी संबंधित वर्गों के हित में ही होगा। महोदय! मेरा कहना यह है कि यह एक बहुत महत्वपूर्ण अवसर है और विधेयक नागरिकों की स्वतंत्रता जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों से संबंधित है, इसलिए मैं समझता हूं कि यह एक ऐसा प्रमुख अवसर है, जिसपर सभी तरफ से यथासंभव सहमति होनी चाहिए। इसलिए मैं माननीय गृह मंत्री महोदय से अपील करता हूं कि वह इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनाएं जैसा कि मैंने नहीं बनाया है और इस संशोधन को स्वीकार कर लें। महोदय, मैं अपने माननीय मित्र श्री चुंद्रीगर और श्री बोले के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

माननीय के.एम. मुंशी : यह प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं है। हमने प्रत्येक शब्द की जांच की है, हर सुझाव के आशय पर विचार किया है। इसके बाद किसी व्यक्ति को आदतन संलिप्त होने के विषय में कोई शंका नहीं रह गई है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : कभी-कभी बेहतर विचार फिर से आते हैं।

माननीय के. एम. मुंशी : महोदय! जैसा कि मैंने कहा,यह प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं है। प्रश्न विचारों की भिन्नता का है, क्योंकि अगर प्रत्येक मामले में हमें यह पता लगाना है कि क्या मामलों में अंतर्ग्रस्त व्यक्ति आदतन शामिल है या नहीं। इसमें पहली बार जो संलिप्त हुआ है, वह तो बच जाएगा। यह धारा को व्यर्थ बना देगा और पुलिस आयुक्त या सरकार की मौजूदा धारा के तहत जो स्थिति है, वह बदतर हो जाएगी।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मेरे माननीय मित्र को यह समझना चाहिए कि इस पक्ष का कोई भी सदस्य गिरोहों से निपटने के लिए अधिकारों का उपयोग करने के विरुद्ध नहीं है। वास्तव में, विपक्ष कहता है कि गिरोहों को रखें। अगर आप गिरोहों से निपटने के लिए कोई संशोधन करना चाहते हैं, तो मैं इसका समर्थन करने को तैयार हूं, मुझे उसमें थोड़ी भी आपत्ति नहीं है। मुझे याद है कि विपक्ष के एक नेता ने कहा था कि गिरोह से निपटने के लिए अधिकार दिए जाने चाहिए। लेकिन आप व्यक्तियों से निपटने के लिए अधिकार चाहते हैं और इसलिए हम ये बंधन लगा रहे हैं। अगर हमें सभी उपायों से गिरोहों से निपटना है, तो किसी को इस आशय का संशोधन लाने दीजिए और मैं समर्थन करूंगा, शर्त यह है कि वह विवेक-सम्मत संशोधन हो। यहां आप व्यक्तियों के संबंध में बात कर रहे हैं। महोदय! अगर आप

चाहें, तो हम कुछ देर और रुक जाएं और बहस कर लें।

श्री एस.एच. झाबवाला: महोदय! यह मेरे द्वारा प्रस्तावित प्रवर समिति की उपयोगिता को दर्शाता है।

माननीय के.एम.मुंशी : महोदय!मैं भी पूरी तरह सहमत हूं, किंतु इस प्रकार के विषय के लिए स्थगन का कोई लाभ नहीं है।मैं संशोधन के प्रस्तुतकर्ता महोदय को समझाने का प्रयत्न कर रहा हूं कि उसमें 'आदत' शब्द रखकर, उन्होंने इस धारा के परिचालन को व्यावहारिक रूप में पूर्णत: प्रभावहीन बना दिया है। जब तक कि वह इस 'आदत' शब्द को नहीं हटाते, मैं इस पर आगे विचार नहीं कर सकता। अगर वह इस धारा में 'आदत' शब्द को बनाए रखना चाहते हैं, तो धारा लगभग निरर्थक ही हो जाती है। इसीलिए मैं कहता हूं,स्थगन का कोई लाभ नहीं है। कोई सामान्य आधार ही नहीं है।

माननीय अली मोहम्मद खां देहलवी: उस पक्के मवाली का वर्णन किया गया है।

माननीय के.एम. मुंशी : एक पक्का मवाली अनिवार्यत: ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो आदतन गैर कानूनी गतिविधियों में संलिप्त रहता है। यह धौंस देने वाला या दादा के अर्थ में मवाली हो सकता है। सदस्य मेरी बात से वह आशय निकाल रहे हैं,जो मेरा कभी नहीं रहा। जब मैंने 'पक्का मवाली' कहा, तो मैंने यह नहीं कहा कि एक ऐसा व्यक्ति जो आदतन गैर कानूनी गतिविधियों में संलग्न है।

माननीय अली मोहम्मद खान देहलवी : महोदय! मैं यह कहना चाहता हूं कि जब मंत्री महोदय ने 'पक्का मवाली' कहा था, तभी हम समझ गए कि उनके अपने दिमाग में मवालियों की कई कोटियां रही हैं।

माननीय श्री के.एम. मुंशी : मैं इससे सहमत हूं, मवाली भी कई प्रकार के हो सकते हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : निश्चित रूप से मंत्री महोदय उस आदमी के मामले पर विचार करना नहीं चाहते, जिसने कभी कोई छिटपुट अपराध किया हो।

माननीय श्री के.एम. मुंशी : मैंने माननीय सदस्य को उस गिरोह का उदाहरण दिया था, जो कलकत्ता से आया था। उसमें 11 आदमी ऐसे थे, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया था, लेकिन जो किसी गैर कानूनी गतिविधि में शामिल होने वाले थे। पुलिस की सतर्कता के बावजूद कलकत्ता में उन्हें अपराधी सिद्ध नहीं किया जा सका। उनमें से कुछ ऐसे आदमी थे जो. . .

डा. भीमराव अम्बेडकर : अगर वे लोग कलकत्ता में अपराध करते रहे थे, तो वे आदतन अपराधी रहे होंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई बंबई में ही आदतन अपराध करता हो।

माननीय श्री के.एम.मुंशी: उनको गैर कानूनी काम करने के लिए दोषी नहीं ठहराया गया था।

डा. भीमराव अम्बेडकर : क्या मैं मंत्री महोदय का ध्यान अपने संशोधन के शब्द विन्यास की तरफ आकर्षित कर सकता हूं ? वह यह है ". . . जो इतना दुस्साहसी और खतरनाक है कि उसका शहर में मुक्त रहना संकट पैदा करने वाला है". . . गिरोह का कोई भी सदस्य इसके तहत आ जाता है।

माननीय श्री के.एम. मुंशी : अगर माननीय सदस्य धैर्य रखें तो मैं उन्हें बताऊंगा। जैसा कि मैंने गिरोह के नेता का उदाहरण दिया, वह दुस्साहसी नहीं भी हो सकता है। वह शायद कलकत्ता में मोटरकार में घूम रहा था। वह यूरोपीय था और बंबई के सभ्य समाज में स्वीकृत था, लेकिन वह उस अर्थ में दुस्साहसी नहीं था कि एक लाठी लेकर रास्तों पर दौड़ता फिरे।

डा. भीमराव अम्बेडकर : लेकिन वहां 'खतरनाक' शब्द भी है।

माननीय श्री के.एम. मुंशी: अब, महोदय! 'खतरनाक' शब्द का क्या अर्थ होता है ?

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैंने धारा में प्रयुक्त शब्द लिए हैं और इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि वे शब्द पूरी तरह समझ में आने वाले हैं।

माननीय श्री के.एम. मुंशी : महोदय! दुस्साहसी और खतरनाक शब्द उन दादा लोगों के लिए हैं, जो बेकाबू हैं या लोगों को धमकाते हैं या शारीरिक अर्थ में खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। वे जालसाज गिरोह के नेता पर लागू नहीं होते।

डा. भीमराव अम्बेडकर : लेकिन इन पर तो अलग से एक पूरा अध्याय है, जिसमें इस पर पूरा विचार गया है, जैसे भारतीय दंड संहिता का अध्याय 16 जिसे मैंने छोड़ दिया है।

माननीय श्री के.एम. मुंशी: लेकिन आपने कहा है, 'आदतन संलिप्त'।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं सदन के सामने इस बात का उल्लेख करना चाहता हूं कि जो शब्द मैंने अब प्रस्तावित किए हैं, उनसे इस धारा के क्षेत्र के अंतर्गत केवल कुछ खास किस्म के लोग ही आ सकेंगे और उन लोगों के बहुत सारे मामले इसके अंतर्गत नहीं आएंगे, जो मौजूदा धारा के अंतर्गत आ जाते हैं।

माननीय श्री के.एम. मुंशी : महोदय, जैसा कि माननीय सदस्य ने खुद स्वीकार किया है कि वे शब्द विधेयक के क्षेत्र को सीमित कर देते हैं, यदि ऐसा ही है तो इस विधेयक का कोई मतलब नहीं होगा, अगर वह धारा को उस हद तक मंद कर देते हैं तो इस विधेयक को जिस उद्देश्य के लिए तैयार किया गया था, उसके लिए यह एक बेकार हथियार सिद्ध होगा। इसलिए मेरे लिए इस संशोधन को स्वीकार करना संभव नहीं है।

माननीय अध्यक्ष: अब मुझे संशोधन और संशोधन के संशोधनों को सदन के सामने रखना है। पहले मैं संशोधन के संशोधनों को लूंगा। इसलिए सबसे पहले मैं श्री भोले का संशोधन जो डा. अम्बेडकर के संशोधन में संशोधन करने से संबधित है, सदन में मत के लिए रखूंगा। क्या इसे पढ़ने की मुझे जरूरत है ? (माननीय सदस्य: नहीं) इसलिए अब मैं प्रश्न रखूंगा।

प्रश्न रखा गया।

माननीय अध्यक्ष: यह विरोधकर्ताओं के पक्ष में रहा।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! यह केवल इरादा प्रकट करने का प्रश्न था। यह कोई ठोस संशोधन नहीं है।

माननीय अध्यक्ष: यह ठोस नहीं है, फिर भी माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर के संशोधित संशोधन को अंत में सदन के सम्मुख रखना होगा।

इसलिए इससे किसी भी तरफ से कोई अंतर नहीं पड़ता। मैं पुन: एक बार ध्वनिमत लूंगा। संशोधन रखा गया और अनुमोदित हो गया।

* * * * *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : मैं अपने माननीय मित्र श्री चुंद्रीगर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का समर्थन कर रहा हूं। संशोधन अपेक्षा करता है कि पुलिस आयुक्त अपने कब्जे में लिए गए सामान पर कोई कारवाई करे, इससे पहले उसे उस व्यक्ति को जिसे वह निर्वासित करना चाहता है, मजिस्ट्रेट के सम्मुख सामग्री सहित पेश करे, और जब तक मजिस्ट्रेट संतुष्ट

नहीं हो जाए, तब तक कोई कार्रवाई न करें। स्पष्टतः इस संशोधन का उद्देश्य एक और रक्षोपाय के रूप में यह देखने के लिए है कि पुलिस आयुक्त कोई मनमानी तो नहीं कर रहा है। महोदय! क्या यह संशोधन जो रक्षोपाय के रूप में है, उन लोगों पर ऐसी कार्यवाही करत है,जिसमें ज्यादती होती हो, अथवा क्या यह अनावश्यक मामला है, जिसे मेरा विचार है कि तुलनात्मक रवैया अपनाने पर ठीक से समझा जा सकता है। अब मैं उन क्रांतिकारियों का मामला लेता हूं, जो क्रांतिकारी गतिविधियों में लगे होते हैं। यह स्पष्ट है कि इस विधेयक का संशोधन जिन लोगों से निपटने के आशय से प्रस्तुत किया गया है, वे इतना बड़ा खतरा नहीं हैं,जितना क्रांतिकारी हैं। स्पष्टत: उन्हें क्रांतिकारियों से ज्यादा रक्षोपाय और ज्यादा सुरक्षा की आवश्यकता है। अब हम यहां एक क्षण के लिए रुककर पूछें कि क्रांतिकारियों के खिलाफ भारत के कानून में क्या रक्षोपाय थे। मैं इस संबंध में इतिहास में नहीं जाना चाहता। किंतु मेरे सामने उस राजद्रोह समिति (सेडिशन कमेटी) की रिपोर्ट है, जिसे भारत सरकार ने 1913 में नियुक्त किया था। उसके विचारार्थ विषयों में कहा गया है कि 'भारत में आंदोलन की मौजूदगी पर सूचना देना, आपराधिक षड्यंत्रों से निपटने में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों की जांच करना और ऐसे अपराधियों को दंड देने के उपायों का सुझाव देना।' मेरे लिए भारत के क्रांतिकारी कार्यों में जाना अनावश्यक है, जिस पर समिति ने विस्तार से विचार किया है। इस उद्देश्य के लिए जो प्रासंगिक है, वह है राजद्रोह समिति द्वारा सुझाया गया रक्षोपाय।

सदन इस समिति के गठन के बारे में जानने के लिए उत्सुक होगा। इसलिए मैं उन भद्र पुरुषों के नाम उद्धृत करता हूं, जिन्हें मिलाकर यह समिति बनी थी: सम्राट पीठ के जज न्यायमूर्ति श्री रोलेट, बंबई के मुख्य न्यायाधीश माननीय बेसिल स्काट, मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश दीवान बहादुर सी.वी. कुमार स्वामी शास्त्री, संयुक्त प्रांत के राजस्व बोर्ड के सदस्य माननीय बर्नी लॉवेट और श्री सी.जी. मित्तर। समिति में बहुत बड़ी संख्या में वे लोग थे, जिनकी मानसिकता न्यायिक थी। यह एक तथ्य है कि उस पूरी अवधि के दौरान जिसमें भारत सरकार क्रांतिकारी गतिविधियों से निपटना चाहती थी, उन्होंने इस सिद्धांत को स्वीकार किया था कि क्रांतिकारियों को दंडित करने से पहले एक अभिकरण के द्वारा न्यायिक जांच अवश्य कराई जाए। उनके साथ अदालती न्याय कभी नहीं किया गया था। तर्क यह था कि अभिकरण भारत सरकार की कार्यपालिका में जो व्यक्ति काम करते थे, उनसे बना था। समिति पैरा 182 में कहती है:

> हालांकि हम लोग 'डिफेंस आफ इंडिया ऐक्ट' के तहत स्थापित क्रियाविधि का सिद्धांत रूप में अनुमोदन करते हैं, तब भी हम मानते हैं कि इन अधिनियमों द्वारा गठित अभिकरणों को अब बदल देना चाहिए। हमें यह अनुचित लगता है कि इन अभिकरणों में ऐसे व्यक्ति हों जो पहले से ही न्यायपालिका के सदस्य नहीं हैं, बल्कि किसी खास

मामले के उद्देश्य से कार्यपालिका द्वारा चुने गए हैं। हम लोगों ने जो कुछ देखा, उससे ऐसा नहीं लगता कि अभी तक नियुक्त विशेष अभिकरण अभियुक्त के प्रति पक्षपातपूर्ण रहा है, लेकिन हम समझते हैं कि आपत्तियों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। इसके अलावा यदि अपील करने का अधिकार छीना जाता है, तो अभिकरणों के पास अधिकतम शक्ति और अधिकार होने चाहिए।

अगर यह रक्षोपाय यह देखने के लिए आवश्यक है कि क्रांतिकारियों के प्रति कठोर व्यवहार और अन्याय नहीं होना चाहिए, तो मेरा निवेदन है कि सामान्य बुद्धि वाला प्रत्येक आदमी सोचेगा कि विधेयक में वर्णित लोगों के लिए ज्यादा रक्षोपाय की आवश्यकता है। आखिरकार, संशोधन की क्या मांग है ? संशोधन यह नहीं चाहता कि जिस व्यक्ति पर आरोप लगाकर पुलिस आयुक्त उसे नगर से निकाल देना चाहता है, उसकी जांच करने के लिए मजिस्ट्रेटों से गठित अभिकरण हो। ऐसी कोई मांग नहीं की गई है और न ही संशोधन यह मांग करता है कि मजिस्ट्रेट के सामने सामग्री पेश किए जाने पर उसकी जांच इस प्रकार की जानी चाहिए, मानो यह मुकदमा हो। संशोधन में यह अपेक्षा नहीं की गई है कि पुलिस आयुक्त मजिस्ट्रेट के सामने जब सामग्री पेश करता है, तब यह जानकारी देने वालों का नाम प्रकट करे। इस प्रकार की कोई मांग नहीं रखी गई है। संशोधन बहुत ही नरम है। यह मजिस्ट्रेट से अपेक्षा नहीं रखता कि वह पुलिस आयुक्त द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर फैसला दे। इससे जो कुछ अपेक्षा रखी गई है, वह यह है कि मजिस्ट्रेट इसकी जांच कर सकता है और यह प्रमाण-पत्र दे सकता है कि यह संतोषजनक मामला है, जिसके अनुसार पुलिस आयुक्त यदि चाहे तो कार्यवाही कर सकता है। महोदय! अब मैं हर दृष्टि से यह कहने के लिए तैयार हूं कि यह रक्षोपाय सबसे नरम है, जिसे मुहैया किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। मेरा निवेदन है कि इस तथ्य के मद्देनजर माननीय सदस्य श्री पाटस्कर का संशोधन अभी पारित हो गया है और पुलिस आयुक्त के अधिकार और ज्यादा व्यापक हो गए हैं जो कि मेरे संशोधन के पारित होने की स्थिति में इतने व्यापक नहीं होते — विपक्ष और समूचे सदन पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि क्या इस छोटे रक्षोपाय — मैं इसे बहुत छोटा रक्षोपाय कहता हूं— का प्रावधान विधेयक में किया गया है, ताकि यह देखा जा सके कि पुलिस आयुक्त मनमाने ढंग से व्यवहार न करे।

III*

डा. भीमराव अम्बेडकर : मेरा निवेदन है कि माननीय सदस्य श्री पाटस्कर के संशोधन को स्वीकार करके हमने जो किया है, वह यह है कि पुलिस आयुक्त के लिए निर्देश के रूप में ऐसे मामले निर्दिष्ट किए हैं, जिनमें वह उन अधिकारों का उपयोग कर सकता है,

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 3, पृ. 2586-87, 29 अप्रैल 1938

जो उसे दिए गए हैं। इस निर्देश के अनुसार वह अपने अधिकारों का उपयोग केवल उन्हीं मामलों में करेगा, जिनमें उसके विचार में गवाह किसी व्यक्ति के खिलाफ खुलकर गवाही देने के लिए तैयार नहीं है। वहीं उसको दिया गया निर्देश यह है कि उसे केवल उन मामलों में अपने अधिकारों का उपयोग करना है, जिनमें गवाह सुरक्षा कारणों से गवाही देने के लिए आगे आना नहीं चाहते। उपखंड (2) में यह विधेयक एक निश्चित प्रक्रिया निर्धारित करता है, जिसका अनुपालन आयुक्त को करना होता है और वह इस प्रकार है — सबसे पहले, आयुक्त को आरोप का विवरण देना होता है। दूसरे, आयुक्त के आरोप के बारे में संबंधित व्यक्ति को सफाई देने का मौका देना होता है, और तीसरे, उस संबंधित व्यक्ति को अपने गवाह लाने का एक मौका देना पड़ता है। उपखंड (6) का संबंध पुलिस आयुक्त के द्वारा दिए गए आदेश पर फौजदारी अदालत द्वारा सवाल उठाने से है। यह धारा क्या कहती है? यह धारा केवल यह कहती है कि अदालत को यह देखने का अधिकार होगा— इसे मैं सरल रूप से रख रहा हूं — कि क्या इस विधेयक में निर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण किया जा रहा है या नहीं। प्रक्रिया के रूप में अनुसरण करने के लिए पुलिस आयुक्त से जो पहली बात कही गई है, वह आरोप का विवरण प्रस्तुत करने से संबंधित है : दूसरे, उसे संबंधित व्यक्ति को आरोप पर सफाई के लिए मौका जरूर देना चाहिए, तीसरे,- यह एक ऐसा मुद्दा है, जो मूल रूप में छोड़ दिया गया था, किंतु उच्च न्यायालय के निर्णय का एक हिस्सा था- यह कि आयुक्त के पास सामग्री जरूर होनी चाहिए। अब यह मुद्दा माननीय सदस्य श्री पाटस्कर के संशोधन द्वारा जोड़ दिया गया है। अब, मेरा निवेदन यह है कि हमने खंड के द्वारा यह भी जोड़ा है कि हमने पारित किया है कि इस अधिकार का उपयोग केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए, जिनमें गवाह सुरक्षा कारणों से पेश होना नहीं चाहते। माननीय सदस्य श्री भोले के संशोधन का उद्देश्य है- एक और आधार को जोड़ना जिससे उच्च न्यायालय आदेश को रद्द कर सके। चूंकि उपखंड में शब्दों में अभिव्यक्ति कर दी गई है, इसलिए किसी व्यक्ति को आरोप की तफसील न दिए जाने और उस पर लगाए गए आरोपों पर सफाई देने का मौका न दिए जाने या उसकी अथवा उसके गवाहों की सुनवाई न किए जाने की स्थिति में उच्च न्यायालय आदेश को रद्द कर सकता है। और अंत में श्री पाटस्कर के संशोधन के अनुसार पुलिस आयुक्त के पास ऐसी कोई भी सामग्री नहीं थी, जिसके आधार पर वह आदेश दे सकता। माननीय सदस्य श्री भोले यह जोड़ना चाहते हैं कि माननीय सदस्य श्री पाटस्कर के संशोधन के पहले भाग में दी गई शर्त, अर्थात यह कि गवाह, गवाही देने के लिए आगे आना नहीं चाहते हैं, भी एक आधार बन सकती है, जिसके आधार पर मजिस्ट्रेट आदेश को रद्द कर सकता है। इस तरह मजिस्ट्रेट के अधिकारों पर सीमा नहीं लगाई गई है। इसमें एक प्रक्रिया का निर्धारण किया गया है और यह खंड समग्रत: यह बताता है कि उच्च न्यायालय या मजिस्टीरियल कोर्ट यह देखेगा कि इन सब प्रक्रियाओं

का अनुसरण पुलिस आयुक्त द्वारा किया जा रहा है। न तो माननीय सदस्य श्री पाटस्कर और न ही यहां कोई व्यक्ति चाहता है कि उच्च न्यायालय या मजिस्टीरियल कोर्ट सामग्री की विश्वसनीयता के प्रश्न पर निर्णय ले। इसके लिए कुल मिलाकर यह देखना आवश्यक है कि आयुक्त के पास सामग्री थी। इसी प्रकार श्री भोले कहना चाहते हैं कि अदालत यह देखे कि पुलिस आयुक्त ने प्रस्ताव में इस तथ्य को ध्यान में रखा है कि क्या गवाह आने को तैयार हैं। उच्च न्यायालय या मजिस्टीरियल कोर्ट इस प्रश्न पर अड़ंगा नहीं लगा सकते कि गवाह आने को तैयार क्यों नहीं है। यह भी अड़ंगा नहीं लगाया जा सकता कि आधार संतोषप्रद नहीं है। निर्णय का अंतिम अंश पुलिस आयुक्त के हाथ में है। माननीय श्री भोले का संशोधन है कि वह इस खंड में उस शर्त को लाना चाहते हैं, जिसे हमने माननीय सदस्य श्री पाटस्कर के संशोधन को पारित करके शामिल कर लिया है, और जो प्रक्रिया संबंधी शर्त है, ताकि विधेयक अपने में संपूर्ण हो जाए। हमारे द्वारा पारित संशोधन और माननीय सदस्य श्री भोले के संशोधन के बीच कोई टकराव नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि आयुक्त के हिसाब से शब्दावली जोड़ी जाए। मैं संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

* * * * *

डा. भीमराव अम्बेडकर* : महोदय! क्या मैं स्पष्ट कर सकता हूं ? संक्षेप में स्थिति यह है कि हमने उपखंड (7) के तहत अदालत को दो बार कुछ निश्चित अधिकार दिए हैं, जब कोई व्यक्ति आयुक्त के आदेश को न मानने के कारण मजिस्ट्रेट के सम्मुख लाया जाता है, तो मजिस्ट्रेट को यह देखने का अधिकार है कि उचित प्रक्रिया का अनुसरण किया गया है या नहीं। प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट को यह देखना होता है कि क्या मजिस्ट्रेट के सामने सामग्री मौजूद थी। यह खंड बताता है कि जब मामला प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट के सामने लाया जाता है, तब आयुक्त या किसी अन्य व्यक्ति को अदालत में गवाह के कटघरे में यह बताने के लिए जाना पड़ेगा कि उसके पास कुछ सामग्री है, जिसके आधार पर वह कार्रवाई कर सकता है। यह खंड कहता है कि यह गवाही देते समय पुलिस आयुक्त या किसी ऐसे अधिकारी को जिसे वह प्रतिनियुक्त करता है, उस व्यक्ति की पहचान या संपत्ति की पहचान करनी होगी। मैं उपखंड (8) के अधिकार क्षेत्र की व्याख्या कर रहा हूं; खंड (8) का क्षेत्र यह है कि यह तब लागू होता है, जब यह देखने के लिए कि क्या यह सही है या नहीं, मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश पर विचार किया जा रहा हो; और यह कि क्या यह आदेश प्रक्रिया के अनुकूल दिया गया है। मजिस्ट्रेट को यह देखना है कि क्या आयुक्त के समक्ष कोई सामग्री थी, क्योंकि वह भी एक शर्त है, और यह सिद्ध करने के लिए कि सामग्री क्या थी, यह प्रश्न उठ सकता

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 3, पृ. 2598-99, 29 अप्रैल 1938

है कि क्या पुलिस आयुक्त इसके लिए बाध्य है कि वह सभी सूचना जिसमें व्यक्ति या संपति की शिनाख्त संबंधी सूचना भी शामिल होगी, मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत करे। इस खंड के अनुसार गवाही देते समय पुलिस आयुक्त ऐसी सूचना देने से इंकार कर सकता है, जो उसके पास हो और व्यक्ति या संपत्ति की पहचान करा सकती हो। उपखंड (8) का अधिकार क्षेत्र यही है।

* * * * *

डा. भीमराव अम्बेडकर* : महोदय! मैं इस संशोधन को प्रस्तुत करना चाहता हूं, अर्थात–

इसके आगे आने वाले 'शब्दों के स्थान पर निम्नांकित शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे और आदतन खतरनाक व्यक्तियों से निपटने और सांप्रदायिक दंगों के दौरान शांति और व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से'

मैं यही संशोधन प्रस्तुत करना चाहता हूं।

माननीय अध्यक्ष: मैं अभी माननीय सदस्य, विद्वान डाक्टर के उस संशोधन का उल्लेख कर रहा था, जिसमें उन्होंने यह अधिनियम आदतन अपराधियों पर लागू होने का प्रस्ताव किया था। मेरा यही विचार है कि सदन द्वारा किए गए निर्णयों के मद्देनजर संशोधन का यह भाग भी निरर्थक होगा।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं निवेदन करना चाहता हूं कि यह बिल जो अभी सदन के सम्मुख है, इसके दो उद्देश्य हैं, अर्थात पहला उद्देश्य है,सांप्रदायिक दंगों से निपटना, और इसलिए मेरा निवेदन है कि मेरे संशोधन का वह भाग जिसमें सांप्रदायिक दंगों का उल्लेख है, पूरी तरह व्यवस्था–सम्मत है। यह विधेयक उन निश्चित प्रावधानों पर भी विचार करता है, जिनका आशय या परिकलन माननीय गृह मंत्री के उन शब्दों से है, जो 'मवाली' समझे जाते हैं, और मेरा मानना है कि इसका अनुवाद 'आदतन खतरनाक व्यक्ति' हो सकता है। मेरे संशोधन का तात्पर्य इस दोहरे उद्देश्य वाले विधान को स्पष्ट करना है। इसका एक उद्देश्य तो सांप्रदायिक दंगों से निपटना है और दूसरा उद्देश्य उनसे निपटना है जो 'मवाली 'कहे जाते हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि मेरा संशोधन व्यवस्था के अनुरूप है। अगर फिर भी, यह आपत्तिजनक है, तो मैं 'मवालियों की करतूतों के नियंत्रण के उद्देश्य से' वाक्यांश का प्रयोग करने के लिए तैयार हूं।

माननीय अध्यक्ष: उसके संबंध में कठिनाई यह होगी कि मवाली शब्द अधिनियम में परिभाषित नहीं है। यह वैसी अभिव्यक्ति नहीं है, जिसे किसी भी अधिनियम में परिभाषित किया गया हो।

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मेरा निवेदन है कि प्रस्तावना का न्यायिक निर्वचन नहीं होने जा रहा है। प्रस्तावना में केवल वे निर्देशक नियम होते हैं, जिसके उद्देश्य के लिए हम इस अधिनियम का उपयोग करने वाले हैं, और इसलिए मेरा निवेदन है कि हालांकि 'मवाली' शब्द न्यायिक रूप से व्याख्यायित नहीं है, तो भी गृह मंत्री महोदय और पुलिस

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 2630-34, 29 अप्रैल 1938

इस शब्द से इतनी अच्छी तरह परिचित हैं कि मैं समझता हूं कि इसके संबंध में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

माननीय अध्यक्ष: संशोधन को दो हिस्सों में बां गया है। एक जो आदतन अपराधी के बारे में उल्लिखित अंश है, जैसा कि माननीय सदस्य ने कहा है, जिसे हटाने के लिए मैं समझता हूं, माननीय सदस्य तैयार हैं।

डा.भीमराव अम्बेडकर: मैं इसको बांटने को तैयार हूं। एक तो ऐसे लोगों से जो या तो खतरनाक चरित्र या मवाली हैं, निपटने वालों में और दूसरे वे जिनके बारे में मेरा मानना है कि संशोधन का वह अंश आपातकाल के अधिकार देता है, उससे सीधा उल्लेख है।

माननीय अध्यक्ष: दूसरे, मैं देख सकता हूं कि अगर दो हिस्सों में बांटा गया है, तो पहले के बारे में मैं समझता हूं कि 'मवाली' अभिव्यक्ति का प्रयोग भी नहीं. . . .

डा. भीमराव अम्बेडकर: तब मेरा संशोधन यह होगा कि खतरनाक चरित्र के व्यक्तियों से निपटने के लिए मैं 'आदतन' शब्द को वापस लेने के लिए तैयार हूं। प्रस्तावना का उद्देश्य हमारे इरादों को स्पष्ट करना है।

श्री जमनादास मेहता : मेरा निवेदन है कि विद्वान डाक्टर के संशोधन को पूरी व्यवस्था में ही ग्रहण किया जाए, क्योंकि यह अब अनुभव किया जा रहा है कि समूचे विधेयक के दो उद्देश्य हैं – एक आपातकाल से निपटना और दूसरा उन दुष्चरित्रों से निपटना जिनकी चर्चा अधिनियम में की गई है। प्रस्तावना में यह अभिव्यक्त होना चाहिए, जिसे सदन ने अधिनियम बनाया, अन्यथा, प्रस्तावना अधूरी होगी और यह अभिव्यक्त नहीं कर पाएगी कि विधेयक का उद्देश्य क्या है।

माननीय अध्यक्ष: मैं किसी तकनीकी आपत्ति पर विचार नहीं कर रहा हूं। मैं यह विचार कर रहा हूं कि शब्दावली उस बात को कैसे अभिव्यक्त करेगी, जो विधेयक में कही गई और जिसे सदन के द्वारा पारित कर दिया गया है।

माननीय श्री बी.जी. खेर: क्या मैं माननीय सदस्य को यह बता सकता हूं कि 'खतरनाक' शब्द अस्पष्ट है ? इसे 'समाज के लिए खतरनाक', 'नगर के लिए खतरा' या इसी अर्थ से संबंधित कुछ और होना चाहिए। हमें ऐसे तार मिलते हैं कि फलां-फलां खतरनाक हैं, शीघ्र प्रारंभ कीजिए। 'खतरनाक' शब्द अपने आप में अस्पष्ट है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: उन व्यक्तियों से निपटने के उद्देश्य से जो बंबई नगर के निवासियों के लिए खतरा हैं, मैं सुझाव दे सकता हूं, ताकि दंगों के दौरान शांति और व्यवस्था बनी रहे।

माननीय श्री के.एम. मुंशी : आपने दंगों के दौरान गुटों और गिरोहों को छोड़ दिया है। धारा के शब्द हैं 'संप्रदायों के बीच' गुट और गिरोह।

डा. भीमराव अम्बेडकर : हम इसे इस प्रकार रख सकते हैं, 'संप्रदाय के उन तत्वों, गिरोहों और गुटों के बीच होने वाले झगड़ों से शांति और व्यवस्था के लिए उत्पन्न खतरों से निपटने के लिए।'

माननीय श्री के.एम. मुशी: 'और उसके आगे उल्लिखित इसके उद्देश्य के लिए।'

डा. भीमराव अम्बेडकर: कौन-से दूसरे उद्देश्य ?

माननीय श्री के.एम.मुंशी : 'और इसके आगे उल्लिखित दूसरे इरादे।'

डा. भीमराव अम्बेडकर: वे अन्य क्या हैं ?

माननीय श्री के.एम. मुंशी : इसमें अन्य प्रक्रिया संबंधी उद्देश्य भी हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: तब मैं इसको ऐसे कहूंगा, 'ऐसे मामलों से निपटने के लिए प्रक्रिया निर्धारित करने के लिए।'

माननीय अध्यक्ष: क्या यह सभी प्रस्तावना में जरूरी है ? हमें इसे बोझिल नहीं बनाना चाहिए।

माननीय श्री के.एम. मुंशी: इस अधिनियम में आप्रवासियों की भी चर्चा है और इसलिए 'इसके आगे जरूरी नहीं है।'

श्री एस. वी. पारूलेकर: हम कल के लिए रुक सकते हैं, ताकि हम एक सहमतिपूर्ण शब्दावली पर पहुंच सकें।

माननीय अध्यक्ष: ऐसा लगता है कि विषय-वस्तु पर सहमति है और अब केवल शब्दावली का प्रश्न है। अब जब कि प्रस्तुत संशोधन की विषय-वस्तु स्वीकार कर ली गई है, तीसरे वाचन के समय कोई आवश्यक शाब्दिक संशोधन किया जा सकता है।

माननीय श्री के.एम. मुंशी : अंत में क्या मैं यह कह सकता हूं? मैं आप्रवासियों को छोड़ना नहीं चाहता।

माननीय अध्यक्ष: यही माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित किया जा रहा है। 'आगे आने वाले' इन शब्दों के बदले निम्नांकित को स्थानापन्न कीजिए:

उन लोगों से निपटने के लिए जो बंबई नगर के लिए खतरा हैं और संप्रदायों या पंथों, गिरोहों और गुटों के बीच होने वाले झगड़ों के कारण शांति और व्यवस्था को उत्पन्न खतरों से निपटने के लिए और इससे आगे परिकल्पित कतिपय अन्य प्रयोजनों के लिए।

माननीय श्री. के.एम. मुंशी : मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : क्या मैं जान सकता हूं कि इसमें अन्य उद्देश्य क्या हैं ?

माननीय श्री के.एम.मुंशी : आप्रवासियों से निपटने के लिए।

डा. भीमराव अम्बेडकर: आप्रवासी विषय है, न कि उद्देश्य।

माननीय बी.जी.खेर: प्रश्न यह है कि वे आप्रवासी जो नगर में कुछ बीमारियां लेकर आते हैं, उनसे निपटना है। प्रस्तावना का उद्देश्य सभी उद्देश्यों को क्रमानुसार वर्णित करना नहीं है। अर्थ स्पष्ट है। इसके आगे आने वाले कतिपय अन्य प्रयोजन स्पष्टत: स्वयं विधेयक में प्रतिष्ठापित प्रयोजनों को स्पष्ट करते हैं। कोई अन्य प्रयोजन विधेयक में नहीं लाया जा सकता।

माननीय अध्यक्ष: क्या 'कतिपय अन्य प्रयोजनों के लिए' शब्दों को हटा देना चाहिए?

माननीय अली मोहम्मद खान देहलवी: उन्हें जरूर हटाना चाहिए, क्योंकि हम केवल धारा 27 पर विचार कर रहे हैं, न कि समग्र अधिनियम पर।

माननीय श्री बी.जी. खेर : अगर आप ऐसा नहीं चाहते, तो हम भी इसे हटा देना चाहते हैं।

माननीय अध्यक्ष : आम सहमति यही लगती है कि 'इसके आगे' शब्दों को रहना चाहिए। तब संशोधन ऐसे पढ़ा जाएगा 'इसके आगे आने वाले' शब्दों के स्थान पर निम्नांकित को प्रतिस्थापित करें:

उन व्यक्तियों से निपटने के लिए जो बंबई नगर के लिए खतरा हैं और संप्रदायों के बीच होने वाले झगड़ों से जनशांति और स्थिरता को भंग न होने देने के लिए।

माननीय श्री बी.जी. खेर: क्या मैं सुझाव दे सकता हूं कि वाक्यांश को ऐसा होना चाहिए, 'जनशांति

या स्थिरता' न कि जनशांति और स्थिरता ? इसी प्रकार यह भी 'संप्रदाय या पंथों के बीच होने वाले झगड़ों के कारण'।

माननीय अध्यक्ष: विभिन्न संप्रदायों या उनके पंथों, गिरोहों या गुटों के बीच होने वाले झगड़ों के कारण जनशांति और स्थिरता को भंग होने से रोकने और इसके आगे आने वाले परिकल्पित कतिपय अन्य प्रयोजनों के लिए।. . .

माननीय अली मोहम्मद खान देहलवी: 'या कतिपय अन्य प्रयोजनों के लिए।' मैं समझता हूं हमारी उस पर सहमति है।

माननीय श्री के.एम.मुंशी. मैं हर बात पर सहमत होऊंगा।

श्री आर. के. खेड़गीकर: क्या हमें शब्द-विन्यास की जांच के लिए एक अवसर नहीं मिलेगा ? हमने इसे पूरी तरह नहीं समझा है।

माननीय अध्यक्ष: अब मैं अंतिम प्रारूप पढ़ रहा हूं। अगर मैंने कोई गलती की हो, तो ऐसे में यह शुद्धि के लिए प्रस्तुत है।

श्री एस. वी. पारूलेकर: क्या आप हमें इस पर कोई निर्णय करने से पहले संशोधन के अध्ययन हेतु एक अवसर देंगे? संशोधन बहुत लंबा है, और इस समय हम इसके मंतव्यों को नहीं जान पा रहे हैं, इसलिए हमें इसका अध्ययन करने का अवसर दिया जाए। यह बहस के लिए रखा जा सकता है।

माननीय अध्यक्ष: जैसा कि मैंने कहा, प्रस्तावना, अंततः उसका जिसका अनुसरण हो रहा हो, सारांश और बहुत सामान्य सारांश प्रस्तुत करने का प्रयास करती है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: यह कार्यपालिका को निर्देश होती है।

माननीय श्री बी.जी. खेर: हम यह सब कुछ स्वीकार करने के लिए तैयार हैं जो आप प्रस्तावित करेंगे।

श्री जमनादास एम.मेहता: ऐसा कुछ भी जो इस बहस को छोटा बनाए, उसका स्वागत होगा। (ठहाका)

माननीय अध्यक्ष: इसलिए ऐसा है कि मैं अंतिम शब्दावली का, जिस पर सहमति हो गई है, सुझाव दे रहा हूं कि मैं एक बार फिर समूचे संशोधन को पढ़ रहा हूं, माननीय सदस्य कृपया इसे धैर्यपूर्वक सुनें–

'इसके आगे आने वाले' शब्दों की जगह निम्नांकित को स्थानापन्न कीजिए:

उन व्यक्तियों से निपटने के लिए जो बंबई नगर के लिए खतरा हैं और संप्रदायों या उनके पंथों या गिरोहों या गुटों के बीच होने वाले झगड़ों के कारण जनशांति या स्थिरता को भंग न होने देने के लिए और इसके आगे आने वाले अन्य प्रयोजनों के लिए।

श्री जमनादास एम.मेहता: 'अन्य' शब्द वहां जरूर होना चाहिए।

माननीय अध्यक्ष: 'और अन्य प्रयोजनों के लिए'।

डा. भीमराव अम्बेडकर: 'जैसे कि आप्रवासियों से निपटने के लिए'।

माननीय अध्यक्ष: आखिरकार, वकील जानते हैं कि प्रस्तावना का किस तरह अर्थ लगाना चाहिए और जहां तक धाराओं की रचना का संबंध है, इसका महत्व ही क्या है। अगर मुझे ऐसा कहने की इजाजत मिले, तो मैं नहीं मानता कि यह मुद्दा वास्तव में इस प्रकार का है कि उस पर इतनी लंबी बहस की जाए।

श्री जमनादास एम. मेहता : 'अन्य' शब्द वहां जरूर होना चाहिए क्योंकि पहले जिनकी चर्चा हुई है, वे भी उद्देश्य हैं।

माननीय अध्यक्ष: 'और आगे आने वाले अन्य प्रयोजनों के लिए'।

श्री जमनादास एम.मेहता: यह ठीक होगा।

माननीय श्री के.एम. मुंशी: मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं।

माननीय अध्यक्ष: इसलिए मैं मानता हूं कि शब्दावली यह होगी। (व्यवधान) शब्दावली स्वयं धाराओं से ली जाती है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं इसे स्वीकार करता हूं।

12

बंबई नगरपालिका अधिनियम संशोधन विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर, भायखला तथा परेल): महोदय! मैं माननीय सदस्य श्री ए.बी. चित्रे के प्रस्तावित संशोधन का समर्थन करता हूं। महोदय! संशोधन यह है कि कामगारों के प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाने वाले चार पार्षदों के अतिरिक्त नगरपालिका कर्मचारियों द्वारा भी दो पार्षद चुने जाने चाहिएं। इस संशोधन का समर्थन क्यों किया जाए, इसका कारण मेरे विचार में इस प्रकार है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नगरपालिका कर्मचारियों की नगरपालिका प्रशासन में प्रत्यक्ष रुचि होती है। वे म्यूनिसिपल कमिश्नरी के मातहत काम करते हैं। वे नगरपालिका द्वारा नियुक्त विभिन्न अधिकारियों के मातहत काम करते हैं। महोदय! नगरपालिका संशोधन के प्रति आदर भाव रखते हुए मैं यह कहना चाहूंगा कि एक बात स्पष्ट है और पूर्णतया स्पष्ट है, वह यह कि इन नगरपालिका कर्मचारियों को वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा जारी किए जाने वाले किसी आदेश के विरुद्ध अपनी शिकायतें दूर करने का कोई अधिकार नहीं है। उनकी स्थिति बंबई सरकार के मातहत कार्य कर रहे आम सिविल कर्मचारी से निश्चित रूप से बहुत ज्यादा भिन्न है। उदाहरणार्थ, प्रांतीय सेवा अथवा अधीनस्थ सेवा में कार्यरत किसी भी सिविल कर्मचारी को हानिकर आदेश के बारे में अपील करने का अधिकार है। बंबई नगरपालिका में ऐसा कोई उपबंध नहीं है। किसी भी अधिकारी द्वारा नगरपालिका के किसी कर्मचारी के विरुद्ध कोई आदेश जारी किया जा सकता है और उस कर्मचारी को उस आदेश के खिलाफ अपील करने का कोई अधिकार नहीं होता। इस संशोधन से नगरपालिका कर्मचारियों को यह लाभ होगा कि बंबई नगरपालिका के किसी भी अधिकारी द्वारा जारी किए जाने वाले आदेश के बारे में उनके प्रतिनिधि सदन में बोल सकेंगे और इस संशोधन से निश्चित रूप से उन्हें कुछ न कुछ राहत मिलेगी। वर्तमान संविधान के अंतर्गत उन्हें यह सुविधा प्राप्त नहीं है।

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 2807–08, 3 मई 1938

माननीय मंत्री महोदय ने बताया है कि हम अब वयस्क मताधिकार का प्रावधान कर रहे हैं, और चूंकि हमने वयस्क मताधिकार का प्रावधान कर दिया है, इसलिए संगठित श्रमिकों के अलग प्रतिनिधित्व के लिए प्रावधान करना आवश्यक नहीं है। मेरा यह सुनिश्चित मत है कि सदन के समक्ष विचाराधीन विधेयक में उन्होंने जिन प्रस्तावों को प्रस्तुत किया है, उन पर उन्होंने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। मैं माननीय मंत्री से यह सूचना चाहूंगा कि क्या उनके विचार में वयस्क मताधिकार एक ऐसा संपूर्ण उपाय है, जिससे पालिका कर्मचारी प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए आश्वस्त हो सकते हैं। यदि ऐसा है, तो कामगारों के लिए चार पार्षदों को प्रतिनिधित्व देने संबंधी उपबंध की कोई आवश्यकता नहीं है। *बोंबे चैंबर्स आफ कामर्स, इंडियन मर्चेंट्स चैंबर तथा मिल ओनर्स एसोसिएशन* को प्रतिनिधित्व की भी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्हें चुनाव की सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकता है। यदि वयस्क मताधिकार के माध्यम से ही श्रमिकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकता है, तो प्रतिनिधियों द्वारा चार पार्षदों के चयन का उपबंध भी अनावश्यक है। अतएव, यह तर्क दिया जा सकता है कि श्रमिकों द्वारा चार पार्षदों के चुनाव के उपबंध का मुख्य कारण यह है कि वयस्क मताधिकार का प्रावधान होते हुए भी श्रमिकों को चुनाव की साधारण प्रक्रिया के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो सकता और मंत्री महोदय इस बात को समझते भी हैं। यदि श्रमिकों को श्रमिक निर्वाचन-क्षेत्र के जरिए प्रतिनिधित्व देना आवश्यक है, तो मैं यह कहना चाहूंगा कि आम श्रमिकों की अपेक्षा नगरपालिका के कामकाज और संविधान में अधिक रुचि रखने वाले नगरपालिका कर्मचारियों को विशेष प्रतिनिधित्व दिए जाने का यह भी एक अच्छा कारण है। इस आधार पर मेरा यह कहना है कि इस सदन को इस संशोधन का समर्थन करना ही चाहिए।

13

मद्यनिषेध*

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं मद्यनिषेध के संबंध में सदन की प्रबल भावनाओं को भली-भांति समझता हूं। ऐसा नहीं है कि मैं उनसे सहमत नहीं हूं, परंतु अन्य कारणों की वजह से मैं आबकारी मंत्री के प्रति ज्यादा कठोर नहीं होना चाहता। मैं मानता हूं कि वह अभी इस पद पर नए आए हैं और मैं यह भी मानता हूं कि इस पद पर कार्य करना उतना सरल नहीं है। मैं इस पद की जिम्मेदारी स्वीकार करने का साहस दिखाने पर उन्हें बधाई देता हूं, जिसे इस सदन के एक अन्य माननीय सदस्य ने छोड़ना बेहतर समझा।

मैं इस विषय पर बोलने के लिए केवल इस कारण से खड़ा हुआ हूं कि गत दो-तीन दिनों के दौरान माननीय आबकारी मंत्री ने जो कहा है, उसका मुझ पर यह प्रभाव हुआ है कि मैं यह सोचता हूं कि वह उन्हीं पुराने गलत तरीकों को अपनाने लगेंगे, जो आबकारी विभाग में चलते आ रहे हैं । मेरे विचार से कल उन्होंने, हमारे प्रश्नों के दौरान निजाम के राज्य की सीमाओं के पास एक दुकान खोल दी है, क्योंकि निजाम ने भी हमारे क्षेत्र में एक दुकान खोली है। महोदय, मैं यह नहीं सोचता कि एक मंत्री, जिसने मद्यनिषेध की नीति को स्वीकार किया है, वह इस सदन के समक्ष ऐसा बयान या तर्क दे। उनका यह तर्क कुछ इस प्रकार का है कि, क्योंकि किसी डाकू ने डाका डाला है और वह कुछ लूटकर ले गया है, जिसे माननीय आबकारी मंत्री स्वयं कर सकते थे और इसीलिए उन्हें भी डकैती डालने का अधिकार प्राप्त हो गया है। महोदय, किसी एक व्यक्ति के गलती करने से दूसरे व्यक्ति को उसी प्रकार की गलती करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। बेहतर यह रहता कि मेरे माननीय मित्र आबकारी मंत्री महामहिम निजाम के समक्ष हमारे क्षेत्र में दुकान खोलने के विरुद्ध अपना विरोध प्रस्तुत करते। ऐसा करने के बजाय उन्होंने इस प्रेसिडेंसी के लोगों के व्यापक हितों के स्थान पर कुछ आय प्राप्ति के साधनों में वृद्धि करने को ज्यादा महत्व दिया है।

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 19, पृ. 838-40, 10 मार्च 1927

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे माननीय मित्र आबकारी मंत्री अन्य सभी बातों के बजाय मात्र पैसा अर्जित करने पर ज्यादा ध्यान देते हैं। बजट पर हुई चर्चा के दौरान भी उन्होंने एक ऐसा बयान दिया है, जिस पर मेरे विचार में गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। मेरी आलोचनाओं के जवाब में उन्होंने कहा है कि आबकारी विभाग की नीति पर राय देते समय हमें राज्य के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जा रही शराब की खपत की मात्रा को ध्यान में रखना चाहिए, न कि आबकारी विभाग द्वारा अर्जित की जा रही राशि को। उन्होंने सदन में ऐसे आंकड़े प्रस्तुत किए, जिनसे यह पता चलता है कि बंबई के निवासी भारत के अन्य राज्यों के लोगों की तुलना में कम मात्रा में शराब का सेवन करते हैं। मैं समय के अभाव के कारण उन आंकड़ों का अध्ययन नहीं कर पाया हूं। लेकिन मैं समझता हूं कि हमें उन आंकड़ों को मान लेना चाहिए, क्योंकि वे आंकड़े माननीय आबकारी मंत्री ने प्रस्तुत किए हैं। महोदय! लेकिन मैं सोचता हूं कि मेरे माननीय मित्र इस बात को स्वीकार करेंगे कि जहां इस राज्य के लोग वैध रूप से तैयार की गई शराब तो कम प्रयोग कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर राज्य में अवैध शराब ज्यादा मात्रा में बनाई जा रही है। इस प्रकार यदि हम इस तथ्य को मद्देनजर रखें कि यद्यपि वैध शराब का प्रयोग कम हो रहा है, लेकिन अवैध शराब का प्रयोग बढ़ रहा है, तो परिणाम यह नजर आता है कि शराब की खपत कम नहीं हुई है। यह ठीक है कि हमारे पास अवैध शराब के निर्माण से संबंधित वास्तविक आंकड़े नहीं हैं, लेकिन मेरा विश्वास है कि इस तथ्य को स्वीकार किया जा चुका है। और मैं सोचता हूं कि माननीय आबकारी मंत्री सर्वप्रथम इस तथ्य को स्वीकार करेंगे कि अवैध शराब की खपत बढ़ रही है। इस प्रकार कुल मिलाकर हम लाभ की स्थिति में नहीं हैं, क्योंकि इसका केवल यह परिणाम सामने आ रहा है कि लोग वैध शराब का कम इस्तेमाल कर रहे हैं और अवैध शराब का अधिक। अब प्रश्न यह उठता है कि इस राज्य में अवैध शराब निर्माण में वृद्धि क्यों हो रही है, जहां तक मैं जानता हूं, सरकारी तौर पर इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया गया। लेकिन मेरे पास इसका उत्तर है। महोदय! मेरे विचार में इस राज्य में अवैध शराब के बनाने में हो रही बढ़ोतरी का कारण केवल यह है कि देशी शराब पर बहुत ज्यादा शुल्क लगाया गया है। अब राजनीति शास्त्र का एक मान्य सिद्धांत है वह एक ऐसा सिद्धांत है, जो केवल पुस्तकों में नहीं दिया गया है, बल्कि व्यवहार में भी आता है और जिसे प्रत्येक गृहणी भी जानती है, वह यह है कि जब किसी वस्तु की कीमतों में वृद्धि होती है, तब यह आम प्रवृत्ति होती है कि लोग उसके स्थान पर किसी ऐसी दूसरी वस्तु का उपयोग करने लगते हैं, जो उतनी ही उपयोगी हो, परंतु सस्ती हो। हम सभी जानते हैं, उदाहरण के तौर पर जब चीनी के दाम बढ़ते हैं तो लोग चीनी के साथ गुड़ का प्रयोग करने लगते हैं। यदि काफी के मूल्य में वृद्धि होगी, तो उस समय लोग चाय का अधिक प्रयोग करने लगेंगे। महोदय! इसी सिद्धांत को इस मामले में लागू करते हुए मैं यह कहना चाहता हूं कि देशी शराब पर अधिक शुल्क

लगाए जाने के कारण ही अवैध शराब के उपयोग में वृद्धि हो रही है। अत: मेरे माननीय मित्र आबकारी मंत्री इस प्रश्न के इस पहलू पर अधिक ध्यान दें। यदि वह वास्तव में मद्यनिषेध की नीति में विश्वास रखते हैं, तो उन्हें अपनी शुल्क दरों पर पुन: विचार करना होगा। यदि वह शुल्क दर पर पुन: विचार नहीं करते हैं,तो मैं यह कहना चाहूंगा कि वह वैध शराब के उपयोग को नियंत्रित करने में तो सफल हो जाएंगे, लेकिन ऐसा करके वह अवैध शराब के उपयोग को सीधे बढ़ा देंगे।

मैं एक अन्य मुद्दे पर भी अपने विचार प्रस्तुत करना चाहता हूं। वह है, मद्यनिषेध नीति। मेरे माननीय मित्र श्री मर्जबान द्वारा दिए गए तर्कों के उत्तर में माननीय मित्र सदन के नेता से यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई थी कि मद्यनिषेध सरकार की मान्य नीति है, और सरकार विधान परिषद द्वारा पारित संकल्प की नीति से किसी भी दशा में पीछे नहीं हटेगी। लेकिन मुझे उस समय कुछ निराशा हुई, जब मैंने अनुभव किया कि उन्होंने विषयांतर करना चाहा। उन्होंने हमें बताया कि सदन के समक्ष प्रश्न यह है कि मद्यनिषेध लागू करने के लिए हमें राशनिंग का तरीका अपनाना चाहिए अथवा हमें स्थानीय विकल्प का तरीका अपनाना चाहिए। महोदय! मेरे विचार में कुछ छोटी बातों को छोड़कर ये दोनों पद्धतियां कमोबेश समान रूप से प्रभावी हैं। आप चाहें राशन की नीति अपनाएं अथवा स्थानीय विकल्प की नीति अपनाएं, इससे विद्यमान स्थिति पर कोई अंतर नहीं पड़ेगा, क्योंकि दोनों से ही बाजार में उपलब्ध शराब की मात्रा ही नियंत्रित होगी। आप चाहें दुकानदारों को कम माल की आपूर्ति करें अथवा दुकानें न खोलने की नीति अपनाएं, परिणाम समान होगा। महोदय! लेकिन प्रश्न यह है कि मद्यनिषेध की नीति को किस सीमा तक लागू किया जा सकता है, और मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र सदन के नेता ने इस प्रश्न को मद्देनजर नहीं रखा है। महोदय! मेरे विचार से आप मद्यनिषेध को सफलतापूर्वक लागू कर पाएंगे अथवा नहीं, यह प्रश्न पूर्णत: इस पर निर्भर करता है कि आप इससे जुड़े वित्तीय प्रश्न का किस प्रकार हल ढूंढते हैं और हम अपनी नई आबकारी नीति से होने वाली वित्तीय हानि को पूरा कैसे करते हैं? मैं सोचता हूं कि सदन के इस पक्ष के लोग माननीय सदन के नेता से कराधान के उन तरीकों को जानना पसंद करेंगे, जिन पर वह विचार कर रहे हैं। महोदय! मैं सोचता हूं कि यद्यपि सदन में इस विषय पर मतभेद हो सकते हैं, लेकिन कम से कम इस पक्ष के लोग यह महसूस करते हैं कि हम अतिरिक्त कर लगाने का विरोध नहीं करेंगे, बशर्ते कि सरकार इन करों का उपयोग राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में करने का प्रयास करे। हम निश्चित रूप से अतिरिक्त करों का विरोध करेंगे, यदि सरकार इन करों का उपयोग सरकार के कामकाज को चलाने या मात्र प्रशासनिक कार्यों में करे। यदि वह मात्र जीवन गुजारने की जगह जीवन को खुशहाल बनाने के लिए करों का उपयोग करेगी, तो उस दशा में इस पक्ष के हम लोग किसी भी प्रकार के कर का समर्थन करने को तैयार हैं। सदन के माननीय नेता ने सरकार के खिलाफ लगाए गए

अवास्तविकता के आरोप का खंडन करने का प्रयास किया है। महोदय! मैं सोचता हूं कि किसी भी सरकार को, उस समय तक मद्यनिषेध की नीति लागू करने का वायदा नहीं करना चाहिए, जब तक उसने यह विचार न कर लिया हो कि वह इससे होने वाली हानि को कैसे पूरा करेगी? मैं सोचता हूं कि वायदा करके और उसे न निभाने की बदनामी लेने का तब तक कोई फायदा नहीं है, जब तक कि मेरे माननीय मित्र में यह साहस न हो, जो महज विश्वास या आस्था से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। ऐसे लोगों पर कर लगाने का साहस न हो, जिन पर अब तक कर नहीं लगे, पर जिनको कर देने की क्षमता हो, तो उनपर कर लगाने का प्रस्ताव वह सदन में प्रस्तुत करें और तब मद्यनिषेध के प्रति इस सदन की गंभीरता को परखें, जिसके लिए यह सदन कहता रहा है। मैं सोचता हूं कि किसी भी व्यक्ति की तरह यह सदन समझता है कि इस नीति पर धन खर्च होगा और मेरे माननीय मित्र सदन के नेता का यह कर्तव्य है कि वह सदन से यह आश्वासन लें कि सदन इस नीति का मूल्य चुकाने के लिए तैयार है, जिसे लागू करने के लिए उस पर उतना भारी दबाव डाला जा रहा है। इन शब्दों के साथ मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूं।

14

प्रसूति लाभ विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मैं इस विधेयक के प्रथम वाचन के समर्थन में बोल रहा हूं। ऐसा करते समय मैं इस विधेयक के विरुद्ध चर्चा के दौरान उठाए गए मुद्दों का उत्तर देना चाहता हूं। इस विधेयक के विरुद्ध माननीय सामान्य (जनरल) सदस्य ने सर्वप्रथम यह कहा है कि यह कोई दुर्घटना नहीं – ऐसी दुर्घटना – जिसका आशय हम कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम से लेते हैं। अतएव, कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम का सिद्धांत उन महिलाओं पर लागू नहीं किया जा सकता, जो इस विधेयक के अंतर्गत लाभान्वित होंगी। महोदय! मैं मानता हूं कि यह कोई दुर्घटना नहीं है। लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि महिलाएं उन लाभों की हकदार नहीं हैं, जिन्हें इस प्रस्तावित विधेयक के माध्यम से उन्हें प्रदान किया जाएगा। यह विधेयक जिस सिद्धांत पर आधारित है, वह एकतरफा है। मुझे विश्वास है कि सभी सदस्य इस बात से पूर्णतया सहमत होंगे कि मां के लिए प्रसव-पूर्व दशाएं तथा प्रसव के पश्चात बच्चों के लालन-पालन की समस्या विधेयक का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मैं नहीं समझता कि कोई भी इस सिद्धांत के विरुद्ध होगा। महोदय! अतएव, मेरा यह विश्वास है कि यह राष्ट्रीय हित में होगा कि जच्चा को कुछ समय के लिए प्रसव के पूर्व और कुछ समय के लिए प्रसव के पश्चात विश्राम दिया जाए। विधेयक के सिद्धांत पूर्णतया इस तथ्य पर आधारित हैं।

महोदय! इसलिए मैं यह स्वीकार करता हूं कि इसकी अधिकांश जिम्मेदारी सरकार को ही निभानी होगी। मैं इस सच्चाई को स्वीकार इसलिए करने के लिए तैयार हूं, क्योंकि सामान्य जनता के कल्याण की चिंता करना बुनियादी तौर से सरकार की जिम्मेदारी है। प्रत्येक देश में जहां प्रसूति लाभ दिए जाते हैं, वहां प्रसूति लाभ के लिए सरकार कुछ राशि व्यय करती है। महोदय! लेकिन ऐसा होते हुए भी मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं कि किसी महिला का कोई नियोक्ता प्रसूति की अवस्था में महिला के हितों की रक्षा के लिए

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 23, पृ. 381-82, 28 जुलाई 1928

अपनी जिम्मेदारी से पूरी तरह मुक्त होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसका कारण यह है कि नियोक्ता महिला को किसी उद्योग विशेष में इसलिए काम पर लगाता है, क्योंकि उसको पुरुष की अपेक्षा महिला को काम पर लगाने से अधिक लाभ होता है। वह पुरुषों को काम पर लगाकर मिलने वाले लाभ की तुलना में महिलाओं को काम पर लगाकर अधिक मुनाफा अर्जित कर पाता है। इसी कारण यह कहना पूर्णतया उचित है कि इस प्रकार का लाभ प्रदान करने के लिए नियोक्ता की भी कुछ हद तक जिम्मेदारी बनती है, खासतौर पर उस समय जबकि उसे पुरुषों को काम पर लगाने पर मिलने वाले मुनाफे की तुलना में महिलाओं को रखने से अधिक लाभ होता है। अतएव, मेरा यह कहना है कि यद्यपि प्रसूति लाभ के मामले में निश्चित रूप से कुछ जिम्मेदारी सरकार को सौंपी गई है, तथापि मेरे विचार से यदि इन हालात में विधेयक में नियोक्ता को भी कुछ दायित्व सौंपा गया है, तो उससे विधेयक पूरी तरह गलत नहीं हो जाता। अतएव, इस कारण से मैं विधेयक का समर्थन करता हूं।

यह कहा गया है कि यह विधेयक केवल कारखानों पर लागू किया गया है, अन्य उद्योगों अथवा कृषिगत व्यवसायों पर नहीं। इसका जवाब बहुत सरल है। यह सिद्धांत उन उद्योगों पर लागू किया गया है, जहां के हालात महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। कृषि तथा अन्य व्यवसायों में महिलाओं को उन खतरों का सामना नहीं करना पड़ता अथवा वहां वे हालात नहीं हैं, जो फैक्टरियों में हैं और जो फैक्टरियों में काम करने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। इसी वजह से ऐसे विधेयक प्रायः केवल फैक्टरियों पर ही लागू किए जाते हैं। कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम के लिए भी यही बात कही जा सकती है। यह अधिनियम उन दुर्घटनाओं पर लागू होता है, जो श्रमिकों के साथ फैक्टरियों में काम करते समय घटती हैं। इसी कारण यह अधिनियम केवल फैक्टरियों पर लागू किया गया है, अन्य व्यवसायों पर नहीं।

माननीय सामान्य (जनरल) सदस्य ने उद्योगों पर इसका बोझ डालने के बारे में कहा है कि इससे मजदूरी की दरों में कमी आएगी। मैं यह नहीं सोचता कि इससे मजदूरी की दरों में कोई कमी आएगी। यदि ऐसा होता है भी, तो इसका तात्पर्य यह होगा कि उद्योगों पर पड़ने वाला बोझ कुछ हद तक दूसरी जगह स्थानांतरित कर दिया जाएगा और माननीय सामान्य (जनरल) सदस्य को इसी आधार पर कोई आपत्ति नहीं होगी। यदि यह विधेयक पारित हो जाता है, तो मेरा यह कहना है कि यह बोझ संभवतया उपभोक्ताओं पर पड़ेगा और यदि यह बोझ उपभोक्ताओं पर पड़ता है, तो समाज को किसी उत्पादन के लिए अधिक कीमत चुकाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, ताकि उत्पादक को वस्तु के उत्पादन से लाभ पहुंचेगा।

इसके पश्चात यह कहा गया है कि इस विधेयक को बंबई प्रेसिडेंसी में ही लगाना

न्यायपूर्ण नहीं है और इसे संपूर्ण भारत पर लागू किया जाना चाहिए तथा बंबई प्रेसिडेंसी को भी भारत के अन्य प्रांतों के समान समझा जाना चाहिए। महोदय! इस संबंध में मेरा यह कहना है कि मान लीजिए यह विधेयक संपूर्ण ब्रिटिश भारत पर लागू किया जाता है, तो किसी व्यक्ति को यह बात कहने से कैसे रोका जा सकता है कि यह विधेयक केवल भारत पर क्यों लागू किया जा रहा है, अन्य देशों पर क्यों नहीं? विश्व के अन्य देशों की तुलना में 'भारत को अलाभकारी स्थिति में क्यों डाला जा रहा है और हमें इस स्थिति में उस समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, जब तक कि संपूर्ण विश्व इस सिद्धांत को नहीं अपना लेता और ऐसा होने पर हम अन्य देशों के समान हो जाएंगे।' मेरे विचार में इस तर्क में कोई वजन नहीं है और मैं सोचता हूं कि इस विधेयक के माध्यम से सुझाए गए लाभ विधान-मंडल द्वारा उन गरीब महिलाओं को दिए जाने चाहिए, जो इस प्रेसिडेंसी में हमारी फैक्टरियों में कठिन परिश्रम करती हैं।

15

कोड़े लगाने की सजा*

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! इस विधेयक के प्रभारी अपने माननीय मित्र श्री बेल तथा माननीय सदस्य विधि परामर्शी को सुनने के पश्चात मैं नहीं समझता कि इस उपाय को अपनाने की आवश्यकता के पक्ष में कोई और तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता रह गई है, और न ही मेरे विचार में इस बात की आवश्यकता है कि इस विषय में कोई तर्क किया जाए कि क्या कोड़े लगाना एक उचित सजा है? बंबई नगर में हमने बहुत गंभीर दंगों का सामना किया है और प्रायः मुफस्सल कस्बों में भी हमने ऐसा देखा है। मुझे विश्वास है कि कोई भी माननीय सदस्य इससे इंकार नहीं कर सकता कि यह सब भारतीय समाज तथा भारतीय सभ्यता पर एक कलंक है। भारतीय संविधा पुस्तिका में कोड़े लगाने की सजा का प्रावधान होना स्वयं ही उन लोगों के विरुद्ध एक तर्क है, जो यह कहते हैं कि हम एक नया काम करने जा रहे हैं। महोदय! मेरी विनम्र राय में अब केवल एक मुद्दा बचा है, जिस पर बहस की आवश्यकता है। वह मुद्दा है कि क्या इस विधेयक के प्रावधान, जैसा कि उन्हें तैयार किया गया है, अवसर को देखते हुए जरूरत से ज्यादा कठोर हैं। मेरे विचार में केवल यही एक ऐसा मुद्दा बचा है, जिस पर विचार-विमर्श की आवश्यकता है।

महोदय! विधेयक का अध्ययन करने के पश्चात मैं विधेयक के खंड 2 जो कि मुख्य खंड है, उसमें वर्णित उपबंधों से सहमति व्यक्त करने में कुछ कठिनाई महसूस करता हूं। इस खंड के वर्तमान रूप में कोड़ा अधिनियम की धारा 4 के उपबंध उन सभी दंगों संबंधी अपराधों पर लागू नहीं होंगे, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 146 तथा 148 के अंतर्गत आते हैं। महोदय! मैं सोचता हूं कि यह कदम जैसा कि कहा जाता है, सांप्रदायिक दंगों से निपटने के विशेष उद्देश्य से तैयार किया गया था। महोदय! दंगे भिन्न-भिन्न प्रकार के हो सकते हैं। उनके पीछे उद्देश्य, इरादे तथा अवसर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। बंबई नगर में औद्योगिक हड़ताल के कारण दंगे हो सकते हैं। किसी संपत्ति पर अधिकार जताने के लिए एकत्र हुए

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 37, पृ. 652-53, 18 फरवरी 1933

गरीब लोगों के बीच मामूली झगड़े के फलस्वरूप भी दंगे हो सकते हैं। हो सकता है कि अधिकार अवैध हो, लेकिन यह भी हो सकता है कि ये समझते हों कि वह संपत्ति उनकी है। महोदय! इस सदन को यह निश्चित रूप से जानकारी होनी चाहिए कि दंगे अवैध रूप से एकत्र हुई भीड़ के कारण होते हैं। अवैध रूप से एकत्र हुई भीड़ उस वक्त दंगों का रूप ले लेती है, जब वह भीड़ ताकत का इस्तेमाल करने लगती है। धारा 146 में दंगों की यही परिभाषा दी गई है। ऐसे एकत्र होना संभवत: कोई अपराध न हो, जिसे नजरअंदाज किया जा सकता है। निश्चित रूप से यह कोई ऐसा अपराध नहीं है, जिसके लिए कोड़े लगाने जैसी भयानक सजा दी जाए। फलत: मेरा विचार यह है कि यदि हम कोड़े लगाने की सजा लागू करना चाहते हैं, तो हमें खंड 2 को इस प्रकार संशोधित करना होगा कि यह केवल उन दंगों पर लागू हो, जो सांप्रदायिक विवाद की वजह से हों, न कि अन्य प्रकार के दंगों पर। मेरे विचार में इस खंड की शब्दावली इतनी व्यापक है, जिसकी परिधि में लगभग प्रत्येक प्रकार के दंगे आ जाते हैं। ऐसे दंगे जो किसी चलती बात के कारण हुए हों और ऐसे दंगे जो बहुत मामूली हों, ऐसे दंगे जो सामान्य मानवीय मामलों के कारण उत्पन्न हों। हम नहीं चाहते हैं कि यह सजा ऐसे मामलों पर भी लागू हो। भारतीय दंड संहिता में बड़ी बुद्धिमानी पूर्वक साधारण दंगों के अपराधों के लिए साधारण सजाओं का प्रावधान किया गया है। यदि यह विधेयक पास करना अनिवार्य है, तो यह अनिवार्यता केवल सांप्रदायिक दंगों से निपटने जैसे विशेष उद्देश्य के लिए हो सकती है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं। यदि मेरे माननीय मित्र गृह मंत्री खंड 2 के शब्दों को इस ढंग से परिवर्तित करने के लिए तैयार हैं कि वह केवल सांप्रदायिक दंगों के संबंधित अपराधों से निपटने के लिए ही लागू हो, तो मैं उनका समर्थन करूंगा। इस अवसर पर मुझे केवल यही कहना है।

16
मंत्रियों के वेतन विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर, भायखला तथा परेल) : अध्यक्ष महोदय! मैं एक वक्तव्य देना चाहता हूं। मैंने वक्तव्य शब्द का प्रयोग जानबूझकर किया है। मैं अपने माननीय मित्र प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तावित विधेयक पर कोई संशोधन प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं और न ही मैं इस विषय पर मत विभाजन के लिए कहना चाहता हूं। मंत्रियों के वेतन विधेयक को सर्वसम्मति से पारित होना चाहिए था, जैसा कि मंत्रिमंडल ने तय किया है, पार्टी के वोटों के आधार पर इसे पारित नहीं किया जाना चाहिए। मंत्रिमंडल ने चूंकि इस तरीके को नहीं अपनाया, इसलिए मुझे इस विधेयक के सिद्धांत का विरोध करने के लिए विवश होना पड़ा है। प्रधानमंत्री महोदय ने इस विधेयक को प्रस्तुत करते हुए जो भी कहा है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन्होंने जिस गंभीरता से अपनी बात कही है तथा मंत्रियों के आचरण संबंधी उन्होंने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है, उससे उनके प्रति इस सदन के प्रत्येक सदस्य का सम्मान पहले से बढ़ गया है। परंतु एक व्यावहारिक व्यक्ति के नाते स्थिति का अवलोकन करते हुए तथा तमाम बातों पर व्यावहारिक दृष्टि से नजर डालते हुए,मैं इस विधेयक में मंत्रियों के मानक वेतन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

महोदय! मंत्रियों के लिए यह मानक वेतन क्यों नहीं होना चाहिए, उन कारणों का उल्लेख करने से पहले मैं सदन के समक्ष भारत के बाहर तथा भारत में ही मंत्रियों को दिए जाने वाले वेतनों से संबद्ध कुछ आंकड़े प्रस्तुत करना चाहता हूं, ताकि सदन शुरू में ही यह जान सके कि हम वर्तमान में विद्यमान मानकों से कितनी दूर तक जा रहे हैं। मेरे पास कुछ आंकड़े हैं, जिन्हें मैंने एकत्र किया है। आइरिश फ्री स्टेट में 11 मंत्री हैं। प्रत्येक को 1,700 पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है। मेरे हिसाब से यह लगभग 2,000 रुपये मासिक के बराबर है। दक्षिणी अफ्रीका में 13 मंत्री हैं, 2 बिना विभाग के। प्रधानमंत्री को 3,500 पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है तथा अन्य मंत्रियों को 2,500 पौंड वार्षिक। मेरे हिसाब से यह लगभग

---

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 1, पृ. 247–54, 23 अगस्त 1937

2,900 रुपये मासिक के बराबर है। मैं आस्ट्रेलिया के आंकड़े प्राप्त नहीं कर सका, परंतु कनाडा के आंकड़े इस प्रकार हैं: प्रधानमंत्री को19,000 डालर वार्षिक वेतन दिया जाता है। वहां 16 मंत्री हैं, जिन्हें 14,000 डालर वार्षिक वेतन का भुगतान किया जाता है, जिन्हें 4,000 डालर अधिवेशन के दिनों में भत्ते के होते हैं। न्यूजीलैंड में 12 मंत्री हैं। वहां प्रधानमंत्री को आवास सहित 1,800 पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है तथा मंत्री को 1,370 पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है, जिसमें 200 पौंड मकान भत्ता शामिल है। इस प्रकार मंत्री को 1,500 रुपये मासिक वेतन मिलता है।

जहां तक भारत का संबंध है, नया भारत सरकार अधिनियम लागू होने से पूर्व दिए जा रहे वेतन को कुछ समय के लिए भुला भी दिया जाए तथा अंतरिम मंत्रियों के लिए निर्धारित किए गए वेतनों पर विचार करते हुए कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि अंतरिम मंत्री, मंत्री नहीं थे। मैं संसद के समक्ष प्रस्तुत की गई तालिकाओं के आंकड़े प्रस्तुत करना चाहता हूं। मद्रास में प्रधानमंत्री को 3,000 रुपये तथा प्रत्येक मंत्री को 2,500 रुपये मासिक वेतन तथा आवास दिया जाता था। बंबई में प्रधानमंत्री का वेतन 4,000 रुपये तथा मंत्रियों का वेतन 3,500 रुपये मासिक था। संयुक्त प्रांत में प्रधानमंत्री सहित मंत्री को 2,500 रुपये मासिक वेतन दिया जाता था। मध्य प्रांत में प्रधानमंत्री को 3,000 रुपये तथा प्रत्येक मंत्री को 2,250 रुपये, बिहार में प्रधान मंत्री को 2,500 रुपये तथा प्रत्येक मंत्री को 2,000 रुपये और उड़ीसा में मंत्रियों को 1,000 रुपये मासिक वेतन दिया जाता था।

महोदय! अब इन आंकड़ों की तुलना मंत्रियों के वेतन विधेयक में प्रस्तावित आंकड़ों से कीजिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह विद्यमान मानकों से बहुत भिन्न है। मुझे लगता है कि यह अंतर केवल मात्रा का अंतर नहीं है, बल्कि दूसरी प्रकृति का अंतर है। मेरे विचार में यह सिद्धांतों का अंतर है। एक मंत्री का वेतन किन सिद्धांतों के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। महोदय! मेरे विचार में चार सिद्धांत होने चाहिए। पहला है, मंत्रियों का सामाजिक स्तर। निस्संदेह मंत्री समुदाय के सामाजिक नेता होते हैं। दूसरा क्षमता का सिद्धांत, तीसरा लोकतंत्र का सिद्धांत तथा चौथा, सत्यनिष्ठा तथा प्रशासन की स्वच्छता का सिद्धांत। मैं पहले सिद्धांत पर अनावश्यक सीमा तक जोर देना नहीं चाहता। व्यक्तिगत तौर पर मुझे स्वयं सोचना चाहिए कि देश के मंत्रियों को, जो देश के प्रथम नागरिक हैं, सुसंस्कृत जीवन-यापन करना चाहिए, जिन्हें कला का सम्मान करना चाहिए, जिन्हें विद्वता का सम्मान करना चाहिए और जिन्हें अन्य लोगों के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। लेकिन यदि मेरे मित्र इस मामले के इस पहलू पर विचार नहीं करना चाहते, तो मैं इसे छोड़ने के लिए तैयार हूं। लेकिन मंत्रियों का वेतन निर्धारित करते समय क्षमता, प्रजातंत्र तथा सत्यनिष्ठा के सिद्धांत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। मैं नहीं जानता कि प्रधानमंत्री मंत्रियों के कर्तव्यों एवं कार्यों के विषय में क्या सोचते हैं। यदि उनका विचार है कि मंत्रियों को झंडे फहराने

तथा लाल वर्दी वाली महिलाओं से सलामी लेने के अलावा अन्य कोई काम नहीं करना है, तो दूसरी बात है। मेरे विचार में, और जिस पर मैं अपनी पूरी क्षमता से जोर देना चाहता हूं कि यदि हम मंत्रियों से कोई अपेक्षा रखते हैं, तो वह है क्षमता। मेरे विचार में इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि राज्य के तीन स्तंभ हैं- विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका। कार्यपालिका इनमें प्रमुख है और इसे ही देश की समस्याओं का पता लगाना है तथा उनको दूर करने के उपाय सुझाने हैं।

महोदय! संक्षेप में, यदि हम अपने सामने उपस्थित समस्याओं का हल खोजना चाहते हैं तथा संविधान का सर्वोत्तम लाभ देना चाहते हैं, तो कार्यपालिका को बुद्धिमत्ता का परिचय देना होगा।

मेरे सामने यह प्रश्न है कि क्या प्रस्तावित वेतन ऐसे व्यक्तियों को आमंत्रण देने में सक्षम है, जो व्यक्ति समस्याओं का सामना करने और सुलझाने की क्षमता रखते हैं। देश की वर्तमान परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए, महोदय! मैं इसका सकारात्मक उत्तर नहीं दे सकता। सर्वप्रथम हमें इस तथ्य की ओर भी ध्यान देना होगा कि हमारे पास अन्य बहुत से ऐसे व्यवसाय हैं, जिनमें मंत्रियों को दिए जाने वाले वेतन से अधिक धन लाया जा सकता है। बहुत से व्यक्ति जो क्षमतावान हैं और जो महत्वाकांक्षी हैं, वे मंत्री बनकर मंत्रालय का उत्तरदायित्व निभाने के बजाय, किसी अन्य व्यवसाय को अपनाना अधिक पसंद करेंगे। यदि मंत्रिमंडल इस आशय का प्रावधान करता कि किसी भी व्यवसाय से संबंधित कोई भी व्यक्ति 500 रुपये से अधिक वेतन नहीं प्राप्त करेगा, तो बात मेरी समझ में आती। यदि उन्होंने ऐसा किया होता, तो दूसरी बात होती। परंतु वह ऐसा नहीं कर रहे हैं। वह सक्षम व्यक्तियों को अन्य व्यवसायों की ओर धकेल रहे हैं। यह इस मामले का एक पहलू है। दूसरा विचारणीय पहलू यह है कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों पर विचार करते हुए मुझे यह कहना पड़ता है कि इन जिम्मेदारियों का निर्वाह करने में सक्षम बुद्धिजीवी वर्ग की संख्या बहुत ही कम है। महोदय! इस देश में विद्यमान सामाजिक व्यवस्था के कारण, जिसे ब्रिटिश शासन भी समाप्त नहीं कर पाया है, शिक्षा एक छोटे से वर्ग तक ही सीमित थी। अधिकांश लोगों को कभी भी शिक्षा का अधिकार एवं अवसर प्राप्त नहीं हुआ। वास्तव में, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में केवल एक वर्ग ही शिक्षा प्राप्त कर सकता था, अन्य इससे वंचित रहे। परिणामस्वरूप अधिकांश जनता की यह स्थिति नहीं है कि वह ऐसे नेता सामने ला सके, जिन्हें प्रशासन चलाने हेतु मंत्रिमंडल में लिया जा सके। अतएव, मेरा कहना यह है कि इस वेतन के आधार पर सक्षम व्यक्तियों को प्रशासन की जिम्मेदारी निबाहने के लिए आमंत्रित नहीं किया जा सकता।

महोदय! अब मैं प्रजातंत्र के प्रश्न पर आता हूं। वेतन का क्या प्रभाव होगा? मैं मामले को घुमा-फिराकर न कहकर सीधा ही यह कहना चाहता हूं कि इस वेतन का परिणाम यह होगा कि राजनीतिक शक्ति को अपने वर्ग अथवा अपने समुदाय की भलाई के लिए इस्तेमाल

करने के इच्छुक ऐसे लोग जो पैसे की चिंता नहीं करते हैं और जिनके पास अपने दूसरे साधन हैं, शासन में आएंगे। इसका दूसरा परिणाम होगा कि जो लोग दूसरी किसी तरह पैसा नहीं कमा सकते, वे लोग मंत्री बनेंगे। इसके अलावा कोई और परिणाम नहीं हो सकता (ठहाका)। मेरे मित्र हंस सकते हैं, लेकिन मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि इस विधेयक के यही परिणाम निकलेंगे। यदि मेरी यह आशंका सच निकली तो इससे बड़ी दुर्घटना कोई नहीं होगी। हम यह चाहते हैं कि भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत दी गई राजनैतिक शक्तियां कुछ ऐसे थोड़े लोगों द्वारा नहीं हथियाई जानी चाहिए जो धनी हैं और जिन्हें वेतन की चिंता नहीं है। आम जनता के हित में हम यह भी नहीं चाहते हैं कि शक्ति अक्षम व्यक्तियों के हाथों में चली जाए।

अब मैं दूसरे पहलू अर्थात सत्यनिष्ठा और स्वच्छ प्रशासन पर आता हूं। मेरे एक कांग्रेसी मित्र ने एक बात कही थी। मैं उसे इस सदन में दोहराना चाहता हूं। उन्होंने कहा था कि यदि गवर्नर उन्हें मंत्रियों की सप्लाई करने का ठेका दें, तो वह खुशी से उसे स्वीकार करेंगे और ठेका देने के लिए बंबई प्रेसिडेंसी को भी कुछ भेंट देंगे। महोदय! मेरे विचार में यह टिप्पणी अत्यंत संभावनापूर्ण है। यूरोप में ऐसे होटल हैं, जो प्रतीक्षा करने की अनुमति देने के कारण प्रबंधकों को पैसा देते हैं। इससे पता चलता है कि जो लोग अपने वेतन के अतिरिक्त कुछ और कमाना चाहते हैं, उन्हें ऐसा करने के अवसर प्राप्त होने की पूरी संभावनाएं हैं। मैं वर्तमान मंत्री परिषद के विषय में कोई बात नहीं कह रहा हूं, क्योंकि हम इस विधेयक के सिद्धांतों पर बहस कर रहे हैं, संबंधित व्यक्तियों के विषय में नहीं। मैं यह स्वीकार करता हूं, सहर्ष स्वीकार करता हूं कि आप उच्च वेतन पर भी किसी बेईमान व्यक्ति की बेईमानी नहीं खरीद सकते। आप उसे कुछ भी वेतन दीजिए, यदि वह बेईमान है तो वह बेईमान ही रहेगा। हालांकि यह विचारणीय विषय नहीं है। विचारणीय विषय है कि क्या आप अपना वेतन इस प्रकार निर्धारित नहीं कर सकते कि मंत्री को लोभी होने से रोका जा सके।

महोदय! हम इस प्रेसिडेंसी में 4,000 रुपये तथा 3,000 रुपये तक वेतन दे रहे थे और फिर भी यहां प्रशासन से संबंधित घोटाले हुए। यदि 3,000 रुपये और 4,000 रुपये के वेतन के पश्चात भी घोटालों से निजात पाना संभव नहीं है, तो मुझे डर है कि 500 रुपये का वेतन पिछले घोटालों का कारण बनेगा। इस प्रकार केवल यह प्रश्न हमारे सामने विचार के लिए प्रस्तुत नहीं है कि क्या वेतन पर्याप्त है? परंतु मेरा दृष्टिकोण यह है कि तर्क-वितर्क यहीं समाप्त नहीं होता। वेतन की समस्या पर दो दृष्टिकोणों से विचार करने की आवश्यकता है। व्यक्ति की दृष्टि से वेतन पर्याप्त होना चाहिए। राज्य की दृष्टि से सुरक्षा तथा प्रशासन की स्वच्छता विचारणीय विषय है। कोई व्यक्ति कह सकता है कि वेतन विशेष उसके लिए पर्याप्त है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि आप यह नहीं सोचें कि वह सार्वजनिक दृष्टिकोण से सुरक्षित वेतन है या नहीं। अनिवार्यतः न्यूनतम स्तर सुरक्षित स्तर नहीं हो सकता। मुझे

विश्वास है कि मेरे प्रतिरक्षी मित्र ठेके देते समय यह धारा शामिल करते हैं कि ठेका केवल इसीलिए नहीं दिया जाएगा कि उसकी दरें न्यूनतम हैं। जैसे कि हम न्यूनतम मानक वाले व्यक्ति को मात्र न्यूनतम दरों के कारण ठेका नहीं देते हैं, उसी प्रकार हम कुछ व्यक्तियों को केवल इस आधार पर मंत्री के रूप में काम करने नहीं देंगे, क्योंकि वे न्यूनतम वेतन स्वीकार कर रहे हैं। हमें समस्या के दूसरे पहलू पर भी विचार करना होगा कि क्या वह ठेकेदार जो न्यूनतम भाव दरें दे रहा है, अपना कार्य पूरा कर भी सकता है या नहीं। यद्यपि महोदय कह सकते हैं कि 500 रुपये का वेतन पर्याप्त है, परंतु मेरा सुझाव है कि इससे बात समाप्त नहीं हो जाती है। इस सदन को विचार करना होगा कि क्या इस आधार पर वह यह आशा कर सकता है कि प्रशासन संभावित भ्रष्टाचार से मुक्त होगा।

महोदय! अब मैं इस विषय पर 1920 में हाऊस आफ कामन्स द्वारा गठित समिति द्वारा दी गई एक रिपोर्ट का छोटा सा उद्धरण सदन में प्रस्तुत करना चाहूंगा। यह समिति ऐसे सिद्धांत तय करने के लिए बनाई गई थी कि मंत्रियों के वेतन कैसे तय किए जाएं। समिति की राय थी कि :

> किसी सरकारी पद के लिए कितना उपयुक्त वेतन निर्धारित किया जाए, इस जैसे विषय कम ही हैं,जिन पर इतने अधिक मत प्रकट किए गए हों। इतने अस्पष्ट और अनिश्चित विषय पर समिति कोई ऐसा दावा नहीं करती कि वह कोई बिल्कुल ठीक विचार प्रस्तुत कर सकेगी, तथापि यह समिति उन सामान्य सिद्धांतों के बारे में प्रारंभिक टिप्पणी करना चाहती है, जिन्हें इन कठिन कर्तव्य को पूरा करते समय अपने ध्यान में रखती है। इस सिद्धांत को पूर्णतया अस्वीकार करना असंभव है कि लोगों को यह अधिकार है कि वे कम से कम खर्च से कुशल सुविधाएं चाहते हैं। चाहे वे सरकारी कर्मचारी संसद में बैठें या न बैठें, सिद्धांत तो वही एक ही है। कोई भी कर लगाने का एकमात्र औचित्य यही है कि या तो वह आवश्यक है अथवा जनता के लिए उसकी उपयोगिता है। यदि इस सदन की विभिन्न समितियों द्वारा बार-बार ली गई सिफारिशों के बावजूद कुछ ऐसे बेकार के पद हैं, जिनके पास कोई काम नहीं है, तो उन्हें तुरंत समाप्त कर दिया जाना चाहिए, और जैसा कि आप इस रिपोर्ट में देखेंगे, समिति ने अपने काम में कोई चूक नहीं की और ऐसे कई पद गिनाए हैं।
>
> यदि कुछ पदों पर जरूरत से ज्यादा वेतन दिया जा रहा है, तो उसे सुधारने की जरूरत है। यदि जनता के हित में कुछ पदों को दूसरे पदों से मिलाया जा सकता है, जो इस उपाय की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। साक्ष्य में कई ऐसे सुझाव दिए गए, जिन्हें अपनाना समिति के अधिकार-क्षेत्र में नहीं है। संक्षेप में सभी सरकारी विभागों को इस प्रकार मितव्ययिता से काम चलाना चाहिए, जैसे एक व्यक्ति अपनी घरेलू व्यवस्था चलाते समय करेगा।

यहां ऐसा सोचना लगभग व्यर्थ है कि ऐसा कहने से हम किसी फालतू निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाएंगे, यद्यपि कभी-कभी ऐसे आरोप लगाए जाते हैं। वह यह है कि न्यून वेतन स्वीकार करना पद मिलने की योग्यता मानी जाए। मितव्ययिता भी युक्तिसंगत होनी चाहिए। किसी विश्वसनीय पद के लिए सर्वोत्तम, योग्य और ईमानदार व्यक्ति के चयन में अधिक वेतन देने के प्रश्न को जरूरत से अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। यह बात कई बार दोहराई जा चुकी है और यह सत्य और युक्तिसंगत भी लगती है कि एक स्वतंत्र देश में एक सामान्य आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति के लिए सरकारी पद पाना उसकी पहुंच के बाहर नहीं होना चाहिए। यदि वेतन बहुत कम निर्धारित किए गए, तो सरकारी पदों पर धनी लोगों का अधिकार हो जाएगा और सरकार के चयन के अधिकार पर भारी प्रतिबंध लग जाएंगे और जनता ऐसे लोगों की सेवाओं से वंचित हो जाएगी, जिनके आर्थिक साधन सीमित हैं, पर जो शिक्षित हैं और इस प्रकार के कार्य करना चाहते हैं और जिनमें सरकारी पदों के अनुरूप अधिक योग्यता और क्षमता है। और इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिए कि उच्च सरकारी पदों पर ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, जो पूरे समय तक निष्ठापूर्वक काम कर सकें और उस पर पूरा ध्यान दे सकें। इससे उनके निजी कार्यों की उपेक्षा होगी। और एक ओर यदि इस बात पर ध्यान देना चाहते हैं कि लोग सरकारी खर्चे पर अपने लिए धन न बटोर लें, तो दूसरी ओर यह न तो देश के और न उसकी प्रतिष्ठा के हित में होगा कि इन लोगों को देश सेवा की खातिर तबाह कर दिया जाए।

महोदय! मैं कहना चाहता हूं कि देश की सेवा और प्रशासन की स्वच्छता के प्रति संवेदनशील कोई भी मंत्रिमंडल इन सिद्धांतों को ध्यान में रखेगा और मुझे नहीं लगता कि इस मंत्रालय ने 500 रुपये का वेतन निर्धारित करते समय इन सिद्धांतों की तरफ कोई ध्यान दिया है।

महोदय! अब मैं उन सिद्धांतों का उल्लेख करूंगा, जिनका सुझाव इस विधेयक में वेतन के निर्धारण के लिए दिया गया है। मैं प्रायः सुनता आया हूं कि वेतन जनता की आय के अनुरूप होने चाहिएं। मैं पूछना चाहता हूं कि यदि ऐसा है तो क्या यह कहा जा सकता है कि क्या 500 रुपये का वेतन जनता की आय के अनुरूप है? लोगों की आय कितनी है? मेरे पास *'हरिजन'* में दिए गए आंकड़े हैं, जिन्हें मैं यहां प्रस्तुत कर रहा हूं। मैं समझता हूं कि 'हरिजन' एक प्रामाणिक पत्र है।

माननीय श्री बी.जी. खेर : मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप इसे पढ़ते हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं इसे हमेशा पढ़ता हूं। इसमें दिए गए आंकड़ों के अनुसार यूनाईटिड किंगडम में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 50 पौंड, संयुक्त राज्य अमरीका में 100 पौंड, फ्रांस में 40 पौंड, आस्ट्रेलिया में 70 पौंड, कनाडा में 75 पौंड, भारत में 4 पौंड है। (माननीय

श्री बी.जी. खेरः सुनिए, सुनिए।) महोदय! यदि यह सब इस सिद्धांत के आधार पर किया गया है कि वेतन लोगों की आय के अनुसार होना चाहिए, तब मैं नहीं समझ सकता कि यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि 500 रुपये प्रति मास का वेतन 4 पौंड वार्षिक आय कमाने वाली इस देश की जनता की आय के अनुरूप है। निश्चित रूप से, यदि मेरे मित्र इस सिद्धांत के आधार पर इस विधेयक को प्रस्तुत कर रहे हैं कि वेतन लोगों की आय के अनुरूप होनी चाहिए, तो मेरे विचार से मंत्री के लिए 500 रुपये का वेतन बहुत अधिक है। यह 100 रुपये से कम होना चाहिए, इसे 75 रुपये होना चाहिए। ऐसा सुझाव भी दिया गया था। यदि वे ईमानदार हैं, वे इस राशि को न्यायिक रूप से निर्धारित करना चाहते हैं, न कि लोगों को खुश करने के लिए तब उन्हें अपनी ईमानदारी को तर्कसंगत क्यों नहीं बनाना चाहिए। वह राशि क्यों निश्चित की जाए, जो लोगों की आय के सभी अनुपातों से बहुत दूर है।

कम वेतन निर्धारित करने के लिए दूसरा औचित्य यह दिया गया है कि मंत्रियों को आम लोगों जैसा नजर आना चाहिए। उन्हें आम आदमी की तरह जीवन-यापन करना चाहिए। मंत्री और आम आदमी में कोई भिन्नता नहीं होनी चाहिए। महोदय! यदि मंत्री परिषद का यह उद्देश्य है कि सभी अंतर समाप्त होने चाहिए, वे सामान्य लोगों की तरह नजर आने चाहिए; लोगों को उनमें विश्वास होना चाहिए कि वे उन्हीं जैसे हैं, तब, महोदय! मेरा कहना है कि उनमें विश्वास जीतने का यह तरीका नहीं है। महोदय! इस देश में विश्व के किसी भी दूसरे देश से कहीं ज्यादा सामाजिक और धार्मिक भेदभाव विद्यमान हैं। इस प्रेसिडेंसी में, ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण, सवर्ण और अछूत का भेदभाव है। मैं केवल हिन्दुओं की बात कर रहा हूं - यहां मराठा बनाम गुजराती, गुजराती बनाम कन्नड़ का भेदभाव है। और इस सबसे बढ़कर हिन्दू और मुस्लिमों के बीच भेदभाव हैं। यदि आप प्रशासन में लोगों का विश्वास जगाना चाहते हैं, तो मेरे अनुसार यह उचित नहीं है कि मंत्री गलियों में अधूरे कपड़े पहन कर जाएं और अपना शरीर प्रदर्शन करें; सिगरेट के स्थान पर बीड़ी पीएं, अथवा तृतीय श्रेणी या बैलगाड़ी में यात्राएं करें। इन बातों से किसी को भी धोखा नहीं दिया जा सकता। यदि आप लोगों का विश्वास जीतना चाहते हैं, तो मेरे विचार में इसका एक ही रास्ता है। अपनी सरकार, अपनी मंत्री परिषद, अपनी सिविल सेवाओं को ऐसा बनाएं कि वे किसी एक वर्ग विशेष अथवा समुदाय के एकाधिकार में ही न रहें (हर्षध्वनि)। हम देखेंगे कि मंत्री परिषद इस संबंध में क्या करने जा रही है। लेकिन यदि वे यह ढोंग करना चाहते हैं कि ऐसा करके जनता में विश्वास पैदा करने जा रहे हैं, तो इसे मैं बचकाना कहूंगा और यह कहूंगा कि यह सब प्रयास निश्चय ही असफलता की ओर ले जाएंगे।

महोदय! एक और बात यह है कि मंत्री परिषद ने त्यागपूर्ण जीवन बिताने का फैसला किया है। इससे मुझे मध्ययुगीन भिक्षुओं के आचरण और जीवन-यापन के तौर-तरीकों की याद आती है। मध्ययुगीन मठवासियों को अपना जीवन प्रारंभ करते समय तीन प्रतिज्ञाएं लेनी

पड़ती थीं– अविवाहित जीवन, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का जीवन व्यतीत करना।

मुझे नहीं मालूम कि मेरे माननीय मित्रों ने अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा ली है या नहीं (ठहाका)। मेरे विचार में अब ऐसा करने में काफी विलंब हो चुका है। मुझे मालूम नहीं है कि उन्होंने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली है या नहीं। लेकिन यदि उन्होंने ऐसा किया है और यदि वे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ते हैं, तो निश्चय ही यह इस सदन के लिए चिंता का मामला नहीं है। लेकिन जैसा कि मुझे इस विधेयक से प्रतीत होता है उन्होंने निश्चय ही अपरिग्रह की प्रतिज्ञा ली है। क्या वे इस प्रतिज्ञा को निभा सकेंगे? मध्ययुगीन भिक्षु ब्रह्मचर्य की अपनी प्रतिज्ञा पर बहुत कम टिक पाते थे, लेकिन उन्होंने सदैव अपरिग्रह की अपनी प्रतिज्ञा निभाई है। ऐसा क्यों था? ऐसा इसलिए संभव था, क्योंकि भिक्षु का कोई परिवार नहीं होता था। वे अकेले थे, नितांत अकेले। किसी भी व्यक्ति की जिम्मेदारी उन पर नहीं थी। लेकिन इस संबंध में मंत्रियों की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। उन पर उनके परिवार और बच्चों की अनेक जिम्मेदारियां हैं। मैं नहीं समझता कि वे अपरिग्रह की अपनी प्रतिज्ञा निभा पाएंगे। मैं उनकी सफलता की कामना करता हूं, परंतु मुझे संदेह है कि क्या वे ऐसा कर पाएंगे।

श्री ए.वी. चित्रे : वे अपना वेतन प्राप्त करें?

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! अब मैं एक दूसरे विषय पर बोलना चाहता हूं। क्या इस विधेयक की कोई आवश्यकता भी है? मैं व्यक्तिगत रूप से समझता हूं कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। कोई भी व्यक्ति माननीय मंत्रियों को उनकी इच्छा से ज्यादा वेतन लेने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। निश्चित रूप से इस विधेयक को लाए बगैर, और गवर्नर द्वारा निश्चित वेतनों को इतना ही रहने देने पर भी वे 500 रुपये लेकर शेष राशि अपनी इच्छानुसार सरकार अथवा पार्टी के कोष में जमा करा सकते हैं। क्या कारण है कि वे ऐसा नहीं करते? क्या कारण है कि वे यह विधेयक प्रस्तुत कर रहे हैं? यही वह बात है,जहां संदेह उत्पन्न होता है। मैं यह कहने का साहस कर रहा हूं कि यह विधेयक किसी पवित्र उद्देश्य के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसके पीछे सोची-समझी चाल छिपी है। वह यह है कि वे सदैव सत्ता में बने रहें और कोई दूसरा व्यक्ति उनका स्थान न ले सके।

माननीय श्री के.एम. मुंशी: हां, आप ऐसा कह सकते हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : इस समय मुझे गोल मेज सम्मेलन की याद आती है, जिसमें कंजरवेटिव पार्टी भारत सरकार विधेयक के उपबंधों में कुछ धाराएं जोड़ने का प्रयास कर रही थी, जिनका उद्देश्य केवल लेबर पार्टी के काम करने पर सीमा बांधना था। हम में से कई लोग उनसे पूछते थे कि वे भारत सरकार विधेयक में ये धाराएं क्यों जोड़ना चाहते हैं, जिनका स्पष्ट रूप से कोई औचित्य नहीं है। उनके पास हमारे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति जानता था कि वास्तव में वे लेबर सरकार को, यदि वह कभी सत्ता में आती है, तो उसे कंजरवेटिव पार्टी द्वारा की गई कार्रवाई को उलटने से रोकना चाहते

थे। यदि मेरे विद्वान मित्र वही नीति अपनाना चाहते हैं, तो वे ऐसा कर सकते हैं। हम उन्हें नहीं रोक सकते। मैं केवल यह कहना चाहता हूं,यह सत्ता का दुरुपयोग है।

इस अवसर पर,मैं अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूं, क्योंकि 500 रुपये के वेतन को बहुत कम बताने से मुझे गलत समझा जा सकता है। मेरा यह कहना नहीं है कि अंतरिम मंत्री परिषद द्वारा सुझाया गया 4,000 रुपये अथवा 3,000 रुपये का वेतन मानक वेतन था। किसी को भी यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि मैं यह नहीं कह रहा कि 4,000 रुपये अथवा 3,000 रुपये समुचित वेतन है। मैं स्वयं को किसी आंकड़े तक सीमित नहीं करना चाहता। मैं तो केवल इतना कहना चाहता हूं कि एक मंत्री के लिए 500 रुपये समुचित वेतन नहीं है। मेरे इस बयान से निस्संदेह मेरी यह कहकर आलोचना हो सकती है कि मैं फिजूलखर्ची का सुझाव दे रहा हूं। लेकिन मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वेतन निश्चित रूप से इस विधेयक में निश्चित किए गए वेतन से अधिक होना चाहिए। यदि वेतन बढ़ा दिया जाता है, तो निश्चय ही यह मुझे नहीं मिलेगा। और जहां तक मैं देखता हूं कि भविष्य में भी मैं इसे कभी प्राप्त नहीं कर पाऊंगा।

माननीय श्री बी.जी. खेर: हतोत्साहित न होइए।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं अपने विद्वान मित्र को जवाब देने की आवश्यकता नहीं समझता। लेकिन उनकी नीति यह है, कि उन्होंने जानबूझकर अनुसूचित वर्ग के सदस्यों को अपनी मंत्री परिषद से बाहर रखा है।

माननीय के.एच. मुंशी: संभवतः वे 500 रुपये न लेना चाहें।

माननीय अध्यक्ष : शांत रहें।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मुझे यह प्रस्ताव रखते हुए कोई परेशानी नहीं, क्योंकि मैं यह वेतन प्राप्त नही करूंगा। मेरा उद्देश्य जनहित है। डा. जानसन ने कहा था कि देशभक्ति दुष्टों का अंतिम सहारा है। वह भली-भांति कह सकते थे कि राजनीति भी दुष्टों का अंतिम सहारा है। चूंकि मैं यह नहीं चाहता कि भारत में राजनीति दुष्टों का अंतिम सहारा बने, इसलिए मैं बोलने के लिए खड़ा हुआ हूं।

****

डा. भीमराव अम्बेडकर * (बंबई नगर): महोदय! मैं अपने माननीय मित्र प्रधानमंत्री से केवल इतना कहना चाहूंगा कि क्या अलग-अलग मदों के लिए प्रावधान करने के स्थान पर एक मुश्त वेतन का प्रावधान करके यह समस्या हल नहीं हो सकती। मेरा सुझाव केवल इतना है कि क्या हम यह नहीं कह सकते कि एक मंत्री को 750 रुपये का समेकित वेतन दिया जाए। मैं केवल उनके विचार के लिए यह सुझाव रख रहा हूं। क्या इससे समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता?

माननीय श्री बी.जी. खेर: महोदय! मेरे विचार में मैंने वही स्पष्ट किया है, जो हमने पूना में किया

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 1, पृ. 279-80, 23 अगस्त 1937

था, जहां चार सरकारी आवास उपलब्ध थे। बंबई में भी सरकारी आवास उपलब्ध होंगे। जो मंत्री और साथ-साथ अध्यक्ष महोदय एवं सभापति सरकारी बंगलों में रहेंगे, उन्हें किसी भत्ते का भुगतान नहीं किया जाएगा। वेतन के साथ भत्तों को मिलाने का प्रश्न ही नहीं है। सरकार द्वारा उपलब्ध आवासों के लिए जहां वे रहेंगे, किसी भत्ते का भुगतान नहीं किया जाएगा। यदि उनके पास अपने मकान हैं, वे उनमें रहना चाहें अथवा नहीं, यह पूर्णतया उन पर छोड़ दिया गया है। लेकिन मकान भत्ते के लिए 100 रुपये प्रति माह का प्रावधान अनुचित है। इस स्थिति में मैं नहीं सोचता कि वेतन और भत्तों को मिलाना संभव होगा। पूना में की गई व्यवस्था भली-भांति चल रही है। पूना में उपलब्ध सरकारी भवनों को विभाजित करने की व्यवस्था की गई है और मैं माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर को आश्वासन दे सकता हूं कि अब हम एक सरकारी बंगले में दो अथवा तीन मंत्रियों के रहने की व्यवस्था कर रहे हैं,जहां पहले केवल एक मंत्री पूरी शान-शौकत से रहते थे। यदि बंबई में भी ऐसी ही व्यवस्था करें, तो मंत्रियों, अध्यक्ष महोदय तथा सभापति के लिए आवास की व्यवस्था करने के पश्चात संभवत: हमारे पास किराए पर देने के लिए कुछ सरकारी आवास बच जाएंगे। इस तरह जो व्यवस्था हम करने जा रहे हैं, उसके फलस्वरूप खर्च में कटौती होगी।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं केवल उस समस्या के समाधान की ओर संकेत कर रहा हूं, जो हमारे सामने उठी है कि भारत सरकार अधिनियम में मंत्रियों के वेतन से संबंधित धारा में 'भत्ते' नाम का कोई शब्द नहीं है। वेतन के अतिरिक्त भत्तों का प्रावधान किया गया है, जो कि संभवत: अधिनियम के अंतर्गत स्वीकृत नहीं है, ताकि कोई समस्या न उठ खड़ी हो। मैं अपने माननीय मित्र को केवल यह सलाह दे रहा हूं कि वह सभी चीजों को मिला दें और उसमें से 'वेतन' और 'भत्ता' शब्द हटा दें और इस समस्या से छुटकारा पाएं। यह ठीक है कि हमें अभी एडवोकेट-जनरल से यह पता लगाना है कि उठाए गए मुद्दे में कोई सार है अथवा नहीं।

17

अपराधी परिवीक्षा विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : अध्यक्ष महोदय! ऐसा लगता है कि इस विधेयक के प्रति ज्यादा उत्साह नहीं है, क्योंकि सदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले अन्य विधेयकों के समक्ष दिखाई देने वाली होड़ यहां नहीं दिखाई पड़ रही है, यद्यपि मेरी इच्छा एक ही धारा के बारे में बोलने की है, लेकिन मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि मैं अपने को इस विधेयक के प्रति बिल्कुल भी उत्साहित महसूस नहीं कर पा रहा हूं और मैं यह निवेदन करता हूं कि यह बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि विधेयक ऐसी किसी समस्या का उल्लेख नहीं करता है, जिसे गंभीर या तात्कालिक महत्व का कहा जा सके। इसमें बहुत ही छोटी समस्या की चर्चा की गई है। मुझे बताया गया है कि विधेयक अंग्रेजी संविधि का बहुत मिलता-जुलता अनुकरण है। मुझे पता नहीं है कि अंग्रेज लोगों के जिस कानून को इस विधेयक का आदर्श बनाया गया है, उन्हें इस कानून से कोई विशेष लाभ पहुंचा है। लेकिन मुझे विश्वास है कि माननीय गृह मंत्री ने स्थिति की सावधानीपूर्वक जांच की है और स्पष्ट रूप से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस अधिनियम से, जिस देश में यह अभी लागू है, मिलने वाले लाभ निश्चित रूप से इतने पर्याप्त हैं कि हमें अपने प्रांत में उसी विधान के अनुरूप कानून बनाना चाहिए।

महोदय। इस विधेयक में निहित विस्तृत प्रावधानों के संदर्भ में मुझे कुछ नहीं कहना है और मैं शुरू में ही कहना चाहता हूं कि विधेयक को इसी रूप में पढ़ने से मुझे लगता है कि इस विधेयक में सम्मिलित सिद्धांतों का मैं समर्थन कर सकता हूं। केवल एक खंड है,जिसके बारे में मुझे कठिनाई महसूस होती है और जिस पर मैं माननीय गृह मंत्री का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। वह खंड 6 है। अगर नरम भाषा का इस्तेमाल किया जाए तो मुझे लगता है कि खंड 6 का अर्थ ऐसे सिद्धांत को सम्मिलित करना है, जो लागू करते समय कुछ हद तक दमनकारी बन सकता है। खंड 6 के अंतिम भाग में कहा गया है:

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 2, पृ. 425-26, 20 जनवरी 1938

अगर अपराधी की उम्र सोलह वर्ष से कम है और अदालत को यह लगे कि अपराध करने में अपराधी के माता या पिता या अभिभावक उसकी उपेक्षा करके या किसी अन्य ढंग से अपराध करने में सहायक बने हैं, तो अदालत इसकी क्षतिपूर्ति या हर्जाने तथा मूल्य की अदायगी करने के लिए माता या पिता या अभिभावक को आदेश दे सकती है।

मुझे लगता है कि माता-पिता या अभिभावक को आसानी से उत्पीड़ित किया जा सकता है। मेरे विद्वान मित्र माननीय गृह मंत्री यह मानेंगे कि 'उपेक्षा' और 'लापरवाही' जैसे शब्द पूर्णतया अस्पष्ट हैं, और लापरवाही क्या है और क्या नहीं है, इसकी कोई निश्चित परिभाषा देना बहुत ही मुश्किल है। अगर मैं इस बात का उल्लेख करूं कि सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान क्या हुआ, मुझे लगता है कि यह एक ऐसा उदाहरण हो सकता है, जिसके द्वारा मेरे माननीय मित्र के लिए मेरी कठिनाई को समझना संभव होगा। मुझे विश्वास है कि यह सत्य है -- अगर बताया जाए कि मैं गलत हूं तो मैं अपनी गलती सुधार लूंगा -- कि सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान कई सरकारी नौकर,जो राज्य की नौकरी में थे और जिनके बच्चों ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया था, उन पर इस आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई थी कि बच्चे आंदोलन में भाग न ले सकें। यह निगरानी न रखकर उन्होंने राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया है, क्योंकि आंदोलन तत्कालीन सरकार के प्रति विद्रोह था। मुझे लगता है कि मेरा यह कहना सही है कि वे सदस्य,जो अब विपक्ष में बैठे हैं, उन्होंने उस सिद्धांत पर गहरी आपत्ति उठाई थी, क्योंकि अगर मैंने उन्हें ठीक तरह से समझा है,तो उनका दावा यह था कि कोई भी माता-पिता अपने बच्चों के आचरण के प्रति उत्तरदायी नहीं होते हैं, विशेषकर जब कि उनका आचरण किसी निश्चित विचार से संबंधित हो, जो कि उनके अभिभावकों के विचार से बहुत तर्कसंगत ढंग से भिन्न हो। मेरा यह निवेदन है कि आमतौर पर जैसे कि अभिभावक सावधान व कर्तव्यनिष्ठ होते हैं, उसके बावजूद बच्चों में आपराधिक प्रवृत्ति विकसित हो सकती है और जब तक 'अवहेलना' या 'गुप्त सहयोग' या 'प्रेरक' शब्द को उचित रूप से परिभाषित नहीं किया जाता, मुझे लगता है, जैसा कि शायद माननीय गृह मंत्री इसके परिणामों के बारे में जानते हैं, इस विधेयक के परिणाम उससे भी ज्यादा निकलेंगे।

मेरे माननीय मित्र श्री ब्राम्बले के भाषण से पता चलता है कि उन्होंने निस्संदेह इस समस्या का अध्ययन करने पर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने कहा है कि अंग्रेजी विधान में कई विसंगतियां हैं, यह देखने के लिए इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए कि जो विसंगतियां अंग्रेजी विधान में पाई गई हैं, वे उस विधान में प्रस्तावित न हों, जिसे हम पारित कर रहे हैं। उन्होंने कहा है कि उनके पास यह विश्वास करने के अनेक कारण हैं कि जो वक्तव्य उन्होंने तैयार किया है, वह गहन अध्ययन पर आधारित है और अगर ऐसा है और सरकार

की प्रतिष्ठा आड़े नहीं आती है, तो मैं अपने माननीय मित्र श्री ब्राम्बले के कथन से सहमत हूं कि इस विधेयक को प्रवर समिति को सौंप दिया जाए, जहां किन्हीं सिद्धांतों के पक्ष में या विपक्ष में समस्त मुद्दों को उठाया जाए और उन पर विचार किया जाए, ताकि विधेयक उतना अधिक दोषरहित बन सके, जितना कि हम इस सदन में बना सकते हैं। इन टिप्पणियों के साथ मैं विधेयक के प्रथम वाचन का समर्थन करता हूं।

18

तंबाकू शुल्क अधिनियम संशोधन विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : महोदय! सदन के माननीय नेता ने जो कहा है, मैं उसके उत्तर में निवेदन करना चाहता हूं कि यदि आप छूट और रोक के सिद्धांत का समर्थन करते हैं, तो मेरे माननीय मित्र श्री जमनादास मेहता,जो विचार-विमर्श करना चाहते हैं, वह सदन के नियमों के अनुसार प्रासंगिक होगा। सदन के माननीय नेता ने जो मुद्दा उठाया है, उसके संदर्भ में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि सदन आसानी से यह दृष्टिकोण अपना सकता है कि उन्होंने पर्याप्त अनुदान राशि प्रदान की है और इससे ज्यादा और नहीं दी जाएगी। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि सदन के नेता द्वारा उठाए गए मुद्दे का एक पूर्ण उत्तर होगा। इसलिए इस आधार पर कोई रोक या छूट न होगी कि सदन ने मुख्य 'वित्तीय विधेयक' के अंतर्गत विचार किए गए अन्य करों को अनुमति देकर आपूर्ति कर दी है।

महोदय! अब जो मैं मुद्दा उठाना चाहता हूं, वह मेरे ख्याल से यह है कि क्या यह वित्त विधेयक है या ऐसा विधेयक है, जो कर उगाहने के लिए मात्र प्रशासनिक कार्य-प्रणाली को नियंत्रित करता है। अगर यह विधेयक मात्र कर उगाहने की कार्य-प्रणाली और कर उगाहने के तरीके व प्रणाली को निर्धारित करने की व्यवस्था करता है, तो आपने जिस आदेश की बात की है, मैं उसकी प्रासंगिकता को अच्छी तरह से समझ सकता हूं। पर विधेयक में संलग्न उद्देश्य व कारणों के वक्तव्यों को देखने से मुझे लगता है कि शुरू से आखिर तक सरकार ने इस विधेयक को वित्त विधेयक के रूप में लिया है। विधेयक का मुख्य उद्देश्य अतिरिक्त राजस्व एकत्र करना है। कार्य-प्रणाली में परिवर्तन तो गौण है -- अतिरिक्त राजस्व के लिए एक प्रशासन तंत्र प्रदान करना। सरकार को मद्यनिषेध की नीति से उत्पन्न घाटे को पूरा करने के लिए अतिरिक्त राजस्व एकत्र करना ही इस विधेयक का मुख्य उद्देश्य है। मैं उद्देश्य व कारणों के वक्तव्य में से एक या दो अंशों का उल्लेख करना चाहूंगा:

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 3, पृ. 336-37, 5 मार्च 1938

अधिकतर देशों में तंबाकू पर पर्याप्त कर लगाए जाते हैं। नए मद्य-निषेध या मदिरा पान के विरुद्ध नीति से उत्पन्न हुए कुछ घाटे को पूरा करने के लिए राजस्व का यह स्रोत विकसित करना नितांत आवश्यक है। बंबई नगर में तंबाकू पर शुल्क 1857 के तंबाकू शुल्क (बंबई नगर) अधिनियम के अंतर्गत एकत्र किया जाता है। इस अधिनियम के अंतर्गत पहले से ही पर्याप्त फीस है, लेकिन लाइसेंस फीस नाममात्र की है और लाइसेंसों की बहुत मांग है जिन्हें लाइसेंसधारी जल्दी-जल्दी दूसरे व्यापारियों को बेच देते हैं। बंबई में एक रुपये से 25 रुपये या 50 रुपये तक लाइसेंस फीस को उगाहने का विधेयक में प्रावधान है ....

इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि यह विधेयक मूल रूप से वित्त विधेयक है, न कि कर उगाहने के लिए कार्य-प्रणाली बनाने के उद्देश्य का विधेयक। यदि यह वित्त विधेयक है, तो मैं निवेदन करता हूं कि सदन को यह विचार-विमर्श करने का अधिकार है कि यह सरकार को आपूर्ति प्रदान करे या न करे। सदन के माननीय नेता द्वारा उठाए अन्य मुद्दों के संदर्भ में जो छूट से संबंधित था, मेरा निवेदन यह है कि सदन यह कहने को पूर्णतया स्वतंत्र है: 'आपूर्ति का कुछ हिस्सा हम प्रदान करेंगे, बाकी नहीं।'

19

न्यायपालिका की स्वतंत्रता *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर): अध्यक्ष महोदय! मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। अब जब कि बहस बिल्कुल समाप्ति पर है, मैं इस प्रस्ताव पर बोल रहा हूं, और यह समझता हूं कि माननीय गृह मंत्री को जवाब देने के लिए थोड़ा समय मिलना ही चाहिए। इसलिए,जो वक्तव्य मैं इस सदन में देना चाहता हूं, उसे संक्षेप में ही कहूंगा।

महोदय! अपनी ओर से बोलते हुए मैं जो पहली बात कहना चाहता हूं, वह यह है कि अधिनियम,जो इस निंदा प्रस्ताव का आधार है, मेरे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। मैं तो इसे कई गतिविधियों की श्रृंखला की पराकाष्ठा के रूप में देखता हूं, जो निस्संदेह कानून तोड़ने की प्रतिज्ञा के बराबर है, जिसके लिए सरकार तब से दोषी है, जब से उसने कार्यभार संभाला है। यह श्रृंखला का एक हिस्सा है, चल रहे नाटक का एक अंक है। हमें नहीं पता, कब इसका अंत हो जाए। पहले जिस कारगुजारी का मैं उल्लेख करना चाहता हूं, वह बारडोली के किसानों से जब्त की गई भूमि की वापसी का है। निश्चित रूप से यह वह काम है, जिसकी जिम्मेदारी वर्तमान सरकार पर है (व्यवधान)। मेरी इच्छा है कि मेरी बात सुनी जानी चाहिए, क्योंकि मुझे दिया गया समय सीमित है।

माननीय अध्यक्ष: शांत, शांत। क्या माननीय सदस्य अपना स्थान पुन: ग्रहण करेंगे। मुझे नहीं लगता कि विचार-विमर्श इस आधार पर होना चाहिए। यह तो अंतहीन क्षेत्र में प्रवेश करने जैसा होगा। इस समय मुद्दा यह नहीं है कि सरकार अपने पुराने कार्यों के लिए निंदा की पात्र है या नहीं, बल्कि मुद्दा यह है कि यह विशेष अधिनियम जो वर्तमान प्रस्ताव की विषय-वस्तु है, वह निंदा का पात्र है या नहीं। यह प्रस्ताव, जो एक निश्चित विषय को लेकर है, जनता के लिए तात्कालिक महत्व का है। इस निश्चित प्रस्ताव के कारण चर्चा की स्वीकृति दी गई है, और जिसका पालन बहस के दौरान भी करना होगा अन्यथा विचार-विमर्श का उद्देश्य नष्ट हो जाएगा। इसलिए मैं माननीय सदस्य से प्रार्थना करता हूं कि वह सदन के समक्ष प्रस्तुत निश्चित अधिनियम तक ही अपने को सीमित रखें।

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 420-24, 7 मार्च 1938, रेलवे यूनियन के श्री जमनादास मेहता ने सदन को स्थगित करने के लिए स्थगन प्रस्ताव रखा था, ताकि जनता का ध्यान बंबई उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता में सरकारी हस्तक्षेप की ओर आकृष्ट किया जा सके। सरकार ने जाधवजी और धीरजलाल नामक कैदियों की सजा को उस समय मुल्तवी कर दिया था, जब उच्च न्यायालय ने उनके आवेदन खारिज कर दिए थे।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि सादृश्यता का उल्लेख करने और तर्क देने तथा उसके गुणावगुणों की चर्चा करने में भिन्नता होती है। अगर मैं बारडोली भूमि की वापसी के प्रस्ताव के गुण-दोषों की बात करूं, तो निश्चित रूप से मैं आपके द्वारा बताई गई आपत्ति का पात्र बनूंगा। लेकिन आपकी व्यवस्था के अंतर्गत मैं यह अवश्य कहूंगा कि यह अधिनियम सरकार की गतिविधियों की शृंखला की पराकाष्ठा है और सरकार की एक पिछली गतिविधि की चर्चा करते समय उसके गुणावगुणों में न जाकर मैं अपना वक्तव्य साढ़े पांच बजे तक समाप्त करने को सहमत हूं।

माननीय अध्यक्ष: मुद्दा यह नहीं है कि माननीय सदस्य एक निश्चित अवधि में अपनी बात समाप्त करने को सहमत हैं। मेरे विचार में यह एक निश्चित मामला है तथा माननीय सदस्य को किसी निश्चित मामले पर चर्चा करने के लिए सदन में अनुमति दी गई है, लेकिन मामलों का उल्लेख करने मात्र से नए मुद्दे उठ सकते हैं। इसलिए मैं यह महसूस करता हूं कि सामान्य हालात में भी मेरा अन्य विषयों के उल्लेख की अनुमति देना सही नहीं होगा। किसी भी सदस्य की स्वतंत्रता को मैं कम नहीं करना चाहता। मैं यह अवश्य चाहता हूं कि इस मामले में जितने मुद्दे हो सकते हैं, उन पर बल दिया जाए। लेकिन मैं अन्य मामलों का उल्लेख करने की अनुमति नहीं दूंगा, चाहे कार्य करने या न करने का सवाल ही क्यों न हो। ऐसा नहीं है कि मैं सदन की बैठक जल्दी खत्म करने को उत्सुक हूं और इसलिए उन संदर्भों की अनुमति नहीं देना चाहता। माननीय सदस्य सदन के समक्ष इस मुद्दे पर अपनी पूरी बात कहने का अधिकार रखते हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं इस संदर्भ में सदन के समक्ष विषय तक ही अपनी टिप्पणी सीमित रखूंगा।

महोदय! अब मैं सदन के समक्ष इस मामले के संदर्भ में यह कहना चाहता हूं कि सबसे पहले हमारे पास समाचार पत्रों से मिली जानकारी के सिवाय मामले के तथ्य हमें नहीं बताए गए हैं। हमारे पास कोई निश्चित आंकड़े नहीं हैं और मुझे बताया गया है, यद्यपि माननीय गृह मंत्री से अनुरोध भी किया गया था कि वह वास्तविक तथ्यों की जानकारी सदन को दें, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसलिए मैं सदन के अन्य सदस्यों की तरह कठिनाई महसूस कर रहा हूं। हो सकता है कि आखिर में जब तथ्यों को उजागर किया जाएगा, तब यह पाया जाए कि यह बहस या तो अनावश्यक थी, या असामयिक थी। लेकिन अगर बहस बेकार व अनावश्यक बन जाती है, तो इसका दोष आवश्यक रूप से माननीय गृह मंत्री के ऊपर है, क्योंकि उन्होंने ही सदन को विश्वास में नहीं लिया और वास्तव में क्या हुआ यह नहीं बताया। अगर उन्होंने ऐसा किया होता, तो शायद प्रस्ताव के माननीय प्रस्तावक ने उसे वापस ले लिया होता, शायद अन्य सदस्यों ने कहा होता कि बहस में भाग नहीं लेना चाहते हैं। लेकिन जैसा कि मैंने कहा है कि अगर बहस अंततः निष्फल सिद्ध हुई तो दोष उनका ही होगा।

समाचार पत्रों की रिपोर्ट से मिले तथ्यों के आधार पर विचारणीय मुद्दा क्या है? कहा जाता है कि उच्च न्यायालय ने इन व्यक्तियों का आवेदन रद्द कर दिया है। प्रश्न यह है कि

मंत्री महोदय ने इसकी अनुमति क्यों दी है? मुझे यह एक सीमित मुद्दा लगता है। वस्तुतः दो अपराधियों को सुनाई गई सजा को निलंबित करने के लिए माननीय गृह मंत्री कह सकते हैं कि उच्च न्यायालय के पास निलंबित करने की शक्ति नहीं है और इसलिए यह आग्रह करना बिल्कुल ही अप्रासंगिक होगा कि क्या उच्च न्यायालय बुद्धिमानी से या अल्प बुद्धि से सजा निलंबित करने से मना कर सकता है। सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि जिन बंदियों को कानूनन दोषी माना गया है, उनके बारे में सरकार को सजा स्थगित करने, कम करने या घटाने का जो अधिकार या विशेषाधिकार प्राप्त है, क्या उसका उपयोग सही ढंग से किया गया है। प्रश्न यह है कि क्या विवेक का उचित ढंग से पालन किया गया है? महोदय! यह जानने के लिए कि माननीय गृह मंत्री ने इस प्राधिकार के अनुरूप कार्य का निष्पादन ठीक ढंग से किया है या नहीं, इसके लिए कुछ संभावनाओं को निकाल देना आवश्यक है। सर्वप्रथम, समाचार पत्रों की रिपोर्ट से मिले तथ्यों के आधार पर, यह स्पष्ट है कि जो व्यक्ति बड़े पैमाने पर जुए में लिप्त थे, वे निश्चित रूप से गरीबी से पीड़ित नहीं थे, या अपना पेट भरने के लिए जुए जैसे घृणित कार्य में प्रवृत्त हुए हों। मामला निश्चित रूप से यह नहीं है। तथ्यों के अनुसार, ये लोग समृद्ध बनिए थे। उनके पास बहुत पूंजी थी, भारत के विभिन्न नगर के विभिन्न भागों में उनकी अनेक कंपनियां या प्रधान कार्यालय थे, और उनका व्यापार बड़े पैमाने पर चलता था। इसलिए इस मामले में ऐसा कोई तर्क पेश नहीं किया जा सकता है कि वे ऐसे दुर्भाग्यशाली लोग थे, जिन्हें अपनी गरीबी के कारण, अपनी विपरीत परिस्थितियों के कारण जुए जैसे कार्य का आश्रय लेने को बाध्य होना पड़ा। यह सफाई नहीं हो सकती, क्योंकि तथ्य उस तरह के निष्कर्ष के बिल्कुल विरुद्ध हैं। दूसरे, पेश की गई रिपोर्ट में और उच्च न्यायालय में दिए गए आवेदन में कम से कम यह नहीं कहा गया है कि इसके निलंबन का कोई अन्य आधार है। यह कहीं नहीं दर्शाया गया है कि ये दोनों मुजरिम बीमार थे या किसी बीमारी से पीड़ित थे; यह कहीं नहीं दर्शाया गया है कि इनके परिवारों पर कोई घरेलू संकट आ पड़ा था, जिसके कारण उन्हें दौड़ना जरूरी था। अपने सामने रखे तथ्यों से हमें यह भी नहीं पता चलता और सारे अनुशासन गलत हैं। तीसरे, जिस संभावना का सुझाव दिया जा सकता था, वह थी कि वे अधिक ऊंचे अधिकरण से अपील करना चाहते थे, उस परिकल्पना के विरुद्ध यह सबको पता है और मुझसे कहीं बेहतर गृह मंत्री जानते हैं – मैं जितना हूं वह मुझसे कहीं ज्यादा बेहतर वकील हैं – कि प्रिवी काउंसिल ने अनेक मामलों में यह निर्णय दिया है कि वे भारत में किसी भी फौजदारी न्यायालय से कोई भी अपील नहीं सुनेंगे, जब तक कि यह न बताया गया हो कि मुकदमे के दौरान दंड प्रक्रिया संहिता के साधारण प्रावधान का नहीं, बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है। उन्होंने अपने विवेकपूर्ण तरीके से फौजदारी अपीलों की सुनवाई के अवसर और अधिकार को पूर्णतया सीमित कर दिया है और इस मामले

में किसी ऐसे सुझाव का आभास भी नहीं मिलता कि मुख्य प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट या उच्च न्यायालय में जहां मुकदमा व अपील क्रमशः संचालित की गई थी, वहां किसी भी तरह से दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की अनदेखी हुई हो। मुझे कोई और परिस्थिति नजर नहीं आती, जो प्रथम दृष्टि में यह विश्वास दिला सके कि ऐसा कोई तर्कपूर्ण कारण था, जिसने गृह मंत्री को इन लोगों को सुनाई गई सजा को निलंबित करने के लिए प्रेरित किया।

महोदय! फिर मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि कम से कम मुझे किसी ऐसी मिसाल की जानकारी नहीं है, जहां किसी कारण से किसी भी पूर्व गृह मंत्री ने साधारण अपराधी की सजा निलंबित की हो। और निश्चित रूप से किसी भी सरकार ने बीमारी या निजी कठिनाई को सजा के निलंबन के पर्याप्त कारण के रूप में नहीं माना है, जो न्यायिक रूप से प्रांत के उच्चतम न्यायालय ने दी हो। इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि जब तक कि कोई उचित तर्क सामने न आए, यह सबसे लज्जाजनक कार्य है कि गृह मंत्री ने उच्च न्यायालय की अवहेलना करके सजा निलंबित कर दी हो। वह अच्छी तरह से जानते हैं कि कम से कम समाचार पत्रों से मिले तथ्यों के आधार पर हम जानते हैं कि आवेदन उस वकील द्वारा दिया गया था, जो उन अपराधियों की ओर से उच्च न्यायालय में उपस्थित हुआ था। जब वे जेल में थे, तब वकील ने इन लोगों के प्रति विशेष ध्यान रखने का आवेदन दिया था कि उनसे द्वितीय श्रेणी के अपराधियों की तरह व्यवहार किया जाए। मुझे यह भी बताया गया है कि जो वकील अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुआ था, उसने यह आवेदन दिया था कि कुछ समय के लिए सजा निलंबित कर दी जाए। वे दोनों आवेदन खारिज कर दिए गए थे। उन्हीं आवेदनों में से कम से कम एक पर गृह मंत्री ने अनुमति दी। महोदय! कानून-व्यवस्था की अवमानना करने का जो अपराध गृह मंत्री ने किया है, इससे बड़ा कोई और निश्चित तरीका नहीं हो सकता। यह मत प्रकट करने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं हो रही है। मैं माननीय गृह मंत्री से यह पूछना चाहता हूं कि क्या इस तरह का कृत्य जिसकी प्रत्यक्ष रूप से संतोषजनक व्याख्या नहीं की जा सकी,जो लोगों के मन में विश्वास उत्पन्न करे, क्या इससे इस प्रांत की प्रशासन की ईमानदारी के प्रति संदेह उत्पन्न नहीं हो जाएगा? महोदय! मैं इस संबंध में एक और प्रश्न प्रधानमंत्री से यह पूछना चाहता हूं कि क्या यह आदेश प्रधानमंत्री की जानकारी से जारी किया गया है? क्या यह आदेश मंत्रिमंडल की जानकारी से जारी किया गया है या केवल माननीय गृह मंत्री के द्वारा जारी किया गया है? महोदय! मैं विशेष कारण से यह सवाल पूछ रहा हूं। हम अनुमान लगा सकते हैं, यद्यपि इस मुद्दे पर हमारे पास कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि नए अधिनियम के अंतर्गत कांग्रेसी मंत्रिमंडल सामूहिक रूप से सामूहिक जिम्मेदारी की भावना से काम कर रहा है। इसलिए मैं यह मानने का अधिकारी हूं कि यह मामला पूरे मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया गया

होगा, और यदि पूरे मंत्रिमंडल के समक्ष नहीं तो कम से कम प्रधानमंत्री के समक्ष तो आया ही होगा, जो इस प्रांत के प्रशासन के प्रति लोगों की निगाह में पूर्णतया उत्तरदायी हैं। मैं यह उल्लेख करने और इन प्रश्नों को पूछने के लिए बाध्य हूं, क्योंकि इसे मैं बहुत ही गंभीर मामला मानता हूं। अपराधी व्यक्ति को सुनाई गई सजा को निलंबित करना निश्चित रूप से कानून का उल्लंघन करना है और मैं कहता हूं कि जिस कृत्य में न्याय, प्रशासन तथा इस क्षेत्र के लोगों के कल्याण जैसी गंभीर बातें निहित हैं, वह प्रधानमंत्री की जानकारी के बिना संचालित नहीं किया जा सकता है। मैं यह अनुमान लगा रहा हूं और मैं जानना चाहता हूं कि क्या मेरा अनुमान सही है। मुझे आशा है मुझे अपने प्रश्न का उत्तर अवश्य मिलेगा (तालियां)।

श्री डब्ल्यू. एस. मुकादम : महोदय! क्या मैं जान सकता हूं कि इस सदन में कुछ पीने की अनुमति है। मैं एक तथ्य आपकी जानकारी में लाना चाहता हूं कि नगर आयोजन अधिनियम पर विचार-विमर्श के दौरान जब श्री मीरामस बोल रहे थे, मैंने व्यवस्था का प्रश्न उठाया था और माननीय इब्राहीम रहीमतुल्ला ने यह आदेश दिया था कि इस सदन में किसी भी पेय की अनुमति नहीं है। फिर श्री मीरामस के यह पूछने पर कि क्या पानी की अनुमति है, अध्यक्ष महोदय ने कहा था कि पानी की अनुमति नहीं है।

माननीय अध्यक्ष: मेरे ख्याल से इस सदन में कोई भी पेय न लेने की परंपरा होना ज्यादा बेहतर है, यानी मेरा तात्पर्य पानी के अलावा किसी अन्य चीज से नहीं है (ठहाका)।

श्री डब्ल्यू. एस. मुकादम : श्री मीरामस ने पूछा था कि क्या इस सदन में पानी पीने की अनुमति है अथवा नहीं, और अध्यक्ष महोदय ने कहा था कि पानी की भी अनुमति नहीं है।

माननीय अध्यक्ष: माननीय सदस्य (श्री मुकादम) ने 'पेय' के संदर्भ में नियमापत्ति को उठाया था, जिसके अनेक अर्थ हो सकते हैं, और इसलिए मैं पेय के अर्थ को पीने के पानी तक सीमित कर रहा हूं। मेरा ख्याल है कि माननीय सदस्य (श्री मुकादम) ने इस मुद्दे को माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर के संदर्भ में उठाया है, जिन्होंने भाषण देने से पहले अपने को शक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से एक घूंट लिया था।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! क्या मैं स्थिति स्पष्ट कर सकता हूं? मैं अपच से ग्रस्त हूं। डाक्टर की हिदायतों के अनुसार मैं शनिवार और रविवार दो दिनों तक खाना नहीं खाता और इन दोनों दिनों मुझे पानी पीने की भी अनुमति नहीं है। इसलिए सोमवार को मैं काफी थका हुआ था और जब तक मैं पानी का एक घूंट नहीं लेता, भाषण नहीं दे सकता था। अगर मैंने सदन के शिष्टाचार व शालीनता के नियमों का हनन किया है, तो मैं सदन से क्षमा मांगता हूं।

माननीय अध्यक्ष : अब जब कि माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर ने स्पष्टीकरण दे दिया है, मैं नहीं समझता कि इस मामले में मेज पर से गिलास हटाने के सिवाय कुछ और करने की आवश्यकता है (ठहाका)।

20

पृथक कर्नाटक प्रांत का गठन*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर, भायखला और परेल) : महोदय! मेरे माननीय मित्र श्री अली मोहम्मद खान देहलवी ने जो कहा है, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूं और मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि इस मुद्दे पर आपकी राय ठीक है। मैं आपका ध्यान नियम 22, उप-नियम (2) की ओर दिलाना चाहता हूं, जिसके अनुसार:

> अध्यक्ष किसी भी प्रस्ताव को या प्रस्ताव के हिस्से को इस आधार पर अस्वीकृत कर सकता है कि वह विषय मुख्य रूप से प्रांतीय सरकार द्वारा विचारणीय नहीं है और अगर वह ऐसा करता है तो प्रस्ताव या प्रस्ताव का हिस्सा कार्यसूची में दर्ज नहीं किया जाएगा।

इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि यह प्रस्ताव ऐसी समस्या से संबंधित है, जो मुख्य रूप से प्रांतीय सरकार का मामला नहीं है और जहां तक उसमें सिफारिश की गई है कि कुछ क्षेत्र जो अब मद्रास प्रेसिडेंसी के भाग हैं, उन्हें पृथक कर दिया जाए, मैं निवेदन करता हूं कि यह प्रांतीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र से बाहर है। लेकिन, महोदय! धारा 290 की बात करते हुए, जिसका उल्लेख मेरे माननीय मित्र श्री जोग ने किया है, इस तथ्य की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि वर्तमान भारत सरकार अधिनियम की धारा 290, भारत सरकार अधिनियम 1919 की धारा 52 क के सदृश्य है। भारत सरकार अधिनियम 1919 की धारा 52 क की तुलना धारा 290 के साथ करते हुए, यह पता चलता है कि उसमें एक मूलभूत व सुविचारित परिवर्तन किया गया है। पुराने अधिनियम के अंतर्गत धारा 52 में कहा गया था कि अगर कोई नया प्रांत बनाना है, तो स्थानीय विधान मंडल स्वतंत्र था कि इस संबंध में वह प्रस्ताव पारित करे और इसकी सूचना गवर्नर जनरल को दे, क्योंकि जैसा कि आपको याद होगा, 1919 में पुराने अधिनियम के अंतर्गत नए प्रांत बनाने का अधिकार गवर्नर जनरल में निहित था और इससे पहले कि गवर्नर जनरल धारा 52 क के तहत कोई पहल करे, प्रांतीय विधान मंडल को इस मामले में अपने विचार व्यक्त करते हुए

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 1692-93, 4 अप्रैल 1938

प्रस्ताव पारित करने का अधिकार था। जैसा कि मैंने बताया है कि धारा 290 में सुविचारित परिवर्तन किए गए हैं। वह गवर्नर जनरल से मौजूदा प्रांत से नया प्रांत बनाने का अधिकार ले लेती है। वह यह शक्ति भारत–सचिव (सेक्रेटरी आफ स्टेट) को देती है, वास्तव में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल को। दूसरे, स्थानीय विधान मण्डल से पहल करने का अधिकारी छीन लेती है। जैसा कि मुझे लगता है, धारा 290 के अंतर्गत नया प्रांत बनने के बारे में भारत–सचिव को पहल करने का अधिकार दिया गया है। एक बार जब भारत–सचिव नया प्रांत बनने का फैसला कर लेता है, तो धारा 290 के अंतर्गत यह उसका दायित्व है कि आर्डर–इन–काउंसिल जारी करने से पहले उस आदेश से प्रभावित विधान मंडलों से परामर्श करे। तभी किसी प्रांतीय विधान मंडल के लिए इस तरह के प्रस्ताव के बारे में विचार–विमर्श करना उचित होगा, भले ही वह क्षेत्र उस प्रांत में न हो। मेरा निवेदन है कि अगर इस सदन के समक्ष यह प्रस्ताव ब्रिटिश सचिव द्वारा अग्रसारित किया गया है, तो मैं निवेदन करता हूं कि केवल तभी इस विधान मंडल के लिए यह विचार करना उचित होगा कि कर्नाटक को पृथक कर दिया जाए और कुछ क्षेत्र जो किसी और प्रांत के भाग हैं उन्हें इस प्रांत में सम्मिलित किया जाए या नहीं। तब तक यह कदम न उठाया जाए, जब तक कि मामला भारत सचिव द्वारा न प्रस्तावित किया गया हो। मेरा निवेदन है कि हमारी प्रांतीय सरकार, यह प्रांतीय विधान मंडल उस प्रस्ताव पर विचार नहीं कर सकता जो स्पष्टतया ऐसी समस्या से संबंधित है, जो इस विधान मंडल व प्रांतीय सरकार के क्षेत्र व अधिकार से परे है। इसलिए मैं कहता हूं कि जो दृष्टिकोण आपने अपनाया है, वह नियमों के अनुसार और भारत अधिनियम की धारा 290 के तहत पूर्णतया उचित दृष्टिकोण है।

माननीय अध्यक्ष : मैं एक मुद्दा स्पष्ट कर देना चाहता हूं। जहां तक 'मद्रास और कुर्ग' शब्दों के समावेश का सवाल है, मैंने यह सुझाव नहीं माना। लगता है, माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई दलील काफी आगे बढ़ गई है और कहती है कि नए प्रांत को बनाने से संबंधित या किसी प्रांत की सीमा को बदलने का कोई भी प्रस्ताव किसी भी प्रांतीय विधान मंडल में कतई नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि इस संबंध में कोई भी कदम उठाने का अधिकार विधान मंडल के पास नहीं है। जहां तक मुझे समझ आता है, उनकी दलील का यही मतलब है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : जी, महोदय।

माननीय अध्यक्ष: मद्रास और कुर्ग को समावेश करने के बीच उनकी नियमापत्ति में कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर किसी बात पर विचार भी नहीं किया जा सकता, तो मद्रास व कुर्ग के समावेश से कोई फर्क नहीं पड़ता। इनका मुद्दा उसकी तह तक जाता है। उस संबंध में एक कठिनाई है: पहल करने की शक्ति किन्हीं सीमाओं के अंतर्गत दी गई है, अथवा यों कहें कि इस शक्ति का पालन किन्हीं सीमाओं के भीतर करना होगा। लेकिन विधान मंडल इस दृष्टि से राय व्यक्त कर सकता है कि वह सरकार से पहले मत व्यक्त करने का अनुरोध करे, जिसके पास पहल करने की शक्ति है। क्या धारा 290 में ऐसा कुछ है, जो विधान मंडल को पहल करने की प्रार्थना करने से रोकता है? यह कोई प्रस्ताव नहीं है, जिसके द्वारा वास्तविक पृथकता का निर्णय कर लिया गया हो। अगर 'पहल' शब्द का प्रयोग अन्य अर्थ में किया जा रहा है, तो उसका आरंभ प्रार्थना के द्वारा किया जा सकता है। लेकिन इस पर धारा 290 की शर्तों के अंतर्गत विधान

मंडल पर क्या पहल की प्रार्थना करने पर भी रोक लगा दी गई है? इस मुद्दे पर मुझे खेद है कि मैं विद्वान डाक्टर से सहमत नहीं हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मेरा यही दृष्टिकोण है कि इस सदन पर रोक लगा दी गई है। यह तथ्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि पहल करने की शक्ति भारत–सचिव को दे गयी है और विधान-मंडल से पहल की शक्ति ले ली गई है और पुराने अधिनियम की धारा 52 क की तुलना, वर्तमान अधिनियम की धारा 290 से करने से स्थिति पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। उस समय साइमन कमीशन और गोल मेज सम्मेलन द्वारा इस तथ्य पर विचार किया गया था और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि जो प्रांत पृथक्करण की शर्तों को पूरी करते हैं, वे हैं उड़ीसा, सिंध और उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रांत। वे पहल करने की शक्ति प्रांतीय विधान मंडल को नहीं देते।

* * * * *

डा. भीमराव अम्बेडकर *(बंबई नगर): अध्यक्ष महोदय! मैं अपने माननीय मित्र श्री जोग द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का विरोध कर रहा हूं। निस्संदेह इस प्रस्ताव का विषय बहुत महत्वपूर्ण है। मैं नहीं जानता कि बहस के दौरान भावनाओं में बहे बिना और संवेदनशील हुए बिना इस सदन के कितने सदस्य इस प्रस्ताव पर विचार करने को तैयार होंगे। मुझे लगता है, अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण मैं इस सदन के अन्य सदस्यों से ज्यादा लाभ की स्थिति में हूँ। अगर मैं ऐसा कहता हूं तो यह आलंकारिक ही नहीं है, बल्कि इसके पीछे न्यायसंगत भावना है। हम अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधियों को मराठी या गुजराती या कन्नड़ होने का कोई गर्व नहीं है। मैं कई कारणों से जिनमें मैं इस अवसर पर पड़ना नहीं चाहता, हम ऐसा सोचते हैं कि यह हमारी भूमि नहीं है। तथापि, मैं यह तर्क इसलिए दे रहा हूं कि इस प्रस्ताव द्वारा थोपी गई परिस्थितियों के बावजूद भी मैं तटस्थ दृष्टिकोण अपना सकता हूं या कम से कम तटस्थ दृष्टिकोण अपनाने की ओर गंभीर चेष्टा कर रहा हूं। महोदय! मैं चाहूंगा कि इस सदन के सदस्यों के लिए एक तथ्य दिमाग में रखना आवश्यक और वांछनीय होगा, जो मेरे ख्याल से बहुत महत्वपूर्ण है। अधिनियम लागू होने से पहले, बंबई प्रेसिडेंसी चार विभिन्न इकाइयों से बनी हुई थी– गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और सिंध। इस संयुक्त परिवार की बुनियाद नई नहीं है। कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात पिछले 115 वर्षों से इकट्ठे हैं। सिंध हमारे साथ करीब 90 वर्षों से था। सिंध को पृथक कर दिया गया है। यह विगत का विषय है, जिसको अब उखाड़ने की जरूरत नहीं। हम 115 वर्षों से इकट्ठे रह रहे हैं। मैंने इस वास्तविकता का उल्लेख इस तथ्य पर जोर देने के लिए किया है कि जो लोग इस एकता को समाप्त कर देना चाहते हैं, वे चाहते हैं कि ये तीनों हिस्से जो जुड़े हुए हैं, अब उन्हें अलग कर दिया जाए। वे इस मामले पर केवल भावनाओं में न बहते हुए ज्यादा गंभीर ढंग से विचार करें।

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 3, पृ. 1717–23, 4 अप्रैल 1938

मैं जिस पहले प्रश्न पर विचार करने की बात कर रहा हूं, वह यह है कि हमारे जिस मित्र ने यह प्रस्ताव रखा है, उसका कहना है कि यह प्रस्ताव समग्र प्रस्ताव का एक हिस्सा मात्र है। आदर्श तो यह होता कि कर्नाटक के सभी लोगों का एकीकरण किया जाए। यह प्रस्ताव उस दिशा में एक कदम मात्र है। महोदय। इस बारे में मैं प्रश्न पूछना चाहता हूं कि इस आदर्श को, अगर मेरे माननीय मित्र इसे स्वप्न कहने की अनुमति दें तो, क्या कन्नड़ बोलने वाले समस्त लोगों का एकत्र होने का स्वप्न साकार होना संभव है? मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि यह एक ऐसा स्वप्न है, जो कभी पूरा नहीं हो सकता, और मेरे यह कहने का कारण यह है: एक पुस्तक *कर्नाटक के एकीकरण का मामला* वितरित की गई,जिसकी एक प्रति मुझे भी मिल गई है। मैं इसे उस संस्था का प्रकाशन मानता हूं, जो इस प्रस्ताव के पीछे है। मुझे इस पुस्तक के पृष्ठ 22 पर एक वक्तव्य दिखाई दिया है, जिससे यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि कन्नड़ बोलने वाले भारत के कई राज्यों की सीमाओं में रहते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मैं अपने माननीय मित्रों से जो इस प्रस्ताव का समर्थन कर रहे हैं, एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। वह है : क्या कन्नड़ बोलने वाले लोगों का देशी राज्यों के अधिकार क्षेत्र व प्रभुत्व से बाहर निकलना संभव है, ताकि वे कन्नड़ बोलने वाले स्वायत्तशासी प्रांत का हिस्सा बन सकें? मैं सहमत हूं और स्वीकार करता हूं कि ब्रिटिश भारत का प्रशासन मद्रास प्रेसिडेंसी या ब्रिटिश कानून के अधीन अन्य सरकारों को राजी कर लेगा कि कन्नड़ बोलने वाले लोगों के लिए अलग प्रांत बना दिया जाए, ताकि वे सब संयुक्त रूप से एक प्रशासन में समाहित हो सकें। पर मुझे समझ नहीं आता कि यह कैसे संभव है कि कन्नड़ बोलने वाले जो लोग देशी राज्यों में रह रहे हैं, उनकी निष्ठा को किसी भी ब्रिटिश भारत के प्रांत में स्थानांतरित कर दिया जाए। मुझे केवल एक स्थिति की संभावना नजर आती है, जिस पर विचार किया जा सकता है और वह यह है कि यदि देशी राज्यों के कन्नड़ भाषी प्रदेश ब्रिटिश भारत को दे दिए जाएं, तो बदले में ब्रिटिश भारत का कुछ प्रदेश राज्यों को दे दिया जाए। अब मैं सोचता हूं कि भारत सरकार अधिनियम से शासित क्या कोई भी समुदाय राज्यों के अधिकार क्षेत्र में जाने को तैयार होगा, ताकि राज्य अपने अधिकार क्षेत्र के कन्नड़ बोलने वाले लोगों का स्थानांतरण करने को सहमत हो जाएं? मुझे कोई संभावना नजर नहीं आती, और इसलिए इस प्रस्ताव को लाने वाले माननीय सदस्यों से मेरा निवेदन है कि वे सोचें कि मेरे कथन में कोई सार है कि उनके आदर्शों की पूर्ति तभी हो सकती है, जब कन्नड़ बोलने वाले समस्त लोगों के लिए अलग स्वायत्त सरकार बना दी जाए। ब्रिटिश भारत में कुछ जिलों में रहने वाले कुछ कन्नड़ बोलने वाले लोगों को अलग करके उनके लिए एक स्वायत्तशासी प्रांत बना दिया जाए। अगर मैं यह कहूं कि जब हमें पहले से ही पता हो कि कोई कदम हमें हमारे लक्ष्य तक नहीं पहुंचाएगा, तो ऐसा कदम उठाने का फायदा ही क्या ?

इसलिए अब मैं दूसरे पहलू को लेता हूं। यदि सभी कन्नड़-भाषी लोगों को एक स्वायत्तशासी प्रांत के अंतर्गत एकत्र करना संभव नहीं तो मेरे मस्तिष्क में प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या इस बहुभाषी प्रांत में कन्नड़ भाषियों के लिए कोई बाधा है, कोई कठिनाई है और क्या उन्हें इस प्रांत में सभी लाभ नहीं मिलते। मैंने व्यक्तिगत रूप से तो कहीं नहीं देखा कि इस बहुभाषी प्रशासन में किसी बाधा से पीड़ित होना पड़ता है।

महोदय! अब इस प्रश्न पर मैंने दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया है। सबसे पहले मैंने देखा है कि नई सरकार में पदों का विभाजन किस तरह हुआ है? क्या इसके कारण उन्हें कोई हानि उठानी पड़ी? क्या उन्हें उससे कम प्रतिनिधित्व मिला है, जिसके वे अधिकारी थे। जिस दूसरी बात की मैंने जांच की है, वह यह है कि क्या इस सदन में उनके सदस्यों की संख्या उससे कम है, जिसके कि वे अधिकारी हैं। महोदय! मैंने ये आंकड़े एकत्र किए हैं और ये आंकड़े एकत्र करते समय मैंने मिश्रित क्षेत्र छोड़ दिए हैं। बंबई नगर पूर्ण रूप से न तो मराठी भाषी है, न ही गुजराती भाषी, और न ही कन्नड़ भाषी है। मैं इन क्षेत्रों को एक तरफ छोड़ता हूं, मैं उन सीटों के संबंध में भी विचार नहीं कर रहा हूं, जो विशेष हितों के लिए रखी गई हैं, और अब इन आंकड़ों पर आता हूं। जहां तक जनसंख्या का सवाल है, मराठी बोलने वालों की संख्या 98,68,795 है। निस्संदेह मराठी बोलने वालों में मैं हिन्दू, मुसलमान और अनुसूचित जाति सबको शामिल करता हूं। मैं केवल भाषा का आधार ले रहा हूं -- गुजराती बोलने वालों की संख्या 34,22,139 और कन्नड़ बोलने वालों की 32,66,233 है। अब इस सदन में सीटों की स्थिति यह है; पूर्णतः जनसांख्यिक आधार पर मराठी बोलने वाले लोगों को 81 सीटें मिलीं, जिसको आदर्श या मानक के आधार पर निर्णय करने पर मैंने पाया कि गुजराती बोलने वालों को 27 सीटें मिलनी चाहिए थीं। वितरित की गई पुस्तक के अनुसार कन्नड़ बोलने वालों की संख्या का कुल जोड़ 12 प्रतिशत है। और उस आधार पर वे 21 सीटों के अधिकारी हैं। वास्तव में उनके पास कितनी सीटें हैं? गुजराती बोलने वाले लोगों को 31 सीटें मिलीं, जब कि वास्तव में वे सिर्फ 27 सीटों के अधिकारी थे। कन्नड़ बोलने वाले लोगों को 28 सीटें प्राप्त हुईं, जब कि वास्तव में वे सिर्फ 21 सीटों के अधिकारी थे।

अब पदाधिकारियों की बात करें। दोनों सदनों को मिलाकर 16 पदाधिकारी हैं। अब अपनी वास्तविक जनसंख्या के आधार पर सीटों की उपयुक्त संख्या के आधार पर, जिस पर प्रत्येक वर्ग का अधिकार था, मराठी बोलने वाले 9.6 के हकदार थे, गुजराती बोलने वाले लोग 3.3 और कन्नड़ बोलने वाले लोग 3.1 सीटों के हकदार थे। प्राप्त वास्तविक सीटों की संख्या के आधार पर पदाधिकारियों की नियुक्ति किस तरह हुई? कोटा चाहे जितना होता, मराठी बोलने वाले लोगों का कोटा 9.3, गुजराती बोलने वालों का 3.6 और कन्नड़ बोलने वालों का कोटा 3.1 था। वास्तव में देखा जाए तो पदाधिकारियों की नियुक्ति के आंकड़े क्या कहते हैं? 6 पद मराठी बोलने वाले लोगों को मिले, 6 गुजराती बोलने वाले लोगों

को मिले और 4 कन्नड़ बोलने वालों को।

महोदय! जैसा कि मैंने कहा है कि मुझे मराठी होने का कोई गर्व नहीं है। लेकिन मैं हूं तो। और जब मैं इस शब्द का प्रयोग करता हूं, तो सदन को सचेत कर देना चाहता हूं कि मैं इसका उपयोग शिकायत के तौर पर नहीं कर रहा हूं। मेरा यह उद्देश्य नहीं है, इसका उल्लेख मैं केवल तथ्य को उजागर करने के लिए कर रहा हूं। तथ्य यह है कि अल्पसंख्यक गुजराती और कन्नड़ भाषियों के साथ सीटों या पदों की दृष्टि से कोई अन्याय नहीं किया गया है। सदन में इस विषय पर विचार होने से पहले मैंने अपने माननीय मित्र श्री जोग को स्पष्ट बता दिया था कि यदि वह मुझे यह बताएं और विश्वास दिला दें कि कन्नड़ भाषियों के साथ किसी भी रूप में, चाहे उन्हें सदन में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व मिला हो या उन्हें मंत्रिमंडल में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला हो, तो मैं सदैव उनका समर्थन करूंगा। लेकिन, महोदय! ये आंकड़े इकट्ठा करने में मैंने पूरा अध्ययन किया है और पूरी सावधानी बरती है। महोदय! ये आधिकारिक आंकड़े हैं। अपनी ओर से बोलते हुए मैं कह सकता हूं कि मेरे विचार में कन्नड़ भाषियों को इस प्रेसिडेंसी में रहने से कोई कष्ट नहीं हुआ है।

महोदय! अब दूसरे तर्क पर आते हैं। जो प्रश्न मुझे महत्वपूर्ण लगता है और जिसके बारे में न सिर्फ मैं इस तरफ से, बल्कि मेरे वे मित्र भी हैं जो इस प्रस्ताव के लिए उत्तरदायी हैं, उन्हें इस प्रश्न पर विचार करना ही पड़ेगा। यह वित्तीय प्रश्न है। क्या इस कन्नड़ भाषी प्रांत के लिए उतना खर्च उठा पाना संभव हो सकेगा,जो आधुनिक युग में प्रत्येक सभ्य राज्य सरकार के लिए व्यय का मानक माना जाता है? मेरे ख्याल से यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। दूसरी तरफ बैठे मेरे मित्रों ने जिन्होंने प्रस्ताव का समर्थन किया था, सदन का ध्यान एक शिकायत की ओर दिलाया है कि पहले इस प्रांत की सरकार के द्वारा कर्नाटक की काफी उपेक्षा की गई है।

माननीय अध्यक्ष : मैं सिर्फ समय-सीमा की ओर माननीय सदस्य का ध्यान दिलाना चाहता हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! अगर आप मुझसे पूछते . . .

माननीय अध्यक्ष: मैं माननीय सदस्य को बहस के बीच में रोकना नहीं चाहता, लेकिन मैं उन्हें भाषण की समय-सीमा के बारे में याद दिलाना चाहूंगा, ताकि वह अपनी बात को संक्षेप में रख सकें।

डा. भीमराव अम्बेडकर : इस वित्तीय प्रश्न के संदर्भ में मैं जो कहना चाहता हूं, वह यह है कि वितरित की गई पुस्तक में कई आंकड़े दिए गए हैं। परिशिष्ट 'ख' में बताया गया है कि नए कन्नड़ भाषी प्रांत का खर्च करीब 2 करोड़ रुपये होगा और कुल राजस्व 2.57 लाख रुपये होगा। अब मुझे यह नहीं पता कि इस परिशिष्ट में दिए गए आंकड़े में किस हद तक प्रांत के प्रशासन को चलाने के लिए आवश्यक पूरक व्यय को शामिल किया गया है। मैं यहां केवल राजस्व और खर्च के मुद्दों के अंतर्गत मात्र रकम को देख रहा हूं। मुझे इसमें उस व्यय का कोई जिक्र दिखाई नहीं देता है,जो गवर्नर, उसके निजी स्टाफ, सचिवों, मंत्रियों और जन सूचना के निदेशक को वेतन देने के लिए उठाना आवश्यक होता है और जो

पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल, स्वास्थ्य अधिकारी -- उन समस्त वरिष्ठ अधिकारियों के लिए आवश्यक होगा,जिनकी प्रशासन के लिए जरूरत है।

श्री वी.एन.जोग: इन आंकड़ों को आप दूसरी पुस्तक में परिशिष्ट 'ख' में देख सकते हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर : हो सकता है। पर, महोदय! अगर एक क्षण के लिए यह मान लिया जाए कि यह बजट वैसा होगा, जैसा यहां बनाया गया है तो 5 या कुछ लाख रुपये की बचत होनी चाहिए। मैं यह प्रश्न पूछना चाहता हूं कि क्या यह राजस्व वह सब प्रदान करने के लिए पर्याप्त होगा, जो एक आधुनिक प्रशासन को प्रदान करना चाहिए? अगर मेरे माननीय मित्र जानना चाहें कि बंबई नगरपालिका का राजस्व कितना है,तो उन्हें पता चलेगा कि नए प्रांत का राजस्व बंबई नगरपालिका की तुलना में आधा भी नहीं है।बंबई नगरपालिका का राजस्व 4 करोड़ रुपये है और 4 करोड़ से भी बंबई नगरपालिका वह सब नहीं कर पा रही है, जो कि एक आधुनिक सरकार को करना चाहिए। मैं सचमुच पूछता हूं, और बड़ी गंभीरतापूर्वक पूछता हूं, कि क्या यह विचारणीय विषय नहीं है। मेरे विद्वान मित्र ने इस बहस के दौरान उड़ीसा के प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए भाषण का उल्लेख किया है, जिसमें उन्होंने कहा कि उन्हें खुशी है कि समस्त अंगों (विभागों) को एकत्र कर दिया गया है। मुझे नहीं पता कि मेरे माननीय मित्र तब क्या कहेंगे, अगर मैं उन्हें कहूं कि अंगों को एकत्रित करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि उन्हें भोजन उपलब्ध कराना। इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। महोदय! मैं अवश्य कहूंगा और जोर देकर कहता हूं कि मामूली स्थानीय निकायों के बराबर राजस्व के साथ इस देश में लोगों का छोटे-छोटे निकायों में बंटा होना बहुत ही हृदयविदारक बात है। हो सकता है, प्रांत का पृथक्करण कुछ लोगों की महत्वकांक्षा को संतुष्टि दे, जो प्रांत के मुखिया की तरह गिने जाना चाहते हैं। लेकिन उस बाकी जनता का क्या होगा, जिसे भोजन की आवश्यकता है, जिसे कपड़ों की आवश्यकता है, जिसे मकानों की आवश्यकता है? हममें से कोई भी इस तरह की बात सहन नहीं कर सकता है। मैं जोर देकर यह बात कह रहा हूं। महोदय! आखिरकार ये जिले क्या हैं? इनमें से दो जिले तो अकाल-पीड़ित हैं! पूरा बीजापुर अकाल-पीड़ित जिला है। मुझे बताया गया है कि पूरा बेल्लारी भी अकाल-पीड़ित जिला है। अकाल-पीड़ित क्षेत्रों से कितना राजस्व प्राप्त करने की उम्मीद करते हैं? क्या मात्र बंबई प्रेसिडेंसी से पृथक करने से वह दुधारु गाय बन जाएगा?

मैं एक और प्रश्न का उल्लेख करना चाहता हूं, और वह यह है: अल्पसंख्यक वर्ग का होने के कारण मैं अल्पसंख्यकों के दृष्टिकोण से इन चीजों को देखता हूं। मुझे बहुत खुशी है कि जिन सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है, उन्होंने हमें यह आश्वासन दिया है कि मुसलमानों व हरिजनों के हितों की रक्षा की जाएगी। पर मैं यह कहना चाहता हूं कि इन प्रांतीय क्षेत्रों के विघटन के साथ अल्पसंख्यकों का विघटन भी हो जाएगा। मैं इस

सच्चाई को नहीं भूल सकता कि कर्नाटक में हमारे पास केवल दो सीटें हैं। मुझे विश्वास है कि कर्नाटक से आए हुए अनुसूचित जाति के सदस्य अवश्य यह महसूस करेंगे कि उनकी शक्ति वास्तव में इस बात में निहित है कि प्रेसिडेंसी के अन्य क्षेत्रों से उनका ध्यान रखने वाले 13 सदस्य हैं। उनका क्या होगा? मुझे विश्वास है, उदाहरणतया, मुसलमान समुदाय को कर्नाटक से करीब आठ सीटें प्राप्त हुई हैं।

माननीय अली मोहम्मद खान देहलवी: केवल चार ।

डा. भीमराव अम्बेडकर : बिलकुल ठीक। चूंकि मेरे पास समय कम है, इसलिए मैं बहस नहीं करूंगा। लेकिन हम इस तरह के विघटन की अनुमति नहीं देंगे। बहुसंख्यक समुदाय यह कह सकता है कि वे सहृदय और दयालु रहेंगे। हम उनकी सहृदयता व दयालुता पर निर्भर नहीं रह सकते। हमें अधिकार चाहिए और अधिकार सहृदयता के रूप में नहीं दिया जा सकता। ऐसा समुदाय जो सिर्फ जनसंख्या के आधार पर बनता है, वह केवल सूक्ष्म अल्पसंख्यक है। अगर मान लें कि वे अधि-प्रतिनिधित्व (वेटेज) देने को भी तैयार हैं तो ऐसी जनसंख्या को वे क्या अधि-प्रतिनिधित्व देंगे, जो कुछ लाख ही है? यह उन मुद्दों में से एक है, जिसके आधार पर मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं। मैं इस विघटन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं। हमारी शक्ति बहुभाषी प्रशासन में निहित है। मैं कहना नहीं चाहता, पर मुझे भय है कि अगर कर्नाटक को पृथक प्रांत बना दिया जाता है, तो यह और लोगों की अपेक्षा लिंगायतों का ही प्रांत बन जाएगा। मैं मामले में कोई अस्पष्टता नहीं चाहता, पर अगर, उदाहरणतया, पृथक्करण होता है तो उससे कन्नड़वासियों के विरुद्ध मराठे इकट्ठा हो जाएंगे। हम ऐसी बात नहीं चाहते - और साझा मोर्चेबंदी का जो हमें आज लाभ प्राप्त है, वह नहीं मिलेगा।

एक और पहलू की ओर मैं सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं और उसके बाद अपना वक्तव्य समाप्त करना चाहूंगा। मैं जानता हूं कि ऐसे लोग हैं जो संभवतया मुझसे सहमत न हों। लेकिन मेरी यह धारणा है कि अंग्रेजों ने चाहे अतीत में जो कुछ भी किया हो, जो कुछ भी वह करने में असमर्थ रहे हो, ऐसी कई चीजें हैं जिन्हें करने में वे असमर्थ रहे हैं, जिनको शायद उनके स्वार्थ ने करने से रोका हो, लेकिन उन्होंने दो चीजें की हैं और उनको स्वीकार करने में मैं काफी उदार हूं तथा इस देश में उनके जाने के बाद भी उनकी यह दो बातें स्मारक के रूप में याद की जाएंगी। एक चीज जो उन्होंने हमारे लिए की है, वह है विधान संहिता। आप कश्मीर से लेकर दक्षिण भारत तक कहीं चले जाएं, तो पाएंगे कि कत्ल की सजा एक ही है, चाहे आप कश्मीर में करें या पंजाब या उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत में, या मद्रास में राजा मुंदरी में करें। आपको पता है कि संपत्ति के हस्तांतरण का अर्थ क्या होता है, गवाही का पूरे देश में क्या महत्व है। महोदय! मैं कहता हूं कि पहले हमारे यहां यह बात नहीं थी। अन्य चीज जो अंग्रेजों ने की है, वह यह है कि उन्होंने एक केन्द्रीय

सरकार दी है। ऐसी चीज पहले हमारे यहां नहीं थी। केन्द्रीय सरकार होने की महत्ता के इस तथ्य के बारे में शायद हमने सोचा भी नहीं था। पर मुझे लगता है कि यह बहुत ही निर्णायक तथ्य है। अगर आज हम एक सर्वमान्य राष्ट्र, राष्ट्रीयता की भावना, एकता की भावना का निर्माण करने की राह पर चल रहे हैं, तो वह इस सच्चाई के कारण कि हम सभी के लिए एक सरकार है। इसका कारण यह है कि हम महसूस करते हैं कि हम एक ही सरकार के नागरिक हैं।

महोदय, मैं इस सदन के सदस्यों से प्रार्थना करूंगा कि वे ऐसा कुछ न करें जिससे इन दो लाभों को ठेस पहुंचे, जिन्हें हमने हासिल किया है। निजी तौर पर मैं खुल्लमखुल्ला कहना चाहता हूं कि मैं नहीं मानता कि इस देश में किसी विशेष संस्कृति के लिए कोई जगह है, चाहे वह हिन्दू संस्कृति हो, या मुस्लिम संस्कृति, या कन्नड़ संस्कृति, या गुजराती संस्कृति। ये ऐसी चीजें हैं जिन्हें हम नकार नहीं सकते हैं, पर उनको वरदान नहीं मानना चाहिए, बल्कि अभिशाप की तरह मानना चाहिए, जो हमारी निष्ठा को डिगाती हैं और हमें अपने लक्ष्य से दूर ले जाती हैं। यह लक्ष्य है, एक ऐसी भावना को विकसित करना कि हम सब भारतीय हैं। मुझे अच्छा नहीं लगता, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, कि हम हिन्दू या मुसलमान पहले हैं और भारतीय बाद में हैं। मैं इस बात से सतुष्ट नहीं हूं। मैं नहीं चाहता हूं कि भारतीय के रूप में हमारी निष्ठा किसी भी तरह की किसी प्रतियोगी निष्ठा से प्रभावित हो, चाहे वह हमारा धर्म हो, हमारी संस्कृति हो या हमारी भाषा हो। मैं चाहता हूं कि समस्त लोग पहले भारतीय हों, और अंततः भारतीय हों तथा भारतीय के सिवाय और कुछ भी नहीं हों। इसलिए मैं कहता हूं कि यह ऐसा प्रस्ताव है जो प्रत्यक्ष रूप से इस आदर्श का विरोधी है। महोदय। यह एक ऐसा आदर्श है, जिसको हमें बहुत उत्साहपूर्वक संजोकर रखना चाहिए। मैं अच्छी तरह से समझ सकता हूं कि अमरीका, जर्मनी और यूरोप जैसे देशों में, जहां एकता की भावना दृढ़ है, वहां किसी को यह अहसास कराने की आवश्यकता नहीं है कि वह जर्मनवासी है, ताकि वह अलगाववादी चरित्र को सहन कर ले। परंतु जहां तक हम भारतीयों का संबंध है, यह भावना अभी तक विकसित नहीं हुई, यह धीरे-धीरे विकसित हो रही है। संस्कृति की भावना, राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ अन्य निष्ठाओं को बढ़ने देना सबसे बड़ा अपराध है - जो हम कर सकते हैं। मैं इसमें शामिल नहीं होऊंगा और मैं पूरी शक्ति से, दृढ़ता से, इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं (तालियां)।

21

विधान सभा प्रक्रिया *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : महोदय! मैं इस संशोधन के संदर्भ में आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। सर्वप्रथम, भारत सरकार अधिनियम की धारा 73, उप-खंड (2) की ओर मेरा पहला निवेदन यह है कि यह नियम, धारा 73 उप-खंड (2) के संबंध में, इस सदन के अधिकार क्षेत्र के बाहर होगा। धारा 73 के अनुसारः

1. इस अधिनियम के इस अंश के अनुसार,जब तक कोई विशेष उपबंध न हो, जिस प्रांत में विधान परिषद है,वहां कोई भी विधेयक किसी में सदन में रखा जा सकता है।
2. प्रांत के विधान-मंडल में विचाराधीन विधेयक सदन या सदनों के सत्रावसान के कारण रद्द नहीं होना चाहिए।

मैं इसलिए धारा 73 के उप-खंड (2) में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखकर निवेदन करता हूं कि इस सदन के लिए यह नियम बनाना उचित नहीं होगा कि दो सत्रों के बाद या एक वर्ष खत्म होने के बाद कोई विधेयक रद्द हो जाएगा, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री गुप्ते द्वारा संशोधन का सुझाव दिया गया है। इस नियम के संदर्भ में यह मेरा पहला निवेदन है।

इस नियम के संदर्भ में मेरा दूसरा निवेदन यह है कि यह नियम इस सदन द्वारा पहले से पारित नियम 19 के अनुकूल नहीं है। नियम 19 के अनुसारः

सत्रावसान होने पर, सिवाय प्रश्नों, कानूनी प्रस्तावों, नियमों के संशोधन प्रस्तावों, उन प्रस्तावों के जिन पर नियम 34 के अनुसार अगले सत्र तक विचार करना स्थगित कर दिया हो और उन विधेयकों को छोड़कर जिन्हें प्रस्तावित किया गया हो, समस्त विचाराधीन सूचनाएं रद्द होंगी।

इसलिए विधेयक संबंधी प्रस्तावों को नियम 19 ने बचा लिया है। उन पर नियम 19 लागू नहीं होता और मेरा निवेदन यह है कि यह तथ्य ध्यान में रखकर कि सदन नियम 19

**बॉम्बे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 4, पृ.1062-65, 10 सितंबर 1938

पहले ही पारित कर चुका है, वह अब न तो नियम 103 को, न ही प्रस्तावित संशोधन को पास करने के लिए कार्यवाही कर सकता है।

मेरा तीसरा निवेदन यह है कि अगर यह मान लिया जाए कि इस सदन के पास नियम को और प्रस्तावित संशोधन को पारित करने का अधिकार है, इस तथ्य के बावजूद कि भारत सरकार अधिनियम की धारा 73 के उप-खंड (2) में स्पष्ट प्रावधान है और इस तथ्य के बावजूद कि यह सदन पहले ही नियम 19 को पारित कर चुका है, मुझे यह लगता है कि यह नियम वास्तव में अनावश्यक है। इस नियय के अनुसार 'अगर कोई प्रस्ताव नहीं किया', मुझे यहां कहीं भी शब्द 'प्रस्ताव' की परिभाषा नहीं मिलती है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जब तक सचिव द्वारा किसी विधेयक की मांग न की जाए, तब तक कोई भी व्यक्ति अन्य प्रस्ताव रखने की स्थिति में नहीं होता है। इसका अर्थ यह है कि विधेयक अवश्य ही कार्य-सूची में होगा। दूसरे, वह आदेश-पत्र पर अवश्य होगा; और तीसरे, सचिव के द्वारा मांग की गई होगी। मेरा निवेदन यह है कि जब तक सचिव के द्वारा विधेयक की मांग न की जाए, विधेयक के प्रभारी किसी भी सदस्य को इस प्रस्ताव द्वारा दंडित न किया जाए, जैसा कि उसे अन्यथा किया जाएगा, मेरा निवेदन है कि यह कोई व्यतिक्रम नहीं होगा।

माननीय अध्यक्ष : यह कमोबेश नियम के गुणावगुणों पर बहस होगी।

डा. भीमराव अम्बेडकर : यही मैंने कहा है। यह तीसरा विचार था। पहले दो थे. . .

माननीय अध्यक्ष : मेरे ख्याल से पहले मैं इन दोनों को निबटा दूं और फिर माननीय सदस्य गुण-दोष के आधार पर दलील के रूप में कठिनाइयों के संदर्भ में अपनी बात प्रस्तुत कर सकते हैं।

दो मुद्दे उठाए गए हैं, उनमें से पहला यह है कि भारत सरकार अधिनियम की धारा 73 के प्रावधानों को ध्यान में रखकर इस तरह के नियमों को बनाने के लिए यह सदन सक्षम नहीं है। मैंने इस पहलू पर विचार किया है, क्योंकि पिछली बार विचार के लिए जब नियम 103 लिया गया था, तब माननीय प्रधानमंत्री द्वारा यह आपत्ति उठाई गई थी। धारा 73 के उप-खंड (2) में कहा गया है कि विधान-मंडल में विचाराधीन विधेयक सदन या सदनों के सत्रावसान से रद्द नहीं होना चाहिए। निस्संदेह यह कहा गया है कि सत्रावसान के कारण इसे रद्द नहीं होना चाहिए, लेकिन इसलिए इसका मतलब यह नहीं है कि सत्रावसान के सिवाय अन्य कारणों से भी विधेयक कभी रद्द नहीं हो सकता। इस नियम में यह व्यवस्था की गई है कि सत्रावसान हो या न हो, एक निश्चित अवधि के बाद एक विधेयक रद्द हो जाता है। अगर वाक्य रचना में ' दो पूर्ण सत्रों' का जिक्र है तो संदेह के लिए शायद गुंजाइश रह सकती थी। लेकिन जब एक निश्चित समय प्रदान करना है, जैसा कि अब प्रस्तावित किया गया है, वस्तुत: कोई विधेयक इस नियम के अंतर्गत सत्र के दौरान भी एक वर्ष बाद रद्द किया जा सकता है। इसलिए प्रस्तावित नियम के अंतर्गत सत्रावसान विधेयक के रद्द होने का कारण नहीं बनता।

मैं गुणावगुणों की बात नहीं कर रहा हूं। मैं केवल संवैधानिक पहलुओं की बात कर रहा हूं। प्रस्तावित नियम की शर्तें यह हैं कि हो सकता है कि विधेयक को कार्यसूची में रखा गया हो और सदन का सत्र चल भी रहा हो, फिर भी जिस क्षण एक वर्ष पूर्ण हो जाएगा, वह सत्र के स्थगित हुए बिना अपने आप से रद्द हो जाएगा। इसलिए मेरे ख्याल से भारत सरकार अधिनियम की धारा 73, उप-खंड (2) संशोधन द्वारा प्रस्तावित नियम को बनाने में कोई बाधा नहीं है।

फिर दूसरी आपत्ति जो उठाई गई है, वह है . . .

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! क्या मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर दिला सकता हूं? मेरा निवेदन यह है कि अगर 'केवल' शब्द वहां है,तो जिस वाक्यांश का आपने सुझाव दिया है, वह उचित होगा।

महोदय! मैं प्रस्तावित संशोधन के संदर्भ में यह निवेदन करना चाहता हूं कि मुझे पता नहीं कि इस नियम 103 को बनाने की क्या आवश्यकता है। इसका अगर कोई विशेष कारण है,तो इसके बारे में मैंने नहीं सुना। यदि कोई विधेयक बिना विचार-विमर्श के भी कार्यवाही में रहता है,तो उससे क्या हानि होगी? अगर यह दर्शाया जाए कि सदन की पुस्तकों में बिना विचार-विमर्श किए विधेयक के रहने से कोई हानि या कोई असुविधा होती है तो मैं समझ सकता हूं कि नियम 103 में निहित प्रावधानों की आवश्यकता हो सकती है, पर मैंने ऐसा कुछ नहीं सुना कि क्या हानि या असुविधा हो सकती है और मेरा दूसरा निवेदन यह है कि जैसा कि इस नियम की संरचना की गई है, और संशोधन भी, सदस्य से विधेयक को बरकरार रखने का अधिकार छीन लेता है, चाहे उसकी कोई त्रुटि न हो। शब्द हैं— 'अगर कोई प्रस्ताव नहीं किया गया।' पर मेरा निवेदन यह है कि चूंकि विधेयक कार्यसूची में नहीं है या कि अन्य कारणों से इसे लिया नहीं गया, इसलिए सदस्य प्रस्ताव रख पाने की स्थिति में न हो, तो मेरे ख्याल से यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण बात है, अगर किसी सदस्य को किसी विधान को प्रस्तावित करने से सिर्फ इसलिए वंचित कर दिया जाए, क्योंकि वह अन्य जरूरी कामों व अन्य कारणों से इस विधेयक के संदर्भ में प्रस्ताव नहीं रख सका। इसलिए जब तक कि और वैसे संशोधन न जोड़े जाएं जैसे ' सचिव द्वारा मांग किए जाने पर भी', मेरे ख्याल से इस नियम में ढेर सारी खामियां हैं, और मैं इसलिए जिस रूप में संशोधन को प्रस्तावित किया गया है, उसका विरोध करता हूं।

माननीय श्री बी. जी. खेर : महोदय! परिस्थिति काफी जटिल है, क्योंकि जब नियम प्रस्तावित किया गया था या जब संशोधन पर समिति द्वारा विचार किया गया था, जिसमें वह भी शामिल है,जिसे वे अब अपनाना चाहते हैं। उस समय माननीय सदस्य यहां नहीं थे। इसलिए इससे पहले कि मैं इस आपत्ति का उत्तर दूं, यह जानना चाहता हूं कि जिन लोगों ने मेरे साथ इस नियम पर विचार-विमर्श किया है, वह क्या कहना चाहते हैं, क्योंकि पिछली ही रात को हम सबने इस संशोधन पर सहमति दी थी। माननीय सदस्य श्री अली बहादुर खान वहां थे और उन्होंने सदन के समक्ष एक वैसा ही संशोधन रखा था कि ये शब्द जोड़े जाएं यद्यपि 'ऐसा करने के लिए मांग की गई थी।' यह माननीय सदस्य अली बहादुर खान का संशोधन था और हम विभिन्न प्रस्तावों के गुण-दोष की चर्चा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अंततः यही बेहतर समाधान है। माननीय सदस्य ने जो संवैधानिक आपत्तियां उठाई हैं, वे भी हमारे दिमाग में थीं। हमारा दुर्भाग्य यह है कि माननीय सदस्य कभी-कभी सदन में आते हैं और परिस्थिति को न जानते हुए वह पहले क्या घटा इसकी कड़ी जोड़ने की स्थिति में नहीं होते हैं। इसलिए मैं उनके द्वारा प्रस्तावित संशोधन में जोड़ने के ढंग पर दिए सुझाव के गुणावदोष पर कुछ नहीं कहना चाहता हूं। मैं उन्हें केवल सिद्धांत बताता हूं, जिसने वर्तमान नियमों में इस नियम को सम्मिलित करना आवश्यक बना दिया है और यह भी बताऊंगा कि पुराने नियमों में भी ऐसे प्रावधान थे। उसके अनुसार :

दो सत्रों के दौरान अगर प्रभारी सदस्य उसके संदर्भ में कोई प्रस्ताव नहीं रखता तो विधेयक रद्द हो जाएगा, जब तक कि विधान सभा उस सदस्य द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव पर अगले सत्र में विधेयक को जारी रखने का विशेष आदेश नहीं देती।

डा. भीमराव अम्बेडकर : क्या माननीय प्रधानमंत्री को स्मरण है कि वह उस समय संगत था, क्योंकि जैसा कि मैंने उल्लेख किया है कि पुराने भारत सरकार अधिनियम में ऐसा प्रावधान नहीं था।

22

औद्योगिक विवाद विधेयक *

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : अध्यक्ष महोदय।मैं इस विधेयक के प्रथम वाचन का विरोध करता हूं। मैं जिन विवशताओं के अधीन इसका विरोध करने का प्रयत्न कर रहा हूं, उनके प्रति मैं पूरी तरह सचेत हूं। मुझे खेद है कि जिन्होंने इस विधेयक पर मुझसे पहले विचार व्यक्त किए थे, उनके भाषण के समय मैं यहां उपस्थित नहीं था। यह एक ऐसा दुर्योग है, जिससे मैं दुर्भाग्यवश बच नहीं पाया। मैं किसी अन्य कार्यवश यहां न आ सका, और मैं अपने पूर्ववर्ती वक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को सुनने का लाभ न उठा सका। अपनी इस विवशता के बावजूद मैं कुछ कहने का प्रयत्न कर रहा हूं। मुझसे पहले बहुत से वक्ता बोल चुके हैं और बहस इतने लंबे समय तक चली है कि मैं हैरान हूं कि चर्चा के इन अंतिम क्षणों में क्या मेरे लिए कुछ कहने को शेष बचा भी है, लेकिन फिर भी मैं साहस कर रहा हूं, अगर मैं ऐसा कहूं कि इस तरह के 84 खंडों वाले इतने विस्तृत एवं वृहद विधेयक के संबंध में ऐसा कुछ हो सकता है, जिस पर जब कोई सदस्य चर्चा के अंतिम चरण में बोलने के लिए खड़ा हो, तो भी उसे कहने के लिए कुछ मिल जाए। मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र श्री जमनादास मेहता ने विधेयक का विवरण बिल्कुल सही ढंग से प्रस्तुत किया है कि इस विधेयक का स्वरूप इतना व्यापक है कि यहां तक कि अगर शेषशायी को इसे लिखना पड़े तथा स्याही के रूप में अगर सागर और लिखने के लिए कागज के रूप में धरती भी उपलब्ध हो, तो भी शायद इस पूरे विधेयक को लिखने के लिए उन्हें ये सब पर्याप्त न लगें। इन सब सीमाओं को जानते हुए मैं संक्षेप में अपनी बात कहता हूं।

इस विधेयक को समझने के लिए मुझे लगता है कि इसके प्रावधानों को पूर्व अधिनियम के परिप्रेक्ष्य में पढ़ना आवश्यक है। मैं विश्वास करता हूं और सोचता हूं कि यह आसानी से मान लिया जाएगा कि इस विधेयक के प्रावधानों की महत्ता तब तक स्पष्ट नहीं होगी, जब तक कि हम पूर्व अधिनियम के प्रावधानों के साथ इसके प्रावधानों की तुलना नहीं करते।

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 4, पृ. 1330-59, 15 सितंबर 1938

विधेयक का आखिरी खंड यह पूर्णतया स्पष्ट करता है कि यह विधेयक 1934 के बंबई श्रम विवाद समझौता अधिनियम का स्थान लेने वाला है और इसलिए मुख्यत: विचारणीय प्रश्न यह है कि प्रधानमंत्री ने,जो इस विधेयक के प्रभारी हैं, इस विधेयक को प्रस्तुत करने से पूर्व क्या परिवर्तन के लिए कोई आधार तैयार किया है, जिसको 1934 का अधिनियम समझौते के लिए व्यवस्था प्रदान करने के आशय से बनाया गया था। 1934 के अधिनियम का सिद्धांत यह था कि समझौता स्वेच्छापूर्वक किया जाए। अब विधेयक में जो संशोधन प्रस्तुत किया गया है, वह यह है कि समझौता अनिवार्य होगा और मैं निवेदन करता हूं कि इस सदन के समक्ष जो विचारणीय प्रश्न है, वह यह है कि 1934 के अधिनियम के स्वैच्छिक प्रावधान को बदलने और उसे अनिवार्य स्वरूप देने के लिए क्या कोई आधार प्रस्तुत किया गया है।

अब वर्ष 1934 और तत्कालीन परिस्थितियों को एक ऐसे मानदंड के रूप में लेते हुए जिसके द्वारा अनिवार्यता प्रस्तावित करने की आवश्यकता को आंका जा सके, मैं उन कतिपय तथ्यों का उल्लेख करना चाहता हूं, जो प्रासंगिक तथा महत्वपूर्ण हैं। सदन का ध्यान जिस पहले तथ्य की ओर मैं दिलाना चाहता हूं, वह यह है कि 1934 में माननीय राबर्ट बेल द्वारा प्रस्तावित मूल विधेयक,जो बाद में अधिनियम बना, उसमें अनिवार्य समझौते के प्रावधान हैं। पर विधेयक को पुन:स्थापित करते समय इसकी आरंभिक अवस्था में इस विधेयक के प्रस्तावक समझते थे कि समझौते के मामले में 1934 में विद्यमान स्थितियों में अनिर्वायता की आवश्यकता नहीं थी और इसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी इच्छा से आरंभ में ही विधेयक के प्रथम वाचन में अपने आरंभिक वक्तव्य में यह प्रस्तावना पेश की थी कि वह 'सकेगा' शब्द को 'होगा' शब्द में प्रतिस्थापित करने के लिए एक संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हैं। मेरा निवेदन यह है कि यह इस तथ्य का प्रमाण है कि 1934 में समझौते के मामले में माननीय राबर्ट बेल को अनिवार्यता प्रस्तावित करने की कोई आवश्यकता महसूस नहीं हुई। जब विधेयक पुन: स्थापित किया गया था तो मेरे माननीय मित्र श्री सकलातवाला, जो बंबई के मिल मालिकों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, सदन में उपस्थित थे। उन्होंने भी 1934 में समझौते के मामले में अनिवार्यता की मांग नहीं की थी। दूसरी तरफ, विधेयक के प्रथम वाचन के दौरान उन्होंने जो वक्तव्य दिया था, उसमें वह विधेयक के समर्थन के प्रति निरुत्साहित थे क्योंकि उन्होंने यहां तक कहा कि विधेयक सामान्यत: अनावश्यक है। यह दृष्टिकोण उन्होंने अपनाया था और समझौते के संदर्भ में उन्होंने किसी भी प्रकार की अनिवार्यता के लिए निश्चित रूप से दबाव नहीं डाला या मांग नहीं की थी। वर्ष 1934 और वर्ष 1938 के बीच ऐसा क्या घटा था, जिससे इस सदन को समझौता वार्ता को वैकल्पिक न करके उसे अनिवार्यता में बदलना पड़ा।

अब, अनिवार्यता को उचित ठहराने के लिए प्रधानमंत्री देश में हड़तालों के कुछ निश्चित आंकड़े हमें देते हुए शुरू में यह जताने का प्रयास कर रहे हैं कि देश में बार-बार हड़तालें

होती रही हैं और वे इतनी गंभीर रहीं कि अब स्वैच्छिकता के प्रावधान को अनिवार्य प्रावधान में बदलने की आवश्यकता उठ खड़ी हुई है। अब मैंने हड़तालों के आंकड़ों की जांच कर ली है कि कितने मजदूर थे और कितने कार्य दिवसों का नुकसान हुआ। मुझे यह कहने में कोई हिचक महसूस नहीं होती कि हड़तालों से संबंधित आंकड़ों के आधार पर प्रधानमंत्री महोदय जो कहना चाहते हैं, उससे मैं सतुंष्ट नहीं हुआ हूं। बंबई नगर में हुई हड़तालों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए, मेरे पास यहां श्रम कार्यालय द्वारा प्रकाशित *लेबर गजट* का मार्च अंक है। इस अंक के पृष्ठ 541 पर बंबई प्रेसिडेंसी में हुई हड़तालों के आंकड़े हैं। 1921 से 1937 तक, यह गजट स्तंभ एक में श्रम विवादों की संख्या देता है। दूसरे में सम्मिलित मजदूरों की संख्या देता है और तीसरे में कार्य दिवसों की हानि बताता है। इन आंकड़ों पर नजर दौड़ाते हुए मुझे विश्वास है कि कोई भी अपने आप यह देख लेगा कि साल दर साल औद्योगिक विवाद बढ़ने के बजाय घट रहे हैं। उदाहरणतया, वर्ष 1921 में बंबई में औद्योगिक विवाद 103 थे, 1922 में 143, 1923 में 109, और 1924 तथा 1927 के बीच वे 50 तक आ गए। आंकड़े पूरे 50 प्रतिशत तक घट गए और फिर 1928 में ये आंकड़े 144 तक पहुंच गए। 1929 से लेकर 1937 तक, यह 88 और 53 के बीच चलते रहे। मैं यह स्वीकार करता हूं कि ये जो हड़तालें हुईं, वे उद्योगों में हुई अव्यवस्था व गड़बड़ी को मापने का आधार नहीं हैं। इस सूची में दिए गए आंकड़ों से मुझे यह पता चलता है कि ऐसे कई मामले हैं, जिनमें यद्यपि हड़तालों की संख्या कम है, लेकिन उनमें शामिल लोगों की संख्या अपेक्षाकृत काफी ज्यादा है और नष्ट हुए कार्य दिवसों की संख्या भी काफी है। लेकिन नष्ट हुए कार्य दिवसों की संख्या को आधार मानते हुए, जो कि एक मात्र आधार है, मुझे लगता है कि 1928 का वर्ष सबसे बुरा था, जिसके परिणामस्वरूप 24 करोड़ कार्य दिवसों की हानि हुई और तीसरा वर्ष था 1929 का जब 8 करोड़ कार्य दिवसों की हानि हुई। लेकिन वर्ष 1929 से आगे की स्थिति से पता चलता है कि तब कई कामगार हड़तालों में शामिल हुए और कई कार्य दिवसों की हानि हुई तथा वर्ष 1934 के बाद कई हड़तालें हुईं। इसमें किसी ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने की बात नहीं है, जो सरकार के किसी भी सदस्य को चिंता में डाल दे। एक मात्र वर्ष 1937 ही खराब रहा है, जब 897 कार्य दिवसों की हानि हुई। पिछले वर्ष की तुलना में यह कुछ नहीं था। मुझे बताया गया है कि ऐसा अहमदाबाद शहर में एक आम हड़ताल होने के कारण हुआ, जो 15 दिनों तक चली। इसलिए मेरा पहला निवेदन यह है कि सरकार अथवा माननीय प्रधानमंत्री द्वारा ऐसा कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है जो किसी भी तरह, सदन के इस पक्ष को अथवा मुझे 1934 के अधिनियम के प्रावधानों में इस मूलभूत परिवर्तन के लिए राजी कर सके। समझौता-वार्ता की अनिवार्यता के विषय में इतना कहना ही काफी है।

जहां तक विधेयक के अन्य उपबंधों का संबंध है, मैं हड़तालों से संबंधित उस महत्वपूर्ण

उपबंध का उल्लेख करना चाहता हूं,जिसका प्रबल विरोध इस सदन के साथ-साथ वह दल भी करता है,जिसका मैं सदस्य हूं। अब यह विधेयक किन्हीं परिस्थितियों में हड़तालों को अवैध करार देता है। जिन प्रावधानों में हड़तालों को अवैध घोषित किया गया है, वे विधेयक के खंड 62 में सम्मिलित हैं, जो उसका सबसे महत्वपूर्ण खंड है। उसके अनुसार:

62. (1) प्रारंभ हुई अथवा जारी रहने वाली ऐसी कोई भी हड़ताल अवैध होगी--

(क) यदि वह अनूसूची-I मैं उल्लिखित किसी औद्योगिक मामले से संबंधित है अथवा जो ऐसे मामले से संबंधित स्थायी आदेश दिए जाने से पहले और धारा 26 के अंतर्गत श्रम आयुक्त जो प्रस्तुत किए जाने तथा उसके द्वारा अथवा औद्योगिक अदालत द्वारा, जैसा भी मामला हो, निपटाए जाने से पूर्व अथवा धारा 26 के अंतर्गत ऐसे स्थायी आदेशों के प्रवृत होने से एक वर्ष की समाप्ति से पूर्व की जाती है,

(ख) धारा 28 के प्रावधानों के अनुसार सूचना दिए बिना की जाती है,

(ग) केवल इसलिए की जाती है कि नियोक्ता द्वारा स्थायी आदेश के उपबंधों का पालन नहीं किया गया अथवा यदि उसने इसमें कोई अवैध परिवर्तन कर दिया है,

(घ) ऐसे मामले में जहां धारा 28 के उपबंधों के अनुसार परिवर्तन की सूचना दे दी गई हो और जहां ऐसे परिवर्तन के मामले में, पंजीयक द्वारा धारा 34 में उल्लिखित प्रकरण के विवरण की प्राप्ति से पूर्व कोई समझौता न किया गया हो,

(च) ऐसे मामले में, जहां ऐसी कार्यवाहियों के समाप्त होने से पहले ही हड़ताल से संबंधित औद्योगिक विवादों के संबंध में समझौते की कार्यवाही आरंभ हो गई हो,

(छ) पंजीकृत समझौते, निपटान या निर्णय की शर्तों का उल्लंघन करने की दशा में,

(2) ऐसे मामलों में, जहां किसी भी औद्योगिक विवाद के संदर्भ में समझौते की कार्यवाहियां समाप्त हो गई हों, वहां ऐसी कार्यवाहियों की समाप्ति के दो महीने बाद ऐसे विवादों से संबंधित हड़ताल शुरू करने की स्थिति में अवैध मानी जाएगी।

फिर, इस धारा को प्रभावशाली बनाने के लिए इस विधेयक में, अवैध हड़तालों में हिस्सा लेने पर कुछ जुर्माना करने की व्यवस्था है। ये खंड 66 और 67 हैं। खंड 66 के अनुसार:

कोई भी कर्मचारी, जो हड़ताल पर हो या जो ऐसी हड़ताल में शामिल होता है,जिसे औद्योगिक अदालत ने अवैध घोषित कर दिया हो,तो उसे दोषी पाए जाने पर या तो छह महीने की जेल की सजा दी जा सकती है या जुर्माना हो सकता है या दोनों किए जा सकते हैं।

खंड 67 के अनुसार:

अगर कोई व्यक्ति अन्य लोगों को ऐसी हड़ताल या तालाबंदी में भाग लेने के लिए भड़काता है या किसी प्रकार की सहायता करता है, जिसे औद्योगिक अदालत द्वारा अवैध घोषित किया गया हो, चाहे ऐसी हड़ताल या तालाबंदी शुरू हुई या नहीं, दोषी पाए जाने पर या तो उसे छह महीने की जेल की सजा होगी या जुर्माना होगा या दोनों ही किए जा सकते हैं।

व्याख्या– इस धारा के उद्देश्यों के लिए ऐसे व्यक्ति को, जो किसी भी हड़ताल या तालाबंदी के लिए चंदा इकट्ठा करने में सहयोग देता है, या मांगता है, यह माना जाएगा कि वह ऐसी हड़ताल या तालाबंदी को प्रोत्साहन दे रहा है।

महोदय! अब यह कहा गया है कि ये खंड न्यायसंगत हैं क्योंकि अधिकार के रूप में हड़ताल करने जैसी कोई बात नहीं है, और इसलिए यह विधेयक जिसे मजदूर हड़ताल करने का अधिकार कहते हैं, उस पर जुर्माना लगाकर निश्चत रूप से किसी भी नैतिकता के नियम या किसी न्यायशास्त्र के नियम का उल्लंघन नहीं कर रहा है। महोदय! इस भाषण में ऐसे तर्क का खंडन करना और ऐसी स्थिति का परित्याग करना मेरा सबसे पहला मामला होगा। अब अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मैं बिल्कुल प्राथमिक प्रस्तावों से शुरू करूंगा। सर्वप्रथम मैं यह स्पष्ट कर दूं कि हम 'हड़ताल' शब्द से क्या समझते हैं। उसका क्या अर्थ है? मैं सोचता हूं कि 'हड़ताल' शब्द का अर्थ समझ लेना बेहतर होगा। सामान्य प्रचलित भाषा में हड़ताल, सेवा-अनुबंध के उल्लंघन के सिवाय और कुछ नहीं है। जब एक मजदूर हड़ताल करता है,तो इसका अर्थ यह है कि वह सेवा के अनुबंध का उल्लंघन कर रहा है। इसमें, इससे अधिक और कुछ नहीं है और इससे कम भी कुछ नहीं है। मैं अगला प्रश्न यह पूछना चाहता हूं कि इस सेवा अनुबंध के उल्लंघन पर कानून द्वारा क्या विचार किया जाता है? जैसा कि यह आज भी भारतीय संविधि संग्रह में विद्यमान है। क्या भारतीय कानून हड़ताल के अधिकार को मान्यता देता है या नहीं? और अगर वह देता है, तो किस रूप में और अगर वह दंड देता है, तो किस ढंग से देता है? महोदय! यहां मैं फिर प्राथमिक प्रस्ताव से शुरू करता हूं और वह प्राथमिक प्रस्ताव यह है कि कोई कृत्य अथवा अकर्मण्यता दीवानी त्रुटि का मामला हो सकता है या वह अपराध हो सकता है। मैं पहला प्रश्न यह पूछना चाहता हूं। मैं सचमुच इस मामले में विस्तृत रूप से विचार करना चाहता हूं क्योंकि मैं इस मामले में अपनी स्थिति के संबंध में कोई संदेह नहीं छोड़ना चाहता। पहला प्रश्न मैं यह पूछना चाहता हूं; क्या सेवा-अनुबंध का उल्लंघन दीवानी का मामला है? कानून इस प्रश्न का उत्तर देता है: हां, यह दीवानी त्रुटि है। दीवानी त्रुटि को सहने वाले प्रभावित व्यक्ति के लिए समाधान क्या है? यह इसके बाद अगला प्रश्न होगा। फिर इसका उत्तर यह है कि वर्तमान कानून पीड़ित व्यक्ति के लिए जिसका अनुबंध एक मजदूर द्वारा तोड़ा गया है, दो समाधान प्रदान करता

है और वे हैं – हरजाना तथा निश्चित सहायता। यद्यपि कानून ये दो समाधान प्रदान करता है, यानि हरजाना और निश्चित सहायता,लेकिन जहां कहीं भी दीवानी त्रुटि हो उसके लिए एक प्रावधान है,जो विशेषकर सेवा के अनुबंधों पर लागू होता है। जहां कहीं भी एक व्यक्ति नौकरी के अनुबंध को तोड़ता है,वहां प्रभावित व्यक्ति सिर्फ क्षतिपूर्ति का अधिकारी है, उसे इस स्थिति में कभी भी निश्चित सहायता प्राप्त नहीं हो सकती और अदालत कभी भी ऐसी सहायता नहीं देगी,जिससे वह किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए सेवा अनुबंध को पूरा करने के लिए बाध्य कर सके। प्रभावित व्यक्ति केवल क्षतिपूर्ति का अधिकारी है। महोदय, जहां तक सेवा के अनुबंध के उल्लंघन का संबंध दीवानी संबंधी त्रुटि से है, उसकी यही स्थिति है। इस दीवानी अकर्मण्यता के लिए मालिक हरजाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं पा सकता।

सेवा के अनुबंध के उल्लंघन को कानूनी अपराध के रूप में देखते हुए प्रश्न यह है कि क्या यह अपराध है? जहां तक सेवा के अनुबंध के उल्लंघन का सवाल है, भारतीय कानून में इस संबंध में क्या प्रावधान हैं? महोदय। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन को थोड़ी बहुत इस बात की जानकारी दे सकूं कि हमारे भारतीय कानून द्वारा इस मामले को कैसे समझा जाता है? सेवा के अनुबंध के उल्लंघन से संबंधित भारतीय कानून 1859 का अधिनियम 13 था और इसे कामगार अनुबंध अधिनियम का उल्लंघन कहा गया है। यह 1859 में सैनिक विद्रोह के तुरंत बाद या उसके दौरान पारित हुआ। मैं अभी इस सदन के समक्ष इस कानून को पारित करने के कारण प्रस्तुत करूंगा। फिर, भारतीय दंड संहिता,जो इस मामले से संबद्ध है, में भी प्रावधान हैं अर्थात उसमें सेवा के अनुबंध का उल्लंघन अपराध माना गया है और इससे संबंधित धाराएं हैं- 490, 491 और 492। 1859 के अधिनियम 13 के संदर्भ में यह अधिनियम सीमित रूप से लागू होता था। यह कारीगरों व शिल्पकारों पर उन मामलों में लागू होता था,जहां कारीगरों व शिल्पकारों ने अपने मालिकों से अग्रिम धन ले रखा था और बाद में काम करने से मना कर दिया था। परिस्थितियों की आवश्यकता के कारण यह आदेश दिया गया था। ब्रिटिश सरकार को विद्रोह का सामना करना पड़ा। विद्रोह के दौरान फौज ने अनेक कारीगरों व शिल्पकारों की नियुक्ति की,जिनको इस उम्मीद से अग्रिम धन दिया गया कि जिन कार्यों का उन्होंने बीड़ा उठाया है उनका वे निष्पादन करेंगे, परंतु डर अथवा अन्य परिस्थितियों के कारण वे कारीगर और शिल्पकार अपने गांवों में वापस चले गए। परिणामस्वरूप, वे उस कार्य को करने की स्थिति में नहीं थे,जिसका उन्होंने बीड़ा उठाया था,जब कि उन्हें अग्रिम धन मिला था। ऐसे मामलों को लेने के लिए ही 1859 का अधिनियम पारित किया गया। यह बात रिकार्ड में है कि यद्यपि यह अधिनियम पारित किया गया था और इसके अनुसार सेवा के अनुबंध के उल्लंघन को एक अपराध माना गया था,तथापि यह कदाचित ही लागू किया गया। यह वास्तव में कोई कानून नहीं था,जिसके अंतर्गत लोगों

को कष्ट उठाने पड़े थे। महोदय! इस अधिनियम का बाद का इतिहास भी बहुत रोचक है। यह अधिनियम 1859 से एक विधिवत संविधि की तरह कायम रहा, लेकिन जैसा कि मैंने कहा, इसे कभी कार्यान्वित नहीं किया गया। इसका संशोधन भारत सरकार के 1920 के अधिनियम 12 द्वारा किया गया। संशोधी अधिनियम ने इस अधिनियम में दो बड़े हितकारी सिद्धांत प्रस्तुत किए। इस अधिनियम में प्रस्तुत किया गया,एक हितकारी सिद्धांत यह था कि किसी मजिस्ट्रेट को नौकरी के अनुबंध का उल्लंघन करने वाले किसी शिल्पकार को दंडित करने से पहले अनुबंध की न्यायिकता की जांच करने का अधिकार होगा,ताकि इस तथ्य के बावजूद कि उस मजदूर ने मालिक से अग्रिम धन लिया था, मजिस्ट्रेट के इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर क्रि अनुबंध न्याय विरुद्ध है, उसे उस उद्दंड मजदूर को दंडित करने का अधिकार नहीं होगा। 1920 के अधिनियम द्वारा प्रस्तुत दूसरा हितकारी प्रावधान यह था कि मजिस्ट्रेट को उस मालिक को सजा देने का अधिकार मिला था,जो निरर्थक शिकायत लाया हो – यह प्रावधान मूल अधिनियम में नहीं था।

भारतीय दंड संहिता की धाराओं के संबंध में जिन तीन धाराओं का मैंने उल्लेख किया है, उनका रोचक इतिहास है। धारा 490 किसी समुद्री यात्रा के दौरान नौकरी के अनुबंध के उल्लंघन से संबंधित थी। यह बहुत ही सीमित उपयोग की धारा थी,जो नौकरी के अनुबंध के सभी उल्लंघनों पर लागू नहीं होती थी। यह केवल उन नाविकों पर लागू होती थी,जो समुद्री यात्रा पर गए हों। वास्तव में नाविकों की सेवा के मामले में इस तरह का अपवाद आवश्यक था,चूंकि यात्रा की सफलता व सुरक्षा उनकी अविच्छिन्न सेवा पर निर्भर होती थी। अन्य धारा 491, परिचारक की ओर से असहाय लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अनुबंध के उल्लंघन से संबंधित थी। उदाहरणतया, यह उस आया पर लागू होती थी, जिसने एक असहाय बच्चे की देखभाल करने का अनुबंध किया हो। यह उस नौकर पर लागू होती थी,जिसने एक ऐसे अपंग व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व उठाया है,जो अपनी देखभाल स्वयं नहीं कर सकता। धारा 491 यही थी। धारा 492 में ऐसी सेवा के अनुबंध के उल्लंघन का मामला आता है, जो दूर स्थान पर हो और वहां नौकर को मालिक के खर्चे पर भेजा गया हो।

ये तीन प्रावधान थे, जो भारतीय दंड संहिता होने पर जारी अधिनियम बनाए गए थे। महोदय! जब से ये अधिनियम बने हैं,तब से इन तीनों धाराओं का क्या इतिहास रहा है? इतिहास यह है कि 1925 के अधिनियम 3 के द्वारा केन्द्रीय विधान मंडल ने धारा 490 और धारा 492 को रद्द किया। ये धाराएं अब लागू नहीं होती हैं और उनके अंतर्गत सेवा की शर्तों का उल्लंघन,जो कि अपराध था, अब बिल्कुल भी अपराध नहीं है। इसलिए अब जो धारा बचती है वह है- भारतीय दंड संहिता की धारा 491 । इसलिए भारत में केवल नौकरी के अनुबंध के उल्लंघन के संबंध में लागू कानून जो क्षतिपूर्ति से भिन्न है और जिसमें दंड के

परिणाम शामिल है – धारा 491 ही है। मुझे नहीं लगता कि सदन का कोई भी सदस्य यह जान लेने पर भी इस प्रावधान की नुक्ताचीनी करेगा कि इसका उद्देश्य ऐसे व्यक्ति का मामला उठाने से है जो असहाय है और अपनी सुरक्षा स्वयं नहीं कर सकता।

महोदय! सेवा के अनुबंध के उल्लंघन के परिणामस्वरूप उत्पन्न वैधानिक स्थिति के संबंध में मैंने अब तक जो कुछ कहा है,उसकी समीक्षा के रूप में अब यह कहूंगा कि यह वर्जित शब्द 'हड़ताल' का लोकप्रिय वर्णन मात्र है। स्थिति क्या है? स्थिति यह है कि सेवा के अनुबंध का उल्लंघन कोई अपराध नहीं है और यह भारतीय कानून के अंतर्गत तब तक दंडनीय नहीं है,जब तक कि मामला धारा 491 के अंतर्गत न आए। इसका अर्थ है कि यह केवल दीवानी किस्म का मामला है, यह अपराध नहीं है और इसके अतिरिक्त, यह इस दीवानी मामले का समाधान केवल हरजाना हो सकता है, न कि विशिष्ट निष्पादन । मुझे विश्वास है कि जिस प्रश्न पर मैं जोर देना चाहता हूं, सदन उस पर गंभीरतापूर्वक विचार करेगा। प्रश्न यह है कि भारतीय कानून सेवा के अनुबंध के उल्लंघन को अपराध क्यों नहीं मानता है? और भारतीय कानून विशिष्ट निष्पादन के लिए व्यवस्था क्यों नहीं करता है? सदन के अन्य सदस्य जो भी कुछ उत्तर देना पसंद करें,लेकिन मेरा उत्तर तो बड़ा सरल है और वह यह है कि भारतीय विधान-मंडल सेवा के अनुबंध के उल्लंघन को इसलिए अपराध नहीं मानता क्योंकि वह सोचता है कि इसको अपराध मानने का अर्थ है,किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने के लिए बाध्य करना, और उसको दास बनाना। इसलिए मेरा दावा है कि हड़ताल पर जुर्माना लगाना एक मजदूर को दास बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दासता क्या है? संयुक्त राज्य के संविधान में इसे इस तरह परिभाषित किया गया है कि दासता और कुछ नहीं बल्कि बरबस पराधीनता है। यह नैतिकता के विरुद्ध है, यह विधि शास्त्र के विरुद्ध है। महोदय! भारतीय दंड संहिता को बनाने वालों ने उस बात पर ध्यान दिया होगा, जिनका मैंने अभी उल्लेख किया है। जब उन्होंने इन प्रावधानों का प्रारूप तैयार किया होगा, यानि धारा 490, 491 और 492,जैसा कि मैं मुख्य विवरण से यहां समझ रहा हूं, तब निस्संदेह उन्हें संशय हुआ होगा और वे सोचते रहे होंगे कि क्या वे धारा 490, 491 और 492 में सम्मिलित छोटे से प्रावधानों को लागू करने में सही होंगे। यही बात भारतीय दंड संहिता बनाने वालों ने अध्याय 19 के लिए कही है जिसका शीर्षक है – 'सेवा-अनुबंध का उल्लंघन':

> हम विधिवेत्ताओं की महान संस्था के इस विचार से सहमत हैं कि सामान्य रूप से अनुबंध का उल्लंघन मात्र अपराध नहीं होना चाहिए,बल्कि यह केवल दीवानी मुकदमें का विषय हो सकता है। इस सामान्य नियम के बावजूद भी कई अपवाद हैं। कई अनुबंधों के उल्लंघन संभवत: बुराई का कारण बन सकते हैं, जिनका कोई हरजाना नहीं है या केवल बहुत ज्यादा हरजाने से ही जिनकी प्रति-पूर्ति की जा सकती है, जो संभवत: किसी व्यक्ति

द्वारा करनी अत्यधिक असंभव हो। हम सोचते हैं कि अनुबंधों के ऐसे उल्लंघन दंड विधान के उचित विषय हो सकते हैं जिन पर दंड दिया जा सकता है।

उन विभिन्न तरह के कृत्यों के समस्त अनाचरणों के विस्तृत सर्वेक्षण के बाद, उन्होंने पाया कि अकर्मण्यता ही वह कृत्य है,जिस पर दंड दिया जा सकता है। नैतिकता व विधि शास्त्र के प्रावधानों के समनुरूप, ये तीन प्रावधान ही थे, और इनसे ज्यादा कुछ नहीं था। महोदय! अब यह कहा गया है कि हड़ताल करना अधिकार जैसी कोई चीज नहीं है। मेरा उत्तर यह है कि ऐसी बात वही व्यक्ति कह सकता है,जो सचमुच में नहीं जानता कि हड़ताल क्या है? अगर सदस्य 'हड़ताल' शब्द के मेरे अर्थ को मानने को तैयार हैं, जो कि सेवा के अनुबंध के उल्लंघन के सिवाय और कुछ नहीं है, तब मैं निवेदन करूंगा कि हड़ताल सिर्फ स्वतंत्रता के अधिकार का दूसरा नाम है। यह किसी भी शर्त पर, किसी की नौकरी की स्वतंत्रता के अधिकार के सिवाय और कुछ नहीं है जिसे कोई भी व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है। एक बात और है कि आप स्वंतत्रता का अधिकार प्रदान कर देते हैं – आप आवश्यक रूप से हड़ताल का अधिकार प्रदान कर देते हैं, क्योंकि जैसा कि मैंने कहा है – हड़ताल करने का अधिकार सिर्फ स्वतंत्रता के अधिकार का दूसरा नाम है। यह कहना हास्यास्पद है कि स्वतंत्रता का अधिकार राजाओं के दैविक अधिकारों जैसा है। महोदय! मैं इसके जवाब में सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि काव्यात्मक कथन या रोचक चित्रण से तर्क को समाप्त नहीं किया जा सकता। मैंने कहीं भी ऐसा परिणाम नहीं देखा है – कम से कम अदालतों में तो नहीं। अगर आप जानते हैं कि स्वंतत्रता का अधिकार दैविक अधिकार है, फिर मैं दावा करता हूं कि हड़ताल का अधिकार भी दैविक अधिकार है। इसके अतिरिक्त मैं कहता हूं कि चूंकि दस लोग या बीस लोग या दो सौ लोग एक साथ हड़ताल की घोषणा करते हैं, जहां तक कानून का सवाल है स्थिति में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महोदय! मैं जानता हूं कि कई लोग भारतीय दंड संहिता की धारा 120 क की ओर संकेत करेंगे। अत: इस विषय से हटने से पहले, मैं उस मामले पर विचार करूंगा जो भारतीय दंड संहिता की धारा 120 क के संदर्भ में है। मैं सोचता हूं कि क्या विपक्ष के सदस्य इस पर बहस करना चाहते हैं कि हड़ताल करने का कोई अधिकार नहीं है,क्योंकि मजदूरों की किसी संस्था द्वारा की गई हड़ताल एक षड्यंत्र है। अगर वे ऐसा करते हैं,तो मैं चाहूंगा कि विपक्ष के जो लोग यह मानने के लिए कि हड़ताल करने का अधिकार नहीं है, धारा 120 क पर निर्भर करते हैं, वे यह प्रमाणित करें कि हड़ताल एक षड्यंत्र है। जब तक कि वे यह प्रमाणित नहीं करते कि हड़ताल एक षड्यंत्र है, धारा 120 क लागू नहीं होगी और मैं दावा करता हूं कि हड़ताल षड्यंत्र नहीं है।

एक माननीय सदस्य: कौन कहता है कि यह अनुप्रयोज्य है? यह जनोपयोगिता का मामला है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं जनोपयोगिता के प्रश्न पर बाद में बात करूंगा। महोदय! दुर्भाग्यवश हमारे पास भारत में कोई सुनिश्चित मामला नहीं है। मेरा अनुसंधान उस मामले

का प्रतिफल नहीं है,जहां हड़तालियों को धारा 120 क के अंतर्गत इस आधार पर फंसाया गया हो कि यह षड्यंत्र है। लेकिन इस विषय पर मुझे अंग्रेजी कानून से कुछ समर्थन मिलता है। वह भी हड़ताल को षड्यंत्र के रूप में लेता है और मैं एकोलोसर द्वारा लिखित *पुस्तक दि लीगल पोजीशन आफ ट्रेड यूनीयन्स* से सदन को एक छोटा सा परिच्छेद पढ़कर सुनाना चाहता हूं। मैं पृष्ठ 76 से यह उद्धरण पढ़ता हूं:

> इसलिए हड़तालें, मजदूरों की स्थितियों को बेहतर बनाने का सरल संयोजन हैं और वे सामान्य विधि से अवैधानिक नहीं हैं। इंग्लैंड के कानून के अनुसार इस विचार का कोई आधार नहीं है कि हड़तालें अपने आप में अवैधानिक हैं। यह सच है कि इस संबंध में सामयिक उक्तियां मिल जाती हैं कि सामान्य विधि से मजदूरों की स्थिति को बेहतर करने का संयोजन अवैधानिक है, पर निर्धारित किए गए कानूनों को कभी अदालतों ने नहीं माना और प्रतिष्ठित न्यायाधीशों ने उनके विरुद्ध विचार व्यक्त किए। सत्रहवीं-अठाहरवीं शताब्दी के दौरान किसी भी अदालत ने मजदूरों की स्थिति को बेहतर बनाने के संयोजन को सामान्य विधि से प्रतिकूल नहीं माना और विधान अधिनियमों की किसी भी श्रृंखला ने मजदूरों की स्थिति को बेहतर बनाने के संबंध में उनके प्रयासों, घोषणाओं, उद्देश्यों या सामान्य विधि के प्रति उनके विश्वासों का प्रतिरोध नहीं किया। अगर हम रैक्स वी. मौबे में ग्रौस. जे. द्वारा दिए प्रासंगिक विचार को मान लेते हैं, तो तब तक पेश किए गए प्रावधान के समर्थन में कोई न्यायिक लेख नहीं था,जब तक कि 1925 के संयोजन अधिनियम के द्वारा विधान-मंडल ने उन समस्त संविधियों को समाप्त नहीं कर दिया था। हाल में ही, पहली बार आए सामान्य विधि के परिणाम, आरंभिक तिथि से एक स्वीकृत सिद्धांत पर आधारित हैं,जिन्हें बड़े संशय से देखा गया। 1824 से ही प्राधिकरण की शक्ति इस मत के विरुद्ध रही है कि 'हड़तालें अपने आप में संयोजित हैं'।

यह निर्णय का एक मुख्य हिस्सा है:

> न वह गैर कानूनी कार्य संपादन और न ही गैर कानूनी ढंग से वैधानिक कार्य संपादन करने के लिए है। इस संबंध में स्पष्ट कानून है कि मजदूरों को अपनी सुरक्षा के लिए संगठित होने का अधिकार है। संगठन का प्रयोजन उन लाभों को लेने से है,जिनके लिए वे कानूनन दावा कर सकते हैं। श्रम व शर्तों के संदर्भ में निर्णय करने का अधिकार है, जिसका कोई प्रयोग कर सकता है।

मैं इस मुद्दे पर बल देने की कोशिश कर रहा था:

> और अकेले ही या एकाधिक व्यक्तियों से परस्पर सलाह करके संयुक्त रूप से प्रयोग कर सकते हैं और अपनी पसंद की घोषणा वे एक साथ कर सकते हैं और वैधानिक रूप से फिर वांछित शर्तें प्राप्त करने के लिए तात्कालिक प्रयोजन के लिए कार्यवाही कर सकते हैं।

जरूरी नहीं कि हड़ताल जारी रखना गैर कानूनी है और यदि कोई हड़ताल ऐसा अनुबंध भंग होने पर की जाती है, जिसकी अवधि समाप्त हो चुकी हो तो, ऐसी समाप्त हुई अवधि के बाद जो लोग नई शर्तों पर नया सेवा अनुबंध करने से इंकार करके हड़ताल जारी रखने में हड़ताली श्रमिकों की सहायता करते हैं, उनका ऐसा करना कुछ भी गैर-कानूनी नहीं है। इसीलिए ये संगठन बने हैं।

मैं सदन का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करना चाहता हूं, क्योंकि इसका भारतीय दंड संहिता की धारा 120 क के साथ प्रत्यक्ष संबंध है। 'जिसका परिणाम दूसरे को क्षति पहुंचाना हो वह अवैधानिक होगा, जब कि संगठन का उद्देश्य क्षति पहुंचाना हो, ये शब्द हैं – 'जब संगठन का उद्देश्य क्षति पहुंचाना हो'

और अगर क्षति हो जाती है, तो वह कार्य षड्यंत्र माना जाएगा। प्रत्येक मामले में जिस प्रश्न को तय करना है, वह यह है कि वैधानिक संगठनों के कारण वह क्षति कितनी है और संगठन कहां तक क्षति पहुंचाने के लिए कार्यरत है।'

इसलिए मेरा निवेदन यह है कि हड़तालों को धारा 120 क के अंतर्गत लाने के लिए अभियोग को प्रमाणित करने हेतु यह आवश्यक होगा कि हड़ताल का उद्देश्य क्षति पहुंचाना था। अगर हड़ताल के परिणामस्वरूप मात्र क्षति पहुंचती है, तो इससे वह हड़ताल धारा 120 क के अर्थानुसार अवैधानिक संगठन नहीं बन जाती है। इसलिए मेरा पहला दावा यह है कि यह विधेयक, हड़तालियों को दंडित करके मजदूरों को दासता की स्थिति में पहुंचाने के सिवाय और कुछ नहीं कर रहा है।

मेरे अनुसार इस विधेयक को वास्तव में 'मजदूर की नागरिक स्वतंत्रता हनन विधेयक' कहकर पुकारा जाना चाहिए। यह इसके लिए उचित शीर्षक होगा। कई लोगों का यह ख्याल है कि आखिरकार स्थगन केवल दो महीने का है, जब तक कि समझौते की प्रक्रिया समाप्त न हो। उसके बाद अगर मजदूर चाहें, तो उन्हें हड़ताल करने की स्वतंत्रता होगी। महोदय! मैं यह कहना चाहता हूं कि यह बहुत गलत ख्याल होगा। मेरा दावा है कि इस विधेयक के प्रावधानों को जब कार्यान्वित किया जाएगा, तो इससे चिर स्थायी दासता आ जाएगी और मजदूर कभी भी हड़ताल नहीं कर पाएंगे। अब प्रावधानों की ओर देखा जाए। सर्वप्रथम, विधेयक में यह प्रावधान है कि जब विधेयक पर अमल शुरू हो जाएगा, तो कम से कम एक साल तक कोई हड़ताल नहीं होगी, चाहे स्थितियां ऐसी हों कि कोई भी सही मजदूर उन्हें स्वीकार कर ले या चाहे वे ऐसी हों कि कोई भी गलत मजदूर उन्हें नहीं माने, एक साल के लिए तो पूर्ण दासता होगी। दूसरी अनुसूची में दर्ज शर्तों को मानने के लिए मजदूर बाध्य हैं। उस स्थिति से बचने का कोई रास्ता नहीं है। एक वर्ष खत्म हो जाने के बाद क्या होगा? होगा यह कि आपको नोटिस देना होगा, जिसके अनुसार एक निश्चित अवधि तक आप हड़ताल नहीं कर सकते हैं। फिर नोटिस देने के बाद उत्तर देने के लिए समय दिया जाता

है। उत्तर देने के समय के दौरान आप हड़ताल नहीं कर सकते। फिर समझौते की प्रक्रिया शुरू होती है और अगर पार्टी भाग्यशाली है तथा समझदार भी है, तो हो सकता है कि वह दो महीने तक चले। लेकिन विधेयक में यह प्रावधान है कि अवधि चार महीने तक बढ़ सकती है। इसलिए मजदूरों की शिकायतों की तिथि से चार महीने और वास्तव में 25 दिनों तक–अगर मेरी गणना गलत हो,तो उसे ठीक कर दिया जाए, क्योंकि मैंने विस्तारपूर्वक नहीं देखा है – मजदूर कुछ न करें। वे बात न करें, वे भाषण न दें, वे न आयोजन करें,न कार्य – कुछ न करें। इस दौरान उन्हें समस्त गतिविधियों – किसी शब्द या भाषण या कृत्य तक के लिए दंडित किया जा सकेगा, अगर मान लिया जाए कि इस चार माह और 25 दिन के लंबे समय में कोई समझौता नहीं होता। मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि अनिश्चय की लंबी अवधि बनी रहती है, तो फिर क्या होगा ? समझौते की अवधि समाप्त हो जाने के बाद मजदूरों को हड़ताल करने के लिए केवल दो महीने मिलेंगे । मुझे नहीं पता कि इस विधेयक के प्रस्तावक मेरे माननीय मित्र क्या सोचते हैं कि मजदूरों की विघटित शक्ति को सक्रिय करने और उन्हें संगठित होने के वास्ते दो महीने का समय पर्याप्त है। मैं श्रमिक क्षेत्र का एक सक्रिय कार्यकर्ता रह चुका हूं। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं मौके पर काम करने वाला आदमी हूं और इसलिए यह नहीं जानता कि जो व्यक्ति हड़ताल करने के लिए मजदूरों को संगठित करता है, उसे किन मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। लेकिन बंबई नगर के प्रेषक के रूप में हुए अनुभवों के आधार पर स्थिति को देखते हुए, मुझे यह कहने में जरा सी भी हिचक नहीं है कि चार महीने 25 दिनों के लिए निराशाजनक स्थिति में फंसे श्रमिकों के निकाय के लिए अपनी शक्ति को हड़ताल के लिए गतिशील बनाने के वास्ते दो महीने की अवधि अत्यधिक कम है। अगर वे दो महीने में हड़ताल नहीं करते,तो क्या होगा? उन्हें स्थिति को स्वीकारने के लिए कानून का पालन करना पड़ेगा। अगर वे फिर सिर उठाते हैं और नई शिकायतें ढूंढ लाते हैं, तो कानून के अनुसार उन्हें फिर चार महीने और 25 दिनों तक इंतजार करना पड़ेगा और समझौता प्रक्रिया जारी रखनी होगी। रुको और देखो हम क्या करते हैं – चार महीने और 25 दिनों तक रुको और देखो । फिर भी चार महीने व 25 दिनों के अंत तक कुछ नहीं होता। अगर आपको लगे, आप हड़ताल कर सकते हैं,तो ऐसा दो महीने में करना होगा। अगर आप नहीं करते और दो महीने बाद अन्य कोई शिकायत लेकर आते हैं,तो आपको फिर से चार महीने 25 दिनों तक इंतजार करना होगा। महोदय! मैं यह जानना चाहता हूं कि निष्क्रियता की यह अंतहीन प्रक्रिया क्या पूर्ण दासता को जन्म नहीं देगी, जो मजदूरों के लिए हमेशा के वास्ते चिरस्थायी दासता है। अगर यह मजदूरों में दासता लाने का विधेयक नहीं है, तो मैं जानना चाहता हूं कि फिर किस तरह का विधेयक दासता को प्रस्तावित करेगा। हड़ताल से संबंधित विधेयक के प्रावधानों के संदर्भ में यह बहुत बड़ी बात है।

महोदय! मैं हिदायत देते हुए कहता हूं कि श्रमिक विवाद के इस विधेयक के प्रावधानों की तुलना 1929 के श्रमिक विवाद अधिनियम से की जाए, जो हड़ताल से संबंधित है। यह भी ऐसा अधिनियम है,जो हड़ताल करने के अधिकार को सीमित करता है। इसलिए उस अधिनियम में निहित प्रावधानों की तुलना इस विधेयक में निहित प्रावधानों से करना बेहतर होगा, ताकि सदन इस बात को समझने की स्थिति में हो कि हम किस दिशा में जा रहे हैं, क्या हम दासता की ओर बढ़ रहे हैं? महोदय! 1929 का अधिनियम मजदूरों के हड़ताल करने के अधिकार पर कुछ सीमाएं लगाता है और उसकी दो धाराओं का अगर मैं उल्लेख करूं तो वह काफी होगा। राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित 1929 का अधिनियम सामान्य हड़ताल को दंडनीय बनाता है। यह इस अधिनियम की धारा 16 है और अन्य धारा,जो मेरे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, वह धारा 15 है,जो बिना नोटिस के हड़ताल को दंडनीय बनाती है। ऊपरी तौर पर, अधिनियम 1929 और वर्तमान विधेयक में कुछ समानता लगती है, क्योंकि कुछ हद तक यह विधेयक भी बिना नोटिस की हड़ताल को दंडनीय ठहराता है। परंतु, महोदय! इसके विपरीत एक विधेयक दूसरे से उसी तरह भिन्न है,जैसे कि चूना दही से। एक का दूसरे से कोई मतलब नहीं है और तुलनात्मक रूप से मुझे यह कहने में बिल्कुल भी हिचकिचाहट नहीं है कि यह विधेयक प्रतिक्रियात्मक और प्रतिगामी है और यह कि इस विधेयक को लिखने वाले, 1929 के अधिनियम को लिखने वाले से कहीं ज्यादा अनुदार हैं।

महोदय! हम 1929 के अधिनियम के खंड 15 के प्रावधानों की तुलना करते हैं। जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति जो इस विषय से वाकिफ है, यह जानता है कि 1929 के अधिनियम का खंड 15 जनोपयोग तक सीमित है। वह अधिनियम समस्त हड़तालों को दंडनीय घोषित नहीं करता है, बल्कि उन हड़तालों को इंगित करता है,जिन्हें जनोपयोगी सेवा कहा जाता है। मैं यही निवेदन कर रहा हूं कि 1929 के अधिनियम और इस विधेयक के बीच मौलिक भेद हैं। महोदय! मैं यह प्रश्न पूछना चाहता हूं कि 1929 में उठाए गए कदम का परित्याग क्या किसी तरह न्यायसंगत है? और मेरे ख्याल से यह अभीष्ट होगा अगर मैं यह कहकर शुरू करूं कि केन्द्रीय सभा के समक्ष,जब 1929 में यह विधेयक पेश किया गया था तब कांग्रेस पार्टी की क्या स्थिति थी। महोदय! मैंने प्रवर समिति की रिपोर्ट ढूंढ निकालने और पढ़ने की तकलीफ उठाई है, जो केन्द्रीय विधायक द्वारा विधेयक के प्रावधानों पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई थी और बाद में 1929 का अधिनियम बन गया था। मैं दो बातों पर अपना ध्यान सीमित रखते हुए नौकरशाही शब्द का प्रयोग कर रहा हूं, जिससे दूसरा पक्ष परिचित है। एक तरफ नौकरशाही और दूसरी तरफ कांग्रेस पार्टी है। जब 1929 का यह अधिनियम बन रहा था,तब वहां विवाद के क्या मुद्दे थे? मुझे लगता है कि मतभेद के मुद्दे ये थे – सरकार चाहती थी कि जनोपयोगी सेवाओं को परिभाषित करना,उसके विवेक पर छोड़ दिया जाए। वे अधिनियम में जनोपयोगिता की परिभाषा नहीं देना चाहते थे और

न उस समय वे उसका विवरण देने को तैयार थे, जो उनके विचार से जनोपयोगी सेवाएं थीं। उन्होंने कहा कि जनोपयोगिता और उसकी महत्ता, मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। वह समय तथा परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग हो सकती है। एक कार्य जो एक अवसर पर हो सकता है कि जनोपयोगी सेवा न हो, लेकिन किसी अन्य अवसर पर जनोपयोगी हो सकता है और उन्हें लगा कि समाज के हित में, जैसा कि उन्होंने सोचा था, यह आवश्यक था कि स्थिति को परिभाषित करके परिवर्तन के साथ सरकार के निर्णय पर परिभाषित करने के लिए छोड़ दिया जाए। अब इस समय कांग्रेस दो बातें चाहती है- पहली बात वह यह चाहती है कि नौकरशाही के निर्णय पर कुछ भी न छोड़ा जाए, ताकि वह नौकरशाही उद्देश्यों के लिए स्वीकारा न जा सके। इसलिए कांग्रेस दल ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि कोई भी निर्णय सरकार पर छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। खंड 15 की सीमा में जो भी जनोपयोगिता लानी है. उसे अधिनियम में स्पष्ट रूप से उद्धृत करना होगा। जब विधेयक पर चर्चा छिड़ी तब कांग्रेस दल ने 1929 में दूसरी स्थिति यह अपनाई थी कि जनोपयोगिता की कोटि बहुत विस्तृत थी और हड़ताल को सिर्फ इसलिए अवैध नहीं माना जाए क्योंकि वह जनोपयोगी सेवा से संबंधित है। उन्होंने जो स्थिति अपनाई वह यह थी कि उसे केवल 'सामाजिक सुरक्षा सेवाओं' तक सीमित कर दिया जाए । 1929 में यही स्थिति थी। इस विवाद में सरकार ने एक मुद्दा छोड़ दिया। उन्होंने माना कि जनोपयोग को अधिनियम में अवश्य ही परिभाषित किया जाना चाहिए और इसलिए, महोदय! आप देखेंगे कि अधिनियम का खंड 2, जो कि एक व्याख्यात्मक खंड है, में जनोपयोगिता की परिभाषा है और उधर आपके पास जनोपयोगिता की सूची है, सरकार का उसमें और कुछ जोड़ने का या उसमें से कुछ निकाल लेने का कोई निर्णय नहीं है। अन्य स्थिति के संदर्भ में, अर्थात जिसमें सेवा की श्रेणी को सीमित करने के साथ ही हड़ताल की अवैधता को भी सीमित करना था, सरकार ने प्रयत्न नहीं किया। सरकार ने कहा कि उसका यह फार्मूला था कि जनोपयोगी सेवा तक उसे विस्तृत करके कायम रखा जाए,परंतु कांग्रेस पार्टी इसमें सफल न हो सकी। लेकिन मेरी बहस पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि मेरा तर्क यह है कि 1929 में कांग्रेस पार्टी सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के मामले में ही हड़ताल की अवैधता को सीमित करने के लिए दृढ़ रही। महोदय! मैं प्रवर समिति की रिपोर्ट से कुछ नोट पढ़ना चाहता हूं जिन्हें कांग्रेस के सदस्यों ने लिखा था । मुझे विश्वास है कि माननीय सदस्य श्री जमनादास मेहता उस समय कांग्रेस के सदस्य थे, पर यह मैं पक्के तौर पर नहीं कहता।

श्री जमनादास एम. मेहताः मैंने आज तक इस दृष्टिकोण को बनाए रखा है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! यह श्री जमनादास मेहता, श्री एम.एम. शेष आयंगर, श्री एस. एस. सी. मित्र और श्री वी.वी.पी. जोगिया द्वारा लिखित नोट्स में से है:

विधेयक की मूल आपत्तियां जो प्रवर समिति ने प्रकट की हैं, प्रभावहीन रही हैं। हम समझते हैं कि खंड 15 और उसके आगे के प्रावधान औद्योगिक विवादों को सुलझाने

में समर्थ नहीं हैं और ये उनमें केवल वृद्धि करेंगे तथा मालिकों और मजदूरों के बीच संबंधों को कटु बनाएंगे जैसा कि ऐसे कानूनों के समस्त अनुभव प्रमाणित करते हैं कि उस राजनैतिक प्रचार को दबाने के लिए प्राधिकारियों का इस्तेमाल किया जाएगा,जो उसके विरुद्ध किया जाता है। अगर विधेयक का उद्देश्य देश में समुचित मजदूर आंदोलन का विकास व पोषण करना है, तो खंड 15 और उससे आगे के प्रावधान निश्चय ही उस उद्देश्य को पलीता लगा देंगे।

उन्होंने यह कदम उठाया था कि जनोपयोगी सेवाओं पर लागू होने पर भी किसी भी हड़ताल को दंडनीय नहीं किया जा सकता। विरोध का नोट आगे कहता है:

. . .लेकिन इस उद्देश्य में असफल होने से हम विमत के इस नोट को संलग्न करने के आभारी हैं। विधेयक की धारा 14 तक अदालत की जांच और समझौता समितियों द्वारा औद्योगिक विवादों को सुलझाने का ठीक प्रयास है। हम मानते हैं कि जहां तक विधेयक के उस हिस्से का संबंध है, वह प्रवर समिति से निश्चित सुधरा हुआ व संगठित होकर निकला है। उस खंड तक विधेयक में जितने भी परिवर्तन हुए हैं, वे उसे ज्यादा निष्पक्ष और न्यायसंगत बनाने में सहायक हैं। निस्संदेह हम खंड 2 (छ) में 'जनोपयोगी सेवाओं' की परिभाषा को गणना में नहीं लेते हैं। वह परिभाषा खंड 15 की अनुवर्ती है और इसलिए इसे उसके साथ माना जाना चाहिए। हमें विश्वास है कि यह खंड मालिक व कर्मचारी के दोस्ताना संबंधों के लिए बड़ा खतरा है। लोक सेवा 'जनोपयोगी सेवा' हो सकती है, पर इसलिए वह यह नहीं माना जाएगा कि ऐसी सेवाओं में बिना नोटिस के हड़ताल का फौजदारी अभियोग समझा जाए। यह सच है कि इन सेवाओं में तालाबंदी को एक अपराध भी माना जाता है, लेकिन उससे हड़ताल को दंडनीय अपराध बनाने के तर्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हमें समझ में नहीं आता कि डाक तार या टेलीफोन विभाग या रेलवे की सेवा में हड़ताल को एक अपराध माना जाएगा । इसमें कोई शक नहीं कि ऐसी हड़ताल असुविधाजनक है और हमारी आम आवश्यकताओं में खलल डालती है, लेकिन यह दावा करना बहुत बड़ी बात होगी कि अगर व्यक्तियों का कोई समूह हमारी आवश्यकताओं में सहायता करने से मना कर देता है, विशेषकर जब हड़ताली यह महसूस करें कि ये आवश्यकताएं व सुविधाएं केवल तभी जारी रखी जा सकती हैं,जब मजदूरों की हैसियत खत्म की जा रही हो या ये उनको निर्धनता में धकेल देंगी, तो उस मजदूर समूह को अपराधी बताने का दावा गलत है। क्या गंभीरता पूर्वक यह दावा किया जा सकता है कि फ्रंटियर मेल और उसी तरह की आरामदायक सेवाएं समाज के लिए इतनी अत्यावश्यक हैं कि उन सेवाओं में हड़तालें अवैध मानी जाएं?

मैं विपक्ष में बैठे अपने माननीय मित्रों को आखिरी कुछ पंक्तियां सुनाता हूं। उद्धरण का अगला अंश है:

विधान-मंडल के लिए एक इतने अन्यायपूर्ण मत को अनुमोदित करना जैसा कि खंड 15 में सम्मिलित है, संसार के सामने यह घोषित करता है कि मानव जाति के अधिकांश हिस्से के मजदूरों को क्रीतदास बने रहना होगा और वे केवल जेल में जाने की पीड़ा से ही हड़ताल करेंगे। हम अपने देश की औद्योगिक प्रगति को बढ़ाने के लिए बहुत तत्पर हैं, लेकिन इस खंड में प्रस्तावित जबरदस्ती के तरीकों के द्वारा नहीं। हम मानते हैं कि पानी का वितरण, बिजली व स्वच्छता, समाज के लिए पूर्णतया आवश्यक है तथा इन सेवाओं में होने वाली किसी भी हड़ताल को कानूनी ढंग से निरुत्साहित किया जाना चाहिए, लेकिन इसलिए नहीं कि ये 'जनोपयोगी सेवाएं हैं, बल्कि इसलिए कि ये सामाजिक सुरक्षा की सेवाएं' हैं और जैसा कि किसी भी व्यक्ति को समाज के अस्तित्व के विरुद्ध रुचि रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती, हम भी किसी ऐसे कानून के विरोधी नहीं हैं जो 'सामाजिक सुरक्षा सेवाओं' के उद्देश्य से हड़ताल को अवैध घोषित करता हो।

महोदय! उस समय कांग्रेस के सदस्यों ने यह नीति अपनाई थी। मैं श्री कुंजरू द्वारा संलग्न विमत के नोट के एक अंश को भी पढ़ना चाहता हूं। वह उदारवादी हैं और मैं इस पर जोर देता हूं ताकि आप यह समझ सकें कि एक नरम व्यक्ति ने जो कांग्रेस के सिद्धांत व नीतियों का प्रचारक नहीं है, 1929 में क्या कहा होगा। उन्होंने कहा था:

खंड 15 जो कि जनोपयोगी सेवाओं में हड़तालों के बारे में है, पूर्व सूचना दिए बिना सेवा की शर्तों के उल्लंघन से हुई हड़ताल को अवैध मानता है। अगर केवल ऐसी सेवाओं में अचानक हुई हड़तालों को दंडित किया जाता है जहां पर्याप्त सूचना दिए बिना काम रोकना मनुष्य के स्वास्थ्य व जीवन के लिए खतरनाक होता हो, वहां ऐसे कृत्यों के मामले सैद्धांतिक रूप से स्पष्ट होंगे, चाहे कानून को लागू करना कितना ही मुश्किल क्यों न हो। लेकिन प्रवर समिति द्वारा उस प्रावधान के विलोपन के बावजूद, जिसने सरकार को किसी भी सेवा को जनोपयोगी सेवा घोषित करने का विवेकाधिकार दिया था, जनोपयोगी सेवा की परिभाषा में अभी भी ऐसी सेवाएं सम्मिलित हैं,जिनमें अकस्मात हड़तालों से चाहे कोई भी असुविधा क्यों न हो, जीवन का खतरा नहीं हो सकता। किसी भी औद्योगिक संस्थान में चाहे कितनी भी अकस्मात हड़ताल क्यों न हों, उन्हें दंड देने का कोई आधार नहीं है, जहां वे समाज की सुरक्षा को प्रभावित नहीं करती हैं। सेवाओं में समाज के अस्तित्व को प्रभावित करने वाली आकस्मिक हड़तालों का समाधान प्रांतों में किया गया है। हड़तालों के अलावा अगर अनुबंध का उल्लंघन किया गया है तो उस पर भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत सख्ती से विचार किया जाए। . . .

यह श्री कुंजरू का दृष्टिकोण था। मैं इस प्रस्ताव से सहमत हूं कि बिना नोटिस की हड़ताल के अधिकार को नियंत्रित करना चाहिए, परंतु यह उन सेवाओं के मामले में नियंत्रित

होना चाहिए जो जनोपयोगी सेवाएं नहीं हैं, बल्कि सामाजिक सुरक्षा की सेवाएं हैं। महोदय! यह अंग्रेजी विधान के समान है। मैं इस संदर्भ में 1920 के आपातकालीन शक्तियों के अधिनियम की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। यह युद्ध समाप्ति के एक या दो वर्ष पश्चात ब्रिटिश संसद ने पारित किया था। वहां भी आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए सरकार को नियम बनाने की शक्ति दी गई थी। मैं अधिनियम से सिर्फ एक या दो धाराएं पढ़ूंगा। धारा 1 के अनुसार:

अगर किसी भी समय महामहिम को यह लगे कि ऐसी कोई कार्यवाही की गई है या उस प्रकार से किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के निकाय द्वारा तुरंत इतने व्यापक रूप में धमकी दी गई है,जिससे कि यह समझा जा सके कि उससे आपूर्ति व वितरण में गड़बड़ी हो सकती है . . .

मैं इन शब्दों की ओर सदन का ध्यान दिलाना चाहता हूं:

भोजन, पानी, ईंधन, बिजली या वाहन के मामले में समाज या उसके किसी एक हिस्से को आवश्यक सेवाओं से वंचित करना । . . .

महामहिम, घोषणा के द्वारा यह ऐलान कर सकते हैं कि आपात स्थिति बनी हुई है। फिर धारा 2 के अनुसार:

जब आपात स्थिति की घोषणा की जाती है और जब तक घोषणा लागू रहती है, समाज के लिए जीवनोपयोगी आवश्यक सुविधाओं की सुरक्षा के वास्ते महामहिम द्वारा नियमों का बनाया जाना विधि-समस्त होगा और ये नियम किसी . . . सरकार पर लागू होंगे . . . ऐसे अधिकार और कर्तव्य जिन्हें महामहिम आवश्यक समझें . . .

यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इसमें वे सब मामले शामिल होंगे जो जनता की सुरक्षा व समाज के लिए आवश्यक हैं। यह दृष्टिकोण सदैव अपनाया गया है कि अगर आप हड़ताल करने के अधिकार पर प्रतिबंध लगाना चाहते हैं और उसे अवैध बनाना चाहते हैं,तो यह उन्हीं सेवाओं के संबंध में करें,जिन पर समाज मूलतया निर्भर करता है। अब, यह स्वाभाविक है कि यह विधेयक प्रत्येक व्यापार व उद्योग पर लागू होता है। मैं मजाक उड़ाने के उद्देश्य से कुछ नहीं कहना चाहता, पर मैं यह कहकर अपने मुद्दे को स्पष्ट करना चाहता हूं कि मान लिया जाए कि कल भारतीय स्त्री – मैं आशा करता हूं वे ऐसा नहीं करेंगी – अपने होंठ रंगने का फैशन अपना लेती हैं और कई निर्माता जिन्हें पैसा कमाने की गंध आ जाए, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लिपस्टिक बनाने का उद्योग शुरू कर दें और अगर मजदूर हड़ताल पर चले जाते हैं, तो यह अधिनियम उनके सिर पर नंगी तलवार की तरह लटक जाएगा। क्या कोई भी गंभीरतापूर्वक यह कह सकता है कि लिपस्टिक उद्योग जीवन के लिए आवश्यक है और यह कि हड़ताल करने का अधिकार समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि कई स्त्रियां अपने होठों को रंगने से वंचित रह जाएंगी? महोदय! इस सरकार ने केवल सामाजिक

सुरक्षा सेवाओं में होने वाली हड़तालों पर दंडात्मक कार्रवाई को सीमित करने संबंधी बोर्ड के 1929 के दृष्टिकोण को ही नजरअंदाज नहीं किया, बल्कि 1929 के अधिनियम के प्रावधानों से भी आगे जाकर नौकरशाही के रवैए का तिरस्कार किया है।

नौकरशाही के पास कम से कम यह समझने की जिम्मेदारी तो थी कि हड़ताल करने का अधिकार इतना महत्वपूर्ण है कि इसे सार्वजनिक सुरक्षा के दायरे से बाहर दंडनीय न बनाया जाए। मैं इस विधेयक को दोहराना चाहता हूं,जो लिपस्टिक उद्योग में हड़ताल को दंडनीय बना देगा।

यह सब किसलिए है? इन मुकदमों और अधिकारों की भरमार से हमें क्या लाभ मिल सकता है, जिन्हें वे इन गरीब मजदूरों पर लादने की कोशिश कर रहे हैं? इसका परिणाम, जैसा कि मैं देखता हूं, यह होगा कि किसी सज्जन की मेज के पास चार महीने और 25 दिनों तक इंतजार करना पड़ेगा, जिसे यह विधेयक मध्यस्थ कहता है। इसके अलावा मुझे इसमें कुछ नहीं दिखाई देता। माननीय गृह मंत्री ने बताया कि इस विधेयक के प्रस्तावित होने का एक कारण यह था कि राज्य अपने कंधों पर सामूहिक सौदेबाजी की जिम्मेदारी ले रहा था। मेरे ख्याल से उन्होंने इसी संबंध में कुछ कहा है। अगर इस संबंध में मेरा कथन गलत है तो मुझे आशा है कि वे उसे सही कर देंगे।

माननीय श्री के.एम.मुंशी: नहीं, उसे सामूहिक सौदेबाजी की जिम्मेदारी लेने के लिए नहीं, बल्कि उसे विनियमित करने के लिए कहा है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: सामूहिक सौदेबाजी को नियमित करते हुए, मैं बिल्कुल स्पष्ट बात करूंगा। इन नियंत्रणों का क्या फायदा है? दीवानी प्रक्रिया संहिता में अनेक अधिनियम हैं। क्या वादी उनमें रुचि रखता है? वादी अपने मुकदमें के परिणाम के प्रति ज्यादा दिलचस्पी रखता है। इन समस्त औपचारिकताओं, प्रावधानों व प्रक्रियाओं के होते हुए किसे नोटिस देना है, नोटिस देने के बाद क्या होगा, किसको लिखित वक्तव्य व अन्य चीजों का प्रारूप तैयार करना होगा – भूखे मजदूर को उसमें जरा भी रुचि नहीं है।

माननीय श्री के.एम.मुंशी: इसलिए दीवानी प्रक्रिया संहिता को रद्द कर दिया जाए।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं ऐसा कुछ नहीं कहता। मैं यह कह रहा हूं कि जितने भी प्रावधान उनके पास हैं, उनका समर्थन इन्हें कर देना चाहिए था, अगर उनके पास साहस होता और उन्होंने यह कहा होता 'हम अनिवार्य रूप से मध्यस्थ द्वारा उन्हें सुलझाएंगे, चाहे कोई सहमत हो या न हो।' (व्यवधान) मैं सहमत होता हूं या नहीं यह अन्य मामला है। अगर आपने ऐसा दृष्टिकोण अपनाया होता,तो मैं निश्चित रूप से उसे समझ जाता, क्योंकि तब स्थिति यह होती कि चार महीने व 25 दिनों की समाप्ति के पश्चात आप कुछ ठोस परिणामों के प्रति सुनिश्चित होते।

एक माननीय सदस्य: यह दैनिक मजदूरों के लिए दासता होती।

डा. भीमराव अम्बेडकर: आप इस विधेयक पर काफी कह चुके हैं और इस संबंध में

आगे कुछ और कहकर आपको लज्जित होने की जरूरत नहीं (व्यवधान)।

माननीय अध्यक्ष: शांत, शांत।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! यह सब किस लिए है? दोनों पक्षों के सहमत होने पर आपको अनेक अवस्थाओं – रजिस्ट्रार, मध्यस्थ, और मध्यस्थों की समिति से गुजरना पड़ता है। यह एक ऐसा मामला है कि किसी सदाशय वाले महानुभाव के पास जाया जाए जो विभिन्न लोगों से मधुर वार्तालाप करे और ऐसा अच्छा वातावरण तैयार कर दे, जो गुड़ बेशक न दे गुड़ जैसी बातें करे, मुझे इसमें कोई तुक नजर नहीं आती। मेरे विचार में यह व्यर्थ है, नितांत अकारथ –जिसका कोई ठोस परिणाम न निकलता हो। एकमात्र ठोस परिणाम यह होगा कि यह चार महीने 25 दिनों की टरकाऊ खींचतान मजदूर को आखिरकार हड़ताल करने में असमर्थ कर देगी। फिर से, मैं इस सदन का ध्यान उस विसंगति की ओर दिलाना चाहता हूं, जो 1934 के बंबई अधिनियम और वर्तमान विधेयक के बीच है। महोदय! जब 1934 का विधेयक तैयार हो रहा था,तब यह सुझाव दिया गया कि समझौते की अवधि के दौरान हड़ताल पर प्रतिबंध लगा दिया जाए। इसे अमल में लाने का प्रस्ताव था। लेकिन माननीय राबर्ट बेल ने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया। उन पर यह भी दबाव डाला गया कि अगर हड़ताल को प्रतिबंधित नहीं किया जाता तो कम से कम धरना देने पर प्रतिबंध लगाया जाए, लेकिन उन्होंने उनसे सहयोग करने से भी इंकार कर दिया। (एक माननीय सदस्य: नहीं, नहीं।) चूंकि चुनौती दी गई है, इसलिए मैं उनके भाषण का एक अंश पढ़ूंगा। *बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 40, पृष्ठ 180 पर उन्होंने यह कहा था:

> मैं धरने से संबंधित एक मामले को उद्धृत करना चाहता हूं। खंड 15 में आप देखेंगे कि धरना रोकने के लिए समझौते की प्रक्रिया के बारे में एक उपबंध है और किसी व्यक्ति को उत्पीड़ित करने पर भी प्रतिबंध है,जिससे उन्हें समझौते की प्रक्रिया के दौरान ऐसे कृत्य या कारोबार से संबंधित 'अपना दैनिक कार्य या व्यवसाय करने' से रोका जा सके। अन्य शब्दों में, समझौते की प्रक्रिया शुरू होने के पश्चात सरकार का यह इरादा था कि मिल में धरने की स्वीकृति नहीं देनी चाहिए। यहां तक कि अगर कोई हड़ताल पहले ही चल रही है तो यह इरादा था कि मिल के परिसर में चलने वाले धरनों को रोक दिया जाए। अगर दोनों पक्ष फैसले का इरादा रखते हैं, तो यह माना जाएगा कि यही वांछनीय तरीका है। दूसरी तरफ, कर्मचारियों द्वारा मिल की तालाबंदी करने पर उनके विरुद्ध कोई निषेध नहीं है। कई क्षेत्रों में यह माना गया कि धरना देने का अधिकार एक पवित्र अधिकार की तरह है, इसलिए सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, हमने खंड 15 में उल्लिखित शब्दों को छोड़ देने के लिए एक संशोधन प्रस्तावित करने का निश्चय किया है, जिससे मिल के फाटक के सामने धरना देने पर रोक लगाई जा सकेगी।

यह स्थिति उन्होंने अपनाई थी और, महोदय! मैं गंभीरतापूर्वक यह दावा करता हूं कि

अगर हड़ताली को समझौता करने की छूट हो,तो ज्यादा उचित होगा। मेरे ख्याल से यह ऐसा पहलू है,जिस पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है। एक मालिक क्यों समझौता करेगा,जब कि वह जानता है कि उसके पास अपनी शक्तियों को सक्रिय करने के लिए चार महीने 25 दिन का समय है और वह यह जानता है कि चार महीने 25 दिन के अंदर कोई भी मजदूर सक्रिय नहीं हो सकता, कोई मजदूर तैयार नहीं हो सकता और जब कि वह यह भी जानता है कि जिस अवधि के दौरान हड़ताल होनी है, उसमें केवल दो महीने के भीतर ही हड़ताल कर सकते हैं। वहां कोई लाभ नहीं है, कोई दबाव नहीं है, मालिक की कोई रुचि नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, शर्तों पर आते हुए अगर विधेयक के माननीय प्रस्तावक का यह विचार और उद्देश्य हो कि इस समझौते की कार्य-प्रणाली फले-फूले और किसी ऐसी ठोस अच्छाई के रूप में सामने आए जो दोनों पक्षों को मंजूर हो, तब मैं निवेदन करूंगा कि उचित प्रक्रिया यही है कि माननीय राबर्ट बेल द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को लागू किया जाए, यानि कि यह हड़ताल होने दी जाए। दूसरे शब्दों में, वर्तमान विधेयक के प्रावधानों को कायम रखा जाए। महोदय! लेकिन यहां सरकार उस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए तैयार नहीं है,जो कि अधिकारियों द्वारा अपनाया गया है। अधिकारियों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण यह था कि हड़ताल को रोकने की आवश्यकता नहीं है, जब कि एक लोकप्रिय सरकार जो श्रमिकों के वोट पर चुने जाने का दावा करती है, उस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करती, जो उसके अधिकारियों द्वारा अपनाया गया है। उसकी न तो मजदूर में रुचि है, न ही देश के कल्याण में। यदि यही प्रजातंत्र है, तो हो, परंतु मैं इसे प्रजातंत्र नहीं कहूंगा - वह प्रजातंत्र जो कामकाजी वर्ग को दास बना लेता है, जिसमें एक वर्ग शिक्षा से विहीन है, जीवन की जरूरतों की पूर्ति से रहित है, संगठन की किसी भी शक्ति से रहित है, बुद्धिमत्ता से रहित है, मैं निवेदन करता हूं कि यह प्रजातंत्र नहीं है, बल्कि प्रजातंत्र का उपहास है। विधेयक के मुख्य प्रावधानों के लिए इतनी बात काफी है।

महोदय! इस विधेयक के कई अन्य प्रावधान भी हैं,जिनका मैं उल्लेख करना चाहता हूं। ये प्रावधान खंड 4 से लेकर खंड 20 में सम्मिलित हैं। यदि इन खंडों की ओर देखें,तो ये चार विभिन्न विषयों का उल्लेख करते हैं। वे अर्हक संघ, पंजीकृत संघ, प्रतिनिधित्व संघ की विभिन्न धाराओं का भी उल्लेख करते हैं। महोदय! मुझे इस विधेयक के पिछले प्रारूप को पढ़ने का अवसर प्राप्त है। पिछले प्रारूप में भिन्न वाग्जाल है, जैसे कि सपाट संघ, लंबवत संघ, तिरछा संघ, लंबा संघ। मुझे खुशी है कि इस वाग्जाल को हटा दिया गया है। मैं कभी भी गणित में होशियार न था, और बहुत थोड़ा सा ही रेखा गणित जानता हूं। इस वाग्जाल के बदलने से जो थोड़ी राहत मिली है। उसके लिए मैं इस विधेयक के प्रस्तावक और उसे तैयार करने वालों को धन्यवाद देना उचित समझता हूं। दूसरी बात जिसका इन खंडों में उल्लेख है, वे संघों के विभिन्न वर्गों के पंजीकरण से संबंधित अवधि और शर्तों

एवं प्रक्रियाओं से संबंधित है। तीसरी बात इन मान्यता प्राप्त संघों या पंजीकृत संघों का प्रतिनिधित्व संघ के रूप में घोषित करने की अवधि और शर्तों एवं प्रक्रियाओं के बारे में है और चौथी बात, प्रतिनिधित्व संघ के रूप में संघ के पंजीकरण के लिए शर्तों और उसकी घोषणा को रद्द करने के संबंध में है। महोदय! मैं यह जानकर काफी भ्रमित हुआ हूं कि इस विधेयक के मुख्य प्रावधानों के साथ इन खंडों का क्या व्यावहारिक संबंध है? विधेयक के मुख्य प्रावधान हैं – अनिवार्य समझौता और समझौते की प्रक्रिया के दौरान हड़तालों पर सजा। मेरे ख्याल से इन दो विषयों से संबंधित खंडों और अन्य खंडों के बीच कोई मूलभूत संबंध नहीं है, जो कि विधेयक के मुख्य उद्देश्य हैं।

विधेयक के शीर्षक की बात करते हुए मुझे ऐसा लगता है कि उसके उद्देश्य को प्रकट करने के बजाए छुपाया गया है। विधेयक में एक शीर्षक है जिसके अनुसार – 'समझौते और मध्यस्थ द्वारा औद्योगिक विवादों और अन्य उद्देश्यों के लिए शांतिपूर्ण व सौहार्द्रपूर्ण समाधान को बढ़ावा देने के प्रावधान हेतु एक विधेयक।' महोदय! इसके अन्य उद्देश्य क्या हैं और वे विधेयक के शीर्षक में क्यों नहीं स्पष्ट किए गए हैं? मैं नहीं जानता कि क्या यह कुछ ऐसा मामला है,जिस पर किसी को भी शर्म आ जाए। विधेयक के दो भागों के बीच कोई व्यावहारिक संबंध था, या नहीं था; अगर था तो उसे प्रकट किया जाना चाहिए था और अगर कोई मूलभूत संबंध नहीं था,तब तार्किक निष्कर्ष यह है कि इन धाराओं को विधेयक से हटा देना चाहिए। लेकिन महोदय! यह मेरी मेहनत का फल निकला है कि उन दोनों के बीच मूलभूत संबंध है। वह मूलभूत संबंध क्या है, उसे विधेयक के खंड 75 का उल्लेख करके आसानी से देखा जा सकता है। विधेयक के खंड 75 के अनुसार :

> इस अधिनियम के तहत किसी भी प्रक्रिया में किसी कर्मचारी को उसके प्रतिनिधियों के अलावा उपस्थित होने का अधिकार नहीं होगा।

महोदय! यह एक बुनियादी धारा है और मैं कहता हूं कि यह भारत में समस्त मजदूर संघवाद की सबसे विनाशकारी धारा है। कर्मचारियों का यह प्रतिनिधि कौन है,जो समझौते की प्रक्रियाओं में मजदूरों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकारी है? औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए किसी भी प्रकार की संधि-वार्ता में शामिल होने का अधिकार किसी भी व्यक्ति को नहीं है, चाहे उसकी योग्यताएं कुछ भी हों।

इससे तब तक कोई फर्क नहीं पड़ता,जब तक कि वह उस परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता,जिसे इस विधेयक के द्वारा कर्मचारियों का प्रतिनिधि कहा गया है और यह परिभाषित करने के उद्देश्य से कि मजदूरों का प्रतिनिधि कौन है, मेरे माननीय मित्र ने विधेयक के खंड 4 से लेकर 20 तक प्रस्तावित किए हैं। वे सब इस खंड पर आधारित हैं। इसलिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इस विधेयक के अंतर्गत कर्मचारियों का प्रतिनिधि कौन है?

महोदय! इस विधेयक के तहत संघों की वे दो श्रेणियां आती हैं, जिनके पास मजदूरों

का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है। पहला संघ वह है, जिसके पास सदस्यों के रूप में मजदूरों का 20 प्रतिशत है या सदस्यों के रूप में मजदूर 20 प्रतिशत से कम नहीं हैं और उसे मालिक से मान्यता प्राप्त है। दूसरा संघ वह है, जिसकी सदस्यता 50 प्रतिशत से अधिक है और वह समझौते की प्रक्रियाओं में मजदूरों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। संघों की दो श्रेणियां ये ही हैं,जिनके पास मजदूरों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है। महोदय! अब मेरे माननीय मित्र, मंत्री जी, इन दोनों को ही प्रतिनिधि संघ कहना पसंद करते हैं। मैं इस परिभाषा से असहमत हूं। मेरे ख्याल से खरी बात कहनी चाहिए। खरी बात कहते हुए मेरा निवेदन है कि इस विधेयक में निस्संदेह दो तरह के प्रतिनिधि संघ हैं, लेकिन ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि एक बंधक संघ है और दूसरा मुक्त संघ। महोदय! मेरे इस कथन में न तो कोई अतिशयोक्ति है, न ही भाषा को तोड़ा–मोड़ा गया है कि एक संघ जिसके पास अधिकार है, वैधानिक अस्तित्व है, प्रतिनिधित्व करने एवं बोलने का अधिकार है लेकिन फिर भी जैसे मालिक की पूर्व स्वीकृति लेनी पड़ती है तो वह बंधक संघ है, न कि स्वतंत्र व्यक्तियों का संघ। मुझे लगता है कि शब्द 'स्वीकृति' व शब्द 'मान्यता' का जो इन्होंने प्रयोग किया है, वह बहुत अनुचित है।इसकी उचित परिभाषा होगी 'कर्मचारियों द्वारा स्वीकृत संघ' जैसे कि हमने साधारण शब्द में देखा, जिसकी हमें मंजूरी देने के लिए कहा गया था।

महोदय! अब जो बात मैं समझ नहीं पा रहा हूं और जिसे मेरे माननीय मित्र मुझे समझाएंगे, वह यह है कि उन्होंने इस विधेयक में किसी संघ को प्रतिनिधित्व का अधिकार देने के लिए पंजीकरण की ऐसी शर्तें क्यों रखी हैं। मैं विधेयक में इन प्रावधानों को समझने में बहुत कठिनाई महसूस कर रहा हूं। महोदय! प्रावधान का वर्तमान स्वरूप यह है कि 1926 में भारत सरकार ने श्रमिक संघ अधिनियम पारित किया था, जिसे बाद में श्रमिक संघ अधिनियम कहा गया। यह विधेयक उस अधिनियम को रद्द नहीं करता है। वस्तुतः, वह अधिनियम कायम है और आगे यह विधेयक इस बात पर जोर देता है कि इसके प्रावधानों के अंतर्गत किसी संघ का पंजीकरण होने से पहले उसका अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण होना आवश्यक है। इस विधेयक में दी गई संघ की परिभाषा से यह स्पष्ट है। मैं भी सदन को बताऊंगा कि ऐसा क्यों किया गया। मुझे लगता है इसके पीछे कोई इरादा है। इसलिए स्थिति यह है कि किसी संघ के पास दोहरा पंजीकरण होना चाहिए। एक तो 1926 के अधिनियम के तहत पंजीकरण तथा दूसरा नए अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण। मुझे ऐसा लगता है कि अगर मैं उन लाभों का उल्लेख करूं जो 1926 के अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण संघ को मिले हैं, तो बेहतर होगा कि हम यह जान सकें कि यह विधेयक और अधिक क्या देता है या क्या वह ऐसा कुछ है जिसे विधेयक छीन लेता है। 1926 के अधिनियम के अंतर्गत संघ के पंजीकरण के ये परिणाम हैं। संघ मुकदमा दायर करने और नालिश करवाने के अधिकार के साथ निगम बन जाता है। निगम के रूप में, उसके पास निश्चित रूप से अपने

सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है, अन्यथा एक निगम के अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं है। दूसरे, जैसा कि सदन महसूस करेगा, भारत सरकार के 1935 के अधिनियम के अंतर्गत ऐसा प्रावधान है कि 1926 के अधिनियम के तहत पंजीकृत संघ राजनैतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त कर लेता है, यानी कि अधिनियम 1926 के अंतर्गत पंजीकृत संघ इस सदन के लिए सदस्य चुन सकता है और इस सदन में ऐसे माननीय सदस्य हैं,जो इस तथ्य की गवाही देंगे। उसी तरह 1926 के अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत संघ के सदस्यों के पास बंबई नगरपालिका में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। महोदय! अब यह प्रश्न उठता है कि अगर 1926 के अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण संघ को प्रतिनिधित्व का अधिकार मिलता है, तो इस विधेयक के अंतर्गत और पंजीकरण कराने की क्या आवश्यकता है? अगर 1926 के अधिनियम के तहत पंजीकृत संघ, इस सदन में बोलने के लिए और इस सदन में मत देने के लिए संपूर्ण मजदूर निकाय के सदस्यों को, प्रतिनिधियों के रूप में भेजने में समर्थ है तो इस विधेयक के अंतर्गत पंजीकरण करने की क्या आवश्यकता है? मैं इस प्रश्न का उत्तर बाद में चाहूंगा। विधेयक जो करता है,वह बहुत ही विचित्र बात है, जिसको मैं समझ नहीं पाया हूं। 1926 के अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत संघ, सदन के तहत स्थिति की विसंगति को महसूस नहीं कर सकता। 1926 के अधिनियम के तहत पंजीकृत संघ विधान-मंडल में मजदूरों का प्रतिनिधित्व करने में काफी सक्षम है, वह विधेयक के तहत समझौता अधिकारी के समक्ष मजदूरों का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम क्यों नहीं है? फिर यह विसंगति क्यों है? विधेयक मात्र विसंगति ही पैदा नहीं करता, बल्कि वह 1926 के अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत संघों के विशेषाधिकारों का हनन भी करता है।

इस संदर्भ में मैं सदन का ध्यान 1934 के बंबई अधिनियम के प्रावधानों की ओर दिलाना चाहता हूं कि उसके अंतर्गत क्या होता था। जब समझौते की प्रक्रियाएं शुरू हुईं, वे सदस्य जो इस अधिनियम के प्रावधान जानते हैं, जिन्हें याद होगा कि धारा 9 के तहत मजदूरों का प्रतिनिधित्व नुमाइंदों द्वारा हुआ था। इस अधिनियम का यही प्रावधान था। धारा 9 के ये शब्द हैं:

> धारा 8 के तहत, नोटिस मिलने पर, औद्योगिक विवादों में भाग लेने वाले, नोटिस में दिए समय के अंदर या इस ओर से समझौता अधिकारी द्वारा तय किए गए समय में, प्रतिनिधियों को इस ढंग से नियुक्त कर सकते हैं, जैसा कि समझौता अधिकारी निर्देश दे।

इसलिए 1934 के अधिनियम के अंतर्गत समझौते की प्रक्रिया में प्रतिनिधियों द्वारा मजदूरों का प्रतिनिधित्व किया गया। इन प्रतिनिधियों का चुनाव कैसे हुआ? 1934 के अधिनियम के तहत समझौता अधिकारी के समक्ष मजदूर का प्रतिनिधित्व करने वाले इन प्रतिनिधियों का चयन करने के अधिकारी कौन थे? महोदय! मैंने इस अधिनियम में बनाए गए नियमों को पढ़ा है और नियमों का उल्लेख यह प्रमाणित करेगा कि जो पक्ष प्रतिनिधियों का चुनाव करने के अधिकारी थे, वे ही पंजीकृत श्रमिक संघ थे,जो 1926 के औद्योगिक

विवाद अधिनियम के तहत पंजीकृत किए गए थे। यह 1934 के बंबई अधिनियम के अंतर्गत नियमों के नियम संख्या 3 में प्रस्तावित है। इसलिए यह स्पष्टतया प्रमाणित हो जाता है कि इस क्षण तक जो संघ केन्द्रीय विधान-मंडल के 1926 के अधिनियम के तहत पंजीकृत था, उसे इस तथ्य के कारण कि पहले वह निगम था, सभी स्थानों और सभी संयोजनों पर मजदूरों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है। संवैधानिक रूप से, 1935 के भारत सरकार के अधिनियम के द्वारा उन्हें विधान-मंडल में मजदूरों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार किया गया है, और 1934 का बंबई अधिनियम, स्पष्ट तौर पर यह मानता है कि उस अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत श्रमिक संघ, यानी 1934 का बंबई अधिनियम समझौता अधिकारी के सामने प्रतिनिधि भेजने का एक मात्र अधीकारी निकाय है। महोदय! मेरी पहली शिकायत यह है कि यह विधेयक एक मूल्यवान अधिकार छीन लेता है,जो संघ के पास था और उसे किसको देता है? यह उसे बंधक संघ को देता है, जैसा कि मैं अभी बताने वाला हूं। अगर यह स्वतंत्र संघ को दिया जाता, तो मुझे बुरा नहीं लगता। महोदय! फिर ऐसा क्यों हुआ, यह समझने के लिए एक आवश्यक मुद्दा है; ऐसा क्यों है कि इस विधेयक के अंतर्गत पंजीकृत संघ को 1926 के केन्द्रीय अधिनियम के तहत भी पंजीकरण कराने की आवश्यकता है? महोदय! यह और कुछ नहीं बल्कि राजनैतिक या आर्थिक लाभ पाना है, जैसा कि अमरीकावासी कहते हैं। मेरे माननीय मित्र चाहते हैं कि इस विधेयक के तहत बने संघों को न सिर्फ समझौता अधिकारियों के समक्ष प्रतिनिधित्व करने का अधिकार मिले, बल्कि वह उस राजनैतिक प्रतिनिधित्व को भी आसानी से रौंद डाले, जो कि 1926 के आधनियम के अंतर्गत पंजीकृत संघ को मिला है। यह हड़प करने की नीति है।

और यह सब राजनैतिक व आर्थिक शक्तियों की बंदरबाट किसके फायदे के लिए है? मैं फिर कहता हूं कि यह बंधक संघों के लिए है। निस्संदेह, अगर मेरे माननीय मित्र सोचते हैं कि मालिक की अनुमति के सिद्धांत पर आधारित संघवाद में कुछ गलत नहीं है, तो मेरा कोई झगड़ा नहीं है। यह उनके जीवन का दर्शन है न कि मेरे जीवन का, अगर वह सोचते हैं कि एक व्यक्ति,जो कि दास बना हुआ है, वह मुक्त व्यक्ति है तो यह उनका दृष्टिकोण है, अगर वह सोचते हैं कि उद्योग में शांति रहे,इसलिए कर्मचारी को अपने मालिक से बंधा रहना चाहिए,तो यह भी उन्हीं का सोचना है, इसमें मेरा कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन अपने लिए मैं उस स्थिति को जानने के लिए तैयार नहीं हूं। हम केवल मात्र शांति नहीं चाहते और फिर मैं उस तरह की शांति को नकारता हूं, जैसी कि हमने चाही है। (श्री एस.वी. पारूलेकर: सही है) निश्चित रूप से यह उस आदमी की शांति है, जिसका पेट भरा हुआ है और जिसकी तोंद फूली हुई है। मुझे उस तरह की शांति नहीं चाहिए।

जिस प्रश्न में मेरी रुचि है, वह यह है कि मैं मामले का उदार दृष्टिकोण अपनाने को तैयार हूं और मैं जानना चाहता हूं कि क्या यह उदार दृष्टिकोण परवान चढ़ेगा। जैसा कि मेरे

माननीय मित्र ने कहा है, ऐसा हो सकता है कि भारत में कोई संवाद न हो; ऐसे भी लोग हो सकते हैं जो संघों के विकास को नष्ट कर रहे हों। मुझे आश्चर्य है कि उन्हें अभी भी साम्यवादी दल के सदस्यों के डर पर विचार करना चाहिए, जो पहले कांग्रेस की तरफ से कंटक थे, लेकिन अब जो उसमें सम्मिलित हो गए हैं – वे खुले आम शांति चाहते हैं, वे खुले आम सच्चाई चाहते हैं, वे खुले आम अहिंसा चाहते है, यहां तक कि जैसा मैं समझता हूं, उन्होंने चार आने भी खर्च किए हैं। क्यों, मैं पूछता हूं क्या उन्हें अब इस बात का डर है कि कोई मजदूरों के शांतिपूर्ण विकास के खेल को नष्ट कर रहा है? मान लें ऐसा है, तो चलिए देखते हैं,इसका अंत कैसे होता है। अगर मेरे माननीय मित्र मुझे संतुष्ट कर दें कि ऐसा समय आएगा,जब जिसे मैं बंधक संघ कहता हूं,वह स्वतंत्र संघों में विकसित होगा, तो संभवतया मैं अपने दृष्टिकोण पर दुबारा विचार करूं। परंतु मुझे यह कहने में बिल्कुल भी हिचक महसूस नहीं होती कि कभी भी स्वतंत्र संघ नहीं होंगे और यह इसलिए क्यों कि उन्होंने स्वतंत्र संघ पर जो शर्तें लागू की हैं, वे इतनी असंभव हैं कि कभी पूरी नहीं हो सकतीं। मुक्त संघ की क्या शर्तें हैं, शर्तें ये हैं कि आप हमेशा यह दिखाएं कि रजिस्टर में आपके पास 50.1 प्रतिशत सदस्यता है।20 प्रतिशत पर्याप्त नहीं है, 25 प्रतिशत पर्याप्त नहीं है, अगर आप स्वतंत्र होना चाहते हैं,तो 50.1 प्रतिशत का गणितीय अनुपात दिखाएं। महोदय! मैं यह प्रश्न पूछना चाहता हूं कि क्या यह तर्कसंगत शर्तें हैं? अगर मैं रोम के कानून – सादृश्यता का प्रयोग करूं,तो यह दास बनाने से शुरू होता है। अगर पारिभाषिक ढंग से कहें,तो इसमें भी दास मुक्ति का प्रावधान था। अंततः दासों को मुक्त कर दिया गया और वे स्वतंत्र व्यक्ति बन गए, नागरिक बन गए। उसी सादृश्यता को लागू करते हुए, मैं कहूं कि हमने भी दासता से शुरुआत की क्योंकि स्वीकृति व मान्यता दासता से कुछ कम नहीं थी। लेकिन क्या दास मुक्ति का कोई प्रावधान है? और अगर ऐसा कोई प्रावधान है, तो क्या वह तर्कसंगत है और कोई ऐसी संभव शर्तें हैं,जिन्हें कर्मचारियों से पूरा करने की उम्मीद की जा सके? शर्त यह है कि तब आप कर्मचारियों की कुल संख्या में से 50.1 प्रतिशत अवश्य दिखाएं और तभी आप अपने मालिक के बंधन, और दंड से बच सकते हैं। क्या यह संभव होने योग्य शर्तें हैं?

महोदय! अब मेरे माननीय मित्र,जो शायद हमें पथभ्रष्ट कहना चाहेंगे, हमारा ध्यान अहमदाबाद में विद्यमान आदर्श स्थिति की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। हमें कहा गया है कि अहमदाबाद की पुस्तक से एक पृष्ठ निकाल लें और उस आदर्श का पालन करें। मैं ऐसा करने को तैयार हूं। चूंकि मैंने उदाहरण का अध्ययन किया है, इसलिए यह प्रश्न पूछना आवश्यक हो जाता है , इस विधेयक के अंतर्गत अहमदाबाद मजूर-महाजन के स्वतंत्र संघ हो जाने की क्या कोई संभावना है? मुझे कोई आशा नहीं है कि वह संघ स्वतंत्र कर्मचारियों का संघ बन सकता है। निश्चित रूप से अहमदाबाद एक आदर्श स्थान है, जैसा कि राजकीय

कमीशन ने इंगित किया है कि भारत में कहीं भी ऐसी आदर्श संस्था विद्यमान नहीं है। वहां ऐसे कर्मचारी हैं, जिनका धर्म वही है,जो मालिक का है, सिर्फ उन कुछ मुसलमानों को छोड़कर जो बुनकर हैं और जो संघ के बाहर हैं। कर्मचारी वही भाषा बोलते हैं,जो कि उनके मालिक। वहां सांस्कृतिक एकता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। इसलिए अन्य स्थितियों में जो भी पृथकतावादी एवं दुर्दांत प्रवृत्तियां हो सकती हैं, वे वहां विद्यमान नहीं हैं। इन सबसे बढ़कर वहां महात्मा जैसा महान व्यक्तित्व है, जिस पर शायद प्रत्येक दुर्दांत श्रद्धा रखे और उनका अनुसरण करे, चाहे उसकी कितनी ही व्यक्तिगत शिकायतें क्यों न हों। अहमदाबाद मजूर-महाजन संघ इनके ही तत्वावधान में विकसित हुआ है। उसका जीवन दो दशकों से ज्यादा का है, मुझे बताया गया है कि वह अठारह वर्षों से विद्यमान है। उस संघ की क्या स्थिति है? मेरे पास मई 1938 का लेबर गजट है, जिसमें इसके आंकड़े हैं और विश्लेषण करने पर मुझे पता चला कि ऐसी स्थिति अहमदाबाद में थी। मैं केवल कपड़ा उद्योग को ले रहा हूं। अहमदाबाद कपड़ा उद्योग में कर्मचारियों की कुल संख्या 90,000 है। यह उन कर्मचारियों की कुल संख्या है,जो संघ में सम्मिलित हैं। मजूर-महाजन, जैसा कि सब जानते हैं पांच विभिन्न संघों का संघ है और इसकी कुल संख्या 22,000 है। यह संख्या मई 1938 में थी। महोदय! इसका कुल योग; मैं कमजोर गणितज्ञ हूं, अगर कोई मेरे आंकड़ों का संशोधन करे,तो मुझे ठीक कर दिया जाए – इसका कुल योग – मेरे अनुसार 21 प्रतिशत है; यानी संघ की सदस्यता कपड़ा उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों की कुल संख्या का 21 प्रतिशत है। इस परीक्षण को अहमदाबाद पर भी लागू करते हुए, मैं कहता हूं, क्या कोई कह सकता है कि अगर हमें आज पंजीकरण के लिए आवेदन देना पड़े, तो क्या अहमदाबाद मजूर-महाजन, मालिक की स्वीकृति के बिना ऐसा कर सकता है? नहीं।

(सभा मध्यावकाश के बाद ढाई बजे पुन: समवेत होगी)

डा. भीमराव अम्बेडकर : माननीय अध्यक्ष महोदय! मध्यावकाश से पहले मैं इस बात पर जोर देने की कोशिश कर रहा था कि इस विधेयक में निहित शर्तों के अंतर्गत इस देश में किसी स्वतंत्र संघ के विकसित होने की संभावना नहीं है और जो मैं कहना चाहता हूं उसका उल्लेख मैंने अहमदाबाद मिल मजदूर संघ की स्थिति का हवाला देते हुए प्रस्तुत किया है और यह दर्शाया है कि अहमदाबाद में विद्यमान अति अनुकूल स्थितियों के होते हुए भी मजूर-महाजन के लिए वहां अपना स्वतंत्र संघ बनाना संभव नहीं, जब कि वह मालिक का अनुमोदन प्राप्त किए बिना अधिनियम के अंतर्गत मान्यता पाने का हकदार है। महोदय! यह सचमुच बहुत ही दुष्कर स्थिति है,जिसे कि इंग्लैंड जैसे औद्योगिक रूप से संगठित देश में भी महसूस करना संभव नहीं होगा। दुर्भाग्यवश, सभी प्राप्य पुस्तकों में हमें देश में विभिन्न संघों की कुल सदस्यता के आंकड़ों का सेट मिलता है, लेकिन हमें इसके साथ कहीं भी ऐसे आंकड़े नहीं मिले जो देश में विभिन्न उद्योगों में कार्यरत व्यक्तियों की कुल संख्या दर्शाते

हों। परिणामत: यह जान लेना आसान नहीं कि इंग्लैंड में कर्मचारियों का कुल प्रतिशत कितना है,जिन्हें देश में संघों का सदस्य कहा जा सके। लेकिन यहां मुझे श्री वाल्टर सिटराइन द्वारा लिखित एवं 1926 में प्रकाशित पुस्तक का समर्थन प्राप्त है। इंग्लैंड में श्रमिक आंदोलन से परिचित प्रत्येक व्यक्ति को पता होगा कि उसकी श्रमिक आंदोलन में एक महत्वपूर्ण स्थिति है और इसलिए जिस मामले पर हम विचार कर रहे हैं, उसमें उनकी पुस्तक को एक प्रामाणिक दस्तावेज की तरह लिया जा सकता है। उन्होंने दिखाया है कि दुर्भाग्वश वर्ष 1924 के अंतिम समय में नए आंकड़े नहीं थे। इंग्लैंड में स्थिति यह थी कि विभिन्न उद्योगों में कार्यरत व्यक्तियों की कुल संख्या एक करोड़ अस्सी लाख थी, जब कि संघों के स्त्री-पुरुष सदस्यों की संख्या केवल 55,31,000 थी। इसका मतलब है कि यह निश्चित रूप से लगभग 30 प्रतिशत से अधिक नहीं थी। अब, अगर इंग्लैंड जैसे देश में ऐसी स्थिति है,जहां मजदूर बहुत ही अच्छी तरह से संगठित हैं और उद्योग बड़ी तादात में फैले हुए हैं, तो हम भारत जैसे देश में क्या उम्मीद कर सकते हैं? इसलिए मेरा निवेदन है कि विधेयक में बताई गई शर्तें बहुत असंभव शर्तें हैं और अगले 10 या 20 वर्षों तक की स्थिति को देखते हुए कोई भी मजदूर संगठन अपने आपको इतना मजबूत नहीं बना सकेगा कि अपनी सदस्यता सूची में 51 प्रतिशत श्रमिकों को दिखा सके। परिणामत: इसका निर्विवाद रूप से यह निष्कर्ष रहा कि हड़ताल में समझौता प्रक्रियाओं में जिस प्रकार का मजदूर संघ मजदूरों का प्रतिनिधित्व करेगा, वह कुछ और नहीं होगा, बल्कि मालिकों से मान्यता प्राप्त उनका गुलाम संघ होगा।

महोदय! मैं अब दो अन्य अति महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं - पहला प्रश्न यह है कि भारत श्रमिक संघों के विकास पर विधेयक का क्या प्रभाव पड़ेगा? उस दृष्टिकोण से मैं निवेदन करता हूं कि विधेयक का अति महत्वपूर्ण खंड 8, उप-खंड (क) है। अब इस खंड में ऐसा एक सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है, जिसे मैं असामान्य प्रकार का सिद्ध करने का प्रयास करूंगा। इस खंड के अनुसार 'किसी उद्योग या व्यवसाय के संदर्भ में, जैसा भी मामला हो, रजिस्ट्रार किसी स्थानीय क्षेत्र में एक संघ से ज्यादा का पंजीकरण नहीं करेगा।' दूसरे शब्दों में, विधेयक में कर्मचारियों से यह कहने का प्रावधान है कि अगर वे एक श्रमिक संघ में संगठित होना चाहते हैं, तो वे एक उद्योग या व्यवसाय में केवल एक ही संघ बना सकते हैं। वह कर्मचारियों को बताता है कि अगर वे एक श्रमिक संघ में संगठित होना चाहते हैं, तो किसी निश्चित परिभाषित स्थानीय क्षेत्र में एक उद्योग या व्यवसाय में वे केवल एक ही संघ बना सकते हैं। महोदय! अब मेरा दावा यह है कि विधेयक में एक प्रावधान है, जो मेरे विश्वास के मुताबिक इस देश में संघों की संख्या बढ़ने से रोकेगा। सर्वप्रथम, मैं इस विधेयक के प्रस्तावक से यह जानना चाहता हूं कि क्या विश्व के किसी अन्य हिस्से में यह सिद्धांत लागू होता है? महोदय! अब जहां तक ब्रिटेन के श्रमिक संगठनों की स्थिति का मेरे द्वारा किए गए अध्ययन का सवाल है, मैं एक

व्यक्ति की प्रामाणिकता को उद्धृत करने को तैयार हूं, जो इस क्षेत्र में यह प्रमाणित करने में पूर्णत: सक्षम है कि निश्चित रूप से ब्रिटेन के कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। वस्तुत: अंग्रेजी कानून में श्रमिकों द्वारा संगठित होने के लिए किसी भी तरीके का अपनाना उन पर छोड़ दिया गया है। वहां ऐसा कोई नियम नहीं है कि संघ किसी एक उद्योग और किसी एक व्यवसाय तक ही सीमित रहे और न ही ऐसा कोई कानून है कि संघ किसी एक मामले को ले। इस मुद्दे पर मैं सदन का ध्यान शेविड्डन और मायरडिन ईवान्स की हाल ही में प्रकाशित पुस्तक *द एम्पलायमेंट एक्सचेंज सर्विस आफ ग्रेट ब्रिटेन* के एक अंश की ओर दिलाना चाहता हूं, और उनका निष्कर्ष यह है, जिसे मैं पृष्ठ 30 से पढ़ रहा हूं:

> यह आवश्यक नहीं है कि किसी एक उद्योग के समस्त कर्मचारी एक ही संघ में संगठित हों, बल्कि वे अनेक विभिन्न संघों में सम्मिलित हो सकते हैं: कुछ मामलों में संगठन जिलों के आधार पर होता है,जब कि अन्य मामलों में व्यावसायिक आधार पर और किसी एक उद्योग में कर्मचारियों का एक भाग उस संघ में भी शामिल हो सकता है जो सामान्यत: अन्य उद्योग के कर्मचारियों की आवश्यकता पूरी करता हो या कोई सामान्य श्रमिक संघ हो। कई मामलों में आंशिक संघ किसी ऐसे परिषद या महासंघ में सम्मिलित है,जो किसी खास उद्योग के संपूर्ण भाग में या अधिकांश भाग में सक्रिय हैं या उस महासंघ या संघ में सक्रिय हैं, जो विभिन्न उद्योगों में उसी व्यवसाय या उसके समान व्यवसायों में लगे सदस्यों को लेते हैं, या आम श्रमिक संघों के किसी महासंघ से संबद्ध है।

इससे पता चलता है कि इंग्लैंड में आम श्रमिक संघ हो सकते हैं, अर्थात विभिन्न उद्योगों में कार्यरत कर्मचारी परस्पर संगठित हो सकते हैं और संघ बना सकते हैं। आम श्रमिक संघ का भी यही अर्थ है। जहां तक उद्योग या व्यवसाय का संबंध है, हो सकता है कि एक मजदूर का दूसरे के साथ कोई मतलब ही न हो, इसलिए वहां आम श्रमिक संघ ही हो सकता है। लेखक यह भी बताता है कि इंग्लैंड में विभिन्न उद्योगों से संबंधित व्यक्ति संघ बना सकते हैं। उदाहरण के तौर पर मान लें कि कोई व्यक्ति खनिक है तो भी वह ऐसे किसी अन्य संघ का सदस्य बन सकता है, जिसका खानों से कोई संबंध नहीं है। इसलिए इंग्लैंड में कानून पूर्णतया कर्मचारियों पर यह बात छोड़ देता है कि वे किस ढंग से, किन परिस्थितियों में संगठित होंगे। कानून केवल यह देखता है कि संघ एक अवैधानिक निकाय न बन जाए। वह यह भी देखता है कि पंजीकरण से पहले संघ के निश्चित विधिसम्मत उद्देश्य हों। संघ के उद्देश्यों की जांच करने के अलावा अंग्रेजी कानून निश्चित रूप से यह नहीं देखता कि क्या संघ किसी एक निश्चित ढंग से संगठित है या संगठित नहीं है और मेरी समझ में यह नहीं आता कि इस देश में इस सिद्धांत को क्यों नहीं अपनाया जा सकता? मुझे इसमें कोई न्यायसंगत बात नजर नहीं आती और मुझे नहीं पता कि अब इस विधेयक में यह सिद्धांत

क्यों प्रस्तावित किया गया है।

महोदय! क्या एक उद्योग या एक व्यवसाय में कार्यरत समस्त मजदूरों का संघ होना संभव है? मुझे यकीन है कि इसी कारण से यह संभव नहीं है। जैसा कि सब जानते हैं कि किसी श्रमिक संघ के तीन परस्पर भिन्न उद्देश्य या लक्ष्य हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि किसी संघ के अपने हित विशेष के संवर्धन से जुड़े प्रयोजन हों, जैसे कि कर्मचारी, मजदूरी, कार्य के घंटे, उद्योग में तरक्की आदि।

इन्हें सिर्फ श्रमिक संघ गत उद्देश्य कहा जाता है। इसके अतिरिक्त, एक श्रमिक संघ के सामाजिक उद्देश्य हो सकते हैं, जो कुछ लाभ प्रदान करते हैं, जैसे – वृद्धावस्था पेंशन देना, सदस्यों को बेरोजगारी भत्ता देना, उनकी विधवाओं को पेंशन देना आदि। इंग्लैंड में ये सामाजिक उद्देश्यों के नाम से जाने जाते हैं। संघ का एक उद्देश्य किसी ऐसी राजनैतिक विचारधारा को आगे बढ़ाना भी हो सकता है,जिसे वह अपनी आर्थिक व सामाजिक स्थिति की सुरक्षा के लिए अधिक उपयुक्त समझता हो। महोदय! अब मेरा प्रश्न है कि क्या किसी उद्योग में कार्यरत समस्त व्यक्तियों के लिए इन तीनों उद्देश्यों पर सहमत होना संभव है? मुझे नहीं लगता कि समस्त मामलों में सकारात्मक उत्तर देना संभव होगा और मैं विस्तृत रूप से इस मामले पर विचार करने का प्रस्ताव करता हूं, ताकि यह दिखा सकूं कि हमें सकारात्मक उत्तर क्यों नहीं मिल सकता। इसी तरह का एक मामला लेते हैं, उदाहरण के तौर पर बंबई में कपड़ा मिल मजदूरों की एक संस्था है और मैं इस मामले में केवल प्रासंगिक पहलू को ही लूंगा, क्योंकि मैं अपने तर्क पर जोर देना चाहता हूं। वहां मिल उद्योग में कई मुसलमान कर्मचारी हैं। वे श्रमिक संघ का सदस्य बनने को उत्सुक हैं। लेकिन अन्य गैर-मुसलमान कर्मचारी चाहते हैं कि संघ के कर्मचारी कांग्रेस की राजनैतिक पद्धति का अनुसरण करें। ऐसे भी मुसलमान सदस्य हैं जो संघ में शामिल होने को तैयार हैं लेकिन मुस्लिम लीग की राजनीति का अनुसरण करना बेहतर समझते हैं। जब तक इन दो में से एक भी पार्टी अपना राजनैतिक कार्यक्रम छोड़ने को तैयार न होगी,तब तक वे दो जनसमूहों को कैसे एक करेंगे? अन्य दृष्टांत देखें – ऐसे कई कर्मचारी हैं,जो अछूत समुदायों के हैं। वे एक संघ का सदस्य बनने को तैयार हैं, पर साथ ही वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि जिस समुदाय से उन्हें लिया गया है, उस समुदाय के फायदे के लिए संघ को कुछ सामाजिक लक्ष्यों को बढ़ावा देना चाहिए। वे चाहते हैं कि उनके समुदायों को कुछ अन्य सुविधाएं प्रदान की जाएं, किंतु अन्य वर्गों के कर्मचारी उनसे सहमत नहीं हैं। यह संघ कैसे बनेगा? मेरी समझ में नहीं आता कि आप ऐसी शर्तें क्यों रखते हैं, जिससे कुछ भी कर पाना इतना असंभव हो जाता है। मुझे यह सोचना चाहिए था कि इस विधेयक में सम्मिलित प्रस्ताव इतना ही तर्कसंगत व विवेकपूर्ण है, जितना कि किसी स्वास्थ्य अफसर का यह निर्धारित करना कि आप विशेष तरह का घर बनाएं, आपका दरवाजा सिर्फ दक्षिण की ओर खुले, कोई भी दरवाजा उत्तर की ओर

न हो, आपके पास केवल विशेष प्रकार की खिड़की हो, घर एक विशेष ऊंचाई से अधिक ऊंचा न हो, एक ऐसा घर बनाएं जिसका एलिवेशन (उत्थापन) विशेष प्रकार का हो। इसलिए या तो आप ऐसा घर बनाएं, जो इन नियमों को पूरा करता हो, वरना आप गली में पड़े रहें। यह विधेयक इसी तरह का विकल्प कर्मचारियों के सामने प्रस्तुत करता है। अगर मजदूरों के संगठन का मामला उनकी इच्छा पर छोड़ दिया जाए, तो इसमें बुराई क्या हो सकती है? आपको इससे क्या लेना देना है? मुझे समझ नहीं आता ये सब क्या है और एक उद्योग में कार्यरत लोगों को एक संघ विशेष में लाकर आपको क्या मिलेगा? जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूं, मेरा दृष्टिकोण यह है कि अगर आप यह असंभव शर्तें लगाएंगे,तो लोग संघ बनाने की बिल्कुल चिन्ता नहीं करेंगे। मेरे विचार से जो मुसलमान जिस किसी भी राजनीतिक विचारधारा को चुनना चाहते हैं, उन्हें उनकी पसंद की विचारधारा चुननी चाहिए। अगर वे सोचते हैं कि यदि उनका श्रमिक संघ मुस्लिम लीग की नीति का अनुकरण करने को तैयार नहीं है और उनके लिए श्रमिक संघ के होने का कोई फायदा नहीं है, तो हो सकता है वे किसी संघ में शामिल ही न हों। उसी तरह अगर अछूत महसूस करते हैं कि उन्हें अपने बच्चों की शिक्षा और उनके समुदाय से संबंधित अन्य सुविधाओं के लिए कुछ प्रावधान बनाने की अनुमति नहीं है, तो वे उस संघ का न होना ही पसंद करेंगे। आप ऐसा करके कौन सी स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं? आप ऐसी स्थिति पैदा कर रहे हैं कि लोग कोई भी संघ न बनाने के लिए बाध्य हो जाएं। इसलिए मेरा निवेदन है कि यह ऐसा प्रावधान है, जिसकी परिकल्पना बहुत ही शरारतपूर्ण ढंग से की गई है।

महोदय! उपबंध 4 से 20 में दूसरा प्रश्न यह उठता है कि श्रमिक संघ के आंदोलन की स्थिरता पर इस विधेयक का क्या प्रभाव पड़ेगा? मान लें कि अंततः किसी श्रमिक संघ में मालिक के नियंत्रण से मुक्त होने की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हो जाती है, तो इस विधेयक के उपबंधों में क्या कोई ऐसी गारंटी है कि वह संघ एक क्रियात्मक संघ के रूप में ही बना रहेगा? जहां तक मैं इस विधेयक के प्रावधानों का अध्ययन कर पाया हूं, उनके अनुसार एक बार पंजीकृत संघ उसी पंजीकरण को बनाए रखेगा। खंड 10 सबसे खतरनाक है। वह खंड संघ पर हमेशा एक तलवार की तरह लटका रहेगा ; इसका अस्तित्व हमेशा संकट में रहेगा और यह कभी निश्चित नहीं हो पाएगा कि आज जो इसका विधिसम्मत अस्तित्व है। क्या वह कल भी बना रह पाएगा?क्योंकि अगर कोई विशेष परिस्थिति न पैदा हो,तो इसका पंजीकरण कभी भी रद्द किया जा सकता है और एक बार पंजीकरण रद्द हो गया, तो वह पूरा ढांचा मिट जाएगा जो बहुत मेहनत से और बहुत शक्ति लगाकर बनाया गया था। महोदय! इसमें आगे भी शरारत की गई है और वह यह कि संघ के पंजीकरण का रद्द होना विरोधी संघ या मालिक पर छोड़ दिया जाए,जिसका मतलब यह होगा कि विरोधी संघ को नष्ट करने के लिए विभिन्न श्रमिक संघों के व्यक्तियों के बीच आपसी दुश्मनी, आपसी ईर्ष्या व कड़ी

प्रतिस्पर्धा होगी। इसलिए जो श्रमिक संघ विधेयक के तहत एक बार पंजीकृत हो गया है, उसके निरंतर अस्तित्व में रहने के लिए उसकी सदस्य-सूची में कर्मचारियों की कुल संख्या को 51 प्रतिशत होनी चाहिए। महोदय! मैं फिर पूछना चाहता हूं कि क्या किसी संघ के लिए यह दिखाना संभव होगा कि उसके पास कार्यरत कर्मचारियों की कुल संख्या के 51 प्रतिशत सदस्य हैं? यह एक दिलचस्प बात होगी। मै मानता हूं कि मैं सदन को यह दिखा दूं कि कैसे श्रमिक संघ की सदस्यता साल-दर-साल घटती-बढ़ती है और मैं ये आंकड़े देता हूं, जो मैंने ग्रेट ब्रिटेन के आंकड़ों से लिए हैं। वर्ष 1892 में श्रमिक संघों की कुल सदस्य संख्या 1,576,000 थी। वर्ष 1910 में यह 2,565,000 हो गई थी। 1920 में यह 8,346,000 थी, लेकिन वर्ष 1934 में घट कर 4,441,000 रह गई। दस वर्षों में श्रमिक संघों की सदस्य संख्या 50 प्रतिशत घट गई। यहां हम एक उद्योग विशेष के आंकड़े ले रहे हैं। कृषि क्षेत्र में वर्ष 1920 में कुल सदस्य 210,000 थे,जो 1932 में केवल 33,000 रह गए, उनकी संख्या 210,000 से घटकर 33,000 रह गई। 1920 में कोयला खनन उद्योग में सदस्य संख्या 1,115,000 थी। 1932 में वह घटकर 554,000 रह गई। धातु उद्योग में 1920 में यह संख्या 1,172,000 थी। 1932 में 527,000 थी। गृह निर्माण उद्योग में 1920 में सदस्यों की संख्या 563,000 थी। 1932 में वह घटकर 275,000 रह गई। परिवहन व आम मजदूरों की कुल सदस्य संख्या 1920 में 1,685,000 थी, जब कि 1932 में वह घटकर 660,000 रह गई। 1920 में श्रमिक संघ कांग्रेस की कुल सदस्य संख्या 6,505,000 थी, जब कि 1932 में इसमें केवल 3,613,000 सदस्य रह गए। महोदय! अगर इंग्लैंड जैसे देश में जहां श्रमिक संघवाद कर्मचारी के लिए सहज स्वाभाविक बात कही जा सकती है, वहां श्रमिक संघ की सदस्यता एक दशक में 50 प्रतिशत घटती-बढ़ती है, तो यह समझ में नहीं आता कि कोई कैसे यह उम्मीद कर सकता है कि हमारे इस देश में श्रमिक संघों का कोई भी संगठन हमेशा अपनी सदस्य-सूची में कुल श्रमिकों के 51 प्रतिशत की सदस्यता कैसे बनाए रख सकता है? अगर सदस्यता एक प्रतिशत तक गिर जाती है, तो अपना सारा कारोबार ही खत्म करना पड़ेगा। मैं पूछता हूं कि क्या यह तर्क संगत है, क्या यह ऐसी शर्त है, जिससे श्रमिक संघ आंदोलन का विकास सुनिश्चित हो सकेगा? अगर प्रत्येक पंजीकृत श्रमिक संघ को अपने पंजीकरण को रद्द समझने के लिए तैयार रहना पड़े और दिन-प्रतिदिन इसी पशोपेश में रहना पड़े, तो इस देश में श्रमिक संघवाद की अभिवृद्धि का भविष्य क्या है?

महोदय! एक खेदजनक लक्षण और भी है,जो गंभीर विचार का विषय हो सकता है, और यह कि इस विधेयक के तहत जिस व्यक्ति को संघ के पंजीकरण को रद्द करने का अधिकार दिया गया है, वह अपने ही संघ के पंजीकरण के लिए आवेदन नहीं कर सकता है। मैं इस प्रस्ताव के औचित्य को तब तो अच्छी तरह समझ सकता था, यदि पंजीकरण रद्द करने का अधिकार संघ के उन सदस्यों को दिया गया होता, तो इस तथ्य के कारण अपने

संघ को पंजीकृत करवाने की स्थिति में होते कि उनके पास अपेक्षतया अधिक सदस्य हैं। मैं उस स्थिति को अच्छी तरह से समझ सकता हूं, लेकिन विधेयक के खंड 10 को पढ़कर यह पता चलता है कि किसी व्यक्ति को अपने संघ का पंजीकरण कराने की स्थिति में होना आवश्यक नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि उसके पास किसी उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों की कुल संख्या का 51 प्रतिशत भी सदस्यता के रूप में न हो। किसी शरारत करने वाले के लिए केवल इतना ही प्रमाणित करना आवश्यक है। मालिक की हाजिरी-बही और संघ की हाजिरी-बही के हिसाब से कर्मचारियों की प्रतिशतता 50 प्रतिशत से कम हो गई है। जैसा कि मैंने कहा, औद्योगिक शर्तों के तहत जहां काम घटता-बढ़ता रहता है और तदनुसार मजदूर भी घटते-बढ़ते रहते हैं, वहां इन शर्तों की पूर्ति करना असंभव है।

महोदय! एक और प्रावधान है, जिसकी ओर मैं सदन का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझता हूं, और वह यह है कि उस संघ का क्या होगा, जिसका पंजीकरण रद्द कर दिया गया है? क्या वह फिर से पंजीकरण के लिए आवेदन कर सकता है? उत्तर है कि विधेयक का खंड 54 औद्योगिक अदालत को किन्हीं परिस्थितियों के अंदर यह घोषणा करने की शक्ति देता है कि संघ का पंजीकरण रद्द हो गया है। इसके अनुसार :

> इस अधिनियम के अंतर्गत अगर किसी प्रक्रिया में, औद्योगिक अदालत यह पाती है कि किसी संघ का पंजीकरण अथवा किसी संघ की घोषणा योग्य श्रमिक संघ के रूप में या प्रतिनिधि संघ के रूप में गलती से या गलत स्थिति दिखा कर की गई हो या किसी ऐसे संघ ने इस अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन किया हो, तो औद्योगिक अदालत यह निर्देश दे सकती है कि ऐसे संघ के पंजीकरण को अथवा ऐसे संघ की, योग्य श्रमिक संघ या प्रतिनिधित्व संघ के रूप में की गई घोषणा को रद्द कर दिया जाए।

अब, खंड 8 को लें, जिसमें रजिस्ट्रार को दिए गए ये निर्देश निहित हैं कि पंजीकरण के मामले में उन्हें किन नियमों का पालन करना है। सदन देखेगा कि जो मैं कह रहा हूं, वह बिल्कुल सही है। खंड 8 का पाठ इस प्रकार है:

> धारा-7 के अंतर्गत पंजीकरण के लिए किसी संघ से आवेदन प्राप्त होने और निर्धारित शुल्क की अदायगी हो जाने पर रजिस्ट्रार जैसा ठीक समझे वैसी जांच कर सकता है, बशर्ते कि वह इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि वह संघ पंजीकरण के लिए धारा-7 में उल्लिखित आवश्यक शर्तों को पूरा करता है और अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण के लिए अयोग्य नहीं है।

यह भी खंड 8 द्वारा निर्धारित शर्तों में से एक है कि संघ को खंड 54 के अंतर्गत अयोग्य न ठहराया गया हो। अब मैं प्रश्न पूछना चाहता हूं कि ऐसा स्थायी अयोग्यता क्यों होनी चाहिए? मैं यह समझता हूं कि कुछ समय के लिए अयोग्यता हो सकती है। यह बहस करना संभव हो सकता है कि जिस व्यक्ति ने पंजीकरण धोखे से, गलत तथ्यों को प्रस्तुत करके

कराया है, उसे कुछ समय के लिए परिवीक्षाधीन रखा जाए। मैं इस तरह के प्रस्ताव के औचित्य को भली-भांति समझ सकता हूं, लेकिन मैं उस प्रावधान के औचित्य को नहीं समझ सकता, जो कहता है कि चूंकि एक व्यक्ति धोखे या गलत तथ्य प्रस्तुत करने का दोषी है, इसलिए उसे रजिस्ट्रार के समक्ष आने और अपने संघ का पंजीकरण कराने के लिए भी स्थायी रूप से प्रतिबंधित कर देना चाहिए। महोदय! मैं इस संबंध में उस प्रावधान का उल्लेख करता हूं, जो 1935 के भारत सरकार अधिनियम में है। इस सदन के सदस्यों को भारत सरकार के अधिनियम में निहित कुछ अयोग्यताओं का सामना करना पड़ेगा। हम जानते हैं कि व्यक्ति चुनाव में इसलिए नहीं खड़े हो सकते, क्योंकि वह अयोग्य हैं और यह कि कुछ व्यक्ति चुने जाने के बाद भी विधान-मंडल के सदस्य नहीं बन सकते, क्योंकि वे अयोग्य हैं। मैं उनमें से एक था, जिसे अयोग्य ठहराया जा रहा था। यह कहा गया कि सरकार मेरी रक्षा को आ गई और मेरे लिए सीट बचाने में सफल हो गई, अन्यथा मैं अयोग्य ठहरा दिया जाता। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत सरकार के अधिनियम में निहित अयोग्यताएं निश्चित रूप से स्थायी नहीं हैं। ये अयोग्यताएं अल्पकालिक हैं। समय के साथ यदि एक बार अयोग्यता खत्म हो जाती है, तो सदस्य चुनाव में खड़े होने और इस सदन का सदस्य बनने के काबिल हो जाता है। यदि भारत सरकार के अधिनियम में इसी सिद्धांत को मूर्तरूप दिया गया है और अगर हम उन सदस्यों की अयोग्यता,जो सदन में अपने अधिकारों, विशेषाधिकारों के उपयोग एवं कर्तव्य निर्वहन के लिए सभी नैतिक दोषों और हर तरह की चारित्रिक हीनता से मुक्त रहते हैं, स्थायी नहीं हैं, तो मैं पूछता हूं कि उन व्यक्तियों की अयोग्यता स्थायी क्यों होनी चाहिए, जो मजदूरों को संगठित कर रहे हैं। इसका कोई जबाव समझ में नहीं आता, वस्तुत: मैं कहूंगा कि यह उपबंध सचमुच कलकत्ता हाई कोर्ट की पूर्ण पीठ के निर्णय को रद्द कर देता है। मुझे खेद है कि मैं जल्दबाजी में आया था, इसलिए मैं रिपोर्ट पर ठीक तरह से विचार नहीं कर सकता। लेकिन एक ऐसा मामला है,जिसके बारे में हो सकता है काफी सदस्यों को पता हो – कम से कम उन्हें,जो मजदूर राजनीति में दिलचस्पी लेते हैं – कि आपातकालीन शक्ति संबंधी अधिनियम के तहत एक संघ को रजिस्ट्रार ने अवैध घोषित कर दिया, क्योंकि उसको साम्यवादी चला रहे थे। जहां तक आपातकालीन शक्ति संबंधी अधिनियम का संबंध है, वह पूर्णतया वैध था। पर वह व्यक्ति और वे साम्यवादी जो संघ के प्रभारी थे, किसी तरह हारने वाले नहीं थे। उन्होंने एक और तरीका ढूंढ लिया और वह तरीका यह था कि नए नाम से पंजीकरण के लिए एक और आवेदन कर दिया जाए। रजिस्ट्रार को इसमें कुछ गड़बड़ी लगी, क्योंकि उसने देखा कि जिस व्यक्ति का पंजीकरण रद्द कर दिया गया था और जो यह आवेदन कर रहा है, वह एक ही व्यक्ति है। उसने कहा, 'मुझे रुकना चाहिए और इसकी जांच करनी चाहिए ।' इसलिए उसने इस नए संघ के कार्यकर्ताओं और संचालकों की जांच की जिन्होंने पंजीकरण के लिए

आवेदन किया था। उसने कहा 'आप वही व्यक्ति हैं मैं पंजीकरण नहीं करूंगा।' वे कलकत्ता हाई कोर्ट में गए और कलकत्ता हाई कोर्ट ने निर्णय दिया कि संगठन के कार्यकर्ताओं की जांच करने का काम रजिस्ट्रार का नहीं है। रजिस्ट्रार केवल संघ की स्थापना के उद्देश्यों की और इस बात की कि क्या सात लोगों ने आवेदन पर हस्ताक्षर किए हैं, जांच करने का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त उसे किसी और बात से कोई मतलब नहीं है। पुराने कानून के अंतर्गत यही स्थिति थी, यानी वह व्यक्ति जो एक बार अयोग्य ठहराया जा चुका हो, वह बिना किसी कानूनी अड़चन के पंजीकरण करा सकता है। जो लोग मजदूरों को संगठित करना चाहते हैं,उनकी राह में यह विधेयक निरंतर बाधाएं उत्पन्न करता है, क्योंकि उन्होंने कभी किसी तरह का धोखा किया था या गलत तथ्य प्रस्तुत किए थे। विधेयक के प्रावधानों के बारे में मैं यही कहना चाहता था।

निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि क्या यह विधेयक कर्मचारी व नियोक्ता के साथ व्यवहार में समानता लाता है, क्योंकि जैसे कि यह विधेयक कर्मचारियों की हड़ताल होने पर दंड की व्यवस्था करता है, यह मालिकों द्वारा की गई तालाबंदी के लिए भी दंड की व्यवस्था करता है। मुझे नहीं लगता कि इस स्थिति को कायम रखा जा सकता है, क्योंकि मेरी जानकारी में ऐसे एक-दो मामले आए हैं, जिसमें नियोक्ता व कर्मचारी के बीच भेद-भाव किया गया है। उदाहरणस्वरूप, मैं खंड 28 के तहत नोटिस के प्रश्न का उल्लेख करता हूं: (1) यदि नियोक्ता स्थायी आदेशों में कोई परिवर्तन चाहे तो उसे नोटिस देना होगा, और (2) सूची-2 में दिए औद्योगिक मामलों के संबंध में जब आप कर्मचारी के पास आते हैं, तो स्थायी कानून में किसी परिवर्तन के लिए उसे नोटिस देना होगा और किसी भी औद्योगिक मामले में सूची-2 तक सीमित रहना आवश्यक नहीं है। निश्चित रूप से यह समानता की स्थिति नहीं है। जहां तक उपस्थिति का सवाल है,नियोक्ता अगर उपस्थित नहीं होगा, तो निश्चित रूप से दंडित नहीं किया जाएगा। लेकिन अगर संघ उपस्थित न हो तो मजदूर को उपस्थिति के लिए बाध्य किया जा सकता है। अगर और कोई नहीं है, तो भी श्रम अधिकारी तो है,ही जो मजदूरों का प्रतिनिधित्व कर सकता है और सुलह के बाद किया गया समझौता मजदूर को बाध्य भी कर सकता है। हालांकि मजदूर ने सुलह को अस्वीकार किया और वे उस अधिकारी के द्वारा अपने हितों का प्रतिनिधित्व कराने के लिए तैयार नहीं थे। ये तुच्छ बातें हैं। इसके अतिरिक्त जिस बात पर मैं जोर देने की कोशिश कर रहा हूं, महोदय!वह यह है कि हम जो चाहते हैं वह सुलह नहीं है। हम निष्पक्षता चाहते हैं। मैं इस सदन के समक्ष यह आग्रह करना चाहता हूं कि यह जरूरी नहीं कि सुलह निष्पक्ष हो (व्यवधान)। मैं इसे प्रमाणित करके रहूंगा। हम समाज में निष्पक्षता लाएं, ताकि उससे समाज को न्याय मिल सके। इसके लिए हमें विभिन्न वर्ग के लोगों के साथ समान रूप से व्यवहार करना होगा। दूर क्यों जाएं और आयकर का ही मामला लें। मैं वित्तीय प्रबंध का छात्र था,

इसलिए मुझे यह दृष्टांत तुरंत याद आ गया। हमारे पास उत्तरोत्तर आयकर की व्यवस्था क्यों है? हम सब पर एक सा आयकर क्यों नहीं लगाते? हम अमीर पर उच्च दर से और गरीब पर निम्न दर से आयकर इसलिए लगाते हैं, क्योंकि दोनों की आयकर देने की क्षमता भिन्न है। देखें, मान लें कि एक परिवार के कई सदस्यों में से एक बीमार है। बीमार व्यक्ति स्वस्थ हो जाए, इसके लिए हम उसे चिकन सूप देते हैं। लेकिन हम और लोगों को चिकन सूप नहीं देते हैं। बीमार व्यक्ति को चिकन सूप देने पर और अन्य स्वस्थ व्यक्तियों को न देने पर घर में कोई भी मां को दोष नहीं देता। हम निष्पक्षता चाहते हैं, तो ऐसे में निष्पक्षता उत्पन्न नहीं की जा सकती कि हम शक्तिशाली और कमजोर, अमीर और गरीब, अज्ञानी और बुद्धिमान को एक निगाह से देखने की बात करें। अगर मेरे माननीय मित्र दोनों वर्गों को निष्पक्षता से देखना चाहते हैं, तो वह विधेयक यथेष्ट नहीं है। उन्हें विधेयक में अन्य प्रावधान प्रस्तावित करने होंगे और मैं पूछना चाहता हूं कि क्या वे विधेयक में ऐसे प्रावधानों को प्रस्तावित करने के लिए तैयार है।

हमारे उद्योगों में आज कल क्या हो रहा है? मुझे खेद है कि इस अवसर पर मैं जो महसूस करता हूं उसे साफ शब्दों में कहना होगा। बंबई नगर में हमारे यहां ऐसी मिलें हैं, जो पारसियों, गुजरातियों, यहूदियों या यूरोपियनों द्वारा संचालित की जाती हैं। मैं बचपन में इन सब मिलों में गया हूं, क्योंकि मेरे परिवार के कई सदस्य वहां काम करते थे। वहां मैं उनका खाना लेकर जाया करता था। अभी हाल में भी मैं एक-आध बार कई मिलों में गया था। इन मिलों के बारे में सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि इन्हें प्रबंधकों के रिश्तेदारों के लिए स्वर्ग बना दिया गया है। हजारों व्यक्ति उनमें निरर्थक कार्यरत हैं और सिर्फ इसलिए क्योंकि वे किसी न किसी रूप में प्रबंधकों से जुड़े हैं। आप पारसी मिल में जाइए, वहां आप देखेंगे कि अनेक पारसी व्यक्ति काम कर रहे हैं, चाहे उनकी जरूरत है या नहीं। यहूदियों द्वारा संचालित मिलों में जाइए, वहां आपको सैकड़ों यहूदी नियुक्त मिलेंगे, भले ही वहां उनकी जरूरत हो या नहीं। कर्मचारियों की कमाई का एक अच्छा हिस्सा प्रबंधक ले लेते हैं, ताकि मिल में काम करने वाले इन लोगों को खिला सकें, चाहे यह कार्यकुशल हैं या नहीं और उन्हें इनकी जरूरत है या नहीं। मिलों को नियंत्रित कर रहे ये सब लोग पूंजी को उड़ा देते हैं और कागजी लिखा पढ़ी से उसे छुपा देते हैं। जब कर्मचारी यह कहता है कि उसे कम मजदूरी मिलती है, तो मिल का नियंत्रण करने वाले लोग कहते हैं, 'यह मेरी पूंजी है', यह सब जाली पूंजी है, शेयर बाजार की पूंजी है, सट्टेबाजों द्वारा लगाई हुई पूंजी है, उद्योगों की कमाई का बड़ा हिस्सा इन लोगों द्वारा उड़ा दिया जाता है और जो थोड़ी बहुत बच जाती है, कर्मचारियों से कहा जाता है कि वे उसी से अपनी आजीविका चलाएं। अगर माननीय प्रधानमंत्री निष्पक्षता लाना चाहते हैं, तो सर्वप्रथम उद्योगों के लाभ के अनुसार कर्मचारियों की मजदूरी में परिवर्तन करना चाहिए। समझ में नहीं आता है कि मिल मालिक या यूं कहें कि किसी भी उद्योग

के किसी मालिक को कानूनी तौर पर अपना वार्षिक बजट क्यों नहीं पेश करने को कहा जाता। प्रत्येक वर्ष सरकार को अपना बजट पेश करना होता है। प्रत्येक वर्ष हमें सरकार का बजट मिलता है, जिसमें सरकार बताती है कि कितने मंत्रियों को लगाया गया है, मंत्री को कितने चपरासी दिए गए हैं, विभाग में कितने निरीक्षक हैं, कितने क्लर्क हैं। ऐसी ही और अन्य बातें बताई जाती हैं। ऐसे में सदन यह समझ सकता है कि संगठन अनावश्यक रूप से बड़ा है या नहीं और धन उचित रूप से व्यय किया गया है या नहीं। मिल मालिक या किसी उद्योग के मालिक को जिससे लाभ मिलता है और जो सिर्फ पूंजी से ही नहीं बल्कि अन्य लोगों के पसीने से भी कमाई करता है, अपने प्रबंध का पूर्ण विवरण देने के लिए बाध्य क्यों नहीं किया जाता? यह बहुत उचित मांग है। इसका लाभ यह होगा कि एक बार किसी उद्योग के मालिक द्वारा इस तरह बजट पेश किया जाएगा तो मजदूर यह महसूस कर सकेंगे और जांच सकेंगे कि मजदूरों में बांटी जाने वाली शेष राशि उन्हें उचित मात्रा में मिली है या कि मालिक ने कुल लाभ का अधिकांश हिस्सा स्वयं ले लिया है? समझौता बोर्ड के होने और मालिक से अपना बही-खाता पेश करने को कहने का क्या फायदा है, जब कि मजदूर को यह जांचने का मौका नहीं दिया गया है कि वास्तव में स्थिति क्या है? अगर मेरे द्वारा प्रस्तावित प्रक्रिया को अपनाया जाता है, तो मुझे यकीन है कि इससे श्रमिक अशांति में कमी होगी, समझौता ज्यादा प्रभावशाली होगा और ज्यादा औद्योगिक शांति कायम होगी। जैसा मैंने सुझाव दिया है, यदि माननीय प्रधानमंत्री उसी तरह श्रम व पूंजी को समानता के आधार पर देखना चाहते हैं और निष्पक्षता चाहते हैं, तो विधेयक के प्रावधानों में इस निष्पक्षता के लिए कोई आधार नहीं है। दूसरे, पूंजी व श्रम के बीच कोई समानता नहीं है, क्योंकि कोई भी विवाद होने पर सरकार मालिक का पक्ष लेती है। यह बात हड़ताल के दिनों में सरकार द्वारा इस्तेमाल किए गए पुलिस बल से स्पष्ट हो जाती है। जनता के चंद और कर से, जिसे हम सब वहन करते हैं, पुलिस बल चलाया जाता है। यह सब के फायदे के लिए किया जाता है। निस्संदेह, किसी भी सरकार को सिर्फ इसीलिए पुलिस बल का इस्तेमाल करने का अधिकार नहीं है कि मजदूरों द्वारा की गई हड़ताल का परिणाम शांति का उल्लंघन होगा। यह दिखाना भी आवश्यक है कि उद्योग के किसी एक वर्ग विशेष द्वारा शांति भंग की गई है। अगर मजदूरों की किसी अनुचित मांग द्वारा शांति भंग होती है, तो आपका उनके विरुद्ध पुलिस बल का प्रयोग करना न्यायसंगत होगा। यदि दूसरी ओर मालिक के किसी बेतुके, अन्यायपूर्ण और समानता की भावना के प्रतिकूल कृत्य से शांति भंग होती हो, तो सरकार को मजदूरों के खिलाफ पुलिस बल का इस्तेमाल करने का कोई अधिकार नहीं है। इन दोनों व्यवस्थाओं को मिलाकर ही मालिक व कर्मचारी के बीच सही समानता लाई जा सकती है। मालिक को अपना बजट बताने के लिए बाध्य किया जाए। मात्र शांति भंग होने की स्थिति में सरकार द्वारा पुलिस बल के प्रयोग पर रोक लगा दी जानी चाहिए। इसके बिना

पूंजीपति और मजदूर के बीच सौदेबाजी के मामले में शांति और समानता नहीं आएगी। क्या आप ऐसा करेंगे? अगर आप ऐसा करते हैं, तो आपका और मिल मालिकों का साथ नहीं रहेगा। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं, तो आप मजदूर के दोस्त नहीं बन सकते। मुझे विश्वास है कि विधेयक को इसी रूप में पारित नहीं करना चाहिए। यह मजदूर को केवल अपाहिज बनाता है। हो सकता है कि मजदूर को पता न हो कि यह विधेयक क्या करता है। लेकिन जब विधेयक लागू होगा और मजदूरों का विधेयक से सामना होगा, तो वे कहेंगे कि यह विधेयक बुरा है, खूनी और नृशंस है। महोदय! मैं इसमें भागीदार नहीं बन सकता (तालियां)।

23
उपद्रव जांच समिति की रिपोर्ट*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : मै अपनी बात पांच मिनट में समाप्त करने की कोशिश करूंगा, क्योंकि मुझे ज्यादा कुछ नहीं कहना है। अध्यक्ष महोदय! अगर मैं इस कटौती प्रस्ताव पर बोलने के लिए खड़ा हुआ हूं, तो इसका कारण यह नहीं है कि मैं यह समझता हूं कि समिति ने मेरे बारे में जो कुछ कहा है, उसके संबंध में कुछ कहूं। इसके लिए न तो समय है और न ही मेरे विचार में इसकी कोई जरूरत है कि इस हड़ताल के संबंध में मैंने जो रुख अपनाया है, उसके बारे में तर्क पेश करूं। अत: मैं इस मामले में नहीं बोलूंगा। मेरे बोलने का अभिप्राय यह है कि मेरे विचार से मुझसे पहले बोलने वाले सदन के दो माननीय वक्ताओं ने जो भाषण दिया है, उनसे मुझे ऐसा लगा है कि वे इस रिपोर्ट के फलस्वरूप उत्पन्न हमारे द्वारा विचारणीय मुख्य मुद्दों से हमारा ध्यान हटा देंगे। मेरे विचार में तीन प्रश्न हैं, जिन पर हमें विचार करना है। तीन नहीं तो दो तो ऐसे हैं, जिन पर विचार करना है। तीन प्रश्न मैं गृह मंत्री महोदय से पूछना चाहता हूं। दलील के तौर पर उपद्रवों के संबंध में निष्कर्ष जिस रूप में हैं, उन्हें मैं स्वीकार करता हूं।

श्री जमनादास मेहता: वे निष्कर्ष नहीं थे, बल्कि ये मुद्दे समिति के लिए बनाए गए थे।

डा. भीमराव अम्बेडकर: जो भी हो, समिति ने जो रिपोर्ट दी है, वह यह है और यह बहुत ही सुस्पष्ट शब्दों में है। पैरा 84 में कहा गया है:

> भीड़ का व्यवहार और कार्यवाहियां ही गोली चलाए जाने के लिए जिम्मेदार थीं। हमारा विचार है कि एलफिस्टन मिल में जो उपद्रव हुआ और जिसके फलस्वरूप गोली चलानी पड़ी तथा लोग हताहत हुए, इसकी जिम्मेदारी अंतत: संघर्ष समिति के सदस्यों पर जाती है, जिन्होंने हड़ताल को सफल बनाने के लिए अपने जोरदार प्रचार के द्वारा निरक्षर मजदूरों को हिंसा का सहारा लेने के लिए उकसाया ।

जैसा कि मैंने कहा, मैं इस जांच के निष्कर्ष की सच्चाई का पता लगाने नहीं जा रहा।

---

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 5, पृ. 1724-27, 17 मार्च 1939

मैं समझता हूं कि अगर कोई जांच की सच्चाई का पता लगाना चाहे, तो उसको बहुत कुछ कहना पड़ेगा, क्योंकि अपनी ओर से बोलते हुए मैं निश्चित रूप से देख रहा हूं कि जिस साक्ष्य पर उस जांच का निष्कर्ष आधारित है और जो संघर्ष समिति के सदस्यों द्वारा कथित रूप से दिए गए भाषण जो इस रिपोर्ट में पृष्ठ 10 से आगे दिए हुए हैं, वे सब मेरे विचार में इन निष्कर्षों से मेल नहीं खाते। जैसा कि मैंने कहा है कि मैं इस ज़ांच रिपोर्ट को तर्क की खातिर तथ्य के रूप में ले रहा हूं और जो प्रश्न मैं माननीय गृह मंत्री से पूछने जा रहा हूं वह यह है, क्या वह समझते हैं कि यह रिपोर्ट सही है? अगर वह कहते हैं कि यह रिपोर्ट सही है, तो क्या वह संघर्ष समिति के सदस्यों पर इस हिंसा को बढ़ाने और उकसाने के लिए मुकदमा चलाने को तैयार हैं? अपनी ओर से मैं कह सकता हूं कि जहां तक इस संघर्ष समिति से मेरा संबंध है, मैं अपनी जांच करवाने के लिए तैयार हूं। कोई भी व्यक्ति जिसमें साहस हो, आत्मविश्वास हो, जो इस साक्ष्य पर विश्वास करता हो, वह आगे आए और मुझ पर मुकदमा चलाए। मैं अपनी जांच करवाने और कानून जो भी सजा दे, उसे भुगतने के लिए तैयार हूं। यह मेरा पहला सवाल है। दूसरा सवाल जो मैं माननीय गृह मंत्री महोदय से पूछने वाला हूं, वह यह है, और वह भी जांच-समिति के उस निष्कर्ष पर आधारित है,जिसे जैसा कि मैंने कहा, मैं तर्क के लिए स्वीकार कर रहा हूं। मैंने सोचा कि जिस मुख्य प्रश्न के प्रति समिति का सरोकार है, वह गोली चलाने के औचित्य का प्रश्न है। समिति ने कहा कि गोली चलाना उचित था और इसके कारण थे। मेरा विश्वास है कि समिति ने यह भी रिपोर्ट दी है कि बिना गोली चलाए हिंसा रोकी नहीं जा सकती थी। दूसरे शब्दों में, इस उद्देश्य के लिए उतनी ही गोली चलाई गई, जितनी जरूरी थीं। जैसा कि मैंने कहा है कि मैं जांच के निष्कर्षों को केवल तर्क की खातिर स्वीकार कर रहा हूं, इसलिए मैं माननीय गृह मंत्री से दूसरा प्रश्न भी पूछ रहा हूं, क्या वह उन पुलिस अफसरों पर जो गोली चलाने में शामिल थे, साधारण अदालत में मुकदमें चलाने के लिए तैयार हैं और क्या इस समिति की जांच रिपोर्ट का किसी न्यायाधीश या न्यायविद द्वारा अनुमोदन कराने के लिए तैयार हैं? महोदय! मैं इस सदन को यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि जहां तक कानून का संबंध है, उसमें साधारण नागरिक और एक पुलिस अफसर और एक सैनिक अफसर में कोई अंतर नहीं है और मैं सदन के लाभ के लिए एक प्रतिष्ठित दस्तावेज से एक छोटा पैरा पढ़ना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र गृह मंत्री इस रिपोर्ट के बारे में जानते हैं। वह है, फीदरस्टोन उपद्रव समिति की रिपोर्ट। रिपोर्ट के एक पैरे में कहा गया है:

> अधिकारियों और सैनिकों को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है और न ही उनका कानूनन कोई विशेष दायित्व है। नागरिक व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से बुलाया गया सैनिक मात्र शस्त्रधारी नागरिक है। बेकार किसी की जान लेने के लिए सैनिक होने का बहाना काम नहीं आता। ड्यूटी पर तैनात मजिस्ट्रेट और पुलिस अधिकारी,यदि सेना

को बुलाने का या न बुलाने का फैसला करते हैं, तो उसके पीछे यही बात है। एक सैनिक केवल अपने शस्त्र का प्रयोग कर सकता है। उसके शस्त्र घातक होते हैं। उनका इस्तेमाल हो तो यह खतरा रहता है कि या तो कोई मरेगा या किसी का अंग भंग होगा और खासतौर से जब आजकल उन्नत तरीके हैं और सुधरे हथियार हैं, उनसे बेकसूर राहगीरों या दूर खड़े लोगों के लिए भी खतरा है। दंगाइयों के विरुद्ध सहायता के लिए उन लोगों को बुलाना, जिन्हें केवल गंभीर स्थिति में बुलाया जाता है, प्रशासनिक अधिकारियों का अंतिम हथियार होना चाहिए।

और जहां तक इस देश के कानून का संबंध है, तो वह इस प्रकार है– संक्षेप में संवैधानिक कानून के एक बहुत बड़े लेखक प्रो. डायसी के अनुसार, कानून यह है कि अगर एक पुलिस अफसर या सैनिक अफसर को जब गोली चलाने के लिए कहा जाता है, वह उस समय अपने अधिकारी की आज्ञा का पालन नहीं करता है, तो उसे कोर्ट मार्शल द्वारा फांसी दे दी जाएगी और अगर वह उसका पालन करता है तथा एक निर्दोष आदमी को मार देता है, तो उसे एक न्यायाधीश या जूरी द्वारा फांसी दे दी जाएगी। उसके मामले को निश्चय ही इस पर आधारित होना चाहिए कि क्या उसने अनुचित बल का प्रयोग किया है। मैं जो तर्क देना चाहता हूं वह यह है कि यहां समिति ने पुलिस के व्यवहार को उचित माना है। अपने माननीय मित्र से जो बात मैं पूछ रहा हूं, वह केवल यह है कि अगर उन्हें इस दस्तावेज पर भरोसा है, जिसे तीन योग्य और सम्मानीय लोगों ने लिखा है, तो वह क्यों नहीं उन लोगों के विरुद्ध मुकदमा चलाते हैं? अगर एक जूरी स्वीकार करती है कि आवश्यकता थी और एक जूरी मानती है कि कोई क्षति नहीं हुई थी, तब तो ठीक है। हमें न्यायाधीश या जूरी का फैसला मिलना चाहिए और मैं इसको इस प्रकार से रखता हूं कि अगर वह संघर्ष समिति के सदस्यों और पुलिस अफसरों पर मुकदमा नहीं चलाते, तो इस रिपोर्ट का मूल्य टूली स्ट्रीट के तीन दर्जियों द्वारा लिखी गई कहानी या उपन्यास से अधिक नहीं हो सकता (ठहाका)।

और तीसरा प्रश्न जो मैं पूछना चाहता हूं, वह जानकारी के लिए है। महोदय! मुझे सूचना दी गई है और अत्यंत विश्वसनीय रूप से सूचना दी गई है। मैं इस सूचना को माननीय गृह मंत्री के समक्ष रखता हूं कि स्प्रिंग मिल जिसके आसपास उस दिन 6.30 बजे या ऐसे ही किसी समय गोली चली। उसके प्रबंधक ने गोली चलाने वाले पुलिस अफसर को इनाम के रूप में बांटने के लिए 200 रुपये इस विशेष निर्देश के साथ भेजे कि यह रकम उन पुलिस अफसरों में इनाम के रूप में बांट दी जाए, जिन्होंने उस मिल के आसपास हुए उस दिन के दंगे या गोली चलाने में भाग लिया था, तो मैं पूछना चाहता हूं कि क्या यह कहना उचित नहीं है कि गोली इस कारण चलाई गई क्योंकि वहां हिंसा फैली हुई थी, बल्कि इस कारण से चलाई गई थी कि मिल प्रबंधक ने पुलिस अफसरों को अपना काम बखूबी करने के लिए कहा था। यह बहुत ही शर्मनाक और बदनामी की बात है। मैं चाहता हूं कि माननीय गृह-

मंत्री इस तथ्य को काफी गंभीरता से लें, क्योंकि अगर यह तथ्य है,तो यह पुलिस बल सरकार के द्वारा कायम किया गया पुलिस बल है, इसलिए नहीं कि यह वर्गों के बीच न्याय करे, बल्कि यह पुलिस बल मजदूरों के आंदोलन को दबाने के उद्देश्य से पूंजीपतियों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले भाड़े के गुंडों और हत्यारों का पक्ष लेने वाला है।

इस घटना से मुझे कंपकंपी होने लगती है और यह मुझे उस बात की याद दिलाती है, जिसे किसी बहुत योग्य सिविलियन ने संयुक्त संसदीय समिति के सामने अपनी गवाही के दौरान कही थी। मैं स्व. माननीय एडवर्ड थामसन की गवाही का उल्लेख कर रहा हूं, जो कुछ समय पंजाब के गवर्नर और कुछ समय वायसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्य रहे थे। अपनी सेवा निवृत्ति के बाद उन्होंने भारत को स्वशासन देने का समर्थन करने के लिए इंग्लैंड में अपनी एक संस्था शुरू की थी। जैसा कि सदन का प्रत्येक सदस्य जानता है कि गोलमेज सम्मेलन हुआ, उस समय जो सिविलियन भारत से वापस इंग्लैंड चले गए थे, वे दो गुटों में बंट गए थे। एक गुट भारत के लिए स्वशासन का विरोध करता था और दूसरा गुट उसका समर्थन। स्व. माननीय एडवर्ड थामसन उनमें से एक थे, जिन्होंने भारतीय दावे का समर्थन करने वाले गुट का नेतृत्व किया। उस गुट के सदस्य के रूप में वह संयुक्त संसदीय समिति के सामने गवाही देने और भारत को स्वशासन क्यों मिलना चाहिए इस संबंध में अपना दृष्टिकोण रखने आए। हम सब बहुत खुश थे कि कम से कम भारतीय सिविलियनों का एक भाग तो भारतीय उद्देश्य के समर्थन के लिए ईमानदारी से एवं पूरी तरह से सामने आया है। लेकिन मैं खरी-खरी बात कहूंगा कि मैं उनके द्वारा दिए गए तर्क से भयभीत हो गया। वह तर्क क्या था, जो उन्होंने दिया? जो तर्क उन्होंने दिया वह इस प्रकार था, उन्होंने कहा, मैं एक आयरिश व्यक्ति हूं। मैं दक्षिणी आयरलैंड में रहता हूं। मैंने 1916 के दरम्यान और उसके बाद होने वाले विद्रोहों को देखा है। उन्होंने कहा कि एक बात जिसने मुझे आयरिश स्वशासन का समर्थन करने का यकीन दिलाया, वह थी, जब तक विद्रोह चल रहा था,कोई भी अंग्रेज किसी आयरिश को, चाहे उसका काम कितना भी हिंसक क्यों न हों, गोली नहीं मार सकता था। क्योंकि यदि कोई अंग्रेज किसी आयरिश को गोली मार देता, तो सारा आयरलैंड शस्त्र उठा लेता। उन्होंने कहा कि जैसे ही स्वशासन दिया गया, वैसे ही कासग्रेव आयरिश व्यक्ति को गोली मार सका और इसके विरुद्ध कोई विद्रोह नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि भारत को स्वशासन देने से अंग्रेजों को एक फायदा यह होगा कि भारत के मंत्री भारतीयों को बिना किसी हिचक के गोली मार देने में समर्थ होंगे। और ठीक यही हो रहा है। यह पहला अवसर नहीं है, जबकि उपद्रव हुआ है।

माननीय अध्यक्ष: मैं माननीय सदस्य को समय-सीमा का ध्यान दिलाना चाहता हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं। मैं एक मिनट में समाप्त करूंगा।

जैसा कि मैंने कहा है, यही एकमात्र अवसर नहीं है, जब कि उपद्रव हुआ है। अगर मेरे माननीय मित्र सरकारी फाइलों में खोजें,तो वे पाएंगे कि इससे पहले बहुत सारे अवसर आए थे, जब कि इन से भी बड़े उपद्रव हुए थे। एक ही उदाहरण लीजिए, जब प्रिंस आफ वेल्स इस देश में आए थे। उस समय जो दंगे हुए थे, वे कितने व्यापक थे? 1928-29 में जो उपद्रव हुए वे कितने व्यापक थे? निश्चय ही उपद्रवों का होना दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन वे कभी भी दूसरे ढंग के नहीं हो सकते। एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए हम आजादी और स्वतंत्रता का कोई आदर नहीं करेंगे? और यदि स्वशासन का इसके सिवाय और कुछ मतलब नहीं है, तो जैसा कि मैं सोच रहा हूं, इसका मतलब और कुछ नहीं हो सकता कि हमारे अपने मंत्री अपने लोगों को गोली मार सकते हैं और हममें से बाकी लोग इस प्रदर्शन पर केवल हंसें या उसका समर्थन करने के लिए खड़े हों क्योंकि वह एक खास पार्टी का आदमी है, तब मैं कहता हूं कि स्वशासन भारत के लिए एक अभिशाप ही है, कोई वरदान नहीं (तालियां)।

24
युद्ध में भागीदारी *

I

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं व्यवस्था का प्रश्न उठाता हूं। यह प्रस्ताव के उस भाग से संबंधित है, जिसमें यह कहा गया है:

यह विधान सभा खेद प्रकट करती है कि भारत के संबंध में ब्रिटिश सरकार द्वारा उनकी तरफ से दिए गए बयान को आधिकारिक रूप से प्रस्तुत करते समय भारत की परिस्थिति को ठीक ढंग से नहीं समझा गया है।

महोदय मैं बंबई विधान सभा के नियम 75 के आधार पर बोल रहा हूं, जो प्रस्ताव के स्वरूप एवं विषय-वस्तु के बारे में है। यह नियम इस प्रकार है:

इन नियमों में सभाहित निबंधनों के अधीन साधारण जन के हित के मामले पर एक प्रस्ताव पारित किया जा सकता है:

बशर्ते कि ऐसा कोई भी प्रस्ताव नहीं किया जा सकता जो निम्नांकित शर्तों को पूरा नहीं करता हो: अर्थात,

(क) यह साफ-साफ और यथावत व्यक्त किया जाएगा और एक निश्चित मुद्दे को उठाएगा . . .

मेरा मानना है कि प्रस्ताव का अंतिम भाग न केवल अस्पष्ट है, बल्कि अत्यधिक अस्पष्ट है। प्रस्ताव का वह भाग जिसका मैं उल्लेख कर रहा हूं, कहता है कि 'ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत की परिस्थिति को ठीक ढंग से नहीं समझा गया है।' मेरा मानना है कि यह सदन यह जानने का हकदार है कि किस रूप में भारत सरकार ने भारत की परिस्थिति को ठीक ढंग से नहीं समझा है। इस दृष्टि से प्रस्ताव का यह हिस्सा अस्पष्ट है। सदन के सभी निर्णयों को परिचालित करने वाले मूलभूत सिद्धांतों में से एक यह है कि सदन जो भी निर्णय ले, इसकी व्याख्या करने का काम किसी बाहरी व्यक्ति पर नहीं छोड़ना चाहिए। सदन को स्पष्ट शब्दों में कहना चाहिए कि वह क्या निर्णय ले रहा है और इस बारे में मैं एक पूर्व

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 7, पृ. 1968-69, 25 अक्तूबर 1939

उदाहरण को आधार बना रहा हूं जिसका उल्लेख अध्यक्षों की नियम पुस्तिका (*डाइजेस्ट आफ रूलिंग्स, बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल*) के पृष्ठ 148 पर नियम संख्या 24 में किया गया है:

प्रस्ताव स्पष्ट होना चाहिए, न कि अस्पष्ट। न तो परिषद और न ही सरकार को ऐसे अस्पष्ट प्रस्ताव में भागीदार बनना चाहिए, जो इसके अर्थ को पूरी तरह स्पष्ट नहीं करता।

मैंने खंड 4 (1921), पृष्ठ 772 का इस व्यवस्था के संबंध में उल्लेख किया और मैंने देखा है कि यह व्यवस्था माननीय सदस्य धनजीशाह कपूर के द्वारा प्रस्तुत उस प्रस्ताव के संशोधन के फलस्वरूप दी गई, जिसमें सिंचाई के पानी के वितरण का उल्लेख किया गया था और उनके संशोधन में कुछ ऐसे उपाय सुझाए गए थे, 'जो जहां तक व्यावहारिक हों।' तब व्यवस्था का प्रश्न इस बात पर उठाया गया था कि यह एक अस्पष्ट संशोधन था और इसकी अनुमति नहीं दी गई थी। मेरा निवेदन है कि जिस मामले का मैं उल्लेख कर रहा हूं, जहां तक इस प्रस्ताव का संबंध है, वह भी इस व्यवस्था से परिचालित होता है, और इसलिए इसे अव्यवस्थित घोषित कर देना चाहिए।

माननीय श्री बी.जी. खेर: मेरा निवेदन है कि जिस नियम का मेरे माननीय मित्र ने उल्लेख किया है, उसका यहां कोई उपयोग नहीं है। नियम केवल यह कहता है कि प्रस्ताव को साफ-साफ एवं यथावत उल्लिखित होना चाहिए। मेरा प्रस्ताव कहता है 'यह विधान सभा खेद प्रकट करती है कि भारत के संबंध में ब्रिटिश सरकार ने भारत के बारे में वक्तव्य दिया है, उसे प्राधिकृत करते समय भारत की परिस्थिति को ठीक ढंग से नहीं समझा गया है।' इसलिए प्रश्न और निश्चित मुद्दा यह है: क्या ब्रिटिश सरकार की तरफ से दिया गया बयान भारत की परिस्थिति को सही तरह से प्रस्तुत करता है? यही स्पष्ट और यथावत मुद्दा है, और इसमें कोई भी अस्पष्टता नहीं है। मेरा यह भी निवेदन है कि यह एक वैसा ही स्पष्ट मुद्दा है, जैसा कि नियम 75 (क) में विचारित हुआ है। इसलिए माननीय सदस्य द्वारा उठाई गई आपत्ति का यहां कोई मतलब नहीं है. जहां तक व्यावहारिक है,इस बारे में दी गई व्यवस्था को मैं पूरी तरह समझता हूं, क्योंकि उसका अर्थ कुछ भी हो सकता है। यहां हम एक वक्तव्य का उल्लेख कर रहे हैं, वह वक्तव्य कोई अज्ञात मामला नहीं है, वह मामला सदन के समक्ष है, और . . .

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं इस तथ्य पर माननीय प्रधानमंत्री का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि शब्दावली यह है कि 'भारत की परिस्थिति को ठीक ढंग से नहीं समझा गया है।' मेरा निवेदन है कि सदन यह जानने के लिए अधिकृत है कि किस अर्थ में भारत सरकार ने परिस्थिति को ठीक-ठाक नहीं समझा है।

****

डा. भीमराव अम्बेडकर* (बंबई नगर) : महोदय! मैं निम्नांकित चार संशोधन पेश करना चाहता हूं। मेरा पहला संशोधन है . . .

माननीय अध्यक्ष: मैं इसे एक संशोधन के रूप में ले रहा हूं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं प्रस्ताव करता हूं कि इन शब्दों को निकाल दिया जाए:

---

* *बोंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 7, पृ. 1972, 25 अक्टूबर 1939

> और भारतीय जनमत की पूर्णत: अनदेखी करते हुए आगे कानून पारित कर दिए गए हैं और प्रांतीय सरकारों की शक्तियों और गतिविधियों को कम करने वाले कानून बनाए गए हैं और उपाय किए गए हैं।

माननीय श्री के. एम. मुंशी: महोदय! यह व्यवस्था का प्रश्न है। आपके पिछले निर्णय में कहा गया है कि माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर के चारों संशोधनों को एक संशोधन के रूप में लिया जाए, हो सकता है कि सदन इस संशोधन का एक भाग स्वीकार करे और बाकी न करे। तब यदि इसे एक संशोधन के रूप में लिया गया, तो दिक्कत पैदा हो जाएगी।

माननीय अध्यक्ष: यद्यपि इसे इस संशोधन के रूप में लिया जाए, तो भी जब इसे मतदान के लिए रखा जाएगा, तो इसे दो भागों में बांटा जा सकता है। यही सदन की इच्छा है, तो मैं ऐसा जरूर करूंगा।

डा. भीमराव अम्बेडकर: आगे 'अपना संविधान स्वयं बनाने के लिए हकदार' शब्दों के स्थान पर निम्नांकित को जोड़िए:

> और यह है कि ब्रिटिश सरकार इस बात से सहमत है कि इस संविधान को तब मान्यता देगी, जब अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि संतुष्ट हो जाएंगे कि संविधान इन समुदायों के जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा करता है।

'भारत की शासन व्यवस्था' के बाद ये शब्द जोड़े जाएं:

> यह माना जाए कि यह कार्रवाई उक्त समुदायों के इन मूल अधिकारों का अल्पीकरण नहीं करेगी कि देश के शासन को चलाने वाली मशीनरी में उन समुदायों के मान्यता प्राप्त प्रतिनिधियों की आवाज सुनी जाती रहेगी।

'व्यवस्था सहित' से शुरू होकर 'भारत के संबंध में' से अंत होने वाले समूचे भाग को निकाल दिया जाए।

प्रश्न प्रस्तुत किया गया।

माननीय अध्यक्ष: प्रस्तावित संशोधन के बाद यह प्रस्ताव इस रूप में पढ़ा जाएगा यह विधान सभा खेद प्रकट करती है कि ब्रिटिश सरकार ने बिना भारत की जनता की सहमति लिए ग्रेट ब्रिटेन एवं जर्मनी के बीच युद्ध में भारत को भागीदार बना दिया है। यह विधान सभा सरकार से भारत सरकार को और उसके द्वारा ब्रिटिश सरकार को यह प्रेषित करने की अनुशंसा करती है कि वर्तमान युद्ध के घोषित लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए भारतीय जनता का सहयोग पाने के लिए यह जरूरी है कि लोकतंत्र के सिद्धांतों को भारत पर लागू किया जाए और उसकी नीतियां उसके लोगों द्वारा निर्देशित होनी चाहिएं और यह कि भारत को अपना संविधान बनाने के लिए अधिकृत एक स्वतंत्र देश के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए और यह कि अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों के माध्यम से संतुष्ट हो जाने पर ऐसे संविधानों को, प्रभावी बनाएगी और यह कि इस प्रकार बना संविधान अल्पसंख्यक समुदायों की स्वतंत्रता की रक्षा करे और आगे यह है कि भारत की वर्तमान शासन व्यवस्था के सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए ठीक इसी समय, जहां तक संभव हो, उचित कार्यवाही की जानी चाहिए। ऐसा मूल सिद्धांत होने पर कि देश की शासन व्यवस्था के लिए बनाई गई मशीनरी में अपने विश्वस्त प्रतिनिधियों के द्वारा अपनी आवाज उठाने के उपर्युक्त अल्पसंख्यकों के मूल अधिकार के लिए इस प्रकार की कार्रवाई, उसका अल्पीकरण नहीं करेगी।

****

डा. भीमराव अम्बेडकर*: महोदय! मैं व्यवस्था का प्रश्न उठाता हूं। मेरा निवेदन है कि यह संशोधन नियम विरुद्ध है और मैं एक बार फिर नियम 75 के उप-खंड (क), पृष्ठ 20 पर विश्वास करता हूं। उप-खंड (क) कहता है कि प्रस्ताव को स्पष्ट और यथावत उल्लिखित होना चाहिए और एक स्पष्ट मुद्दा उठाया जाना चाहिए। मैं 'एक स्पष्ट' मुद्दा शब्दों पर जोर दे रहा हूं। मेरा निवेदन है कि यदि यह संशोधन प्रस्ताव का हिस्सा बन जाएगा,तो पूरा प्रस्ताव नियम 75 के उप-खंड (क) का उल्लंघन करेगा, क्योंकि उस दशा में प्रस्ताव के तहत एक से अधिक मुद्दे आ जाएंगे, यद्यपि जैसा कि मेरे पूर्ववर्ती वक्ताओं ने बताया है कि यह प्रस्ताव चार या पांच अलग-अलग मामलों पर विचार करता है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि ये सभी चार या पांच मामले एक मुद्दे से उत्पन्न हुए हैं और वह मुद्दा इस देश के द्वारा अपेक्षित युद्ध नीति और उसकी घोषणा से संबंधित है, लेकिन इस संशोधन के द्वारा उठाया गया प्रश्न जिसका संबंध मंत्रिमंडल में विश्वास प्रकट करने से है, मेरा मानना है कि यह प्रश्न एक स्पष्ट, सुनिश्चित और पृथक मुद्दा है और इसे प्रस्ताव का वैध हिस्सा नहीं बनाया जा सकता ताकि नियम 75 के उप-खंड (क) के प्रावधानों से इसकी संगति बैठी रहे। महोदय! मैं आपका ध्यान इस मुद्दे पर दिए गए व्यवस्था निर्देश की ओर दिलाना चाहूंगा, जो पृष्ठ 148 पर उद्धृत है और जिसकी संख्या 23 है। इसमें कहा गया है, 'किसी संकल्प को निश्चय ही एक-दूसरे से भिन्न दो स्पष्ट मुद्दों को रखने का दोष नहीं होना चाहिए।'

यह वह निर्देश है, जो 1921 के खंड 2, पृ. 1425 से लिया गया है। उस मामले में महिलाओं के मताधिकार के संबंध में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था और व्यवस्था के प्रश्न पर कहा गया था कि यद्यपि प्रस्ताव एक ही है, तथापि यह दो स्पष्ट मुद्दों को उठाता है। एक तो महिलाओं के मतदान का अधिकार और दूसरा महिलाओं के सदन में बैठने का अधिकार और उस समय के अध्यक्ष ने यह निर्देश दिया था कि चूंकि प्रस्ताव में दो स्पष्ट मुद्दे थे, इसलिए यह नियम विरुद्ध है। मेरा निवेदन है कि इसी आधार पर यह संशोधन अगर स्वीकार किया गया, तो प्रस्ताव को नियम विरुद्ध बना देगा।

****

डा. भीमराव अम्बेडकर**: नहीं। मंत्रिमंडल के इस्तीफे का प्रश्न पार्टी का मामला है। यह सदन का मामला नहीं है। यह पार्टी को निर्णय लेना है कि उन्हें पद पर बने रहना चाहिए या नहीं। तब यह पूर्णतः एक अलग मामला होगा, यदि मंत्रिमंडल कहता है कि इस देश के लोगों को युद्ध में भाग नहीं लेना चाहिए। इस मुद्दे पर सदन अपने विचार प्रकट कर सकता है। मेरा निवेदन यह है कि मेरे माननीय मित्र द्वारा दिया गया सुझाव सदन के सम्मुख नहीं है – मैं नहीं जानता कि 'मंत्रिमंडल में अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त करते समय' इन शब्दों को

---

* *बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 7, पृ. 1976, 25 अक्तूबर 1939

** *बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स*, खंड 7, पृ. 1978, 25 अक्तूबर 1938

हटाने के लिए इस प्रकार का संशोधन रहा है या नहीं। जैसा संशोधन इस समय है, मैं उस पर बोल रहा हूं और मेरा निवेदन है कि उन शब्दों से जिनमें संशोधन रखा गया है, यह नियम 75 के उप-खंड (क) के विरुद्ध है। मैं अपना निवेदन तब करूंगा, जब दूसरा संशोधन सदन के समक्ष आ जाए।

माननीय अध्यक्षः व्यवस्था का प्रश्न यह था कि इस संशोधन के द्वारा इस प्रस्ताव में, जैसा कि वह मूल रूप में है, एक से ज्यादा मुद्दे उठाने पर विचार किया जाएगा। इसलिए माननीय सदस्य की आपत्ति केवल 'मंत्रिमंडल में अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त करते समय' शब्दों तक सीमित नहीं है।

डा. भीमराव अम्बेडकरः मैंने यही कहा है। यही सारी बात है।

II*

डा. भीमराव अम्बेडकर (बंबई नगर) : अध्यक्ष महोदय! मैं प्रारंभ में यह जरूर कहना चाहूंगा कि मुझे आपके द्वारा किए गए इस निर्णय पर कुछ आपत्ति है कि आप ऐसे किसी विशेष सदस्य को जो एक नेता के पद पर है, 45 मिनट से ज्यादा समय नहीं देंगे। अभी-अभी आपने यही दोहराया है और मेरे सामने जो टिप्पण है, उसे देखते हुए शुरू में ही मैं आपसे समय बढ़ाने का अनुरोध करना चाहूंगा। मैं आपको बता दूं कि मेरा अनुरोध किसी असाधारण ढंग का नहीं है। पहले भी ऐसा उदाहरण है। हम सभी *महाभारत* में राजा ययाति की कहानी को जानते हैं। अपने बुढ़ापे में उन्होंने एक जवान लड़की देवयानी से विवाह किया था। विवाह के बाद उन्होंने यह पाया कि दंपति की उम्र के बीच इतना अधिक अंतर था कि जब तक उनकी जवानी के वर्षों में कुछ अवधि नहीं जोड़ी जाती, तब तक उनके विवाह का कोई मतलब नहीं होगा। अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने यह खोजना शुरू किया कि क्या कोई ऐसा दानी व्यक्ति है, जो अपने जीवन के कुछ वर्ष उन्हें देकर उनके जीवन में यह अवधि जोड़ दे। उनको ऐसा कोई नहीं मिला। सौभाग्यवश उनका बेटा पुरु जो एक अत्यंत कर्तव्यनिष्ठ पुत्र था, जो बहुत ही छोटा था और जिसे स्वयं अपने लिए युवावस्था की जरूरत थी, वह आगे आया और अपने जीवन का एक हिस्सा पिता को अर्पित कर दिया। महोदय! मैं आपको आश्वस्त करता हूं कि मेरे पीछे जो सदस्य बैठे हैं और अगर मैं कहूं, मेरा संबंध उनके साथ पिता-पुत्र का है, वे सब अपने समय में से कुछ हिस्सा निकालकर मुझे देने पर सहमत हो गए हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि जब तक आप इसे स्वीकृति प्रदान नहीं कर देते और इसका अनुमोदन नहीं करते, यह समय जोड़ा नहीं जा सकता। यह हो सकता है कि समय जोड़ना जरूरी हो जाए, तो मैं इसी आशा के साथ आगे बढ़ूंगा कि आप अंततः इसकी स्वीकृति दे देंगे।

माननीय प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का फिर से उल्लेख करते हुए मैं यही कहूंगा

---

* *बॉम्बे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स,* खंड 7, पृ. 2018-35, 26 अक्तूबर 1939

कि मेरे विचार से यह प्रस्ताव अनुचित और असामयिक प्रतीत होता है। यह प्रस्ताव सदन से एक निश्चित घोषणा करने की मांग करता है और फिर सदन को, इन मांगों के पूरा न होने की दशा में, एक निश्चित प्रक्रिया विधि का अनुमोदन करने का आह्वान करने के लिए कहता है। सबसे पहले, मैं यह जानना चाहूंगा कि ये मांगें किसने की हैं। स्पष्टत: महामहिम वायसराय से की गई मांगें इस सदन द्वारा नहीं की गई थीं। माननीय प्रधानमंत्री ने देश की ओर से मांगों को रखने के लिए और महामहिम वायसराय के पास उन मांगों को भेजने से पहले सदन का समर्थन लेने के लिए इस सदन को उचित स्थान नहीं समझा। मांगें, जैसा कि हम जानते हैं, उनके द्वारा प्रस्तुत की गईं जिन्हें माननीय प्रधानमंत्री 'आलाकमान' कहेंगे और मैं कहता हूं कि यह आलाकमान और कुछ नहीं केवल मंत्रियों की कठोर कार्रवाइयों को रोकने के लिए नियुक्त निगरानी समिति है (ठहाका)। मेरा निवेदन है कि वह उचित स्थान था,जहां मांगों को रखा जाना चाहिए था। उन्होंने ऐसा करने के लिए इसे नहीं चुना। अगर वे सभा पटल पर रखी गई थीं,तो वे संविधान से अनभिज्ञ और सदन के अपरिचित व्यक्तियों के समर्थन से पारित हो गईं, और ऐसा होने के बाद, वे शांति से सदन में आते हैं और कहते हैं 'स्थिति बिगड़ गई है, हमारे बचाव के लिए आओ।' मेरा निवेदन है कि यह सबसे अधिक अपमानजनक प्रक्रिया है।

दूसरी बात जो मुझे इस प्रस्ताव के बारे में कहनी है, वह यह है कि इसने कुछ निश्चित शब्दों में घोषणा की मांग की गई है। अब मुझे ऐसा लगता है कि महामहिम वायसराय द्वारा एक निश्चित ढंग से घोषणा कर दी गई है। इस महीने की 18 तारीख को भारत के लोगों को इस घोषणा का पता चला, इसके बाद पूरे सात दिन बीत चुके हैं। अब सदन जो कुछ अपनी पूरी गरिमा के साथ कर सकता है, वह यह व्यक्त करना है कि यह घोषणा संतोषजनक नहीं है, लेकिन प्रस्ताव ऐसा नहीं करता। यद्यपि यह एक घोषणा है, तथापि माननीय प्रधानमंत्री ने बिना यह व्यक्त किए कि यह घोषणा स्वीकार्य है या नहीं, या कोई दूसरी घोषणा होनी चाहिए या नहीं, इस प्रस्ताव को शब्दबद्ध किया है। यह पूरा प्रसंग अत्यंत तुच्छ प्रतीत होता है। मैं उस विवाद में नहीं पड़ना चाहता, क्योंकि मेरे माननीय मित्र प्रधानमंत्री ने विपक्षी सदस्यों से इस प्रस्ताव को इस रूप में स्वीकार करने का निवेदन किया है, मानो यह विवाद रहित मामला हो। लेकिन मैं कहूंगा कि यह यदा-कदा ही होता है कि कुत्तों को कुत्ता खाने का मौका मिले और यह प्रस्ताव वैसा ही है,तो भी मैं माननीय प्रधानमंत्री के आह्वान का उत्तर देने के लिए तैयार हूं और सभा पटल पर रखे गए प्रस्ताव और संशोधन को विवाद रहित ही समझूंगा।

महोदय! चूंकि मैं इस समय प्रस्ताव पर और संशोधनों पर भी कुछ टिप्पणी करने जा रहा हूं, इसलिए मैं प्रारंभ में ही सदन को बताना चाहता हूं कि मैं किन बातों में प्रस्ताव से सहमत हूं। जहां प्रस्ताव कहता है कि भारत को बिना भारत के लोगों की राय के ब्रिटेन और

जर्मनी के बीच हो रहे युद्ध में भागीदार बनाया गया है, मैं पूर्ण रूप से इसका समर्थन करता हूं। वास्तव में, मुझे एक कदम और आगे जाना चाहिए था, क्योंकि स्थिति वास्तव में बहुत असामान्य है। यहां हम ब्रिटिश मंत्रिमंडल के रथ के पहियों से बांध दिए गए हैं। ब्रिटिश मंत्रिमंडल अंग्रेज साम्राज्य की विदेश नीति को नियंत्रित करता है। विदेश नीति के निर्धारण और युद्ध की घोषणा में इस देश की कोई आवाज नहीं होती। संभवतया जनता में से कुछ लोगों को वरसाई या अन्य स्थान पर जाने के लिए निमंत्रण दिया जाना चाहिए,जहां शांति संधि पर हस्ताक्षर होने हैं, ताकि दस्तावेज पर उनके नाम दर्ज हो सकें। मुझे निश्चित रूप से पता है कि इसके सिवाय देश की और कोई भूमिका नहीं होगी। यह सचमुच बहुत ही असामान्य स्थिति है। मैं कहता हूं कि भारत को उपनिवेशों की तुलना में ग्रेट ब्रिटेन की विदेश नीति में कहीं ज्यादा हिस्सा लेने का अधिकार है। जैसा कि माननीय प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में उल्लेख किया है कि स्टेट्यूट आफ वेस्टमिनिस्टर के तहत यह उपनिवेश पर निर्भर है कि वह खुद को निष्पक्ष घोषित करे और उस युद्ध के दुष्परिणामों से अपने को दूर रखे, जिसके लिए वह जिम्मेदार नहीं है। दुर्भाग्यवश, हमें उपनिवेश का दर्जा प्राप्त नहीं है। हमें अपने आपको निष्पक्ष घोषित करने का अधिकार नहीं है। बिना हमारी इच्छा के और बिना हमारी सहमति के हमें इस हत्याकांड में धकेल दिया जाता है और मैं कहता हूं कि अगर यह वस्तुस्थिति है,तो यह जोर देने के लिए कि हम से हमेशा परामर्श किया जाए हमारे पास अन्य उपनिवेश से ज्यादा अधिकार हैं। इसलिए जहां तक प्रस्ताव के उस अंश का सवाल है, मैं उसे पूरा समर्थन देता हूं।

एक दूसरी बात भी है,जिसका मैं संक्षिप्त उल्लेख करना चाहूंगा। यथापि इस देश को बिना इसकी सहमति के युद्ध में शामिल कर लिया गया है, तथापि जैसा कि यह प्रस्ताव ठीक ही कहता है,सुरक्षा के दृष्टिकोण से यह देश सर्वाधिक सुरक्षाहीन स्थिति में है। मान लीजिए कि इस देश की सुरक्षा का प्रश्न उठा, तो हमारी सेना कहां है? नौसेना कहां है? हवाई जहाज कहां हैं, जो इस देश की रक्षा कर सकें? गोलमेज सम्मेलन के सदस्य के रूप में, मुझे याद है कि हम एक सिद्धांत के लिए लड़े थे और वह सिद्धांत यह था कि भारत की रक्षा ग्रेट ब्रिटेन की जिम्मेदारी के रूप में जानी जाए और भारतीयों को अपनी सुरक्षा करने की शिक्षा दी जाए। मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि जहां तक मैंने भारत सरकार की रक्षा नीति का अवलोकन किया है, उस विषय में उन्होंने कोई संतोषप्रद उपाय नहीं किया है। जहां तक उस सिद्धांत पर अमल करने का प्रश्न है, मैं उनकी नीतियों में कुछ भी नहीं पाता। इसलिए मैं समझता हूं कि यह एक वाजिब शिकायत है, जो भारत कर सकता है। अब यही वे मुद्दे हैं, जिन पर मैं सरकार से सहमत हूं, लेकिन मुझे यह कहते हुए दुख है कि यहीं मेरी सहमति समाप्त हो जाती है।

महोदय! जैसा कि आप जानते हैं, मैंने सभी चारों संशोधन प्रस्तावित कर दिए हैं। वे

तीन हैं, किंतु वास्तव में चार हैं। मैं उन दो संशोधनों को एक साथ लेने का प्रस्ताव रखता हूं, जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बारे में हैं और बाकी संशोधनों को मैं अलग-अलग लूंगा। मेरा सदन के सामने संशोधनों को फिर से पढ़ने का विचार नहीं है, क्योंकि मैं समय बचाना चाहता हूं। सदन पूरी तरह जानता है कि ये संशोधन क्या हैं। माननीय प्रधानमंत्री ने अपने भाषण को समाप्त करते हुए संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में शामिल सिद्धांत की ओर सदन का ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने अमरीका के संविधान से एक उद्धरण पढ़ा, जिसमें लोकतंत्र का, जीवन और स्वतंत्रता का तथा सुख की खोज का उल्लेख है और उन्होंने हम से जो विपक्षी बेंच पर बैठे हैं, अनुरोध किया है कि हम उस पुरातन और अत्यंत मानवीय दस्तावेज के प्रति जिसमें लोकतंत्र का सिद्धांत शामिल है, आदर करें। अपनी तरफ से मैं माननीय प्रधानमंत्री को दक्षिण अमरीका से संबंधित मामलों की स्थिति का पुन: स्मरण कराने की छूट चाहूंगा। उन्होंने उत्तरी अमरीका का उल्लेख किया है, जब कि मैं दक्षिण अमरीका का उल्लेख करूंगा, वे ऐसे देश हैं,जो एक-दूसरे के बहुत नजदीक हैं। मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र प्रधानमंत्री इस तथ्य को याद रखेंगे कि जब स्पेन के अमरीकी उपनिवेश, जैसे कि ब्राजील और अन्य देश स्पेनी साम्राज्य से अलग हुए,तो उन्होंने भी अपना अलग-अलग संविधान बनाने का सोचा। उन्हें पता नहीं था कि अपना संविधान कैसे बनाया जाए। फलत: उन्होंने एक आदमी की सहायता ली और मुझे विश्वास है कि हमारे प्रधानमंत्री उससे परिचित हैं। उन्होंने बस यही किया कि सारे मामले को जेरमी बेंथम के सुपुर्द कर दिया। यदि बाहर के लोगों को नहीं भी पता तो सारे वकील तो उसका नाम जानते ही हैं। जेरमी बेंथम बहुत बड़ा विधि वेत्ता था, वह ऐसा आदमी था,जो विधिसूत्र बनाने में लगा रहता था। वह विवेकपूर्ण ढंग से अंग्रेजी कानून में सुधार लाना चाहता था। दक्षिण अमरीकी उपनिवेशों ने सोचा कि एक आदमी जो युक्ति संगत बातों के सिवाय और किसी में विश्वास नहीं करता और जो ऐसा करना एक प्राथमिकता मानता है,वही एक उचित आदमी हो सकता है, जिसे अपने लिए संविधान बनाने को कहा जाए। मेरा विश्वास है कि उन्होंने उसके पास सलाह के तौर पर संक्षिप्त ब्यौरे देते हुए अपने दूत भेजे। दक्षिण अमरीका में अनेक उपनिवेश थे, जो सब पुराने स्पेनी साम्राज्य से टूटे थे। जेरमी बेंथम ने दक्षिण अमरीका के इन देशों का संविधान बनाने का काम बड़ी खुशी से अपने हाथों में लिया।उसने बड़ी मेहनत करके विस्तृत दस्तावेज तैयार किए। मैं देखता हूं कि प्रधानमंत्री हंस रहे हैं, क्योंकि वह इन तथ्यों को जानते हैं। जेरमी बेंथम द्वारा बनाए गए संवैधानिक दस्तावेज जहाज द्वारा दक्षिण अमरीका भेजे गए, जिससे लोगों के जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा हो सके और अगर मैं ऐसा कह सकता हूं तो लोकतांत्रिक सिद्धांतों में सामंजस्यता लाई जा सके,जब संविधान वहां पहुंचे,तो कुछ वर्षों तक दक्षिण अमरीकी लोगों द्वारा उनका उपयोग किया गया और उसके बाद जेरमी बेंथम के द्वारा बनाए गए सभी संविधान विखंडित हो गए और वहां के लोगों की समझ में नहीं

आया कि वहां से आई हुई अतिरिक्त प्रतियों का क्या किया जाए और सभी दक्षिण अमरीकी लोगों ने तय किया कि उन्हें सार्वजनिक रूप से जला दिया जाए।

महोदय! जिस मुद्दे पर मैं जोर दे रहा हूं ,वह यह है कि किसी संविधान को निश्चय ही किसी सूट की तरह बिल्कुल फिट होना चाहिए। जो संविधान फिट नहीं होता, वह संविधान नहीं, वह संविधान हो ही नहीं सकता। उदाहरण के लिए जिस कोट को माननीय गृह मंत्री अपने छरहरे बदन पर पहने हुए हैं, वह मेरे जैसे मोटे शरीर पर फिट नहीं बैठेगा (ठहाका)। क्या यह फिट बैठ सकता है? क्या कुबड़े के लिए बना सूट किसी सामान्य पीठ वाले आदमी पर फिट बैठ सकता है (ठहाका)? क्या एक जूता जो उस आदमी के लिए दुरुस्त है, जो जमीन पर अपने पैर दृढ़तापूर्वक और सीधा रखता है, क्या वह टेढ़ी टांगों वाले आदमी को दुरुस्त बैठ सकता है? ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए लोकतंत्र के बारे में बात करते हुए हमें तथ्यों पर खरे उतरने वाले सिद्धांतों की बात करनी चाहिए। अब, जिस मुद्दे की मैं व्याख्या करने जा रहा हूं, वह यह है, क्या लोकतंत्र का सिद्धांत भारत के लोगों के लिए उचित होगा? मेरे माननीय मित्र प्रधानमंत्री ने यह स्पष्ट नहीं किया कि वह लोकतंत्र के सिद्धांत को किस तरह लेते हैं, लेकिन वह लोकतंत्र का मतलब जो लेते हैं, उसके अनुसार उसे मैं बहुमत का शासन समझता हूं, क्योंकि जब तक हम सभी बहुमत के शासन को मूल कार्यकारी सिद्धांत स्वीकार नहीं करते, तब तक राजनैतिक लोकतंत्र नहीं आ सकता। स्पष्टत: यही मूल है, यही आधार है, यही तरीका है, जिससे हमें इस प्रश्न पर बहस करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए।

महोदय! अब मैं समझता हूं कि हर व्यक्ति विपक्ष के नेता के इस विचार से सहमत होगा कि तथ्यों को देखते हुए केवल एक वस्तु अपरिवर्तनीय है और वह अपरिवर्तनीय वस्तु यह है कि हिन्दू बहुसंख्यक रहेंगे और मुसलमान तथा अनुसूचित जातियां अल्पसंख्यक रहेंगी। मैं मानता हूं कि यह एक निर्विवाद तथ्य है। एक तथ्य जिसे चाहे हम एक वस्तु में विश्वास करें या अन्य में, हम सब को जरूर स्वीकार लेना चाहिए। अब मेरे लिए यह प्रश्न बहुत सरल है और मैं इसका विवेचन शुद्ध रूप से उनके दृष्टिकोण से करने जा रहा हूं, जिन्हें इस देश में अछूत कहा जाता है। मैं शुरुआत में सदन से कहूंगा कि उस सापेक्ष स्थिति को ध्यान में रखें, जो इस देश के लोकतंत्र में हम प्राप्त करेंगे। इस लोकतंत्र के अंतर्गत जिसे हमारे प्रधानमंत्री इस देश में स्थापित करना चाहते हैं, एक वस्तु, जैसा कि मैंने कहा अपरिवर्तनीय होगी, वह यह है कि इसमें हिन्दू बहुसंख्यक होंगे और इस समूची भूमि पर सर्वत्र बिखरे हुए देश के हर गांव में टूटी-फूटी कच्ची झोंपड़ियों का एक झुंड मिल जाएगा, जहां अछूत कहे जाने वाले लोग रहते हैं। हर गांव के साथ लगे हुए ऐसे मोहल्लों को आप पाएंगे,जिनमें हिन्दू होंगे और एक महारवाड़ा या चमारवाड़ा या एक भंगीवाड़ा, जो भी आप कहें, उन मोहल्लों के साथ लगा होगा। यह एक अपरिवर्तनीय तथ्य होगा।

अब मेरे माननीय मित्र मुझसे लोकतंत्र पर बोलने के लिए कह रहे हैं। ठीक है, मैं समझता

हूं कि वह मुझे यह कहने की अनुमति देंगे कि इस प्रश्न का मेरा उत्तर इस पर निर्भर करेगा कि बहुसंख्यक मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे। क्या ये बहुसंख्यक सहिष्णु बहुसंख्यक हैं? क्या ये बहुसंख्यक समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को स्वीकार करते हैं? क्या ये बहुसंख्यक मुझे जीने की, सांस लेने की, बढ़ने की अनुमति देंगे?

माननीय श्री बी. जी. खेर: निश्चय ही, ये अनुमति देंगे।

डा. भीमराव अम्बेडकर: बहुसंख्यकों का व्यवहार कैसा है? यही एकमात्र प्रश्न है, जिस पर विचार किया जाना है। मेरे माननीय मित्र ने कहा है--'हां'। लेकिन हमें तथ्यों को देखना चाहिए। मैं अतीत या प्राचीन इतिहास में नहीं जा रहा हूं। मैं 1929 से शुरू करना चाहता हूं। सदन जानता है कि 1929 में बंबई विधान परिषद ने एक प्रस्ताव द्वारा, जो दलित वर्ग और आदिम जनजातियां कहलाते हैं, उनकी शिकायतों की जांच के लिए एक समिति बनाई थी। उस समिति की अध्यक्षता श्री स्टार्टे नामक एक अधिकारी ने की, जो जरायमपेशा जनजातियों का मामला देख रहा था। मैं उस समिति का एक सदस्य था। मेरे सहयोगी डा. सोलंकी भी सदस्य थे, बाकी सभी सदस्य हिन्दू थे। मैं विशेषकर एक आदमी की चर्चा करूंगा, जो इस समिति के सदस्य थे और वह थे श्री ठक्कर, क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे माननीय मित्र प्रधानमंत्री मेरे प्रमाणों के बजाय डा. ठक्कर के प्रमाण पर ज्यादा शीघ्रता से विश्वास करेंगे। महोदय, 1928 में अधिकांश हिन्दुओं का व्यवहार दलितों के प्रति कैसा था? मैं इस रिपोर्ट के एक पैरा को पढ़ने के लिए आपकी अनुमति चाहूंगा। इस रिपोर्ट के पैरा 102 में उल्लेख है:

> यद्यपि हमने दलित वर्ग को सार्वजनिक सुविधाओं का उनका अधिकार दिलाने के लिए विभिन्न उपायों का अनुमोदन किया है, तथापि हमें आशंका है कि आने वाले लंबे समय तक उन्हें उन अधिकारों का उपयोग करने में बाधा आएंगी। प्रथम डर तो रूढ़िवादी वर्ग द्वारा उनके खिलाफ होने वाली खुली हिंसा का है। यह जरूर ध्यान में रखा जाए कि दलित वर्ग हर गांव में छोटे अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में है, जिनके खिलाफ एक बड़ा रूढ़िवादी वर्ग किसी भी कीमत पर अल्पसंख्यक वर्ग के किसी भी तथाकथित आक्रमण से अपने हितों और अपना दबदबा बनाए रखने के लिए तत्पर है। पुलिस द्वारा अभियोग लगाए जाने के खतरे ने रूढ़िवादी वर्ग को हिंसा के उपयोग से काफी रोका है और इस तरह के मामले यदा-कदा ही होते हैं।

दूसरी कठिनाई उस आर्थिक दशा से उत्पन्न होती है, जिसमें दलित वर्ग आजकल है। प्रेसिडेंसी के अधिकांश हिस्सों में दलित वर्ग को आर्थिक आजादी नहीं है। कुछ रूढ़िवादी वर्ग की जमीन पर उनके कमेरे के रूप में उनकी इच्छा पर खेती करते हैं। अन्य रूढ़िवादी वर्गों के यहां खेतीहर मजदूर के रूप में अपना पेट पालते हैं और बाकी रूढ़िवादी वर्ग के ग्रामीण नौकर के रूप में सेवा करने के बदले दिए गए भोजन या अनाज पर जीवन निर्वाह

करते हैं। हमने ऐसे अनेक उदाहरणों के बारे में सुना है कि जब भी कुछ गांवों में दलित वर्ग ने अपने अधिकारों का उपयोग करने का साहस किया, रूढ़िवादी वर्ग ने अपनी आर्थिक शक्ति का इस्तेमाल करके दलित वर्ग को जमीन से बेदखल कर दिया और यह बहिष्कार इतने बड़े पैमाने पर आयोजित किया जाता कि गांव के द्वारा उन्हें दैनिक उपयोग की वस्तुएं बेचने को और आम रास्तों तथा पड़ावों का दलित वर्ग द्वारा उपयोग को भी निषिद्ध कर दिया जाता। प्रमाणों के अनुसार कभी-कभी छोटे कारण भी दलित वर्ग के सामाजिक बहिष्कार की घोषणा के लिए पर्याप्त होते हैं। दलित वर्ग द्वारा सार्वजनिक कुएं का उपयोग करने के अधिकार के इस्तेमाल करने पर अक्सर ऐसा ही होता है, लेकिन ऐसे मामले किसी भी तरह कम नहीं होते, जिनमें एक कठोर बहिष्कार की घोषणा सिर्फ इसलिए होती है, क्योंकि एक दलित वर्ग के आदमी ने जनेऊ पहन लिया या एक टुकड़ा जमीन खरीद ली या अच्छे कपड़े या आभूषण पहन लिए या दुल्हे को घोड़ी पर बैठाकर बारात को सार्वजनिक गलियों से ले गए।

यह स्थिति 1928 में थी। मुझे जो प्रश्न पूछना है, वह यह है – क्या 1928 के बाद से कोई परिवर्तन आया है? अब, जहां तक मेरे पास प्रमाण उपलब्ध हैं, मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि स्थिति न केवल वैसी है, बल्कि उससे भी बदतर हुई है। मैं अपने दावे के समर्थन में कुछ उदाहरण दूंगा।

जिस पहली चीज का मैं उल्लेख करूंगा, वह 1932 के चुनाव हैं, जो विधान परिषद के लिए हुए थे। जैसा कि मेरे माननीय मित्र प्रधानमंत्री को याद होगा, 1932 में कांग्रेस ने विधान मंडलों का बहिष्कार किया। उन्होंने चुनाव लड़ने से इंकार किया। अब, कांग्रेस ने 1932 में – यदि यह तिथि गलत है, तो मैं उसे ठीक करने को तैयार हूं – मैं अपनी याद्दास्त से बोल रहा हूं:

एक माननीय सदस्य: यह 1930 का वर्ष था।

डा. भीमराव अम्बेडकर: 1930; कांग्रेस ने 1930 में लोगों को डराने के लिए, लोगों को समझाने के लिए कि वे चुनाव में भाग न लें, कई तरह की युक्तियां निकालीं। मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि यही वह वर्ष था, जिसमें डांडी यात्रा हुई थी। महोदय! 1930 में विधायिका में शामिल होने से रोकने के लिए कांग्रेस के नारे क्या थे? एक नारा जो इन लोगों के द्वारा दिया गया था, जहां तक मुझे याद है, वह था-- कौंसिल में जाना हराम है। लेकिन वही सब कुछ नहीं था। दूसरा नारा था -- परिषद में कौन जाएगा? ढेड़ जाएगा, चमार जाएगा। ये वे नारे थे, जिनका कांग्रेसी लोगों ने उपयोग किया था (व्यवधान)। कृपया। सुनिए। अगर मेरे माननीय मित्र प्रमाण चाहते हैं, तो मैं अकाट्य प्रमाण दूंगा और मैं इस सदन में कह सकता हूं कि नारा इतना अपमानजनक था कि *टाइम्स आफ इंडिया* ने भी इस पर संपादकीय लिखना जरूरी समझा। अब, जिस मुद्दे पर मैं प्रकाश डाल रहा था, वह यह

है कि हिन्दू – कांग्रेसी विचारधारा के हिन्दू भी जो यह कहते हैं कि वे जाति को भूल गए हैं, जो कहते हैं कि वे छुआछूत को भूल गए हैं। उन हिन्दुओं ने, यहां तक कि कांग्रेसी विचारधारा के हिन्दुओं ने भी ऐसे नारों का उपयोग किया। महोदय! अगर देश के सर्वोत्कृष्ट लोग, जैसा कि मैं यहां देख रहा हूं, हिन्दू संप्रदाय का सबसे प्रबुद्ध हिस्सा उस समुदाय के प्रति ऐसी घृणा व्यक्त करने की क्षमता रखता है,जो इतना असहाय, इतना दलित है, तो आप उस रूढ़िवादी तबके से क्या उम्मीद कर सकते हैं, जिनके लिए मेरे माननीय मित्र प्रधानमंत्री के द्वारा पारित कानून से मनु द्वारा बनाए गए कानून ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

महोदय! अब मैं दूसरा मामला ले रहा हूं। मैं ज्यादातर गुजरात के मामलों को ले रहा हूं। एक सोचे–समझे कारण के तहत, क्योंकि मुझे बताया जाता है कि वह हमारी प्रेसिडेंसी का सबसे प्रबुद्ध हिस्सा है। जिस उदाहरण को मैं बताने जा रहा हूं, वह अहमदाबाद जिले के ढोलका तालुक के कविता नामक गांव का है। हम सबको इस बारे में विशेष ध्यान देना चाहिए। इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं। किसी खास दिन, किसी ब्राह्मण ने कविता गांव के किसी अछूत समुदाय के कुछ लोगो पर हमला किया। मेरे माननीय मित्र ध्यान रखें कि ये तथ्य *हरिजन* से लिए गए हैं, जो इस संबंध में अंतिम वाक्य माना जा सकता है।

माननीय श्री बी.जी.खेर: मैं उस जगह पर गया था, मुझे घटना का पता है। माननीय सदस्य को इसका उल्लेख करने की जरूरत नहीं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: तथ्य इस प्रकार थे। उस गांव के किसी ब्राह्मण ने अछूत समुदाय के कुछ लोगों पर हमला किया। मैं यदि ऐसा कहूं तो, शायद अपनी हिमाकत में यह सोचते हुए कि इन अछूतों के लिए यह संभव था कि इस ब्राह्मण पर मुकदमा चलाएं और उसे दंडित करें, उनके दिमाग में हमलावर के खिलाफ शिकायत करने के लिए जिला पुलिस के पास जाने का विचार आया। इस बीच जो हुआ, वह यह है। जिस दिन अछूत घरों पर गांव की ऊंची जाति के हिन्दुओं द्वारा हमला हुआ। उनके घर ध्वस्त कर दिए गए, छतों को गिरा दिया गया। यह जानकर कि पुरुष सदस्य उनके वार सहने के लिए मौजूद नहीं हैं, ये सभी भद्र व्यक्ति यह सोचते हुए कि लोग रात में आएंगे, शाम तक वहीं बैठे रहे। कुछ औरतें जिन्हें उनकी योजना की जानकारी हो गई थी, वे गांव से बाहर खिसक गईं और पुरुषों से रात में आधे रास्ते में मिलीं और उनसे कहा कि गांव में आना बहुत ही खतरनाक है, क्योंकि उनकी जिदंगी सुरक्षित नहीं हैं। इन लोगों ने रात गांव से बाहर बिताई और वे वापस नहीं लौटे। दूसरे दिन, वे एक–एक, दो–दो होकर छुपकर आए, ताकि उनके आने का पता न चले, उन्होंने देखा कि उनकी सारी झोपड़ियां ध्वस्त की जा चुकी थीं। इसके साथ ही उन्हें पता चला कि गांव ने उनका बहिष्कार कर दिया है। उन्हें गांव के बनिए से कुछ खरीदने की अनुमति नहीं थी। इतना ही नहीं, गांव वालों ने ढेर सारी मात्रा में मिट्टी का तेल खरीदा और इसे पानी भरने के उन स्थानों पर डाल दिया, जहां से ये लोग पानी

लेते थे। तब इन अछूतों ने सोचा कि कुछ किया जाना चाहिए। उन्होंने सोचा और जैसा कि उन्हें गलत सलाह मिली कि उन्हें कानून की शरण लेनी चाहिए। वे फिर गए और शिकायत की। उनके कुछ कांग्रेसी मित्रों ने हस्तक्षेप किया। उन्होंने क्या किया? क्या उन्होंने उन बेचारे अछूतों की उनके अधिकार पाने में मदद की? नहीं, उन्होंने उनको शिकायत वापस लेने और चुपचाप समर्पण करने के लिए राजी कर लिया। समूची बात का सबसे दुखद पहलू यही है। कविता के इन अछूतों ने क्या गलती की थी? उनको इस ढंग से क्यों प्रताड़ित किया गया? इसके सिवाय और किसी कारण से नहीं कि कविता के अछूतों ने अपने बच्चों में से चार को उस स्कूल में भेजने का आग्रह किया, जिसमें सरकार के आदेश के अनुसार उन्हें दाखिला मिलना चाहिए था।

दूसरा मामला जिस पर मैं आ रहा हूं, वह एक भंगी लड़के का मामला है, जो दुर्भाग्यवश एक तलाठी के रूप में नियुक्त किया गया। उसका नाम परमार कालिदास शिवराम है। आपकी सहमति से, मैं वह निवेदन करना चाहता हूं, जो परमार कालिदास शिवराम ने बंबई में श्री इंदुलाल याज्ञिक की अध्यक्षता में होने वाली एक सार्वजनिक सभा में कहा, जिसमें मैं भी उपस्थित था। मैं कहानी सुनकर बुरी तरह हिल गया। मैंने उसे सारी घटना को लिखित रूप में देने के लिए कहा। जो उसने मुझे लिखित में दिया, उसका मैंने केवल अनुवाद किया है। कहानी इस प्रकार है:

> मैंने 1933 में भाषा की अंतिम परीक्षा पास की। मैंने चार दर्जे तक अंग्रेजी पढ़ी है। मैंने बंबई नगरपालिका की स्कूल समिति में एक शिक्षक पद के लिए आवेदन किया। लेकिन मैं असफल रहा, क्योंकि कोई स्थान रिक्त नहीं था। तब मैंने पिछड़ा वर्ग अधिकारी, अहमदाबाद, के पास एक तलाठी के पद के लिए आवेदन किया और मैं सफल रहा। 19 फरवरी 1938 को मुझे खेड़ा जिले के बोरसाद तालुक में मामलातदार के कार्यालय में तलाठी के रूप में नियुक्त किया गया।
>
> हालांकि मेरा परिवार मूलत: गुजरात से है, लेकिन मैं पहले गुजरात में कभी नहीं रहा। वहां जाने का यह मेरा पहला अवसर था। इस प्रकार, मैं यह नहीं जानता था कि सरकारी कार्यालयों में छुआछूत मानी जाएगी। इसके अतिरिक्त, मेरे आवेदन में मेरा हरिजन होना उल्लिखित था और इसलिए मुझे उम्मीद थी कि कार्यालय के मेरे सहयोगियों को पहले से ही यह पता होगा कि मैं कौन हूं। ऐसा होने पर, जब मैं तलाठी के पद का कार्यभार लेने के लिए पहुंचा, तो मामलातदार कार्यालय के क्लर्क का व्यवहार देखकर चकित रह गया।
>
> कारकून ने घृणा से पूछा तुम कौन हो? मैंने जवाब दिया महोदय, मैं एक हरिजन हूं। उसने कहा – जाओ और दूरी पर खड़े हो जाओ। मेरे इतना नजदीक खड़े होने का साहस तुमने कैसे किया? तुम कार्यालय में हो, अगर तुम बाहर होते, तो मैं तुम्हें छह लात मारता।

यहां नौकरी के लिए आने की यह ढिठाई कैसे की? इसके बाद उसने जमीन पर मेरे प्रमाण-पत्र और तलाठी के रूप में नियुक्ति पत्र को गिरा देने को कहा। तब उसने उन्हें उठाया।

जब मैं बोरसाद में मामलातदार के कार्यालय में काम करता था, मैंने पीने के लिए पानी प्राप्त करने में बहुत कठिनाई का अनुभव किया। कार्यालय के बरामदे में पीने के लिए पानी में भरे बर्तन रखे होते थे। इन पानी से भरे बरतनों की देख-रेख के लिए एक पानी देने वाला था। उसका काम कार्यालय के क्लर्कों के लिए, जब भी उन्हें जरूरत होती, तब पानी देना था। उस पानी वाले की अनुपस्थिति में वे खुद ही बर्तनों से पानी निकालते थे और पीते थे। मेरे मामले में यह असंभव था। मैं उन बर्तनों को छू नहीं सकता था, क्योंकि मेरे छूने से पानी भ्रष्ट हो सकता था। इसलिए मुझे पानी वाले की दया पर निर्भर रहना पड़ता था। मेरे उपयोग के लिए एक जंग लगा बर्तन था जिसमें पानी वाला मेरे लिए थोड़ा-थोड़ा पानी डालता था। मेरे अलावा कोई भी इसे छूता या धोता नहीं था। मैं केवल तभी पानी ले सकता था, जब पानी वाला उपस्थित होता। पानी वाले को मुझे पानी देना पसंद नहीं था। यह देखकर कि मैं पानी के लिए आ रहा हूं, वह खिसक लेता और फलस्वरूप मुझे बिना पानी के रहना पड़ता। ऐसे दिन किसी तरह से कम नहीं थे, जब मुझे पीने के लिए पानी न मिलता हो।

निवास के साथ भी यही दिक्कत थी। मैं बोरसाद में अजनबी था। ऊंची जाति का कोई हिन्दू मुझे मकान किराए पर नहीं देता था। बोरसाद में अछूत मुझे मकान नहीं देते थे, क्योंकि उन्हें उन हिन्दुओं के नाखुश होने का भय था, जिन्हें मेरा क्लर्क रूप में रहना पसंद नहीं था। खाने के संबंध में और भी अधिक कठिनाई थी। कोई भी ऐसा स्थान या व्यक्ति नहीं था, जहां मैं खाना ले सकता था। मैं सुबह-शाम भुजिया खरीदता, गांव के बाहर किसी एकांत स्थान में उसे खाता और वापस आकर मामलातदार के कार्यालय के बरामदे के फर्श पर सो जाता था। इस प्रकार मैंने चार दिन बिताए। मेरे लिए यह सब असहनीय हो गया। तब मैं रहने के लिए अपने पूर्वजों के गांव जेन्त्रल चला गया। यह बोरसाद से छह मील दूर था। प्रतिदिन मुझे बारह मील पैदल चलना पड़ता था। यह मैंने डेढ़ महीने तक किया।

इसके बाद मामलातदार ने काम सीखने के लिए मुझे एक तलाठी के पास भेजा। यह तलाठी तीन गांवों जेन्त्रल, कानपुर और सैजपुर का प्रभारी था। जेन्त्रल उसका मुख्यालय था। मैं दो महीने तक तलाठी के साथ जेन्त्रल में रहा। गांव का प्रधान खासकर क्रोधी और आक्रामक प्रकृति का था। एक बार उसने कहा--तुम्हारे बाप, भाई गांव के कार्यालय में झाड़ू लगाते हैं और तुम इस कार्यालय में हमारे बराबर बैठना चाहते हो। ध्यान रखो, बेहतर है कि तुम नौकरी छोड़ दो।

एक दिन तलाठी ने गांव की आबादी की तालिका बनाने के लिए मुझे सैजपुर बुलाया। जेन्त्रल से मैं सैजपुर गया। मैंने मुखिया और तलाठी को गांव के कार्यालय में कुछ काम करते पाया। मैं गया, दरवाजे के पास खड़ा रहा, उनको नमस्ते की, लेकिन उन्होंने मेरी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। मैं करीब 15 मिनट तक बाहर खड़ा रहा। मैं अपने जीवन से ऊब गया। उपेक्षा और अपमान के कारण मैं गुस्से में था। मैं वहां पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गया। मुझे कुर्सी पर बैठा देखकर प्रधान और तलाठी मुझसे बिना कुछ कहे ही बाहर चले गए। कुछ समय के बाद कुछ लोग गांव के पुस्तकालय में आने लगे। मैं यह नहीं समझ सका कि क्यों एक शिक्षित आदमी ने इस भीड़ का नेतृत्व किया है। इसी क्रम में मैंने जाना कि यह कुर्सी उसकी है। उसने मुझे भद्दी गालियां देनी शुरू कर दी। गांव के नौकर रवानिया को संबोधित करते हुए उसने कहा--किसने भंगी के इस गंदे कुत्ते को कुर्सी पर बैठने की इजाजत दी है? रावनिया ने मुझे उठाया और मुझसे कुर्सी ले ली। मैं जमीन पर बैठ गया। वहीं भीड़ ने उस गांव के कार्यालय में प्रवेश किया और मुझे घेर लिया। उत्तेजित भीड़ थी, क्रोध से भरी हुई थी। उनमें से कुछ मुझे गालियां दे रहे थे और कुछ धारिया से काटकर टुकड़े करने की धमकी दे रहे थे। मैं उनसे क्षमा और दया की भीख मांग रहा था। भीड़ पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मैं नहीं समझ पा रहा था कि खुद को कैसे बचाऊं। लेकिन मेरे दिमाग में एक विचार आया कि मैं मामलातदार को अपने ऊपर आए दुर्भाग्य के बारे में लिखूं और उससे कहूं कि अगर मैं उस भीड़ द्वारा मारा जाऊं, तो मेरे शरीर को किस प्रकार निबटाना है। संयोगवश, मुझे आशा थी कि यदि भीड़ यह जान पाए कि मैं उनके खिलाफ वास्तव में मामलातदार को लिख रहा हूं, तो वे अपना हाथ रोक सकते हैं। मैंने रावनिया से कागज का एक टुकड़ा देने के लिए कहा, जो उसने दिया। तब मैंने उस पर अपने कलम से बड़े-बड़े अक्षरों में नीचे पत्र लिखा, ताकि सभी इसे पढ़ सकें:

सेवा में,

मामलातदार,
तालुक बोरसाद
महोदय,

परमार कालिदास शिवराम का नम्र प्रणाम स्वीकार करें। आपको यह नम्र सूचना दी जाती है कि आज मेरे ऊपर एक नीच मृत्यु का हाथ पड़ने जा रहा है। मैंने अपने मां-बाप की बात मानी होती तो ऐसा नहीं होता। मेरी मृत्यु के बारे में मेरे माता-पिता को सूचित करने की कृपा करें।

अब, मैं अनुसूचित जाति के लोगों के प्रति बहुसंख्यकों के व्यवहार के कुछ उदाहरणों का उल्लेख करूंगा। एक मामला जामनेर तालुका के केक्तनिम्भोर गांव का है। जो इस प्रकार है:

इस गांव के दलित वर्ग ने किसी भी हिन्दू त्योहार को मनाना छोड़ दिया और जीने का एक साफ-सुथरा तरीका अपना लिया। छुट्टी के एक दिन उन्हें ऊंची जाति के हिन्दुओं ने होली के लिए जंगल से गाय का गोबर लाने को कहा। उन्होंने वैसा किया। लेकिन वे होली नहीं मनाते थे, अतः उन्होंने उच्च जाति के हिन्दुओं के लिए आग की व्यवस्था नहीं की। इसलिए हिन्दू उनकी बस्ती में घुस आए, उनके घरों में जाकर उन्हें मारा और उनका कठोर बहिष्कार करने की घोषणा की तथा उनकी जिंदगी दूभर बना दी।

दूसरा मामला जामनेर तालुक के वदाली गांव का है। उस गांव में दलित वर्ग की एक बारात को गांव के आम रास्ते पर ले जाने की अनुमति नहीं दी गई। बारात खदेड़ दी गई और उच्च जाति के हिन्दुओं ने उसी दिन विवाहोत्सव नहीं होने दिया। दलित वर्ग के लोगों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया।

इसके बाद अमलनेर तालुक के मांदेड़ का भी एक और मामला है। मांदेड़ में दलित वर्ग के लोगों ने एक सभा की और वहां बुरी आदतों का परित्याग करने का और जीवन को साफ-सुथरे ढंग से बिताने का संकल्प किया। ऊंची जाति के कुछ हिन्दुओं को यह विचार पसंद नहीं आया। उन्होंने एक छोटे सुअर को मार डाला और उसे दलित वर्ग के पीने के पानी में डाल दिया। यह तरीका दो बार दोहराया गया। दलित वर्ग के लोग अभी सामाजिक रूप से बहिष्कृत हैं और पीड़ित किए जाते हैं। इस उत्पीड़न के कारण दलित वर्ग के बहुत से लोगों ने अपना स्थान छोड़ दिया।

महोदय! मैं उन अनगिनत मामलों को दोहराना नहीं चाहता, जो यह दर्शाते हैं कि बहुसंख्यक हिन्दू अछूतों के संबंध में कितने असहिष्णु हैं। मैं यह कह सकता हूं कि जितनी सामग्री मेरे पास है,उसे प्रस्तुत करने के लिए मुझे एक दिन नहीं, बल्कि एक महीना लगेगा। अब, मैं जो दूसरा प्रश्न पूछ रहा हूं, वह यह है: उत्पीड़न के खिलाफ अनुसूचित जातियां किस प्रकार का संरक्षण प्राप्त करती हैं? इस मुद्दे पर सदन के सामने अपने विचार व्यक्त करने से पहले मैं देश के प्रशासन की संरचना पर सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मेरे पास केवल बंबई प्रेसिडेंसी के आंकड़े हैं। किंतु मेरे विचार में ये आंकड़े प्रतीकात्मक हैं— ये केवल इस प्रांत के लिए सही नहीं होंगे, बल्कि भारत के किसी भी हिस्से के लिए यह सही होंगे। इस प्रेसिडेंसी के प्रशासन में किस तरह के लोग हैं? जिस तरह के लोग भी हैं, मैं उनके बारे में सरकार के द्वारा दिए आंकड़ों को ले रहा हूं। वे मेरे अपने आंकड़े नहीं हैं। सबसे पहले मैं अनुसूचित जाति और राजस्व विभाग को ले रहा हूं। जहां तक जिला डिप्टी कलक्टरों का संबंध है, वे 33 हैं और उनमें से केवल एक अनुसूचित जाति का है। इस प्रांत में 100 मामलातदार में से केवल एक अनुसूचित जाति का है। कुल 34 महलकारी हैं, किंतु उनमें से कोई भी अनुसूचित जाति का नहीं है। और अब राजस्व विभाग में क्लर्कों की संख्या को लेते हैं। उनकी कुल संख्या 2,444 है। उनमें से अनुसूचित जाति के क्लर्कों की संख्या

केवल 30 है।

अब हम लोक निर्माण विभाग को लें। लोक निर्माण विभाग में 829 क्लर्क हैं। उनमें से अनुसूचित जाति के सात क्लर्क हैं। आबकारी विभाग में 189 क्लर्क हैं। उनमें से अनुसूचित जाति के तीन से अधिक क्लर्क नहीं हैं।

अब पुलिस विभाग को लें। दिए गए आंकड़ों के अनुसार, सब इंस्पेक्टरों की कुल संख्या 538 है। इनमें से केवल दो अछूत हैं। इस तरह यह स्पष्ट है कि प्रशासन में पूरी तरह से हिन्दू भरे हुए हैं। उस पर कोई प्रश्न उठाया ही नहीं जा सकता।

अब मैं सदन का ध्यान इस बात पर आकर्षित करना चाहूंगा कि इस प्रांत में अन्य अल्पसंख्यकों की तुलना में अनुसूचित जातियों की स्थिति किस प्रकार की है। राजस्व विभाग में जहां तक जिला डिप्टी कलक्टरों का संबंध है, 33 में आठ मुस्लिम हैं, तीन ईसाई हैं और केवल एक अनुसूचित जाति का है। 100 मामलातदारों में, 30 मुस्लिम, तीन ईसाई और केवल एक अनुसूचित जाति का है। कुल 34 महलकारियों में से, चार मुसलमान हैं, तीन ईसाई हैं, किन्तु अनुसूचित जाति से कोई भी नहीं है। कुल 246 प्रधान कारकूनों में से 17 मुसलमान हैं, सात ईसाई हैं, लेकिन अनुसूचित जाति से कोई नहीं है। कुल 2,444 क्लर्कों में से 283 मुसलमान हैं, 61 ईसाई हैं, 58 पिछड़े वर्ग के लोग और 30 अनुसूचित जाति के लोग हैं। पुलिस विभाग में 538 सब इंस्पेक्टरों में से 106 मुसलमान हैं, 17 ईसाई हैं, छह पिछड़े वर्ग के लोग हैं और केवल दो अछूत हैं। लोक निर्माण विभाग के 829 क्लर्कों में से 41 मुसलमान हैं, 28 ईसाई हैं, सात पिछड़े वर्ग के और सात अछूत हैं। आबकारी विभाग के 189 क्लर्कों में से 13 मुसलमान, 19 ईसाई और तीन अछूत हैं।

इसलिए, प्रारंभ में जिस स्थिति के साथ हमें शुरू करना चाहिए, वह यह है कि जहां तक जनसंख्या का सवाल है, हिन्दू न केवल बहुसंख्यक हैं, बल्कि जहां तक प्रशासन का सवाल है, हिन्दू वहां भी बहुसंख्यक हैं और जो प्रश्न मैं माननीय प्रधानमंत्री से पूछना चाहता हूं, वह यह है। मैं समझता हूं कि मैंने उन्हें विश्वास दिला दिया है कि हिन्दू बहुसंख्यकों को विरोधी बहुसंख्यक के रूप में गिनना चाहिए। वह अपना सिर हिला रहे हैं। वह अपने निष्कर्ष निकाल सकते हैं। मैं उनसे झगड़ा नहीं करूंगा। मगर असली स्थिति यही है। उत्पीड़न के खिलाफ अछूतों को कैसा संरक्षण मिलता है? मैं कुछ और मामले लेकर यह दिखलाना चाहता हूं कि पूरा प्रशासन इस प्रकार का है कि यह उच्च जाति के हिन्दुओं से भरा हुआ है, निश्चय ही अछूतों के प्रति शत्रुतापूर्ण है। जब झगड़े में एक तरफ उच्च जाति के हिन्दू और दूसरी तरफ अछूत होते हैं तो न तो वह चाहते हैं और न उनकी इच्छा होती है और वे न्याय करने की ओर ध्यान भी नहीं देते।

अब, जिस पहले मामले का मैं उल्लेख करना चाहता हूं वह इस प्रकार है। मैं संख्या दे रहा हूं, ताकि मेरे माननीय मित्र जांच करवा सकें। यह प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट, संगमनेर

की फाइल में 1938 के फौजदारी मुकदमा संख्या 191 पर दिया गया निर्णय है। इस मुकदमें में प्रात हिन्दुओं पर भारतीय दंड संहिता की धारा 147 अर्थात दंगा करना, 323, 341, 452, 454 और 149 धारा के तहत आने वाले अपराध का अभियोग लगाया गया था। तथ्य संक्षेप में इस प्रकार थे। यह शिकायत बड़गांव लंगड़ा नामक गांव में रहने वाले एक अछूत की थी। उसका मामला यह था कि किसी दिन गांव के दो सौ लोगों ने छड़ी, लाठियों और दूसरे हथियारों से लैस महारों के घरों पर हमला किया और उन्होंने न केवल पुरुषों को आहत किया, बल्कि महिलाओं को भी। घाव बहुत गहरे थे। वे कई दिन तक अस्पताल में रहे। सौभाग्यवश उनके लिए पुलिस ने मुकदमें को संगीन मुकदमें के रूप में लिया, क्योंकि जख्म गहरे थे, उन्हें ऐसा करना ही था। इन लोगों पर संगमनेर के प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की कचहरी में मुकदमा चलाया गया। पुलिस के द्वारा प्रमाण दिए गए। इस बात के प्रचुर डाक्टरी प्रमाण थे कि उन्हें जख्मी किया गया था। तो भी क्या हुआ? और अगर मैं कहूं, इन सात मुजरिमों ने अपने अपराध को पूरी तरह महसूस करते हुए मुझे कहलाया कि समझौते के तौर पर वे उन आहत महार पुरुषों और महिलाओं को 300 रुपये देने को तैयार हैं। अपने अकिंचन विचार से मैंने महारों को समझौता न करने की बल्कि कानून को अपना काम करने देने की सलाह दी। लेकिन कानून ने क्या किया? मजिस्ट्रेट ने क्या किया? सबको आश्चर्य होता है कि मजिस्ट्रेट ने सभी मुजरिमों को छोड़ दिया।

डा. के.बी. आंत्रोलीकर : महोदय! क्या यह माननीय मित्र के लिए उचित है कि वह मजिस्ट्रेट के निर्णय पर कोई टिप्पणी करें।

डा. भीमराव अम्बेडकर : निश्चित रूप से। मैं तथ्य बता रहा हूं।

माननीय अध्यक्ष : मैं इस मुद्दे पर सोच रहा था। लेकिन मैं उन तथ्यों को सुनना चाहता था, जो माननीय सदस्य कह रहे थे। मैं नहीं समझता कि उनके लिए यह उचित है कि वह मजिस्ट्रेट के फैसले की आलोचना करें।

डा. भीमराव अम्बेडकर: मैं आलोचना नहीं कर रहा। मैं केवल तथ्य बता रहा हूं। मैं इस उदाहरण से बता रहा हूं कि हम लोग कितना संरक्षण पाते हैं। अछूत जो संरक्षण पाते हैं, उस पर विचार होना चाहिए यही निवेदन मैं सदन से कर रहा हूं। मैं निर्णय को किसी भी प्रकार चुनौती नहीं दे रहा। जो मैं कह रहा हूं, वह यह है कि वे लोग जो हृदय से महसूस करते थे कि वे अपराधी हैं और क्षतिपूर्ति के रूप में 300 रुपये देकर समझौता करने के लिए तैयार थे, उन्हें अंततः मजिस्ट्रेट द्वारा छोड़ दिया गया और जिस मुद्दे पर मैं जोर देना चाहता हूं, वह यह है: यह हमला क्यों हुआ? यह हमला क्यों हुआ, इसका सीधा सा कारण यह था कि अछूतों ने मजिस्ट्रेट के पास एक आवेदन लिखने की जुर्रत की, कि जंगलात की कुछ जमीन उन्हें दी जाए। इन लोगों का बस यही अपराध था। दूसरा मामला जिस पर . . .

माननीय अध्यक्ष : माननीय सदस्य की अभिव्यक्ति का उपयोग करते हुए मैं माननीय सदस्य में 'कंपकंपी' नहीं पैदा करना चाहता। लेकिन मैं उन्हें केवल ध्यान दिलाना चाहता हूं कि वह पूरा एक घंटा

ले चुके हैं। वह कुछ और समय लेंगे, इसमें संदेह नहीं है। किंतु जिन मामलों को वह प्रस्तुत कर रहे हैं यदि वह मामलों के छोटे-छोटे ब्यौरे में जाएंगे, जैसा कि वह कर रहे हैं, तो दूसरा घंटा भी पर्याप्त नहीं होगा। मेरी इच्छा है कि बहस जल्दी ही किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाए।

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं अपने तर्क को पूरा करने के लिए दो अन्य मामलों का उल्लेख करना चाहता हूं। दूसरा मामला, जिसमें अछूत यह समझते हैं कि प्रांत के अफसर उनको वह संरक्षण देने में असफल हो गए हैं, जिसके कि वे अधिकारी हैं। यह मामला अकुशी गांव का है। इस गांव में जो घटना हुई, वह इस प्रकार थी। यह गांव सतारा जिले के वाई तालुका में है। तथ्य बहुत सीधे से हैं। उस गांव में अछूतों और सवर्ण हिन्दुओं के बीच कोई रंजिश थी। अछूत और हिन्दू लड़ रहे थे। लेकिन अछूतों ने निर्णय किया कि एकादशी के दिन वे देव-दर्शन के लिए जाएंगे। उच्च जाति के हिन्दू जिन्होंने उनके खिलाफ बहिष्कार की घोषणा की थी, वे नहीं चाहते थे कि अछूत देव-दर्शन को जाएं। इसके बावजूद अछूत गए। फल यह हुआ कि गांव के पटेल ने, अन्य गांव वालों के साथ, उन अछूतों पर हमला किया,जो देव-दर्शन के लिए गए थे। हमेशा की तरह अछूतों ने गांव के पटेल के खिलाफ शिकायत दर्ज की। स्थिति यह थी: पटेल जानता था कि वह दोषी है। उसको सम्मन जारी किया गया। वह बाहर चला गया और उसने सम्मन नहीं लिया। तब उसके दरवाजे पर सम्मन चिपका दिया गया। वह तीन महीने गायब रहा। अंतत: वह आया और कानून ने अपना काम शुरू किया। इस मामले में भी विद्वान मजिस्ट्रेट ने, जिन्होंने मामले की जांच की, उस अभियुक्त को, जो यह अच्छी तरह से जानता था कि वह दोषी है, उसे छोड़ देना उचित समझा।

दूसरा मामला जिसका मैं संक्षिप्त उल्लेख करना चाहता हूं, पूना जिले के मुलथी पेटा में थाटवाड़ी गांव का है। उस मामले में जो हुआ, वह यह था, यह एक इनाम का गांव है। किसी आदमी ने इमानदार के कोई दो या तीन पेड़ काट लिए। इनामदार ने पुलिस से शिकायत की, कि कुछ महारों ने (उसने किसी का नाम नहीं बताया) उसके पेड़ काट लिए और लकड़ियां चुरा लीं। जिस पुलिस कर्मचारी ने छान-बीन की, उसने मजिस्ट्रेट की अदालत में चार आदमियों को अभियुक्त बनाया। अब जो हुआ, वह यह था कि मुकदमें के दौरान अभियुक्तों की तरफ के वकील ने सरकारी वकील को गढ़ी गई सूचना देने और उन चारों अभियुक्तों के नाम की चर्चा करने को कहा, हालांकि वस्तुत: किसी नाम की कोई चर्चा वहां नहीं थी, उसने बाद में चार महारों के नाम अभियुक्त के रूप में जोड़ दिए। सौभाग्यवश, महारों को छोड़ दिया गया लेकिन यह तथ्य बना हुआ है कि वे पुलिस अफसर, जिनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे इन अछूतों को सुरक्षा देंगे, वे भी उनको ऐसे मामले मैं फंसाने के लिए साक्ष्य गढ़ने की हद तक चले जाते हैं।

अब मैं और किसी उदाहरण की चर्चा नहीं करूंगा। मैं समझता हूं कि यह कहानी घिनौनी है, निश्चय ही मुझमें घृणा भरती है। मैं जानता हूं कि समग्र रूप में हिन्दू किसी की परवाह

नहीं करते। वे इसकी हंसी उड़ाते हैं। वे केवल यही समझते हैं कि इस देश की समस्या केवल हिन्दू और मुसलमान के बीच की समस्या है। मैं उन्हें कहना चाहता हूं कि यह और ज्यादा गंभीर समस्या है और न क्रेवल हिन्दुओं ने, बल्कि सरकार ने भी इन लोगों का पर्याप्त ध्यान नहीं रखा है। मेरे द्वारा सभा पटल पर रखे गए इन दो संशोधनों के समर्थन में कोई तर्क देने की आवश्यकता हो, तो मैं समझता हूं कि जिन तर्कों को मैंने अभी सदन में प्रस्तुत किया है, वह पर्याप्त है। किसी भी संविधान में इन संशोधनों के अंतर्गत अछूतों को पर्याप्त संरक्षण मिलना चाहिए। मैं जानता हूं कि दूसरे पक्ष की ओर से निश्चित उत्तर दिया जाएगा। माननीय गृह मंत्री के द्वारा दो संशोधन सभा पटल पर रखे जा चुके हैं। मैं उन्हें स्पष्ट कहना चाहूंगा कि मैं उन संशोधनों को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हूं और अब मैं सदन को बताऊंगा कि अपने संशोधन के बजाय मैं उनके संशोधन को स्वीकार क्यों नहीं कर सकता?

माननीय गृह मंत्री का पहला संशोधन इस उद्देश्य से है कि संविधान अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त रक्षोपाय करेगा। मेरा कथन बहुत सीधा है और वह यह है कि न केवल हमें रक्षोपाय मिलने चाहिए, बल्कि ये ऐसे हों,जिनसे हमें तसल्ली हो। यह एक मूल मुद्दा है। माननीय गृह मंत्री स्पष्टत: यह मानते हैं कि वह अछूतों के संरक्षक हैं और यह कि एक संरक्षक के रूप में वह उस संविधान में कुछ प्रावधान लागू कर सकते हैं, जो उनके अनुसार अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए पर्याप्त हों। अब, तत्काल यह कहना चाहता हूं कि मैं इस दृष्टिकोण को खारिज करता हूं। मेरा कोई संरक्षक नहीं हैं, मैं अपना संरक्षक खुद हूं। वे अपना संविधान बना सकते हैं, किंतु हम अपने अधिकारों का दावा करेंगे। जो भी प्रावधान वे हमारे रक्षोपायों के संबंध में बनाते हैं, उनको दलित वर्ग के विश्वसनीय प्रतिनिधियों द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिए कि वे समुचित उपाय हैं। पर्याप्तता की उनकी परिभाषा मुझे संतुष्ट नहीं करेगी और यही कारण है कि मैं अपने विद्वान मित्र द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधन को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हूं।

दूसरे संशोधन के संबंध में, निस्संदेह माननीय गृह मंत्री केवल आधी दूर तक जाना चाहते हैं। वह यह मानने के लिए तैयार हैं कि देश के प्रशासन में अल्पसंख्यकों की आवाज होनी चाहिए। यहां भी मुझे लगता है कि उनके और मेरे बीच कुछ निश्चित मतभेद हैं। मेरे दूसरे संशोधन की भाषा बहुत सोच समझ कर लिखी गई है। मैंने 'मूल अधिकार' शब्द के प्रयोग का विशेष ध्यान रखा है और मैं कुछ हद तक इसकी व्याख्या करना चाहता हूं कि क्यों मैंने इस अभिव्यक्ति 'मूल अधिकार' का प्रयोग किया है। संविधान की रचना के दौरान जो एक चीज मैंने महसूस की है, वह यह है, चाहे हम इसे मानें या न मानें, इस देश का राजनैतिक तंत्र चातुर्वर्ण्य प्रणाली को प्रतिबिंबित करता है। उस तंत्र प्रणाली में सिद्धांत यह था : क्षत्रियों को राज करना चाहिए, ब्राह्मणों को सलाह देनी चाहिए, वैश्य को व्यापार करना चाहिए, लेकिन शूद्र या आदि शूद्र को सेवा करनी चाहिए। प्राचीन समय में यही स्थिति थी। मैं पाता

हूं कि राजनीति में यह स्थिति कुछ हद तक बदली है। वैश्य अब व्यापार नहीं करते। अगर वह व्यापार करते हैं, तो केवल राजनीति का व्यापार करते हैं (ठहाका)। एक चीज फिर भी अपरिवर्तनीय रही है, और वह यह है कि शूद्रों को इस देश के प्रशासन में कोई भागीदारी नहीं मिलेगी। जैसा कि मैं इस देश की परिस्थितियों को देखता हूं, जैसा कि मैं पूरे भारत में बने अलग-अलग मंत्रिमंडलों के राजनैतिक गठन को देखता हूं, तो मैं पाता हूं कि जब कि हम अछूत सामाजिक रूप से शूद्र या आदि शूद्र हैं, वहीं कांग्रेस सरकार, अगर कांग्रेस सरकार नहीं, तो परिस्थितियों की मांग इस प्रकार की है कि अंततः ये हमें राजनैतिक शूद्र बनाकर ही छोड़ेंगे। मैं इसे बर्दाश्त नहीं करूंगा। इस परिस्थिति को निर्मूल करने के लिए मेरे खून की अंतिम बूंद भी गिरेगी। (शोर-शराबे के बीच सुनिए, सुनिए की आवाज) मैं इसे बर्दाश्त नहीं करूंगा कि हिन्दुओं द्वारा प्रयुक्त मेरे ऊपर,जो सामाजिक दबदबा, आर्थिक दबदबा और धार्मिक दबदबा है, उसमें राजनैतिक दबदबा भी जुड़ जाए। मैं फिर दोहराता हूं कि मैं इसकी अनुमति कभी नहीं दूंगा। हम लोग शासक वर्ग के कुलीन तंत्र की स्थापना के उद्देश्य से राजनीति में होने वाली विकृति के खिलाफ यथाशक्ति लड़ेंगे। मैं इसकी अनुमति नहीं दूंगा, मैं दोहराता हूं कि मैं ऐसे संविधान की अनुमति नहीं दूंगा, जिसमें उनके लिए स्वतंत्रता और हमारे ऊपर आधिपत्य होगा। मैं उस संविधान की अनुमति नहीं दूंगा, जिसमें मैं स्वतंत्र और बराबर का हिस्सेदार नहीं हूं। कभी भी मैं इसकी अनुमति नहीं दूंगा। मैं जानता हूं कि ये शब्द कठोर हैं। लेकिन मैं माननीय प्रधानमंत्री को यह याद दिलाना चाहता हूं कि ये शब्द उन शब्दों से कठोर नहीं हैं, जो आयरलैंड के संबंध में अल्सटर लोगों ने कहे थे। मैं जानता हूं कि जब इस देश में अल्पसंख्यक समुदाय का कोई व्यक्ति अपने समुदाय के अधिकारों के लिए लड़ने को खड़ा होता है, सारा जनसमुदाय उसके विरुद्ध हो जाता है, उसे सांप्रदायिक कहता है, उसे भारत-विरोधी कहता है और उसे देश के विनाश के लिए काम कर रहे,अफसरशाहों के हाथों का खिलौना कहता है। मैं इस जनसमुदाय को जो यह रुख अपनाए हुए है, सावधान करना चाहता हूं। मैं कहता हूं कि इस देश में अल्पसंख्यक जो रुख अपनाए हुए हैं, वे ज्यादा बढ़िया हैं, ज्यादा सभ्य हैं, बजाए उस रुख के,जो अल्सटर के लोगों ने अपनाया था। अल्सटर लोगों का रुख क्या था? दक्षिण के आयरिश राष्ट्रवादियों और अल्सटर लोगों को साथ लाने के लिए स्वर्गीय सम्राट एडवर्ड सातवें के अनुरोध पर बकिंघम पैलेस में जो सम्मेलन हुआ था, उसकी कार्यवाही की रिपोर्ट मुझे स्मरण आती है। प्रश्न यह था कि क्या अल्सटर लोगों को दक्षिण आयरिश व्यक्तियों के बहुमत के शासन के तहत लाया जाए। दक्षिणी आयरलैंड के राष्ट्रवादियों द्वारा अल्सटर लोगों को दिए गए प्रस्ताव क्या थे? बहुत से लोग इस इतिहास से प्रायः परिचित नहीं होंगे। जो परिचित हैं, वे यह जानते होंगे कि मि. जान रेमंड ने, जो आयरिश राष्ट्रवादी पार्टी के नेता थे, कार्सोनिवासियों को संविधान के तहत आने के लिए प्रेरित करने की अपनी तरफ से पूरी कोशिश की। उसने

कहा: 'आप अपनी पसंद से अधिमान की कितनी भी मात्रा ले लें, मैं बुरा नहीं मानूंगा।' हमें इसी विश्वास में नहीं रहना चाहिए कि केवल भारत में ही अधिमान की चर्चा हो रही है, अधिमान की चर्चा आयरलैंड में बहुत होती थी और रेमंड, अल्सटर लोगों को अधिमान देने के लिए तैयार था। वह संविधान में एक अफसर को ऐसा अधिकार देने के लिए तैयार था कि वह अल्सटर लोगों से होने वाले किसी भी प्रकार के भेद-भाव को रोक सकेएक और प्रावधान,जो आयरिश राष्ट्रवादी पार्टी अल्सटर लोगों को देने को तैयार थी, वह यह थी कि यदि 100 वर्ष बाद अल्सटर लोग यह पाएं कि दक्षिणी आयरिश लोग, जो निश्चय ही बहुसंख्यक होंगे और अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं और अल्सटर राज्य के प्रोटेस्टैंटों के साथ दुर्व्यवहार करते और उन्हें कष्ट पहुंचाते हैं, तो अल्सटर लोगों को संविधान से बाहर जाने का अधिकार होगा। वे प्रभावशाली प्रावधान थे। इस प्रस्ताव का अल्सटर लोगों ने क्या जवाब दिया? अल्सटर लोगों ने रेमंड को जो जवाब दिया, वह यह था 'तुम्हारे रक्षापायों को धिक्कार है। हम तुम्हारे द्वारा शासित होना नहीं चाहते।' क्या हम ऐसा कह रहे हैं? अभी मैंने जो उद्धरण सुनाए हैं,उन्हें ध्यान में रखते हुए क्या मैं यह कहने के लिए अधिकारी नहीं हूं: 'तुम्हारे रक्षापायों को धिक्कार है। मैं तुम्हारे द्वारा शासित होना नहीं चाहता।' मैं ऐसा नहीं कह रहा। जो मैं कह रहा हूं वह यह है: 'मुझे मेरे रक्षापाय दे दो, जिन्हें मैं समझता हूं कि जरूरी हैं और आप अपना लोकतंत्र ले सकते हैं।' मुझे विश्वास है कि यह एक ऐसी स्थिति है, जिससे कोई नहीं लड़ सकता।

अंत में मैं एक शब्द कहूंगा। मैं जानता हूं कि देश में मेरी स्थिति को ठीक से नहीं समझा गया है। इसे अक्सर गलत समझा गया है। इसलिए इस अवसर पर मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए। महोदय! मैं यह कहता हूं कि जब भी मेरे व्यक्तिगत हितों और समूचे देश के हितों के बीच टकराव हुआ है, तब-तब मैंने देश के दावे को अपने दावों के ऊपर रखा है। (सुनो, सुनो)। मैंने कभी भी निजी लाभ का रास्ता नहीं पकड़ा। अगर मैंने अपने पत्ते ठीक से खोले होते, जैसा कि दूसरे करते हैं, तो मैं किसी अन्य जगह पर हो सकता था। मैं इसके बारे में कुछ कहना नहीं चाहता, लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। गोल मेज सम्मेलन में मेरे सहयोगी थे, जो मुझे विश्वास था कि ऐसी बात का समर्थन करेंगे कि जहां तक देश की मांग का संबंध है, मैं कभी पीछे नहीं रहा हूं। सम्मेलन में कई यूरोपीय समुदाय ऐसी परेशानी महसूस कर रहे थे कि जैसे मैं सम्मेलन में कोई डरावना व्यक्ति होऊं। लेकिन मैं इस देश के लोगों के दिमाग में यह शंका नहीं रहने दूंगा कि मेरी दूसरी वफादारी भी है, जिससे मैं बंधा हूं और जिसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता। वह वफादारी अछूतों का समुदाय है, जिससे मैं पैदा हुआ हूं, मैं जिसमें रहता हूं और जिसे मैं उम्मीद करता हूं कि मैं कभी नहीं छोडूंगा और मैं इस सदन से, यथासंभव जोर से, यह कहता हूं कि जब भी इस देश के और अछूतों के हितों में टकराव होगा, जहां तक मेरा संबंध है, अछूतों के हितों को देश

के हितों के ऊपर स्थान मिलेगा। केवल इसलिए मैं अत्याचारी बहुसंख्यकों का समर्थन नहीं करूंगा कि ये देश के नाम पर बोलते हैं, मैं किसी पार्टी का समर्थन इसलिए नहीं करने जा रहा क्योंकि यह देश के नाम पर बोलती है। मैं ऐसा नहीं करूंगा। यहां के और हर जगह के लोग समझ लें कि यही मेरा दृष्टिकोण है। देश और मेरे बीच में देश का स्थान ऊपर रहेगा, देश और दलित वर्ग के बीच दलित वर्ग का स्थान ऊपर रहेगा, देश का स्थान ऊपर नहीं रहेगा। अपने इन दो संशोधनों के संबंध में मैं इतना ही कहूंगा।

अब, दूसरे संशोधनों के संबंध में मैं सदन का और समय नहीं लेना चाहता। मैं माननीय प्रधानमंत्री की उस टिप्पणी से थोड़ा आश्चर्यचकित हुआ, जो उन्होंने उस संकल्प के एक हिस्से के संबंध में की थी, जो कहता है कि जो भी व्यवस्था हो, वह प्रांतीय सरकारों की राय से होनी चाहिए। मैं जानता था कि वे मेरे माननीय मित्र मि. मुकादम के द्वारा पेश किए जा रहे संशोधन से परिचित नहीं हैं, क्योंकि मैं देख रहा हूं कि उन हिस्सों को निकाल दिया जाना है। इसलिए, मैं संकल्प के उस हिस्से पर कोई टिप्पणी नहीं करूंगा, यद्यपि मैं यह जरूर कहूंगा कि सिद्धांतत: मैं संकल्प के इस हिस्से से सहमत नहीं हूं।

अब, बैठने से पहले सदन के समक्ष रखे गए दूसरे संशोधनों के संबंध में मैं एक या दो शब्द कहना पसंद करूंगा। ऐसा करने में, माननीय सदस्य विपक्ष के नेता द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधन की ओर ध्यान दिलाऊंगा। इस संशोधन के संबंध में मैं माननीय प्रधानमंत्री से एक बात नोट करने के लिए कहूंगा, जो मैं समझता हूं कि वह नोट करना भूल गए हैं। यह सच है कि अपने संशोधन में विपक्ष के नेता कहते हैं कि लोकतंत्र असफल हो गया। लेकिन, विपक्ष के नेता के संशोधन पर टिप्पणी करते हुए जो बात मैं चाहता हूं कि वह नोट करें, वह यह है। अब हम देखते हैं कि वह लोकतंत्र के खिलाफ हैं, लेकिन वह स्वशासन के खिलाफ नहीं हो सकते। अंततः लोकतंत्र, तानाशाही, गणतंत्रवाद ये सभी सरकार के रूप हैं। वे सभी स्वशासन के अंतर्गत आते हैं। जब तक कि माननीय सदस्य विपक्ष के नेता यह दृष्टिकोण नहीं अपनाते कि यह देश स्वशासन के उपयुक्त नहीं है,तब तक मैं समझता हूं कि उस दुर्भाग्यपूर्ण भाषा पर ज्यादा दोषारोपण नहीं करना चाहिए, जिसका उपयोग किया गया है। अंततः वे हमारे साथ हैं।

और मैं अपने माननीय मित्र प्रधानमंत्री का जोर देकर यह कहना नहीं समझ पाया कि लोकतंत्र ही समस्या का एकमात्र हल है। त्रिपुरी कांग्रेस में माननीय प्रधानमंत्री के मित्रों के भाषणों की सामग्री को मैं याद करता हूं। दुर्भाग्यवश, मेरे पास जो पुस्तक है, मैं उसे आज लाना भूल गया और यह अच्छा हुआ, क्योंकि मेरा समय बच गया। किंतु मैं समझता हूं कि त्रिपुरी कांग्रेस में माननीय प्रधानमंत्री के दोस्त, पंडित गोविंद वल्लभ पंत, मि. राजगोपालचारी, पंडित जवाहर लाल नेहरू और वे सभी मुसोलिनी और हिटलर के गुण गा रहे थे।

माननीय मोरारजी आर. देसाई : कब?

डा. भीमराव अम्बेडकर : यदि जरूरत हो,तो मैं अध्याय और उस अंश का उल्लेख करने को तैयार हूं। वास्तव में मैं किताब लाना चाहता था किंतु इसे लाना भूल गया।

माननीय श्री बी.जी. खेर: मैं वहां मौजूद था, और मैंने भाषण सुना। जो माननीय सदस्य कह रहे थे वह ठीक नहीं है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मुझे अफसोस है, मैं पुस्तक अपने साथ नहीं लाया। अगर मेरे पास होती, तो हमने मामले का निर्णय अभी कर लिया होता।

माननीय अध्यक्ष : इसके लिए अब समय नहीं है।

डा. भीमराव अम्बेडकर : जो कुछ मैं कहना चाह रहा हूं, वह यह है कि जब तक भारत के लोगों के पास स्वशासन है, चाहे वह लोकतंत्र का रूप ले ले, चाहे वह तानाशाही का रूप ले ले, या चाहे यह कोई दूसरा ले ले, यह विस्तार में जाने का मामला है, जिसके बारे में कोई झगड़ा होना चाहिए। इसलिए मेरा निवेदन यह है कि उस संकल्प पर विचार करते समय, जो, जैसा कि मैंने कहा, किसी सीमा तक दुर्भाग्यवश उचित ढंग से नहीं लिखा गया है, उनके इरादे का गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए।

प्रोग्रेस पार्टी के द्वारा प्रस्तुत संशोधन के संबंध में मैं यह कहने में प्रधानमंत्री के साथ हूं कि उस संशोधन के लिए,जो उन्होंने प्रस्तुत किया, उसका अभिनंदन होना चाहिए और मैं उनके प्रस्ताव के मुख्य आधार से सहमत हूं। तथापि एक संशोधन है जिसका मैं फिर भी कोई समर्थन नहीं कर सकता और यह वह है,जो असल में यह कहता है कि मंत्रिमंडल के इस्तीफे का या उस तरह के किसी अन्य चीज के इरादे का सदन अनुमोदन करे। महोदय! अब मुझे,जो कहना चाहिए वह यह है। मेरे माननीय मित्र प्रधानमंत्री इससे सहमत होंगे– वे उतने ही अच्छे राजनीतिक हैं,जितना कि कोई राजनीतिज्ञ हो सकता है – कि यह मामला वास्तव में उनकी पार्टी की चौकड़ी के लिए है। यह सदन के निर्णय का मामला नहीं है। मंत्रिमंडल को भंग होना चाहिए या नहीं, यह मामला पूरी तरह उनकी पार्टी के लिए है। वे इसके भंग होने के लिए मेरा समर्थन क्यों चाहते हैं?

माननीय श्री बी.जी. खेर : मैं यह नहीं चाहता।

डा. भीमराव अम्बेडकर : उनको इसकी जरूरत क्या है? मैं उनके समक्ष दूसरी पहेली रखता हूं। मान लीजिए मैं यह कहने के लिए एक संशोधन लाता हूं कि जब तक मैं मंत्रिमंडल को आमंत्रित नहीं करता,तब तक मंत्रिमंडल को वापस नहीं आना चाहिए, क्या वे इसे स्वीकार कर लेंगे? मुझे विश्वास है कि वह अपने आपको इस बात से नहीं जोड़ेंगे। अगर आप हटने के लिए मेरा अनुमोदन चाहते हैं, तो यह मेरे प्रति कुछ सम्मान होगा यदि आप पुनः प्रवेश मेरे अनुमोदन पर ही करेंगे। लेकिन आप ऐसा नहीं करेंगे और मेरा अंतर्मन कहता है कि संशोधन का विरोध करूं।

मैं आपको अपने ऊपर किए गए अनुग्रह के लिए धन्यवाद देता हूं (तालियां)।

माननीय अध्यक्ष : मैं कम समय लेने की अपील करता हूं। माननीय सदस्य डा. अम्बेडकर ने डेढ़ घंटा समय लिया है। मैं आशा करता हूं कि दूसरे माननीय सदस्य कम समय लेंगे।

डा. भीमराव अम्बेडकर : महोदय! मैं माफी चाहता हूं।

III*

माननीय श्री जी.बी. खेर : जितनी जल्दी आप चाहेंगे, मैं समाप्त करने का प्रयास करूंगा। महोदय! जितने विषयों की चर्चा माननीय डाक्टर ने की है, मैं उन सबमें नहीं जाऊंगा। मैं उनसे सहमत हूं। हरिजनों पर किए गए अन्याय के बारे में उन्होंने जो कुछ कहा है, मैं उसकी सच्चाई को स्वीकार करता हूं। क्योंकि इस देश में इस समुदाय के लोगों के साथ जो अन्याय होता है, इन सभी उदाहरणों को न मानने का मेरा अभिप्राय नहीं है। वास्तव में, वे सब गलत बाते हैं, जिन्हें सुधारने के लिए हम लोग दीर्घकाल से यथासामर्थ्य प्रयत्न कर रहे हैं।

माननीय सदस्य ने यह नहीं बताया कि सुधार का उपाय क्या है? अपने इस लंबे भाषण में उन्होंने इसका कहीं उल्लेख नहीं किया है। जैसे कि अन्य वक्ताओं ने भी वर्णन किया है कि चाहे वह संगमनेर का फैसला हो या यहां पढ़े गए एक सौ एक मामले का। उसके सुधार का एकमात्र उपाय यह है कि हमारे यहां एक सही ढंग की सरकार होनी चाहिए और वह केवल लोकतंत्र हो सकता है, जिसमें अल्पमत लोगों के लिए पर्याप्त रक्षोपाय किए जाएं। इस तथ्य को हम स्वीकार भी करते हैं। हम लोग माननीय सदस्य को यह बताने के लिए आभारी हैं कि उन्होंने अलस्टर लोगों की तरह यह नहीं कहा है कि तुम्हारे रक्षोपाय भाड़ में जाएं, मुझे तुम्हारा शासन नहीं चाहिए। मैं इस बात की प्रशंसा करता हूं कि वह वैसा नहीं करने जा रहे थे। लेकिन मैं उनके उस वक्तव्य की प्रशंसा नहीं कर सकता, जो उन्होंने दिया और जिसमें उनको पूरी ईमानदारी से विश्वास है। उन्होंने कहा है: 'मैं स्वयं और देश के बीच, देश को ही वरीयता दूंगा।' इस विषय में मैं उनका समर्थन करता हूं और उनके कहे हुए प्रत्येक शब्द को उद्धृत करूंगा। मैं माननीय सदस्य के जीवन एवं जीवन-क्रम से भली-भांति अवगत हूं और मैं कह सकता हूं कि वह पूर्णरूपेण सही हैं। यहां तक कि देश की खातिर वह अपनी व्यक्तिगत उन्नति को सदा ही स्वेच्छा से गौण करते रहे हैं। उन्होंने आगे कहा कि दलित वर्ग और देश के बीच वह दलित वर्ग को ही वरीयता देंगे।

डा. भीमराव अम्बेडकर : निश्चित रूप से।

माननीय श्री बी.जी. खेर : उन्होंने कहा है कि वे इससे इंकार नहीं कर रहे हैं। मेरा मतभेद उनके उस बयान से है। क्योंकि अंश कभी भी संपूर्ण से बड़ा नहीं हो सकता है। संपूर्ण को ही अंश को अपने में समाविष्ट करना चाहिए।

डा. भीमराव अम्बेडकर : मैं संपूर्ण का अंश नहीं हूं। मैं इससे अलग हूं।

परिशिष्ट I

जन्म-नियंत्रण के उपाय*

श्री पी. जे. रोहम: (अहमदनगर दक्षिण): महोदय! मैं यह प्रस्ताव रखने की अनुमति चाहता हूं कि :

यह सभा परिवार को सीमित करने की तात्कालिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सरकार से सिफारिश करती है कि इस प्रांत की जनता में जन्म-नियंत्रण के लिए सरकार को व्यापक प्रचार करना चाहिए और जन्म-नियंत्रण के कार्य के लिए समुचित सुविधाएं भी उपलब्ध करानी चाहिए।

प्रश्न प्रस्तावित।

श्री पी. जे. रोहम (सदन को मराठी में संबोधित किया):

जन्म नियंत्रण की अनिवार्यता को शिक्षित वर्ग ने, अब तक, पूरी तरह से समझ लिया है और सौभाग्य से हमारे देश में नेता भी इस विषय पर एकमत हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू, गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्रीमती सरोजिनी नायडू जन्म-नियंत्रण आंदोलन के महत्व एवं अनिवार्यता को बहुत अच्छी तरह जानते हैं और गर्भ निरोधकों के पक्ष में भी हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बाबू सुभाषचन्द्र बोस ने भी अपने अध्यक्षीय भाषण में यह कहा है:

यदि हमारी जनसंख्या, जैसा कि निकट अतीत में हुआ है, दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई,तो संभव है हमारी योजनाएं असफल हो जाएं।

यहां तक कि बहुत समय पहले महात्मा गांधी ने भी लिखा था: "उस दुःख को मैं पाठकों से छिपाना नहीं चाहता,जो मुझे देश में जन्म संबंधी सूचना पाकर होता है।"

---

* यह श्री पी. जे. रोहम द्वारा दिया गया भाषण है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह भाषण सभी प्रकार से डा. अम्बेडकर द्वारा अपने भाषण के लिए तैयार किए गए मुद्दों पर आधारित है और डा. अम्बेडकर ही इस भाषण के जन्मदाता हैं। श्री रोहम यह भी कहते हैं कि डा. अम्बेडकर ने उस भाषण को पुनः प्रस्तुत करने के लिए उन्हें बधाई दी,जिसे उन्होंने सदन में देने के लिए सोचा था किंतु उस दिन यानी 10 नवंबर 1938 को सदन में अनुपस्थित होने के कारण नहीं दे सके थे।
बॉंबे लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, खंड 4 (भाग 3), पृ. 4024-38, 10 नवंबर 1938

शारीरिक, मानसिक या आर्थिक रूप से विकलांग लोगों से उत्पन्न बच्चों के द्वारा जो असीम हानि उठानी पड़ती है, उसका यथेष्ठ अनुमान बहुत कम लोगों को होता है। इससे माता-पिता एवं समाज दोनों को ही बहुत हानि उठानी पड़ती है। ऐसे बच्चों के जन्म की रोकथाम से प्रसव तथा प्रसव-जन्म रोगों से मरने वाली माताओं की मृत्यु दर व शिशु-मृत्यु दर में बहुम कमी आएगी; जीवन की प्रधान आवश्यकताओं तक के अभाव से भी होने वाले रोगों को दूर कर जन साधारण के स्वास्थ्य को सुधारा जा सकेगा; अत्यधिक निर्धनता के कारण लोगों द्वारा किए जाने वाले अपराधों में कमी आएगी और साथ ही इससे आध्यात्मिक उन्नति के समस्त अवसर मिलेंगे,जिससे समाज का उत्थान होगा।

वर्तमान जीवन के कठिन संघर्ष में बहुत लोगों का विवाह यथासमय नहीं हो पाता,जिससे वे अनेक प्रकार के रोगों एवं बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। रोगावस्था में अनेक स्त्रियों का जीवन मृतक समान हो जाता है, अधिक संख्या और जल्दी-जल्दी बच्चे पैदा करने में कुछ तो अपनी जान गंवा बैठती हैं। अनचाही संतानों की रोकथाम के उद्देश्य से गर्भपात के प्रयत्नों ने स्त्रियों की मरने की संख्या अत्यधिक बढ़ा दी है। अनचाही संतानें अपनी माताओं से प्राय: तिरस्कृत रहती हैं। इस कारण वे और कुछ नहीं बल्कि समाज के लिए बोझ बन जाती हैं। आगे चलकर ये रोगग्रस्त लोग सदोष बच्चों को उत्पन्न कर समाज को और भी बदतर स्थिति में पहुंचा देते हैं। जन्म-नियंत्रण एकमात्र उत्तम उपाय है जो इन संकटों को टाल सकता है। जब भी कोई स्त्री, किसी भी कारण से बच्चा पैदा करना नहीं चाहती, उसे गर्भ-निरोध की छूट होनी चाहिए और स्वेच्छा से बच्चा पैदा करने के लिए स्वतंत्र भी होना चाहिए। अनचाही संतानों की वृद्धि से समाज को कोई लाभ नहीं होगा। माता-पिता द्वारा चाहे गए बच्चे ही समाज के लिए हितकर होंगे और इसलिए प्रत्येक स्त्री को आसानी से गर्भ-निरोध की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

अनैतिकता का मूल कारण गरीबी ही है। वियना 1931 के सम्मेलन में डा. टोन्डलर द्वारा पढ़े गए लेख का निम्नलिखित अंश आवास की अपर्याप्तता के दुष्परिणाम को स्पष्ट करेगा। प्रोफेसर ने कहा था :

> औसतन प्रत्येक परिवार को जर्मनी में एक, फ्रांस में ढाई और इंग्लैड में तीन कमरे मिलते हैं। बर्लिन में 1925 में पचहत्तर हजार परिवारों के पास अपने मकान नहीं थे। इसका परिणाम यह है कि बच्चे वयस्कों के साथ न केवल एक ही कमरे में अपितु एक ही बिस्तर पर सोते हैं। बहुत अधिक भीड़ एवं गंदे निवास के कारण बहुत से बच्चों की तो जानें चली जाती हैं। पूरे परिवार यौन रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। लड़कियां परिपक्व होने से पहले ही मैथुन का शिकार हो जाती हैं। माता-पिता और उनके बच्चों के बीच तथा भाई-बहन के बीच भी प्राय: यौन संबंध स्थापित हो जाते हैं। लड़के चोरी करना सीखते हैं और लड़कियां वेश्या बन जाती हैं। यही स्थिति वियना में भी है। 1919 में

दिए गए मकानों में से 10 प्रतिशत के पास केवल एक छोटा कमरा, 37 प्रतिशत के पास एक बड़ा कमरा और 23 प्रतिशत के पास एक छोटा तथा एक बड़ा कमरा था। अपने आप ही अपना भरणपोषण स्वयं करने वाले चौदह से अठारह वर्ष के बीच की आयु के बच्चों में से 20 प्रतिशत के पास अपने अलग बिस्तर नहीं थे। गांवों और कस्बों में तो हालत और भी बदतर है।

हमारे देश में, बंबई जैसे महानगरों में भी यही स्थिति है। कुछ अपवादों को छोड़कर यह देखा गया है कि गरीबी में सारे गुण अवगुण बन जाते हैं। आगे भी यह स्पष्ट किया जाएगा कि बिना जन्म-नियंत्रण की सहायता के गरीबी उन्मूलन प्राय: असंभव है। बुभुक्षित: किम् न करोति पायम्--(भूखा क्या न करता) वाली सूक्ति तो सुविख्यात है ही।

इस प्रकार जब हमें स्पष्ट पता चल गया है कि जन्म नियंत्रण ही सब तरह के विकास के लिए अनिवार्य शर्त है,तो हमें उसे प्राप्त करने के साधनों पर भी विचार करना चाहिए। इसे प्राप्त करने का पहला उपाय यह है कि बच्चों की इच्छित संख्या के लिए आवश्यक यौन-सुख से ही लोगों को संतोष कर लेना चाहिए तथा बच्चे की आवश्यकता न रहने पर अपने मन से यौन इच्छाएं निकाल देनी चाहिए। पहले उपाय के लिए यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि अविवाहित अवस्था में ब्रह्मचर्य-पालन संभव हो सकता है,किंतु मानव-स्वभाव से यह आशा करना कि, एक साथ रहने वाले, परस्पर प्रेम करने वाले, युवा और स्वस्थ विवाहित युगल वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करें, मूर्खता ही होगी। इसमें संदेह नहीं कि काम-सुखों की उपस्थिति से भी जिनके मन प्रभावित नहीं होते हैं, ऐसे दृढ़ निश्चयी व्यक्तियों को छोड़कर, साधारण मानव इन काम-सुखों के सम्मोहन में पड़कर इनका शिकार अवश्य हो जाएंगे। इसलिए क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि प्रकाश के समान स्पष्ट इस तथ्य का कुछ लोगों ने खंडन किया है।

विभिन्न देश एवं कालों के अनुभव से यह पाया गया है कि जन्म-नियंत्रण के लिए आत्म-संयम सर्वथा अनुपयोगी सिद्ध हुआ है। ब्रह्मचर्य की वकालत करने वाले भी यह दावा नहीं कर सकते हैं कि साधारण आदमी आजीवन पूरी तरह से मैथुन मुक्त रहने में समर्थ हो सकेगा। यदि वर्ष में एक दिन के लिए ब्रह्मचर्य का पालन छोड़ दिया जाए,तो यह वार्षिक गर्भधारण की संख्या को बढ़ाएगा। यदि यह मान भी लें कि आत्म-संयम कुछ लोगों को जन्म-नियंत्रण पर काबू करने योग्य बनाएगी, फिर भी इससे हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि अन्य लोग भी उनका अनुसरण करेंगे। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जैसे विभिन्न व्यक्तियों में भूख की तीव्रता अलग-अलग होती है, उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति में काम वासना भी अलग-अलग होती है।

हिंदू धर्म-ग्रंथों में उल्लिखित नियमों का कठोर पालन परिवार नियोजन के आदर्श की अवहेलना करता है। उदाहरण के लिए विष्णु स्मृति का श्लोक 8, अध्याय 54, कुछ विशिष्ट

दिनों पर मैथुन करने का आदेश देता है।

महोदय! श्रीमती सरोजिनी मेहता, एम. ए. की लिखी पुस्तिका माननीय सदस्यों को मिल गई है। मैं उसे पूरा नहीं पढ़ूंगा अपितु उसमें से कुछ अंश ही यहां उद्धृत करूंगा:

जब भी जन्म-नियंत्रण विषयक चर्चा चलाई जाती है, तब हमारे विरोधी यह राग अलापने लगते हैं कि ब्रह्मचर्य हमारे देश के लिए उत्तम उपाय है और यही अच्छा होगा कि पश्चिम देशों को उनके अपने कृत्रिम उपायों से लाभ उठाने दें। इन माननीय सदस्यों से मैं विनम्रतापूर्वक जानना चाहता हूं कि ये लोग किन आधारों पर ऐसी धारणा रखते हैं। यह कहा गया है कि हमारे देशवासी अध्यात्मवादी हैं, जबकि पश्चिम के लोग भौतिकवादी हैं। तोते की तरह रटी इस बात को सुनते-सुनते अब कान पकने लगे हैं। किस तरह से हमारे देशवासी अध्यात्मवादी हैं? क्या हमारे देशवासी संसार त्यागकर संयासी हो गए हैं? क्या मात्र कुछ लोकप्रिय नारे जैसे 'सब कुछ मिथ्या है,' 'सांसारिक जीवन का मोह त्याग देना चाहिए,' की पुनरावृत्ति लोगों को अध्यात्मवादी बना देगी? क्या हमारे प्रत्येक गांव के गरीब और निर्दोष कर्जदार तथा उनकी खाल उतार लेने वाले शायलॉक (शेक्सपियर का एक धूर्त चरित्र) मौजूद नहीं है? क्या विधवाओं की धरोहर को निगलने वाले साहूकार हमारे यहां नहीं हैं? क्या हम लोगों के बीच ऐसे शैतान नहीं हैं,जिन्होंने विधवाओं को गुमराह कर उन्हें असहाय जीवन जीने को विवश कर दिया है? क्या हम दावा कर सकते हैं कि हमारे समाज में ऐसे लोग नहीं हैं,जिन्होंने अपनी पवित्र और समर्पित पत्नी को घर से निकालकर वेश्यावृत्ति के द्वार तक नहीं पहुंचा दिया है? मैं यह समझने में पूरी तरह से असमर्थ हूं कि वह समाज अध्यात्मवादी कैसे कहा जा सकता,है जिसमें वैवाहिक लेन-देन, जो कि वास्तव में वर-वधुओं का विक्रय है, के कारण ही बहुत लोग बर्बाद हो जाते हैं। इन अवसरों पर कोई व्यक्ति यदि अपनी जाति बिरादरी वालों को भोज नहीं देता,तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाता है। पहली पत्नी की चिता जलते समय जहां के लोग दूसरी शादी की योजना बना रहे होते हैं। पैसे के बल पर,जिस समाज में साठ साल का बुड्ढा भी बारह साल की लड़की से शादी कर लेता है और जहां विधवाओं के साथ जानवर से भी बदतर सलूक किया जाता है। अपने समाज की ऊपर बताई गई दुर्दशा के लिए हम पाश्चात्य भौतिकवाद को उत्तरदायी नहीं मान सकते हैं। इसके विपरीत जो पाश्चात्य भौतिकवाद के संपर्क में आए हैं, वे इन बुराइयों को दूर करने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं। हालांकि उनके प्रयासों को सफलता नहीं मिली है।

आगे एक अन्य पैरा में वह लिखती हैं:

अहिल्या के प्रति इंद्रराज का, सत्यवती के प्रति पाराशर ऋषि का और कुंती के प्रति सूर्यदेव का आचरण!उनको कलियुग में सख्त से सख्त कारावास की सजा दिलाता किंतु

उन्हें सतयुग का विचारते हुए हमने उन कदाचारों को न केवल मौन सहमति दी, अपितु वैसे आख्यानों को लेकर धर्म-ग्रंथ स्तर की पुस्तकें भी रच डालीं और इस बात पर जोर भी दिया कि इन पुस्तकों को बच्चों की पाठ्य पुस्तक के रूप में रखा जाना चाहिए। विद्यार्थी महाभारत, भागवत और पुराणों में ब्रह्मचर्य पर कितने पाठ पा सकते हैं? वह काल, जिसे ब्रह्मचर्य के बारे में स्वयं पता नहीं था, हमें उस सद्‌गुण का पालन करने के लिए कैसे प्रेरित कर सकता है। यह मानना कैसे संभव हो सकता है कि उस समय ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता होगा, जबकि उस दौरान राजा दुष्यंत की कहानी जैसी घटनाएं हुई थीं। पहले ऋषि-आश्रम में रहने वाली निश्छल एवं निर्दोष कन्या को राजा ने बहकाया और जब वह गर्भवती थी,तब उसे निकाल दिया। प्राचीन आख्यानों में वर्णित कुछ लोगों द्वारा उत्पन्न की गई संतानों की संख्या के बारे में जब कोई विचारता है,तो उनके प्रति स्वाभाविक रूप से उसके मन में एक शंका पैदा होती है कि क्या इस समय लोग स्वप्न में भी कभी सोचते थे कि ब्रह्मचर्य क्या है? कोई कैसे विश्वास कर सकता है कि उस समय ब्रह्मचर्य का पालन होता था,जबकि सगर ने साठ हजार पुत्र पैदा किए, कौरव सौ भाई थे और दक्ष प्रजापति की सत्ताइस कन्याएं थीं,तथा इस तरह के अन्य अनेक उदाहरण हैं। उस समय ब्रह्मचर्य के प्रति श्रद्धा कम थी। वास्तव में उन दिनों लोग इस संबंध में सोचते ही नहीं थे। किसी भी भौतिकवादी देश से हमारे देश की जन्म-दर कम नहीं हो रही है। तब भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता है,जब पहले से ही कई बच्चों की मां के प्राण पुनः दूसरे प्रसव से खतरे में पड़ गए हों। इसका पालन भूखों मरने वाले कंगालों के परिवार में भी नहीं किया जाता है, जहां परिवार में एक भी नए सदस्य का आना किसी भारी विपत्ति से कम नहीं है। इस बेरोजगारी के समय में भी जब कि पुत्रों के लिए मकान की व्यवस्था व्यावहारिक रूप से असंभव है, मध्यवर्गीय परिवारों में प्रत्येक वर्ष या डेढ़ वर्ष में अतिरिक्त बच्चे पैदा होते रहते हैं। जिन जातियों में दहेज प्रथा प्रचलित है, उनमें पुत्री का जन्म होने पर माता-पिता पर दुख का आसमान टूट पड़ता है। वे पुत्री को या तो प्रारंभ में ही मार देते हैं या इतने तिरस्कृत रूप से उसका पालन-पोषण करते हैं कि उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो जाती है। इन सब घटनाओं के बावजूद वे लड़की उत्पन्न होने की संभावना को टालने के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते हैं। इन सब घटनाओं के बावजूद हम यह घोषणा करते हैं कि मात्र ब्रह्मचर्य ही हमारे देश के लिए आदर्श है। ऐसे आचरण का सांसारिक उपयोग क्या है? वास्तव में हमें यथार्थ स्थिति को ही ध्यान में रखना चाहिए। क्या है? केवल आदर्शों की बात करने से हमारी स्थिति में कोई सुधार होने वाला नहीं है।

डा. के. बी. अंत्रोलीकर: महोदय! इसे पढ़ा हुआ मान लिया जाए क्योंकि सभी सदस्यों ने इसे प्राप्त कर लिया है।

श्री पी. जे. रोहम: महोदय! मैं यह स्पष्ट कर चुका हूं कि मैं इसे पूरा नहीं पढ़ रहा हूं। मैं अपने माननीय मित्र डा. अंत्रोलीकर से निवेदन करता हूं कि वह कृपया धीरज रखें। वह आगे कहती हैं:

> इसलिए, यदि उनके हृदय में देश-कल्याण की भावना हो,तो उन्हें यथासंभव ब्रह्मचर्य को लोकप्रिय बनाने का प्रयास करना चाहिए। इस कार्य को क्रमबद्ध ढंग से करने के लिए वे संस्थाओं का निर्माण भी करें। ये सब कार्य उन्हें वैसे ही करने हैं,जैसे जन्म-नियंत्रक अपने गर्भ-निरोधकों की लोकप्रियता के लिए कर रहे हैं। यदि वे इस विषय में कुछ करने में असमर्थ या अनिच्छुक हैं तो इससे गर्भ-निरोधकों के हिमायतियों के हाथ ही मजबूत होंगे।

जैसा कि एक चिकित्सक ने बड़ी विवेकपूर्ण टिप्पणी की है कि औरतों के प्रसव के दौरान होने वाली पीड़ाओं को यदि पुरुषों को सहना पड़े,तो कोई भी पुरुष एक से अधिक बच्चा पैदा करने के लिए कभी भी तैयार नहीं होगा।

यह मानना गलत है कि अब तक समाज के सामने बड़े परिवार का आदर्श है इसलिए कोई भी अपने परिवार को सीमित करना नहीं चाहता है। ऐसे लोग विरले ही हैं, जो गंभीरतापूर्वक बड़े परिवार की जिम्मेदारी लेना पसंद करते हों। साधारण आदमी अपना परिवार छोटा रखना चाहते हैं और वे गर्भपात, शिशु-हत्या आदि क्रूर विधियों का सहारा लेने से भी झिझकते नहीं हैं। 1934 में पीपुल्स ट्रिब्यून में छपे एक विवरण के अनुसार 1933 में केवल शंघाई की गलियों से ही 24,000 शिशुओं के शव प्राप्त किए गए और यही स्थिति प्राय: पूरे चीन की है। दुखद एवं भयानक गरीबी के कारण ही माता-पिता अपने बच्चों को बेसहारा छोड़ देते हैं। ऐसे उदाहरणों के रहते यह आशा करना व्यर्थ है कि मात्र आत्मसंयम के द्वारा साधारण आदमी संतानोत्पत्ति से बचने के प्रयास में समर्थ हो सकेगा। इसलिए, यह सिद्ध हो जाता है कि आधुनिक गर्भ-निरोधकों के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। इन उपायों की अनिर्वायता को अस्वीकार करना गर्भपात, शिशु हत्या इत्यादि के प्रति वरीयता दिखाना ही होगा।

कुछ लोग समझते हैं कि यदि उनकी किसी विशेष जाति, धर्म या क्षेत्र के लोगों की संख्या कम होती है,तो उन्हें हानि होगी। इससे उनमें यह भय भी बना हुआ है कि ऐसा होने पर उनके विरोधी उन पर हावी हो जाएंगे। इस संबंध में सबसे पहले यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ज्यों ही परिवार सीमित किया जाएगा, त्यों ही जनसंख्या वृद्धि की दर अनिवार्य रूप से कम नहीं हो जाएगी। वह दर मुख्यत: जीवित रहने की दर पर निर्भर है न कि मात्र जन्म-दर पर। अनेक वैज्ञानिकों के विभिन्न स्थानों से प्राप्त अनुभव ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि जन्म-दर अधिक होती है तो मृत्यु-दर भी अधिक होगी और जैसे-जैसे जन्म-दर में कमी आती है वैसे ही मृत्यु-दर भी घटती है। परिणाम यह है कि इससे

न केवल जीवित रहने की दर पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि इसे बढ़ाता भी है। 'द मदर्ज़ क्लीनिक' से प्राप्त अनुभवों में डा. मारिया स्टोप्स ने पाया है कि गर्भधारण की संख्या जितनी अधिक होगी,उसी अनुपात में माता एवं शिशुओं की मृत्यु-दर भी बढ़ेगी। ऐसा ही अनुभव एक अन्य वैज्ञानिक डा. जे. एम. मुनरो, एम.डी. एफ. आर. एफ.पी. एस. को हुआ है जिसने अपनी पुस्तक *मैटरनल मोर्टेलिटी एंड मौबीडिटी* में लिखा है:

> परिवार सीमित करने के पक्ष में सबसे प्रबल तर्क यह है कि चौथे प्रसव तक मृत्यु-दर प्राय: प्रथम प्रसव के अति समीप पहुंच जाता है,तो साधारणतया देखा गया है कि बहुत ही गंभीर एवं घातक होता है। चौथे प्रसव के बाद मृत्यु-दर उत्तरोत्तर प्रत्येक गर्भ और प्रसव के साथ नियमित एवं स्पष्ट रूप से बढ़ती जाती है। मृत प्रसव एवं नवजात मृत्यु के साथ भी यही लागू होता है।

अत्यधिक शिशु-मृत्यु के कारण भारत जैसे देशों की जनसंख्या वृद्धि की दर इंग्लैंड सदृश देशों के समान नहीं है। जबकि पहले प्रकार के देशों की जन्म-दर दूसरे प्रकार के देशों से अधिक है। इंग्लैंड की जन्म-दर भारत की जन्म-दर का लगभग आधा है। फिर भी हम पाते हैं कि 1901 से 1931 के बीच इंग्लैंड की जनसंख्या में लगभग 23 प्रतिशत की वृद्धि हुई,जबकि उसी अवधि में भारत की जनसंख्या में केवल 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इससे समझा जा सकता है कि जन्म-नियंत्रण की प्रक्रिया को अपनाना जनसंख्या की वृद्धि के लिए भी अच्छा मार्ग है और इससे शिशु-मृत्यु-दर को भी कम किया जा सकता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आधुनिक युद्ध के लिए अपेक्षाकृत कम लोगों की जरूरत है। युद्ध के लिए आधुनिक शस्त्रों से सज्जित अल्पसंख्य सेना भी ऐसी बहुसंख्य सेना को जीत सकती है जो बहुसंख्य होने पर शस्त्रों से सज्जित न हो। पहले के विश्व युद्ध में निम्न जन्म दर वाले देश उच्च जन्म-दर वाले देशों को जीत लेते थे।

संसार में हम बहुत से ऐसे समाजों को देख सकते हैं,जो संख्या में तो कम है किंतु धन, संस्कृति, आदि के मामले में विख्यात हैं। हमारे देश में पारसी समुदाय इसका अच्छा उदाहरण है। इसलिए संख्या के पीछे भागना कोई लाभदायक विचार नहीं है। ''वरमेको गुणीपुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि'' (सौ मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक ही गुणी पुत्र अच्छा है) वाली सूक्ति तो सुविख्यात ही है।

इसके पश्चात यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि मुख्य रूप से गरीबी ही विभिन्न जातियों, समाजों और देशों के मध्य विद्वेष का मूल कारण है। जब गरीबी को हटाया जाएगा विद्वेष के मूल कारण खत्म होंगे और तब किसी को दूसरे के उत्पीड़न से डरने की जरूरत नहीं होगी।

पाश्चात्य राष्ट्रों के उदारहण से हमें ज्ञात होता है कि सभी जातियों एवं स्तरों के लोग आधुनिक गर्भ-निरोधक का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए यह धारणा निराधार है कि

रोमन कैथोलिक जन्म-नियंत्रण के विरुद्ध है। फ्रांस एक रोमन कैथोलिक देश है फिर भी यह देश अपने न्यून जन्म-दर के लिए प्रसिद्ध है। 1932 में निम्नलिखित दस देशों में जन्म-दर बहुत ही कम थी:

1. स्वीडन	14.5
2. जर्मनी	15.1
3. आस्ट्रिया	15.2
4. इंग्लैंड और वेल्स	15.3
5. नार्वे	16.3
6. आस्ट्रेलिया	16.4
7. स्विट्जरलैंड	16.7
8. न्यूजीलैंड	16.7
9. अमरीका	17.3
10. फ्रांस	17.3

तीन सबसे न्यूनतम देशों में आस्ट्रिया पूरा और जर्मनी एक-तिहाई कैथोलिक है। निम्नलिखित आंकड़े प्रमुख नगरों की जन्म-दर को स्पष्ट करते हैं। ये सभी 1927 या 1928 के लिए हैं:

1. लंदन	16.1
2. कोलोन	16.0
3. जिनेवा	14.6
4. मिलान	14.5
5. तुरीन	13.2
6. प्राग	12.5
7. म्यूनिख	12.0
8. वियेना	10.6

लंदन को छोड़कर उपरोक्त सभी नगर पूर्ण रूप से रोमन कैथोलिक हैं तथापि उन सभी की जन्म-दर लंदन से कम है। इनमें से तीन मुसोलिनी की इटली में है।

इस प्रकार की आशंका कि अन्य समुदाय के लोग नियंत्रण को तिरस्कृत कर जनसंख्या में प्रबल हो जाएंगे, एक बिल्कुल ही निराधार बात है।

युद्धों के लिए उत्तरदायी, राजनेताओं के व्याख्यानों से यह साफ-साफ पता चलता है कि आधुनिक मुद्दों के मूल में जनसंख्या के दबाव के कारण उत्पन्न हुई आर्थिक समस्याएं ही हैं। बर्नहर्ट, कैसर, हिटलर, मुसोलिनी और मुरिंग ने प्राय: इस बात पर स्पष्ट रूप से बल दिया है। उदाहण के लिए एडोल्फ हिटलर ने अपनी पुस्तक *मैनकाफ* में लिखा है:

युद्ध से पहले जर्मन लोगों की असंयत वृद्धि के कारण प्रतिदिन आवश्यक भोजन के प्रबंध का प्रश्न समस्त राजनीतिक और आर्थिक चिंतन तथा प्रक्रिया के सामने स्पष्ट रूप से आया।

इसके आगे भी वह लिखते हैं:

इस पृथ्वी पर केवल पर्याप्त मात्रा में स्थान ही किसी राष्ट्र के अस्तित्व की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करता है। नेशनल सोशलिस्ट मूवमेंट को हमारी जनसंख्या और भूमि के बीच असंगति को दूर करने की जरूर कोशिश करनी चाहिए। भूमि और क्षेत्र हमारी विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। (पृष्ठ 728-35)

हाल ही में 12 सितंबर 1938 को दिए गए अपने ऐतिहासिक भाषण में हिटलर ने कहा है:

वे जर्मनी, जहां 140 लोग एक वर्ग किलोमीटर में ठुंसे हुए हैं, से अपेक्षा करते हैं कि वह अपने यहूदियों को रखें,जबकि शक्तिशाली देश जो प्रति किलोमीटर में कुछ ही लोग रहते हैं, उनको नहीं चाहते . . .

उसी तरह मुसोलिनी ने कहा है: हमें भूमि की जरूरत है,क्योंकि हम लोग बहुप्रजनन हैं और वैसा ही रहने का विचार भी रखते हैं। (*फारेन अफेयर्स,* अक्तूबर 1926)

इटली की यह मांग है कि सूर्य और भूमि के लिए उसकी निर्विवाद आवश्यकता सभी दूसरे देशों के द्वारा स्वीकृत हो। यदि वे ऐसा करने में असफल हो गए हैं,तो इटली यह मामला अपने हाथ में लेने के लिए बाध्य होगा। (सनडे टाइम्स, 14 नवंबर, 1926)

उपाध्यक्ष: माननीय सदस्य ने समय-सीमा का अतिक्रमण कर दिया है।

श्री बी. के. गायकवाड़: महोदय! क्या मैं समय-सीमा जान सकता हूं?

उपाध्यक्ष: आधा घंटा।

श्री बी. के. गायकवाड़: महोदय! यह सूचना के लिए है। मेरी मान्यता है कि माननीय सदस्य जिन्होंने पिछला प्रस्ताव (श्री श्रीकांत) प्रस्तुत किया था,वह एक घंटे से भी अधिक बोले थे।

उपाध्यक्ष: समय बढ़ाना अध्यक्ष के विवेक पर निर्भर है।

श्री बी. के. गायकवाड़: क्या उस प्रकार का अनुग्रह दूसरे प्रस्ताव पर नहीं किया जा सकता है?

श्री पी. जे. रोहम: महोदय! मैं सदन का अधिक समय लेना नहीं चाहता हूं। किंतु मुझे सदन को कुछ और बातें भी बतानी हैं, अत: निवेदन है कि मुझे थोड़ा समय और देने की कृपा करें।

इसलिए, यह स्पष्ट है कि स्थायी विश्व-बंधुत्व के लिए प्रयत्नशील सभी लोग जनसंख्या बढ़ाने के किसी भी प्रयास को समर्थन न दें, तथा यथासंभव जन्म-नियंत्रण द्वारा जनसंख्या

सीमित करने का प्रयास करें।

यह डर कि जन्म-नियंत्रण का प्रचार जनता को प्रभावित करने में असफल होगा और इस तरह के आंदोलन का परिणाम कुल वृद्धि के बदले कुलनाशी होगा, निराधार है। पाश्चात्य देशों के अनुभव ये बताते हैं कि निम्न वर्ग के लोग, ज्यों ही गर्भ निरोधक की जानकारी उनको दी जाती है, इसका भरपूर लाभ उठाते हैं क्योंकि उनके लिए इसकी आवश्यकता अधिक होती है। हमारे देश की अधिकांश जनता हालांकि अशिक्षित है,फिर भी वे अपने हित की बात अच्छी तरह समझती है। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि ज्यों ही उन्हें इस नए अविष्कार की जानकारी दी जाएगी, वे इसका पूरी तरह से उपयोग करेंगे। ऐसे लोगों के लिए नसबंदी उपयोगी होगी। इसलिए सरकार और नगर निगम को अपने-अपने अस्पतालों में तत्संबंधी सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए।

स्वर्गीय प्रधानाचार्य गोले ने अपनी मराठी पुस्तक *हिंदू धर्म आणि सुधारणां* में साफ-साफ लिखा है कि ग्रामीणों में भी बहुत सारे सद्‌गुण हैं और वास्तव में ये ही लोग अच्छे नागरिक उपलब्ध कराते हैं।

इस आंदोलन के विरोधियों ने इसकी निस्सारता दिखाने का प्रयास फ्रांस, जर्मनी और इटली का उदाहरण देकर किया है, लेकिन वे भूल गए कि हम उन देशों का तब तक अनुसरण नहीं कर सकते हैं, जब तक यह न सिद्ध हो जाए कि अपनी जनसंख्या वृद्धि करने का उनका प्रयास न्यायसंगत है। सर्वप्रथम हमें ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे देश की अपेक्षा इन देशों की जन्म-दर बहुत कम है। हमारी जन्म-दर 35 है,जब कि 1936 में इटली, फ्रांस और जर्मनी की जन्म-दर क्रमश: 22.2, 15 और 19 थी। जर्मनी की जन्म-दर 1900 में 35.6 थी,लेकिन 1933 में यह घटकर 14.7 हो गई। उसके पश्चात इटली और फ्रांस ने भी अपनी जन्म-दर बहुत कम कर दी थी। 1851-55 में इंग्लैंड की जन्म-दर 33.9 थी,लेकिन 1931 तक उसको घटाकर 15.3 कर दिया था। हमारे देश की जन्म-दर विगत 50 साल से व्यावहारिक रूप से स्थिर है इसलिए उसे बढ़ाने के लिए दूसरे देशों के प्रयास की नकल करना हमारे लिए अनुचित होगा।

अपनी जाति के लोगों की वृद्धि दर में कमी के लिए साम्राज्यवादियों का दुखी होना नितांत स्वाभाविक है। इसी कारण यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वे 'सर्जन करो या मरो' जैसे नारे लगाएं। तथापि यह आश्चर्यजनक है कि इन नारों ने कुछ शिक्षित लोगों में भी जन्म-नियंत्रण के लाभ के बारे में संदेह उत्पन्न कर दिया है। इस विषय को, फरवरी 1938 के द *नाइन्टीन्थ सेन्चुरी एंड आफटर* में छपी सर लियो शियोजा मनी का आलेख 'रिन्यू ऑर डाई' (सर्जन करो या मरो) स्पष्ट करता है। इस लेखक ने यह मान लिया है कि संपूर्ण मानवता की भलाई के लिए गोरों का नेतृत्व आवश्यक है और इसलिए उसने गोरों की घट रही संख्या को रोकने के लिए आवाज उठाई है। पहले तो बहुत से लोग यह मानने को तैयार

ही नहीं होंगे कि गोरों के प्रभुत्व ने विश्व को लाभान्वित किया है। दूसरे, शिक्षित लोग इस दावे को किसी तरह मानने को तैयार नहीं होंगे कि गोरों की संख्या में कमी से मानवता पर कोई विपत्ति आएगी। इसके अलावा इस व्यक्ति की सारी अभिधारणाएं भी गलत हैं। उसने इसे मान लिया है कि इंग्लैंड में जन्म-दर धीरे-धीरे कम होती जाएगी तथा 2035 में इसकी जनसंख्या घट कर 44 लाख रह जाएगी। परंतु वास्तविकता यह है कि इंग्लैंड में जन्म-दर घटने के बजाए बढ़ रही है। सन् 1933 में यह 14.4 थी लेकिन जुलाई 1938 में यह 15.3 हो गई। उस प्रकार लेखक ने जहां अनुमान लगाया है कि इंग्लैंड और वेल्स की जनसंख्या 1940 में केवल 40,700,000 होगी, जब कि इसकी वास्तविक संख्या 1937 में भी 41,031,000 थी और यह 190,000 व्यक्ति प्रतिवर्ष की दर से यह बढ़ भी रही है। ये तथ्य दिखाएंगे कि ऐसे आलेखों से गुमराह होने से बचने के लिए लोगों को सचेत रहना चाहिए।

कभी-कभी उत्प्रवासन को अत्यधिक जनसंख्या से मुक्ति पाने के उपाय के रूप में सुझाया जाता है लेकिन यह उपाय भी बहुत आशाजनक नहीं है। किसी को भी उत्प्रवास के लिए विवश करना उसे निर्वासित करने के बराबर है, इसलिए इस उपाय पर ध्यान देने का प्रश्न ही नहीं उठता। बहुत कम लोगों में अपना देश, जो देश अपने बचपन की यादों से, अपने मित्र तथा सगे-संबंधियों की उपस्थिति से, अनुरूप जलवायु और कारणों से प्रिय बन गया है, उसे छोड़कर दूसरे देश में जाने के लिए, जिसकी जलवायु अनुरूप न होने का भय है और जहां के निवासियों की भाषा, आचरण और रीति-रिवाज भी भिन्न है। प्राय: जो लोग दूसरे देश में उत्प्रवास करना चाहते हैं, वे समर्थ, कर्मठ एवं अच्छे नागरिक होने के लायक होते हैं। ऐसे लोगों का देश छोड़कर जाना वास्तव में मातृभूमि के लिए हानिप्रद है। ये लोग अपने देश में भी आसानी से अपना भरण-पोषण कर सकते हैं किंतु उनकी महत्वाकांक्षा उन्हें दूर देश में जाकर अपना भाग्य अच्छा करने के लिए उकसाती है। शारीरिक, मानसिक या आर्थिक रूप से विकलांग लोगों के लिए उत्प्रवासन व्यावहारिक दृष्टि से बेकार है और इन लोगों को सहायता की आवश्यकता है। केवल आवश्यक पूंजी की दृष्टि से विचार करने पर भी यह उपाय बहुतों को राहत नहीं दे सकता है।

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कम आबादी वाले देश भी दूसरों को समायोजित करने के इच्छुक नहीं होते है, क्योंकि उन्हें अपनी बढ़ती जनसंख्या के लिए विस्तृत जगह की आवश्यकता होती है। कनाडा, ब्रिटिश साम्राज्य का एक उपनिवेश है, जहां के निवासी मुख्य रूप से अंग्रेज ही हैं किंतु वे इसके लिए बदनाम हैं कि उन्होंने वहां सामयिक कार्य करने गए इंग्लैंड के मजदूरों को भी अपने देश में बसने से मना कर दिया। युद्ध तो घनी आबादी वाले देशों के कम आबादी वाले देशों में प्रवेश करने के प्रयासों से आरंभ होते हैं। बर्मा की घटना, जो हाल ही में और हमारे पड़ोस में घटी है, इसका उपयुक्त उदाहरण है। वहां के हाल के सांप्रदायिक दंगों का मूल कारण बर्मावासियों का यह भ्रम है कि भारतीय

ने उनके भौतिक विकास में बाधा डाली है। घनी आबादी वाले देशों की तुलना में कम आबादी वाले देश बहुत ही कम हैं। जापान, इटली, जर्मनी, चीन एवं भारत सहित अनेक देश घनी आबादी वाले देश हैं। इन देशों से आए हुए उत्प्रवासियों के लिए पर्याप्त स्थान जुटाना संभव नहीं है।

इस संबंध में एक और भी बात उल्लेखनीय है। उत्प्रवास, स्थायी रूप से किसी भी देश की जनसंख्या समस्या का समाधान नहीं कर सकता है। हवा के समान, बढ़ती जनसंख्या की भी रिक्त स्थान को तुरंत भरने की प्रवृत्ति होती है,जो पूर्व स्थिति की पुनरावृत्ति की ओर ही ले जाती है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जन्म-नियंत्रण के अलावा कोई अन्य रास्ता नहीं है।

कुछ लोग यह मानते हैं कि जब बाल-विवाह बंद हो जाएंगे और वयस्क विवाह होने लगेंगे, तब जनसंख्या पर रोक लगेगी। किंतु यह धारणा भी निराधार ही है। सर्वप्रथम, अपने देश में लड़कियों के विवाह की उम्र को पर्याप्त रूप से बढ़ाने में कई वर्ष बीत जाएंगे। लड़कियों में सबसे अधिक प्रजनन-क्षमता 18 से 22 वर्ष की उम्र में होती है। पाश्चात्य देशों में, लड़कियों का विवाह इस अवधि के बाद होता है। यानि वे तब विवाह करती हैं,जब उनका सबसे अधिक प्रजनन-क्षमता वाला समय समाप्त हो जाता है। लड़की की शादी की उम्र 14 वर्ष निर्धारित करने से संबंधित शारदा एक्ट को लागू करने में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है,उससे हम आसानी से समझ सकते हैं कि यह आशा करना व्यर्थ है कि हमारे देश में स्त्रियां निकट भविष्य में 22 वर्ष की उम्र तक शादी स्थगित कर देंगी और जनसंख्या नियंत्रित की जा सकेगी। 1931 की जनगणना के साथ विशेष रूप से प्रजनन जांच के संबंध में श्री पी. के. वाटल ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे इस प्रकार हैं:

(1) बीस वर्ष से अधिक उम्र में ब्याही जाने वाली लड़कियों की अपेक्षा बीस वर्ष से कम उम्र में ब्याही जाने वाली लड़कियां कम बच्चे पैदा करती हैं।

(2) बीस वर्ष से अधिक उम्र में ब्याही गई मां के बच्चों की तुलना में बीस वर्ष से कम उम्र में ब्याही गई मां के बच्चों की जीवित रहने की दर बहुत ही कम होती है।

इन निष्कर्षों से हमें पता चलता है कि सामान्यतया वयस्क विवाह के प्रचलित होने पर भी पर्याप्त मात्रा में जनसंख्या नियंत्रित किए जाने की कोई संभावना नहीं है। बहुत से बच्चे प्रौढ़ अवस्था तक जीवित रहेंगे,इसलिए हमारी जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी के बजाए वृद्धि की ही अधिक संभावना है। *जर्नल ऑफ द यूनीवर्सिटी ऑफ बोंबे* (अंक 3, मई 1934) में छपे आलेख '*फर्टीलिटी-डाटा ऑफ द इंडियन सेन्सस आफ 1931*' में बंबई विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के प्रोफेसर डा. जी. एस. घुर्ये ने लिखा है:

प्रजनन और लड़की के विवाह के बीच के सह-संबंध का उपरोक्त अस्थायी निष्कर्ष अगर सही साबित होता है,तो लड़की की वैवाहिक आयु में वृद्धि के साथ-जो आवश्यक

भी है—वैवाहिक प्रजनन में भी वृद्धि होगी। मैं मानता हूं कि वैसे ही हमारी आबादी बहुत अधिक है और इसकी वृद्धि अवांछनीय है, इसे उच्च दर पर बढ़ाने का प्रयास आत्मघाती होगा। लड़कियों के विवाह की उम्र बढ़ाने के प्रयास के साथ ही हमें जन्म-नियंत्रण का भी एक व्यापक अभियान चलाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उचित आयु में विवाह नहीं किए जाने वाले लोगों द्वारा ही वेश्यावृत्ति को बढ़ावा मिलता है और इसके अन्य दुष्परिणाम भी निकलते हैं। इसलिए, यदि हमारा लक्ष्य उचित आयु पर विवाह है,तो हमारे लिए जन्म-नियंत्रण का सहारा लेना आवश्यक है।

यह दृष्टिकोण कि स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता जनसंख्या-वृद्धि को कम करेगी, भी तर्कसंगत नहीं है। आर्थिक स्वतंत्रता में भी किसी व्यक्ति को वासना के चंगुल से छुड़ाने का सामर्थ्य नहीं है। कुछ ही स्त्रियां आजीवन पूरी तरह से ब्रह्मचर्य पालन कर सकती हैं इसलिए यह उपाय भी निष्फल प्रतीत होता है। अभी भी निम्नवर्ग की स्त्रियां अपनी आय से अपने परिवार की वास्तविक सहायता कर रही हैं, किंतु इससे ऐसा नहीं लगता कि उनको परिवार सीमित करने में कोई सहायता मिली है।

कुछ लोगों का विचार है कि यद्यपि जन्म-नियंत्रण चिकित्सा और स्वास्थ्य के आधारों पर अनिवार्य हो सकता है पर आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु यह आवश्यक नहीं है। वे कहते हैं कि हमारे देश में आर्थिक और कृषि संबंधी विकास की बहुत संभावना है और इस दिशा में किए जाने वाले प्रयास हमारे देश की जनता के जीवन-स्तर को पर्याप्त रूप में सुधारेंगे। किंतु ध्यान से परखने पर यह दृष्टिकोण भी तर्कसंगत नहीं पाया गया है। पर्याप्त पूंजी और धनी ग्राहकों की कमी हमारे उद्योगों के किसी भी प्रकार के महत्वपूर्ण विकास में बाधा डालेगी। उसी प्रकार, उपजाऊ भूमि, वर्षा और उर्वरकों की कमी हमारे कृषि-उत्पादन की किसी भी वास्तविक वृद्धि के मार्ग में बाधा डालती है। असम के सिवाय ऐसी बहुत कम उपजाऊ भूमि है,जिसका कृषि के लिए अभी तक उपयोग न किया गया हो। बर्मा में अब भी पर्याप्त भूमि पर खेती नहीं की गई है और उस प्रांत की ऐसी भूमि केआंकड़े ने बहुतों को इस भ्रम में डाल दिया है कि भारत में अब भी पर्याप्त अनजोती उपजाऊ भूमि है। हमारे प्रांत में 86.4 प्रतिशत भूमि को कृषि योग्य बना लिया गया है और यह संदेहास्पद है कि क्या शेष भूमि का एक छोटा टुकड़ा भी किसी महत्त्व का है। भारतीय कृषि पर रायल कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार की काफी भूमि बेकार है। हमारे देश में कृषि योग्य भूमि का एक बड़ा भाग पर्याप्त उर्वरक के अभाव और निरंतर फसल उगाने से बंजर हो गया है।

जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि के कारण हमारे देश में वनों एवं चरागाहों की कमी हो गई है।कनाडा में 34.3 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि चारागाह के लिए सुरक्षित है।इसका अनुपात

फ्रांस में 21.5, इटली में 18.3, जर्मनी में 14.3 किंतु हमारे देश में केवल 1.6 है। ये आंकड़े स्पष्ट करेंगे कि हमारे पशुओं की हालत कितनी खराब है। जहां भी दृष्टि डालें हमें पशु कंकाल रूप में ही दिखाई देते हैं। यद्यपि हमारे देशवासी अपने मानवतावाद पर गर्व करते हैं, पर उन्होंने भूमि के लिए अपने संघर्ष में मूक प्राणियों को अन्यायपूर्वक उसके चारागाह से वंचित कर अधिकाधिक भूमि कृषि-कार्य के लिए ले ली है। इसलिए हमारी कृषि को उपयोगी पशुओं एवं गोबर जैसे प्राकृतिक खाद आदि के अभाव में नुकसान हो रहा है, अतः इसमें पर्याप्त सुधार ला पाना बहुत कठिन है। कुछ लोग जापान और चीन में प्रति एकड़ बृहत पैमाने पर उत्पादित चावल की बात करते हैं और यह आशा करते हैं कि हमारे यहां भी महत्वपूर्ण रूप से इस फसल की पैदावार बढ़ाई जा सकती है। तथापि उन देशों में उत्पादित चावल के आंकड़ों की सच्चाई संदेहास्पद है। इटली के भूतपूर्व विदेश मंत्री काउंट कारलो स्फोरा का '*द कॉनफ्लिक्ट बिटवीन चाइना एंड जापान*' विषयक आलेख न्यूयार्क से प्रकाशित होने वाली मासिक *इंटरनेशनल कानसीलिएशन* के हाल ही के अंक में छपा है। इसमें उल्लेख है कि सन् 1900 से जापान में प्रति एकड़ चावल उत्पादन में भारी कमी हुई है। ऐसे बहुत से साक्ष्य हैं,जिनसे सिद्ध होता है कि कृषि संबंधी जापान के आंकड़े विश्वसनीय नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इस तथ्य को भी स्वीकार करना चाहिए कि जापान को समयानुसार एवं वर्ष भर वर्षा तथा सुविस्तृत वनों की प्राकृतिक देन है। उसके कारण उसको उपयुक्त जलवायु भी प्राप्त है। इस तरह की समस्त सुविधाओं का संयोग एक ही स्थान पर शायद ही कहीं देखा जा सकता है। यद्यपि यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि स्वशासन हमारी जनता की उन्नति को कुछ प्रभावित कर सकता है,पर हम लोगों की आर्थिक स्थिति में किसी भी स्थायी और पर्याप्त सुधार की आशा तब तक नहीं कर सकते जब तक जनसंख्या वृद्धि को सोच-समझकर नियंत्रित नहीं किया जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है, जनसंख्या अवसर का लाभ उठा कर तेजी से बढ़ने लगती है और इस प्रकार यह विशेष प्रयासों से अर्जित सभी लाभों को व्यर्थ कर देती है। वैज्ञानिकों के इस प्रकार के अनुभवों ने यह सोचने के लिए विवश किया है कि जब तक जन्म-नियंत्रण के द्वारा जनसंख्या को सीमित करने के उपायों के साथ-साथ आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रयास नहीं किए जाते हैं,तब तक लोगों के जीवन-स्तर में कोई स्थायी और वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती है।

लोगों की स्थिति में बहुमुखी सुधार लाने के लिए मात्र स्वराज्य सामर्थ्यहीन है, इस तथ्य को अनेक स्वतंत्र देशों के उदाहरणों ने पूरी तरह सिद्ध कर दिया है। यद्यपि निम्न जन्म-दर सहित अनेक कारणों से हमारे देशवासियों की अपेक्षा अमरीका और इंग्लैंड जैसे देशों के निवासियों की आर्थिक दशा बहुत अच्छी है और हमारे बहुत से देशवासियों को गरीबी के कारण पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता है, फिर भी इसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। यहां तक कि वहां भी आदर्श स्वास्थ्य के लिए आवश्यक जीवन स्तर बनाए रखने में

बहुतों को परेशानी होती है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के अनुसार एक-तिहाई अमरीकियों को पौष्टिक आहार नहीं मिलता है। इसका एक कारण यह है कि वहां भी अपेक्षित मात्रा में जन्म-नियंत्रण व्यवहार में नहीं लाया जाता है। नए बसे हुए देशों में प्रत्येक व्यक्ति के पास पर्याप्त उपजाऊ भूमि है और इसलिए इन देशों के लोगों को घनी आबादी वाले देशों के लोगों की अपेक्षा अधिक पौष्टिक खाद्य पदार्थ मिलते हैं। इटली और आस्ट्रेलिया में प्रति व्यक्ति, प्रति वर्ष खपत के आंकड़े दिए जा रहे हैं:

	आस्ट्रेलिया	*इटली*
दूध एवं उसके उत्पाद (गैलन)	102	23
मांस (पौंड)	202	23
फल (पौंड)	104	40
चीनी (पौंड)	107	18
गेहूं (पौंड)	297	351

गेहूं के अलावा अन्य खाद्य पदार्थों की खपत इटली की अपेक्षा आस्ट्रेलिया में अधिक मात्रा में होती है।

हालैंड जैसे देश; जिन्होंने जन्म-नियंत्रण के द्वारा अपनी जन्म-दर कम की है, विश्व के अन्य देशों की तुलना में अधिक खुशहाल हैं।

बंबई प्रेसिडेन्सी में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की मात्रा 'सवा तोला' है। आहार विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन औसतन कम से कम एक पाइंट दूध की मात्रा मिलनी चाहिए।

जन्म-नियंत्रण आंदोलन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसी स्थिति लाना है,जिसमें प्रत्येक देश ने अपनी जन्म-दर इतनी कम कर दी हो कि वे अपने उत्पादन के द्वारा ही अपनी आबादी का उत्तम प्रकार से भरण-पोषण करने में समर्थ हों।

कुछ लोगों का विचार है कि मानव जाति के लिए आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने खाद्यान्न समस्या हल कर दी है और वर्तमान आर्थिक समस्या का मूल कारण मात्र कुवितरण है। उनके विचार में, संपत्ति का सुवितरण ही सर्वत्र संपन्नता लाएगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संपत्ति-विभाजन में कई स्थानों पर अन्याय व्याप्त है और प्रत्येक निष्पक्ष समाजसेवी को इस संबंध में उत्पीड़ित लोगों को न्याय दिलाने के लिए हर संभव प्रयास करने चाहिए। फिर भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि संपत्ति का सम-विभाजन मात्र ही जनता की भौतिक स्थिति को स्थायी रूप से सुधारने में तब तक समर्थ नहीं हो सकेगा जब तक कि जनसंख्या-वृद्धि को परिवार-परिसीमित द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाता है।

समस्त संपत्ति का मुख्य स्रोत होने के कारण भूमि सबके लिए तब तक पर्याप्त नहीं हो सकती है, जब तक कि अधिक से अधिक उपजाऊ भूमि प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में नहीं

आती है। सर डेमियेल हाल और प्रोफेसर ईस्ट जैसे कृषि विशेषज्ञ यह बताते हैं कि पश्चिमी यूरोपीय मानदंड के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के भरण-पोषण के लिए ढाई एकड़ कृषि योग्य भूमि पर लोगों को निर्वाह करना पड़ता है। भारत में तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए कृषि योग्य भूमि के एक एकड़ का तिहाई भाग ही है और जैसा कि पहले बताया गया है, *रायल कमीशन आफ एग्रीकल्चर* के मतानुसार, इस देश में अत्यधिक बंजर भूमि व्यावहारिक रूप से बेकार है।

यह विचार कि रासायनिक उर्वरकों के आगमन से उर्वरक-समस्या हल हो गई है, सही नहीं है। सभी स्थानों पर कृत्रिम उर्वरकों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

बंबई सरकार के सेवानिवृत एक कृषि केमिस्ट राव बहादुर डी.एल. सहस्त्रबुद्धे, एम. एजी, एम. एस-सी. ने अक्तूबर 1936 के *सहयाद्री* के अपने आलेख में यह लिखा है:

> अनुभव यह दर्शाता है कि सभी स्थानों पर कृत्रिम उर्वरकों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। रासायनिक उर्वरकों के साथ प्राकृतिक उर्वरक जैसे गाय आदि के गोबर का भी प्रयोग होना चाहिए, अन्यथा ये कृत्रिम उर्वरक फसल के अनुकूल साबित नहीं होंगे। इसी प्रकार ऐसी फसलों को जिनमें रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है: उनको नुकसान से बचाने के लिए, पर्याप्त मात्रा में पानी मिलना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि नाइट्रेट और फास्फेट ये दो मुख्य उर्वरक हैं और इनमें से एक का उपयोग दूसरे के बिना बेकार है। फास्फेट की आपूर्ति भी बहुत सीमित है। सर फेडरिक कीबल ने कहा है: 'संसार की प्राय: सारी भूमि में फास्फेट की कमी है।'' (*फर्टीलाइजर्स एंड फूड प्रोडक्शन,* 1932, पृ. 22)

प्रोफेसर आर्मस्ट्रांग ने कहा है:

> क्रुक्स द्वारा नाइट्रोजन समस्या के हल ने हमें बचाने के बदले अद्वितीय फास्फेट के भंडारों को व्यय होने की गति तीव्र कर दी है और हमें विनाश के समीप पहुंचा दिया है।

प्राय: सभी स्थानों पर वनों की कमी है, जिसके परिणामस्वरूप जल एवं उर्वरकों की भी कमी होती गई है।

वर्तमान कांग्रेस सरकार बंबई प्रेसिडेंसी की जनता को ऊपर उठाने का प्रयास कर रही है। (सुनिए, सुनिए)। लेकिन जब तक जन्म-नियंत्रण के द्वारा जनसंख्या-समस्या का हल नहीं ढूंढा जाता, तब तक उसके सारे प्रयास विफल ही रहेंगे।

उपाध्यक्ष: माननीय सदस्य अब अपनी टिप्पणी का समापन करें।

श्री पी. जे. रोहम: हां, महोदय, डा. राधाकमल बनर्जी ने अपनी पुस्तक *फूड प्लानिंग फार हंड्रेड मिलियन* में कहा है:

> जब तक जनसंख्या वृद्धि पर कोई पाबंदी नहीं लगाई जाती, तब तक कोई भी उपाय अस्थायी ही रहेगा, जैसा कि चीन में हुआ है, क्योंकि पृथ्वी जितना भरण-पोषण करने

में समर्थ होगी, उतनी अधिकतम मात्रा में जनसंख्या तेजी से बढ़ेगी। जनसंख्या शैक्षिक सुविधाओं की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ेगी और कर देने योग्य क्षमता मुश्किल से ही बढ़ती है, इससे स्पष्ट होता है कि मात्र खाद्यान्न-आपूर्ति की दृष्टि से ही जनसंख्या के दबाव को नहीं परखा जा सकता है। बढ़ती जनसंख्या पुनर्समायोजन को अधिकाधिक कठिन बनाती है। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि तर्क संगत परिवार नियोजन एवं जनसमूह को जन्म-नियंत्रण के संबंध में शिक्षित किया जाना, जनसंख्या वृद्धि को रोकने के सबसे प्रभावी उपाय हैं।

बंबई भारत का प्रवेशद्वार है और यह आंदोलन इसी द्वार से भारत में आया। इसलिए यह उपयुक्त होगा कि इस आंदोलन को इसी प्रांत में आगे बढ़ाया जाए। कुछ ही लोगों को इस प्रकार के कार्य करने का सुअवसर प्राप्त होता है, जिससे उनका नाम अमर होगा। जन्म-नियंत्रण आंदोलन ने हमारी प्रांतीय सरकार को ऐसा अवसर प्रदान किया है और यह आशा की जाती है कि वह इस अवसर को यों ही नहीं जाने देगी बल्कि अपने और जनहित के लिए इसका पूरा उपयोग भी करेगी ।

परिशिष्ट II

डा. भीमराव अम्बेडकर द्वारा पूछे गए प्रश्न और सरकार द्वारा दिए गए उत्तर

सरकारी सेवा: चयन समिति

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने का कष्ट करेगी-

(क) क्या बंबई सरकार की प्रांतीय एवं अधीनस्थ सेवाओं में रिक्त पदों के लिए आवेदन करने वाले अभ्यर्थियों का चयन करने के उद्देश्य से कोई चयन समिति गठित की गई है?

(ख) यदि हां, तो उन सदस्यों के नाम बताने का कष्ट करें, जिनको लेकर वह समिति गठित की गई है?

माननीय श्री चुन्नी लाल मेहता: बंबई सरकार की प्रांतीय और अधीनस्थ सेवाओं हेतु अभ्यर्थियों के चयन के लिए किसी भी समिति का गठन नहीं किया गया है। कुछ प्रांतीय सेवाओं के लिए चयन समितियों का गठन किया गया है। अधीनस्थ सेवाओं के लिए प्रदत्त अधिकार के अंतर्गत कार्यालय-प्रधानों या स्थानीय सरकार के द्वारा नियुक्तियां की जाती हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या माननीय सदस्य प्रांतीय सेवाओं के लिए गठित की गई समितियों के सदस्यों के नाम बताने का कष्ट करेंगे? उनका कहना है कि कुछ प्रांतीय सेवाओं के लिए चयन समितियां गठित की गई हैं।

माननीय श्री चुन्नी लाल मेहता: मुझे दुख है कि मुझे सदस्यों के नाम याद नहीं हैं। माननीय सदस्य द्वारा नोटिस देने पर मैं सदस्यों के नाम उपलब्ध करा दूंगा। परंतु मेरे विचार से इन समितियों के सदस्यों की कोई निश्चित सूची नहीं है। मैं समझता हूं कि वे हर साल या समय-समय पर बदलती रहती हैं।

(बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 19, पृ. 325, 28 फरवरी 1927)

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए भूमि का अधिग्रहण एवं सुधार

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय। मैं एक जिज्ञासा से अपनी बात शुरू करता हूं। वर्तमान बजट में इस राशि का प्रावधान किस उद्देश्य से किया गया है, यह मैं ठीक-ठाक समझ नहीं पा रहा हूं। माननीय प्रभारी मंत्री से मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इस राशि को उन ग्रामीणों

की नई आवास व्यवस्था पर खर्च किया जाना है, जो अपने गांवों की दशा से असंतुष्ट हैं, या इसे ग्रामीणों की सुख-सुविधाओं हेतु खर्च किया जाना है, या फिर किसी अन्य मद पर। इसके बारे में किसी भी अधिकृत रिपोर्ट या अभिलेख में निश्चित रूप से कोई जानकारी नहीं दी गई है, जिससे कि मुझ जैसे नए सदस्य इस राशि के उपयोग का सही उद्देश्य जान सकें। इसलिए, मैं यह आशा करता हूं कि इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला जाएगा।

(बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 19, पृ. 421, 1 मार्च 1927)

भू-अभिलेख के अधीक्षक

डा. भीमराव अम्बेडकर: महोदय! मैं इस प्रस्ताव पर अधिक बहस करने की आवश्यकता नहीं समझता हूं। प्रस्ताव इस बात पर आधारित है कि वे कार्य जिन्हें अधीक्षकों से कराने के लिए बजट में 35,800 रुपयों का प्रावधान किया गया है, साधारणतया डिप्टी कलक्टरों के द्वारा भी सहज रूप से किया जा सकता है। इस तर्क का एक मात्र उत्तर यह है कि डिप्टी कलक्टर इस कार्य को करने की स्थिति में नहीं हैं। मंत्री महोदय द्वारा दिए गए उत्तर से मुझे ऐसा नहीं लगता कि बंदोबस्त आयुक्त ने प्रश्न के उस पहलू को छुआ भी है। इस सदन में कोई भी व्यक्ति इसका खंडन नहीं करता है कि उनके द्वारा किया गया कार्य उपयोगी है, समाज के हित में आवश्यक भी है, किंतु, महोदय! सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या इस प्रकार के कार्य डिप्टी कलक्टरों द्वारा नहीं किए जा सकते हैं? यदि इसका उत्तर सकारात्मक है, तब तो सरकार के पास कोई मामला ही नहीं है, और ऐसे में मैं सरकार से चाहूंगा कि वह मुझ जैसे नए सदस्यों द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इस संबंध में स्थिति को स्पष्ट करे।

(बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 19, पृ. 453, 3 मार्च 1927)

डिप्टी कलक्टर: श्री एम. के. जाधव का आवेदन

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(i) श्री एम. के. जाधव, बी. ए. (आनर्स), बंबई, ने डिप्टी कलक्टर के तीन पदों में से एक के लिए आवेदन किया था, जो हाल ही में बंबई सरकार के राजस्व विभाग द्वारा भरे गए हैं?

(ii) क्या उन्हें यह जानकारी थी कि वह दलित वर्ग से हैं?

(iii) किन कारणों से उनका आवेदन अस्वीकार किया गया?

माननीय श्री जे. एल. रियू:

(i) हां।

(ii) हां।

(iii) सरकार खेद प्रकट करती है और इसका कारण बताने को तैयार नहीं है कि श्री जाधव या अन्य अभ्यर्थी विशेष का वह चयन क्यों नहीं कर पाई।

डा. भीमराव अम्बेडकर: सरकारी सेवाओं में दलित वर्ग के लिए, जो 50 प्रतिशत पदों

के आरक्षण से संबंधित नियम है, क्या सरकार ने नियुक्तियां करते समय इसे लागू किया?

माननीय श्री जे. एल. रियू: यह नियम इन सेवाओं पर कदापि लागू नहीं होता है। यह केवल लिपिकीय स्टाफ पर लागू होता है।

श्री डब्ल्यू.एस. मुकादम: क्या सरकार हमें चयनित अभ्यर्थियों के नाम देने की कृपा करेगी?

माननीय श्री जे. एल. रियू: माननीय सदस्य इसे रिकार्ड से पा सकेंगे।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या श्री जाधव का बहिष्कार सरकार की दलित वर्ग को प्रोत्साहित करने वाली नीति के अनुकूल है?

माननीय श्री जे. एल. रियू: इसके साथ यह असंगत नहीं है।

(बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 19, पृ. 545, 5 मार्च 1927)

सार्वजनिक स्थानों में दलितों का प्रवेश

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि श्री बोले के उस संकल्प को जिसमें प्रेसिडेंसी के सभी सार्वजनिक स्थानों को दलितों के लिए खोल दिया जाए, प्रभावी बनाने के लिए सरकार द्वारा क्या कदम उठाए गए हैं?

माननीय श्री गुलाम हुसैन: सूचना निदेशक द्वारा जारी प्रेस नोट संख्या पी-117, 29 सितंबर 1923 (तत्काल संदर्भ के लिए प्रति नीचे रखी है) की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है।

प्रेस नोट सं. पी-117, 29 सितंबर 1923

(सूचना निदेशक, बंबई के सौजन्य से)

अछूत वर्ग

सरकार एवं परिषद प्रस्ताव

बंबई विधान परिषद के अंतिम सत्र में श्री बी. एस. बोले के प्रस्ताव पर यह सिफारिश करते हुए एक प्रस्ताव किया गया कि-

> अछूतों को सार्वजनिक विद्यालय, न्यायालय, कार्यालय तथा औषधालय सहित उन सभी सार्वजनिक जल स्थानों, कुओं, एवं धर्मशालाओं के प्रयोग की अनुमति दी जाए, जिनका निर्माण तथा रख-रखाव सार्वजनिक निधि या सरकार द्वारा नियुक्त निकायों से होता है, या जो कानून द्वारा निर्मित हैं।

इस प्रस्ताव के पालन हेतु सरकार ने अपने अधिकारियों को निर्देश दिए हैं कि वे इसे वहां तक प्रभाव में लाएं, जहां तक यह सरकारी या सरकार द्वारा संपोषित सार्वजनिक स्थानों और संस्थाओं से संबंधित हैं। कलक्टरों से यह अनुरोध किया गया है कि वे स्थानीय निकायों को सलाह दें कि प्रस्ताव में दी गई सिफारिश की वांछनीयता को स्वीकार करने पर विचार करें। बंबई एवं कराची पोर्ट ट्रस्ट, बंबई सिटी इंप्रूवमेंट ट्रस्ट और नगर निगम से भी यह निवेदन किया गया है कि वे अपने नियंत्रण वाले सार्वजनिक स्थानों पर भी इस संकल्प को लागू करें।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या मंत्री महोदय को यह जानकारी है कि कई स्थानों पर सार्वजनिक निकायों द्वारा सार्वजनिक स्थानों का लाभ उठाने के लिए की गई व्यवस्था के

बावजूद दलितों को गावों में सामान्य ग्रामीणों द्वारा रोका गया।

माननीय श्री गुलाम हुसैन: यह मेरी जानकारी में नहीं है।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 19, पृ. 546, 5 मार्च 1927)

दलित वर्गों के लिए सहायक शैक्षिक निरीक्षक

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(i) दलित वर्गों के लिए अतिरिक्त सहायक शैक्षिक निरीक्षक के पद से श्री जी. जी. कांबले को क्यों पदावनत किया गया?

(ii) क्या उक्त पद को समाप्त कर दिया गया है?

(iii) यदि हां, तो क्यों?

माननीय दीवान बहादुर हरीलाल डी देसाई: उत्तर इस प्रकार है-

(i) श्री कांबले को इसलिए पदावनत किया गया, क्योंकि वह पद पर अपने बने रहने का औचित्य देने में असमर्थ रहे। उनकी देख-रेख में दिए गए विद्यालयों में कोई वास्तविक सुधार नहीं हुआ।

(ii) हां।

(iii) पद समाप्त कर दिया गया था क्योंकि बंबई प्राथमिक शिक्षा अधिनियम 1923 के अंतर्गत स्थानीय प्राधिकारियों को प्राथमिक विद्यालयों का नियंत्रण हस्तांतरित कर दिए जाने से सरकार के लिए इसे और अधिक जारी रखना अनिवार्य नहीं रह गया था।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह आवश्यक नहीं समझती है कि विशेष सहायक शैक्षिक निरीक्षक का लाभ दलित वर्ग के विद्यालयों को भी दिया जाना चाहिए?

माननीय दीवान बहादुर हरीलाल डी. देसाई: पहले उदाहरण स्वरूप सरकार ने विशेष पद की व्यवस्था की। अब सभी विद्यालय स्थानीय निकायों को हस्तांतरित कर दिए गए हैं और यदि सरकार उस प्रकार की नियुक्ति करना आवश्यक समझेगी, तो उस विषय पर पुनर्विचार करेगी।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 19, पृ. 604, 7 मार्च 1927)

सिटी मजिस्ट्रेट श्री फ्लेमिंग का निर्णय

डा. भीमराव अम्बेडकर : क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) हाल के दो फौजदारी मुकदमों (i) साम्राज्य बनाम बाबूराव फुले और (ii) साम्राज्य बनाम जवलकर तथा अन्य में पूना के सिटी मजिस्ट्रेट श्री फ्लेमिंग द्वारा दिए गए निर्णय की ओर क्या उनका ध्यान आकर्षित किया गया है? इन दोनों मुकदमों में अभियुक्तों के ऊपर भारतीय दंड संहिता की धारा 500 के अंतर्गत अभियोग लगाए गए थे;

(ख) क्या वे लोग इससे अवगत हैं कि श्री फ्लेमिंग ने दोनों मुकदमों में शामिल कानून के एक समान बिंदु पर परस्पर विरोधी निर्णय दिए हैं, जैसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 198 के अंतर्गत क्या फरियादी कोई सताया गया व्यक्ति है?

(ग) क्या इस संबंध में श्री फ्लेमिंग से कोई स्पष्टीकरण लिया गया है कि उन्होंने इस

तरह के परस्पर विरोधी निर्णय क्यों दिए हैं?

(घ) क्या वे इस संबंध में श्री फ्लेमिंग के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने का प्रस्ताव रखते हैं?

माननीय श्री जे.ई.बी. हाटसन: (क) से (ख) मजिस्ट्रेट के निर्णय से स्वयं को पीड़ित समझने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए कानूनी प्रावधान बने हुए हैं। इस सदन में सरकार इस प्रश्न के उन बिंदुओं पर समग्र अनौचित्य के बिना कोई विचार व्यक्त नहीं कर सकती है।

श्री एस.के. बोले: उत्तर केवल (ख) का दिया गया है, न कि (क), (ग) या (घ) का।

माननीय श्री जे.ई.बी. हाटसन: उत्तर प्रश्न के सभी चारों भागों के लिए है।

श्री एस. के. बोले: (क) में प्रश्न यह है कि 'क्या श्री फ्लेमिंग द्वारा दिए गए निर्णय की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया है', लेकिन इसके लिए कोई उत्तर नहीं दिया गया है।

माननीय श्री जे.ई.बी. हाटसन: मैं समझता हूं कि यह विवक्षित है। उनकी ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया गया है।

श्री एस.के. बोले: पुन: (ख) में प्रश्न यह है कि 'क्या वे इससे अवगत हैं कि श्री फ्लेमिंग ने परस्पर विरोधी निर्णय दिए हैं', लेकिन उसके लिए कोई उत्तर नहीं दिया गया है।

माननीय श्री जे ई.बी. हाटसन: हां, इसका उत्तर है। 'इस सदन में सरकार समग्र अनौचित्य के बिना कोई विचार व्यक्त नहीं कर सकती है' इत्यादि।

श्री एस. के. बोले: जो पूछा गया है, क्या उसकी उन्हें जानकारी है?

माननीय अध्यक्ष: शब्द 'परस्पर विरोधी' हैं तथा उस पर विचार की मांग की गई है। इसलिए, इसका वह उत्तर है।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 19, पृ. 1147, 16 मार्च 1927)

मुल्कि पाटिल द्वारा एक महार (चिकवर्दी) पर हमला

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) क्या यह सच है कि जिला शोलापुर गांव चिकवर्दी के मुल्कि पाटिल ने अर्जुन लाल महार पर उनका निजी कार्य करने से मना करने पर आक्रमण करके उसकी खोपड़ी तोड़ दी;

(ख) क्या यह सच है कि इस समय अर्जुन के घाव का उपचार सरकारी अस्पताल बारसी में किया जा रहा है?

(ग) यदि हां, तो पाटिल के खिलाफ उन्होंने क्या कार्रवाई की है?

माननीय श्री जे. एल. रियू: संबंधित जानकारी मंगाई जा रही है।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 19, पृ. 1147, 16 मार्च 1927)

महारों का उत्पीड़न (*शोलापुर*)

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) क्या यह सच है कि शोलापुर जिले के (i) रालेरास, (ii) पानगांव, (iii) पांगरी, (iv) उपले डुमला, (v) अबेगांव, और (vi) सुर्दी गांव के गांव-कारी सब अपने-अपने गांवों में रैयतों एवं दुकानदारों को महारों के साथ किसी भी प्रकार के व्यवहार

को बंद कराने के षड्यंत्र संबंधी कार्य कर रहे हैं, तथा उन्होंने अपने-अपने गांव के महारों पर आक्रमण किए हैं? कुछ मामलों में तो महार औरतों का शील भी भंग किया गया है। महारों के द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली छोटी नदियों में गंदगी तक फेंक दी गई है, क्योंकि इन गांवों में महारों ने आत्म-सुधार के प्रयास में मृत पशुओं के शव उठाने बंद कर दिए हैं।

(ख) महारों को इस प्रकार के अत्याचारों से बचाने के लिए वे क्या कदम उठाना चाहते हैं?

माननीय श्री जे. ई. बी. हाटसन: जानकारी प्राप्त की जा रही है।

(*बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 19, पृ. 1298, 17 मार्च 1927)

उल्हास नदी पर दुर्घटना

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) क्या 13 फरवरी 1926 को *प्रतियोगी* में प्रकाशित अग्रलेख एवं 12 जून, 1926 को *प्रतियोगी* में ही प्रकाशित बदलापुर के लोगों के बयानों के सार की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया गया है?

(ख) यदि हां, तो क्या वे अब भी अपेक्षित मुकदमा चलाने की अनुमति को रोके हुए हैं?

माननीय श्री कोवासजी जहांगीर: सरकार को 13 फरवरी 1926 को *प्रतियोगी* में प्रकाशित लेख के सार की सूचना मिली है परंतु पत्र के 12 जून 1926 के अंक में प्रकाशित बदलापुर के लोगों के बयानों के सार की सूचना नहीं है।

(*बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 20, पृ. 759, 27 जुलाई 1927)

लोक सेवा: दलित वर्ग

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार लोक सेवा में दलित वर्ग की संख्या बताने के संबंध में निम्नलिखित सूचनाएं देने की कृपा करेगी:

जिला	विभाग	नियोजित दलित वर्ग की संख्या	
		चपरासी के रूप में	स्टाफ के रूप में

माननीय श्री चुन्नीलाल मेहता: संबंधित सूचना प्राप्त की जा रही है।

(*बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 20, पृ. 847, 27 जुलाई 1927)

महार: वतनदार पारिश्रमिक

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार प्रांत के प्रत्येक गांव के संबंध में निम्नलिखित सूचनाएं देने की कृपा करेगी:

गांव	कुल जनसंख्या	कार्य करने वाले महारों की संख्या	कार्य करने वाले महारों का सभी स्रोतों से अनुमानित पारिश्रमिक रुपयों में			कुल पारिश्रमिक
			ईनामी से	बलूते से	सरकारी वेतन से	

माननीय श्री जे. एल. रियू: इस सूचना को प्राप्त करने में समय एवं कठिनाई शामिल है, जो सार्वजनिक दृष्टि में सभी प्रकार से संभावित उपयोगिता से अधिक होगी। सरकार को खेद है कि वह इसे एकत्रित करने को तैयार नहीं है। यदि माननीय सदस्य इस जांच-पड़ताल के लिए कुछ विशिष्ट गांवों का चयन करें तो सरकार विचार करेगी कि तत्संबंधी सूचना उलब्ध करांना व्यवहार्य होगा या नहीं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: यह सच नहीं है कि इस प्रश्न में मांगी गई सूचना प्रत्येक गांव की वतन कार्यवाहियों से प्राप्य है।

माननीय श्री जे. एल. रियू: जो भी हो, मैं माननीय सदस्यों का ध्यान उस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहूंगा कि इस प्रश्न को बंबई प्रांत के प्रत्येक गांव में भेजा जाना चाहिए। सूचना को एकत्र करने में बहुत अधिक श्रम और समय लगेगा।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 20, पृ. 1065, 27 जुलाई 1927)

स्थानापन्न महार वतनदार

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगा कि-

(क) प्रांत के विभिन्न भागों के गांवों में वतनदार स्थानापन्न महारों की संख्या को नियंत्रित करने के क्या कोई नियम हैं?

(ख) यदि हां, तो क्या वे उन्हें प्रकाशित करेंगे या उनका उल्लेख करेंगे?

माननीय श्री जे. एल. रियू: (क) और (ख) इस संबंध में कोई नियम नहीं है। स्थानापन्न महारों की नियुक्ति बंबई वंशानुगत कार्य अधिनियम की धारा 64 के प्रावधानों द्वारा नियंत्रित होती है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या माननीय सदस्य को यह जानकारी है कि धारा 64 के अंतर्गत निर्णय लेना कलक्टर के ऊपर छोड़ा गया है, जिसका प्रयोग करते हुए वह स्थानापन्न महारों के संबंध में नियम बना सकता है?

माननीय श्री जे. एल. रियू: मुझे उसकी जानकारी है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या माननीय सदस्य इससे अवगत हैं कि कुछ गांवों में सोलह महार वतनदार के रूप में कार्य कर रहे हैं?

माननीय श्री जे. एल. रियू: यदि माननीय सदस्य सूचना देते हैं तो मैं जांच करवाऊंगा।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 20, पृ. 1207, 27 जुलाई 1927)

बदलापुर में उल्हास नदी पर पुल

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) क्या ठाणे जिला के बदलापुर में उल्हास नदी पर एक निम्नस्तरीय पुल के निर्माण संबंधी प्रश्न पर अभी तक विचार-विमर्श पूरा नहीं हुआ है?

(ख) क्या कमिश्नर और कलक्टर की तद्विषयक रिपोर्टें समस्त पत्राचार सहित परिषद पटल पर रखी जाएगी?

(ग) क्या वे इससे अवगत हैं कि एक निम्नस्तरीय पुल के स्थान पर वहां उच्चतरीय पुल बनाना परमावश्यक है।

माननीय श्री जे. एल. रियू: (क) नहीं, लेकिन यह आशा की जाती है कि कोई न कोई निष्कर्ष शीघ्र ही निकल आएगा। (ख) सरकार पत्राचार को परिषद-पटल पर रखने के लिए तैयार नहीं है। (ग) नहीं।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स,* खंड 20, पृ. 1472, 27 जुलाई 1927)

कृषि के लिए वन भूमि: दलितों को अनुदान

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) वर्ष 1923, 1924, 1925, और 1926 में इस प्रांत के प्रत्येक जिले में कृषि के लिए. दी गई वन भूमि का कुल विस्तार कितना था?

(ख) उक्त वर्षों में प्रत्येक जिले में दलित वर्गों को इनमें से कितनी भूमि दी गई?

माननीय श्री जे.बी. प्रधान: (क) और (ख) अपेक्षित सूचना का विवरण परिषद-पटल पर रखा गया है। विवरण में दिखाया गया क्षेत्र प्रांत के प्रत्येक वन प्रभाग के लिए है।

1923, 1924, 1925, और 1926 के दौरान कृषि के लिए दी गई वन भूमि का विवरण

वन प्रभाग	कृषि के लिए दी गई वन भूमि का कुल विस्तार			
	1923	1924	1925	1926
उत्तरी क्षेत्र	*एकड़*	*एकड़*	*एकड़*	*एकड़*
1. पंचमहाल	660	7,536	--	9
2. सूरत	1,175	1,152	3,558	--
3. उत्तरी थाणे	191	171	--	5
4. पश्चिमी थाणा	339	330	295	--
5. पूर्वी थाणे	21,463	2,237	2,810	3,733
6. पश्चिमी नासिक	3,080	432	1,817	256
7. पूर्वी नासिक	8,493	2,714	2,100	2,482
केंद्रीय क्षेत्र				
1. पूर्वी खानदेश,	186	401	1,756	1,872

2. उत्तरी खानदेश	--	1,325	1,660	1,815
3. पश्चिमी खानदेश	90	51	235	560
4. पूना	1	1	70	36
5. अहमदनगर	4,254	55	86	88
6. सतारा	3,516	252	473	285
दक्षिणी क्षेत्र				
1. उत्तरी डिवीजन, कनारा	22	--	--	7
2. पूर्वी डिवीजन, कनारा	105	137	33	7
3. दक्षिण डिवीजन, कनारा	26	40	31	37
4. पश्चिमी डिवीजन, कनारा	133	70	59	5
5. केंद्रीय डिवीजन, कनारा	13	6	1	--
6. बेलगांव	668	719	2,006	2,717
7. धारवाड़	346	25	154	132
सिंध क्षेत्र				
1. सुक्कुर	1,841	2,577	1,330	1,888
2. शिकापुर	1,399	1,256	1,066	928
3. लरकाना	4,321	3,143	4,838	5,300
4. हैदराबाद	549	1,782	2,071	2,396
5. कराची	92	1,093	1,789	3,084

1923, 1924, 1925, और 1926 के दौरान कृषि के लिए दी गई वन भूमि का विवरण

वन प्रभाग	दलित वर्गों को दी गई भूमि			
	1923	1924	1925	1926
उत्तरी क्षेत्र				
1. पंचमहाल	227	1,446	--	9
2. सूरत	1,175	1,152	3,558	--
3. उत्तरी थाणे	191	171	--	5
4. पश्चिमी थाणा	339	330	295	--
5. पूर्वी थाणे	21,463	2,237	2,810	3,733
6. पश्चिमी नासिक	2,927	411	1,727	243
7. पूर्वी नासिक	8,493	2,714	2,100	2,482

केंद्रीय क्षेत्र					
1. पूर्वी खानदेश	--	30	91	101	
2. उत्तरी खानदेश	--	1,325	1,660	1,815	
3. पश्चिमी खानदेश	40	37	90	340	
4. पूना	--	--	--	--	
5. अहमदनगर	55	--	--	--	
दक्षिणी क्षेत्र					
1. उत्तरी डिवीजन, कनारा	--	--	--	--	इन वर्षों के दौरान दलित वर्ग के
2. पूर्वी डिवीजन, कनारा	--	--	--	--	लोगों से कोई भी आवेदन प्राप्त नहीं हुआ।
3. दक्षिणी डिवीजन कनारा	20	38	28	36	
4. पश्चिमी डिवीजन, कनारा	--	--	--	--	इन वर्षों के दौरान दलित
5. केंद्रीय डिवीजन कनारा	--	--	--	--	वर्ग के लोगों से कोई भी आवेदन प्राप्त नहीं हुआ।
6. बेलगांव	45	104	23	664	
7. धारवाड़	--	--	--	--	इन वर्षों के दौरान दलित वर्ग के लोगों से कोई भी आवेदन प्राप्त नहीं हुआ।
सिंध क्षेत्र					
1. सुक्कुर	–	–	–	–	सिंधक्षेत्र में कृषि
2. शिकापुर	–	–	–	–	कार्य करने वाला
3. लरकाना	–	–	–	–	कोई दलित वर्ग
4. हैदराबाद	–	–	–	–	नहीं है।
5. कराची	–	–	–	–	

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 20, पृ. 1472-74, 27 जुलाई 1927)

तंबाकू लाइसेंस

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) क्या किसी नारायण सखाराम ने उत्पाद शुल्क अधीक्षक, तंबाकू विभाग, के पास तंबाकू बेचने के लिए लाइसेंस हेतु आवेदन किया था?

(ख) यद्यपि आवेदक एक मिलिटरी पेंशनर था और 117 राजपूत के कमान अफसर ने लाइसेंस के लिए उसके आवेदन की अनुशंसा भी की थी, फिर भी क्या उसके आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया?

(ग) किन कारणों से उसके आवेदन को अस्वीकृत किया गया?

(घ) क्या आवेदन इसलिए अस्वीकृत कर दिया गया कि आवेदक दलित वर्ग से संबंधित था?

(ड.) लाइसेंस जारी करने के विषय में कहीं वे जातीय पक्षपात तो नहीं करते?

माननीय श्री जे.एल. रियू: (क) हां। (ख) हां। (ग) तंबाकू लाइसेंस केवल उन दीन-हीन विपदाग्रस्त लोगों को ही दिया जाता है, जो किसी अन्य उपाय से अपनी रोजी-रोटी कमाने में असमर्थ होते हैं। माननीय सदस्य द्वारा उल्लिखित व्यक्ति दूसरे उपाय से अपनी जीविका कमाने में पूरी तरह सक्षम था। इसलिए उसे लाइसेंस देना अस्वीकृत किया गया। (घ) नहीं। (ङ) नहीं।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या यह नियम तंबाकू लाइसेंस जारी करने वाले विभाग द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार हैं?

माननीय श्री जे. एल. रियू: मैं नहीं सोचता कि इस संबंध में कोई विशेष नियम है, किंतु व्यवहार में उक्त कथन ही है।

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह विशेष प्रश्न माननीय सदस्य के विभाग से संबंधित है या उत्पाद शुल्क मंत्री के विभाग से?

माननीय श्री जे. एल. रियू: यह राजस्व विभाग से संबंधित है। तंबाकू लाइसेंस बंबई के कलक्टर द्वारा दिए जाते हैं।

(बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 21, पृ. 57, 29 सितंबर 1927)

नासिक वन भूमि: महारों के आवेदन

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) क्या उन्हें इस बात की जानकारी है कि तालुक नासिक में गांव पिंपलाद के महारों ने कलकटर के पास वन भूमि के लिए आवेदन किया था?

(ख) क्या उन्होंने पिंपलाद गांव की सर्वेक्षण संख्या 220 की मांग की?

(ग) उसे अस्वीकृत किए जाने पर क्या राजुर-बाबुला गांव की सर्वेक्षण संख्या 202 की मांग की गई?

(घ) उसे अस्वीकृत किए जाने पर क्या राजुर-बाबुला गांव की सर्वेक्षण संख्या 71 की मांग की गई?

(ड.) क्या यह सच है कि अंतिम आवेदन भी अस्वीकृत कर दिया गया?

(च) इन महारों के आवेदन पर अनुकूल विचार करने के बदले उन्हें निरंतर अस्वीकृत करने के क्या कारण हैं?

माननीय श्री जी. बी. प्रधान: (क), (ख), (ग), (घ), और (ङ) हां, क्योंकि यह पहले से ही अन्य व्यक्ति को दे दी गई थी।

(2) राजुर की सर्वेक्षण संख्या 202 चरागाह वन है, जो राजस्व विभाग के अधिकार में है। यह चरागाह पशुओं को चराने के लिए ग्रामीणों को बेचा जाता है तथा इसे किसी और उद्देश्य हेतु नहीं दिया जा सकता है क्योंकि गांव में उपलब्ध शेष चरागाह क्षेत्र उनकी आवश्यकतानुसार पर्याप्त नहीं है।

(3) कुरन (चरागाह) के लिए निर्धारित राजुर-बाबुला की सर्वेक्षण संख्या 71 को भी इन्हीं कारणवश महारों को नहीं दिया जा सका।

मैं यह भी कहना चाहूंगा कि पिंपलाद और राजुर-बाबुला की 11 सर्वेक्षण संख्या जो लगभग 200 एकड़ थी,कृषि के लिए दी जाने वाली कुल उपलब्ध भूमि थी। इसलिए उन्हें निर्धारित मूल्य से 12 गुणा कम मूल्य पर बिक्री के लिए रखा गया तथा यह आदेश दिया गया कि महार,भील और कोली के अलावा कोई और इसके लिए बोली न लगाए। धनी लोगों के द्वारा की जाने वाली मंहगी प्रतियोगिता से बचने के लिए यह विशेष शर्त लगाई गई थी। हाल ही में संस्वीकृत कागजात देखने से पता चलता है कि पिंपलाद के दो कोली और तीन महारों तथा राजुर-बाबुला के एक कोली और तीन महार इसके खरीददार हैं।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 21, पृ. 219, 1 अक्तूबर 1927)

ठाणे जिला: चरागाह

डा. भीमराव अम्बेडकर की ओर से डा. पी. जी. सोलंकी:

क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) क्या वर्ष 1926 के *विविध ज्ञान विस्तार* के पृष्ठ 372 और 417 पर प्रकाशित सूचना की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया है?

(ख) यदि हां, तो ऐसी वरकाश या घास वाली भूमि को कर मुक्त करने का आदेश देने के लिए,वे क्या कार्रवाई करने का विचार कर रहे हैं?

(ग) क्या वे ठाणे जिले में बदलापुर गांवों की वन भूमि को कृषि एवं चरागाह के उद्देश्य से आरक्षित रखने का विचार कर रहे हैं,क्योंकि इनसे आय अपेक्षाकृत बहुत ही कम है?

माननीय श्री जे. एल. रियू: (क) केवल तभी जब माननीय सदस्य इस प्रश्न की सूचना देंगे।

(ख) नहीं।

(ग) नहीं।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 21, पृ. 269-70, 1 अक्तूबर 1927)

दलित वर्ग के लिए वनभूमि

डा. भीमराव अम्बेडकर की तरफ से डा. पी. जी. सोलंकी: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) क्या वे इससे अवगत हैं कि दलित वर्ग में बहुत अधिक बेरोजगारी व्याप्त है?

(ख) छुआछूत के कारण दलितों के लिए बहुत सारे व्यवसायों के द्वार बंद हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जहां कहीं वन भूमि उपलब्ध होगी, क्या वे वहां दलितों को स्थापित करने का विचार रखते हैं, जैसी व्यवस्था मैसूर सरकार ने भी की है?

(ग) क्या वन भूमि के लिए वे दलित आवेदकों को वरीयता देने का विचार रखते हैं?

माननीय श्री जी. बी. प्रधान: (क) नहीं।

(ख) खानदेश प्रभागों के तीन क्षेत्रों में इस प्रकार की व्यवस्था पहले ही की जा चुकी है। यदि आवेदन किया जाता है और उपयुक्त वन भूमि उपलब्ध होगी,तो इस प्रकार की व्यवस्था की व्यवहार्यता पर आगे भी विचार किया जाएगा।

(ग) वन भूमि के लिए दलितों के आवेदनों पर अनुग्रहपूर्वक विचार किया जाएगा, किंतु वरीयता संबंधी कोई वादा नहीं किया जा सकता है।

(*बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल* डिबेट्स, खंड 21, पृ. 269–70, 1 अक्तूबर 1927)

दक्कन कृषक सहायता अधिनियम पर रोक

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) क्या यह सच है कि वह दक्कन कृषक सहायता अधिनियम को निरस्त करने के लिए विधेयक प्रस्तुत करने का विचार कर रही है?

(ख) यदि हां, तो क्या उन कृषकों के विचार जाने गए हैं,जिनके हितों को इस प्रकार की कार्रवाई से निश्चय ही हानि होगी?

(ग) क्या उन्हें इस बात की जानकारी है कि कृषि संबंधी शाही आयोग ने अपना मत व्यक्त किया है कि कुसीदिक (यूज्युरियस) ऋण अधिनियम, 1918 को लागू करना सफल नहीं हो पाया है?

माननीय श्री जे. आर. मार्टिन: (क) और (ख) दक्कन कृषक सहायता अधिनियम को रोकने या सुधारने का मामला तब तक के लिए स्थगित कर दिया गया है, जब तक कि कृषि ऋण भार (एग्रीकल्चर इनडेब्टनेस) के संबंध में विधायी प्रश्न को कृषि आयोग अनुमोदित नहीं कर देता है। इसके बाद उसे समग्र रूप में लिया जा सकता है। (ग) हां।

(*बॉंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 24, पृ. 287, 29 सितंबर 1928)

सरकारी कर्मचारी: वेतन और पेंशन

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि–

उसके द्वारा 1927–28 (या पूर्व के किसी अन्य वर्ष के जिसके आंकड़े उपलब्ध हैं) दी गई कुल राशि कितनी थी –

(i) अधीनस्थ और लिपिकीय सेवाओं में कार्यरत अपने स्थायी कर्मचारियों के वेतन के रूप में?

(i) अपने अधीनस्थ और लिपिकीय सेवाओं से सेवानिवृत्त कर्मचारियों की पेंशन के रूप में;

माननीय श्री जी. बी. प्रधान: (i) स्थायी और अस्थायी स्थापनाओं के खर्च के आंकड़े अलग-अलग

उपलब्ध नहीं हैं। 1925-26 के दौरान प्रांतीय सरकार की अधीनस्थ स्थापनाओं के वेतन पर खर्च की कुल राशि 296 लाख रुपये थी। इसमें श्रमजीवी कर्मचारियों का खर्च जो 25 लाख रुपये के लगभग है, नहीं जोड़ा गया है।

(ii) सरकार को खेद है कि वह विभिन्न श्रेणियों के अपेक्षित आंकड़े अलग-अलग उपलब्ध न होने के कारण इन्हें प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं।

(*बॉम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 24, पृ. 287, 29 सितंबर 1928)

सरकारी कर्मचारी: स्नातकों का प्रारंभिक वेतन

डा. भीमराव अम्बेडकर की ओर से डा. पी. जी. सोलंकी: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) क्या यह सच है कि बंबई नगर में स्नातकों के प्रारंभिक वेतन की जानकारी हेतु डा. एस. के. बोले ने परिषद में प्रश्न उठाया था?

(ख) क्या यह सच है कि सरकार ने उत्तर दिया है कि जहां स्थापनाएं 'उच्च' और 'निम्न स्तर' में बंटी हुई हैं,वहां स्नातकों का प्रारंभिक वेतन 90 रुपये प्रतिमाह कर दिया गया है, उन कार्यालयों में निम्न स्तर पर सेवारत स्नातकों को छोड़कर। सरकार ने एक सरकारी संकल्प, वित्त विभाग सं. 1140, 25 मार्च 1925 भी विभागाध्यक्षों को तदनुसार निर्देशों सहित जारी किया?

(ग) क्या यह सच है कि उपरोक्त सरकारी संकल्प जो सभी विभागाध्यक्षों को निर्देश देता है कि वे बंबई नगर में स्नातकों को 90 रुपये प्रारंभिक वेतन दें, के बावजूद बंबई नगर का कलक्टर अपने अधीन विभागों में स्नातकों को केवल 60 रुपये प्रारंभिक वेतन देता है, जब कि उन विभागों में कोई उच्च और निम्न स्तर का विभाजन भी नहीं है?

(घ) क्या सरकार इससे अवगत है कि छोटे शहरों में स्नातकों को केवल 70 रुपये प्रारंभिक वेतन दिया जाता है?

माननीय श्री जी.बी. प्रधान: (क) हां।

(ख) सरकार ने उत्तर दिया कि निम्न स्तर पर सेवारत स्नातकों को छोड़कर, उन कार्यालयों में जिनमें स्थापना उच्च और निम्न स्तर में बंटी हुई हैं बंबई के सभी कार्यालय प्रमुखों को, सभी स्नातकों को 90 रुपये प्रारंभिक वेतन देने के लिए प्राधिकृत किया गया था। इस आशय के आदेश सरकारी संकल्प, वित्त विभाग सं. 1140, 25 मार्च 1925 में जारी किए गए थे।

(ग) माननीय सदस्य द्वारा सांकेतिक आदेशों के अधीन सरकार ने अपने कार्यालय प्रमुखों को संशोधित समय-मान (टाइम स्केल) के तहत उन कार्यालयों के स्नातकों को 90 रुपये प्रतिमाह प्रारंभिक वेतन देने के लिए प्राधिकृत किया था,जहां स्थापना उच्च और निम्न वेतनमानों में बंटी हुई नहीं है। उपरोक्त आदेशों के अनुसार बंबई के कलक्टर,जहां स्नातक लिपिक परमावश्यक लगता है,केवल ऐसे स्नातक को ही 90 रुपये प्रतिमाह प्रारंभिक वेतन देता है। अन्य मामलों में स्नातकों को सौंपे गए कार्य की महत्ता के अनुसार उनकी वेतन दर 60 से 90 रुपये है।

(घ) हां।

(*बॉम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल* डिबेट्स, खंड 25, पृ. 685, 28 फरवरी 1929)

भूमि अधिग्रहण: मुल्शी बांध

डा. भीमराव अम्बेडकर की ओर से डा. पी. जी. सोलंकी: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) जिला पूना, तालुक हवेली के मोहरी और बड़गांव के महारों की भूमि क्या सरकार ने मुल्शी बांध के कारण अधिग्रहीत कर ली थी?

(ख) किस दर पर भूमि का अधिग्रहण किया गया था ?

(ग) क्या इन गांवों के महारों को भूमि का मूल्य दे दिया गया था?

माननीय श्री जे. एल. रियू: (क) हां।

(ख) जिरैत भूमि के लिए 50 रुपये प्रति एकड़ और गादी (धान) भूमि के लिए 550 रुपये प्रति एकड़।

(ग) इनामी भूमि का मूल्य सरकार के खाते में जमा कराया गया था एवं मुआवजे की कुल राशि का पांच प्रतिशत वार्षिक नगद भत्ते के रूप में महार वतनदार के लिए स्वीकृत किया गया था।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 25, पृ. 767, 1 मार्च 1927)

स्थानीय बोर्डों को सहायता-अनुदान

डा. भीमराव अम्बेडकर की ओर से डा. पी. जी. सोलंकी: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि--

(क) क्या यह सच है कि निदेशक, सार्वजनिक अनुदेश ने लगभग तीन साल से स्थानीय बोर्डों के अनुदान का मामला लंबित रखा हुआ है?

(ख) यदि हां, तो विलंब के लिए कौन उत्तरदायी है?

(ग) यदि सरकार इस विषय में कोई कार्रवाई करने का विचार कर रही है तो वह क्या है?

माननीय मौलवी रफीउद्दीन अहमद: (क) यदि माननीय सदस्य प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकार द्वारा दिए गए अनुदानों को देखें, तो पता चलेगा कि जिला स्थानीय बोर्डों या स्थानीय प्राधिकारियों को लेखा परीक्षा के बाद दिया जाने वाला वार्षिक अंतिम अनुदान प्रायः वास्तविक राशि की अपेक्षा अधिक ही रहा है। लेखा आपत्तियों के पश्चात इन वार्षिक अनुदानों का अंतिम रूप से समायोजन किया जाता है।

(ख) प्रश्न ही नहीं उठता है।

(ग) वर्तमान कार्य-प्रणाली में परिवर्तन का कोई विचार नहीं किया गया है।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 25, पृ. 1092, 7 मार्च 1929)

बंबई नगरनिगम - मोरलैंड रोड

डा. भीमराव अम्बेडकर: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) क्या यह सच है कि बंबई नगरनिगम ने विगत 15 वर्षों में मोरलैंड रोड का एक बार भी पुनः निर्माण नहीं किया है। यदि हां, तो उसके कारण क्या हैं?

(ख) क्या सरकार इस विषय में कोई कदम उठाने का कोई विचार करती है?

(ग) क्या यह सच है कि इस मामले को अध्यावेदनों एवं प्रेस के माध्यम से पुलिस

अधिकारियों एवं नगरनिगम के समक्ष प्रस्तुत किया गया?

माननीय दीवान बहादुर हरीलाल डी. देसाई : (क) यह सच नहीं है कि विगत 15 सालों से सड़क की मरम्मत नहीं कराई गई है। 1914 से 1921 की अवधि के दौरान नियमित रूप से पूरी सड़क की मरम्मत का कार्य किया गया था और 1920-21 के दौरान पूरी सड़क की मरम्मत की गई तथा 11,640-15-3 रुपये की लागत से सड़क की सतह पर तारकोल बिछाकर इसे सुधारा गया। यद्यपि 1922 से सड़क की पर्याप्त मरम्मत नहीं की गई तथापि इसकी सतह की मरम्मत बार-बार की गई है। नगरनिगम ने सीमेंट की ठोस नींव पर डामर (आसफाल्ट) चादर के साथ सड़क के पुनर्निर्माण की अनुमति दी है और यथासमय कार्य प्रारंभ किया जाएगा।

(ख) नहीं।

(ग) निगम में इसकी शिकायतें की जा चुकी हैं।

(*बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, खंड 25, पृ. 1092, 7 मार्च 1929)

माध्यमिक विद्यालयः सहायता-अनुदान

डा. भीमराव अम्बेडकर की ओर से डा. पी.जी. सोलंकी: क्या सरकार यह बताने की कृपा करेगी कि-

(क) माध्यमिक विद्यालयों के लिए वार्षिक अनुदान निर्धारित करने के आधार को संशोधित करने के प्रश्न पर गत वर्ष किन कारणों से विचार नहीं किया गया?

(ख) क्या इस प्रांत में ऐसे विद्यालय हैं,जिन्हें सरकार से विशेष अनुग्रह के तहत नियमित सहायता-अनुदान प्राप्त हुआ हो?

(ग) क्या माध्यमिक विद्यालयों के लिए अनुदान निर्धारित करने के संदर्भ में, निदेशक, सार्वजनिक अनुदेश शैक्षिक निरीक्षकों की निरीक्षण-रिपोर्टों के द्वारा निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं? यदि नहीं, तो माध्यमिक विद्यालयों को वार्षिक अनुदान वितरण करने का साधारणतया उनका मानदंड क्या होता है?

(घ) विभागीय कुशलता का स्तर बनाए रखने के क्रम में क्या शैक्षिक विभाग ने कुछ आधारों का पालन किया है,जिनके अनुसार सहायता-प्राप्त विद्यालयों से प्रति-व्यक्ति वार्षिक खर्च करने की अपेक्षा की जाती है और दूसरी ओर सरकार से भी तदनुरूप खर्च में हिस्सा लेने की आशा की जाती है। यदि हां, तो उन आधारों के अनुसार सरकार और संस्था के बीच खर्च का न्यूनतम अनुपात क्या है?

(ड.) शिक्षा विभाग के द्वारा कम से कम कितने वर्षों के बाद किसी माध्यमिक विद्यालय को पंजीकृत किया जाता है?

(च) क्या वह पांच वर्ष से भी अधिक समय के माध्यमिक विद्यालयों की संख्या बताएगी, जिनका सहायता-अनुदान के लिए अभी तक स्थायी रूप से पंजीकरण नहीं किया गया है?

माननीय मौलवी रफीउद्दीन अहमदः (क) सरकार प्रायः संतुष्ट थी कि जिस आधार पर माध्यमिक विद्यालयों के लिए अनुदान निर्धारित किए जाते हैं, वे सही हैं।

(ख) हां।

(ग) अनुदान संहिता में बनाए गए सिद्धांतों के अनुसार अनुदान निर्धारित किए जाते हैं। यदि कोई विशेष विद्यालय सहायता-अनुदान संहिता की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है तो निदेशक, सार्वजनिक अनुदेश निरीक्षण स्टाफ की रिपोर्टों से मार्गदर्शन पाते हैं। इसलिए पिछले भाग में किए गए प्रश्न का कोई औचित्य ही नहीं है।

(घ) अनुदान के लिए खर्च-निर्धारण में प्रति व्यक्ति खर्च का कोई निश्चित मानदंड नहीं माना गया है। मांग करने वाले सभी विद्यालयों को निधि के अनुसार अपने उद्देश्य के लिए आबंटित राशि के अनुरूप ही सहायता-अनुदान संहिता में बनाई गई व्यवस्था के अंतर्गत स्वीकृत खर्च की एक-तिहाई दर पर अनुदान दिया जाता है।

(ङ) वर्षों की कोई भी न्यूनतम संख्या निर्धारित नहीं की गई है। निधि के अभाव में अतिरिक्त विद्यालयों का पंजीकरण निलंबित रखा गया है।

(च) लगभग 110 विद्यालय।

(बोंबे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खंड 28,पृ. 585-86, 27 फरवरी 1980)

परिशिष्ट III
विश्वविद्यालय सुधार समिति

(देखें अध्याय 4, पृष्ठ 66)

बंबई प्रेसिडेंसी में विश्वविद्यालय सुधार की प्रश्नावली *

(बंबई विश्वविद्यालय के सुधार की समस्याओं की जांच हेतु बंबई सरकार ने एक समिति नियुक्त की थी। इस समिति के 13 सदस्य थे,जिसके अध्यक्ष चिमन लाल एच. शीतलवाड थे। डा. अम्बेडकर इस समिति के सदस्य नहीं थे,किंतु वे उन 321 व्यक्तियों में से एक थे जिनके पास समिति के 54 प्रश्नों वाली अपनी प्रश्नावली भेजी थी। डा. अम्बेडकर ने मात्र उन्हीं प्रश्नों का उत्तर दिया,जिन्हें उत्तर देने योग्य समझा। केवल डा. अम्बेडकर द्वारा उत्तरित प्रश्न ही यहां साक्ष्यों सहित पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं – संपादक)।

1. आपके विचार में बंबई प्रेसिडेंसी में विश्वविद्यालय शिक्षा का लक्ष्य एवं कार्य क्या होना चाहिए? क्या आप समझते हैं कि इस प्रेसिडेंसी में विश्वविद्यालय शिक्षा की वर्तमान पद्धति यहां के युवा भारतीयों को लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकती है। यदि नहीं, तो किस प्रमुख मदों के कारण आप वर्तमान पद्धति को त्रुटिपूर्ण मानते हैं?

2. क्या आप समझते हैं कि आपके द्वारा बताई गई कमियां मुख्य रूप से विद्यमान हैं, या संभावित हैं। (क) गुरु-शिष्य परंपरा, (ख) विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के प्रवेश से पूर्व शिक्षा की दशा या (ग) विश्वविद्यालय की प्रशासनिक या शैक्षिक कार्यप्रणाली?

3. आपके विचार से विश्वविद्यालय ने कहां तक इस प्रेसिडेंसी में समुदायों के इतिहास और संस्कृति के ज्ञान को पारस्परिक हित में और सद्भावना के लिए बढ़ावा दिया है? क्या आप कुछ ऐसे उपाय सुझाएंगे,जिनके द्वारा इस भावना को विकसित किया जा सके?

---

* 1925-26 में सरकार द्वारा नियुक्त विश्वविद्यालय सुधार समिति की रिपोर्ट, पृ. 226-31

II. माध्यमिक और मध्यवर्ती (इंटरमीडियेट) शिक्षा

(प्रश्न 4--7)

4. क्या आप समझते हैं कि हाई स्कूलों से आने वाले विद्यार्थियों की विश्वविद्यालयीन शिक्षा के हेतु पर्याप्त तैयारी होती है? यदि आप इसे अपर्याप्त समझते हैं,तो वर्तमान स्थिति में सुधार के लिए क्या आपके पास कोई सुझाव हैं?

5. क्या आप इस प्रांत में (क) हाई स्कूल और विश्वविद्यालय के बीच में नई माध्यमिक संस्थाओं के गठन, (ख) माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा के एक नए बोर्ड के गठन का, जैसा कि कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग द्वारा प्रस्तावित किया गया था, अनिवार्य या वांछनीय समझते हैं? यदि ऐसा है, तो ऐसी संस्थाएं और बोर्ड किस प्रकार गठित किए जाएं और उनका आर्थिक प्रबंध कैसे हो?

6. यदि आप उच्च माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं की बोर्ड सहित या बोर्ड रहित परिकल्पना अनावश्यक या अवांछनीय मानते हैं,तो उसके बिना वर्तमान हाई स्कूल शिक्षा का स्तर, विस्तार और प्रभाव इस प्रांत में किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है?

7. किस प्रकार विश्वविद्यालय इन संस्थाओं की गुणवत्ता को बनाए रख सकता है,जहां से उसमें प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थी भेजे जाते हैं?

III. बंबई विश्वविद्यालय के कार्य

(प्रश्न 8-24)

(क) *शिक्षण (प्रश्न 8-13)*

8. आपके विचार में, बंबई विश्वविद्यालय के कार्य को किस दिशा में विस्तार दिया जाना आवश्यक, व्यावहारिक और उपयुक्त होगा ताकि वह प्रभावी रूप में एक शिक्षण विश्वविद्यालय बनकर उभरे?

9. क्या आप विचार करते हैं कि विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर शिक्षण के साथ पूर्व-स्नातक शिक्षण के लिए भी भाग लें? यदि हां, तो विश्वविद्यालय और वर्तमान शिक्षण संस्थाओं के शिक्षण कार्यों का मिलान और समन्वय कैसे करेंगे?

10. यदि आप विश्वविद्यालय के पूर्व स्नातक शिक्षण में सीधे भाग लेने को ठीक नहीं मानते तो इस स्तर के अध्ययन हेतु उपयुक्त समन्वय रखते हुए वर्तमान सुविधाओं के समुचित लाभ का उपयोग कैसे करेंगे?

IV. बंबई प्रांत में अतिरिक्त विश्वविद्यालय

(प्रश्न 25-30)

25. क्या बंबई प्रेसिडेंसी में किन्हीं अतिरिक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना वांछनीय है? इस प्रेसिडेंसी में आप उच्चतर शिक्षा के लिए कौन से केन्द्र मानते हैं कि:

(क) विस्तारित करके, विश्वविद्यालयों में रूपातंरण के लिए उपयुक्त हैं?

(ख) निकट भविष्य में विस्तार के लिए उपयुक्त होगी और किन आधारों पर?

28. अतिरिक्त विश्वविद्यालय वर्तमान बंबई विश्वविद्यालय पर क्या प्रभाव डालेंगे? आप बंबई विश्वविद्यालय और नए विश्वविद्यालय के बीच किस प्रकार सहयोग, समन्वय और परस्परता को सुनिश्चित करना चाहेंगे? आप संक्रमण-कालावधि में किस प्रकार की व्यवस्था करना चाहेंगे?

VII. संविधान

(प्रश्न 36-40)

36. बंबई विश्वविद्यालय के संवैधानिक ढांचे में आप क्या दोष पाते हैं?

37. आपके विचार में वरिष्ठ सभा (सीनेट) की शक्ति, गठन, कार्यकाल, गठन-विधि, अधिकार तथा कार्य क्या होने चाहिएं? वरिष्ठ सभा में कौन व्यक्ति पदेन, आजीवन और मनोनीत सदस्य होंगे? आपकी वरिष्ठ सभा संबंधी गठन-विधि सभी समुदायों और उनके हितों को कैसे सुनिश्चित करेगी?

38. क्या आप सोचते हैं कि बंबई विश्वविद्यालय के सिंडीकेट द्वारा प्रयुक्त अधिकारों एवं कार्य क्षेत्रों का विकेंद्रीकरण होना अनिवार्य या वांछनीय है?

यदि हां, तो आप सिंडीकेट के किन अधिकारों या कार्यों को हटा देंगे और उन्हें किन नए या वर्तमान निकायों को देना चाहेंगे? इस प्रकार पुनर्गठित सिंडीकेट और नए निकायों को आप किस प्रकार संगठित करना चाहेंगे?

39. आप संकायों तथा अध्ययन मंडलों को क्या कार्य एवं अधिकार देना चाहेंगे? इन निकायों का गठन और नियुक्ति कैसे की जाएगी?

III. बंबई विश्वविद्यालय के कार्य

(प्रश्न 8-24)

(ग) पाठ्यक्रम निर्धारण और परीक्षण (प्रश्न 16-19)

16. आपके विचार में विश्वविद्यालय (क) परीक्षाओं के संचालन, (ख) अध्ययन पाठ्यक्रम के निर्धारण, और (ग) पाठ्यपुस्तकों के निर्धारण संबंधी अपने कार्यों का किस प्रकार पालन कर रहा है। क्या आप इन कार्यों के निष्पादन में किन्हीं संशोधनों का सुझाव चाहेंगे?

17. विश्वविद्यालय परीक्षाओं को प्रवीणता, बुद्धि और सक्षमता के अन्य उपायों द्वारा किस प्रकार लाभप्रद ढंग से प्रतिस्थापित किया जाए या जोड़ा जाए?

18. बंबई विश्वविद्यालय को अध्ययन के किन क्षेत्रों के शिक्षण का दायित्व तुरंत और निकट भविष्य में ले लेना चाहिए?

19. बंबई विश्वविद्यालय के शिक्षण कार्यों में विस्तार को और बंबई के निवासियों की विशेष अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए क्या आप अतिरिक्त संकायों जैसे, ललित कला, अथवा प्रौद्योगिकी को प्रारंभ करने का सुझाव देंगे,ताकि विश्वविद्यालय के क्षेत्र को विस्तृत,

अधिक उदार तथा व्यापक बनाया जा सके?

(घ) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम और उपाधियां (प्रश्न 20-21)

(20) जब बंबई विश्वविद्यालय के शिक्षण कार्यों का विकास होगा, तो स्नातकोत्तर उपाधियों के लिए अध्ययन की अवधि क्या निर्धारित की जाएगी? आप इन उपाधियों को किस प्रकार देंगे--परीक्षा, शोध-कार्य, मौलिक अनुसंधान द्वारा या इनमें से किसी एक या अधिक को मिलाकर?

21. क्या आप आनर्स स्तर पर किन्हीं नई उपाधियों को प्रारंभ करना चाहेंगे? यदि हां तो वे किन आधारों पर दी जाएंगी?

(ड.) अनुसंधान को प्रोत्साहन देना (प्रश्न 22-23)

22. विश्वविद्यालय भारतीय और विशेष रूप से बंबई की समस्याओं के, चाहे वे ऐतिहासिक, आर्थिक, समाजशास्त्रीय, औद्योगिक या अन्य हों, स्वतंत्र अनुसंधान को कैसे बढ़ावा और मार्ग-दर्शन दे सकेगा?

23. क्या विश्वविद्यालय के मुद्रण एवं प्रकाशन विभाग के निर्माण की कोई आवश्यकता है? इस विभाग का गठन और आर्थिक प्रबंध कैसे किया जाएगा?

(च) विश्वविद्यालय शिक्षकों की नियुक्ति (प्रश्न 24)

24. बंबई विश्वविद्यालय के आचार्यों, उपाचार्यों और प्राध्यापकों के चयन और नियुक्ति की प्रणाली क्या होगी? उनके लिए क्या अर्हताएं अपेक्षित होंगी? उनके लिए क्या वेतन श्रेणी अपेक्षित होगी? उनकी नियुक्ति और कार्यकाल के विषय में क्या नियम होंगे?

IV. बंबई प्रांत में अतिरिक्त विश्वविद्यालय

(प्रश्न 25-30)

30. (क) बंबई विश्वविद्यालय, (ख) उस प्रेसिडेंसी में किसी नए विश्वविद्यालय द्वारा अंगीभूत या संबद्ध किसी नए महाविद्यालय या संस्था को खोलने की अनुमति हेतु क्या सिद्धांत या नीति अपनाई जाएगी?

V. विश्वविद्यालय और जनता का संबंध

(प्रश्न 31-34)

31. आपके विचार में बंबई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम प्रेसिडेंसी और विशेषकर बंबई शहर में कृषि संबंधी, औद्योगिक, व्यावसायिक और सार्वजनिक जीवन की आवश्यकताओं को कहां तक पूरा करते हैं?

32. क्या आप विश्वविद्यालय और अन्य सार्वजनिक निकायों, जो औद्योगिक, वाणिज्यिक, व्यावसायिक, नगरपालिका संबंधी या सरकारी हों, के बीच सौहार्द्रपूर्ण संबंध व सहयोग को बढ़ावा देने की विधि सुझा सकते हैं?

33. औद्योगिक तथा वाणिज्यिक जीवन व नगर-उत्थान द्वारा विश्वविद्यालय और इसकी

कार्यप्रणाली के बीच निकट संबंध हेतु क्या उपाय अपनाए जाने चाहिएं?

34. प्रौढ़ शसनेतर (नान कॉलीजिएट) जनसंख्या की शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय के योगदान का विस्तार और उद्देश्य क्या होगा? इस दिशा में विश्वविद्यालय किस प्रकार विस्तार व्याख्यान, अवकाश के दौरान शिक्षण एवं अन्य उपायों का आयोजन करेगा?

VI. विश्वविद्यालय और सरकार का संबंध

(प्रश्न 35)

35. भारत सरकार और बंबई सरकार के बंबई विश्वविद्यालय तथा अन्य नए खुलने वाले विश्वविद्यालयों के बीच संबंध कैसे होने चाहिएं? और यह भी कि जो नया विश्वविद्यालय खुल सकता है,उसके संबंध इन संस्थाओं से क्या होंगे? वर्तमान कुलपति के अधिकार और भारत सरकार की विश्वविद्यालय के वित्त, विधान, विश्वविद्यालय के अधिकारियों और शिक्षकों की नियुक्तियां तथा विश्वविद्यालय के निकायों की सदस्यता को नियंत्रित करने के लिए कुलाधिपति व सरकार की वर्तमान शक्तियों में क्या संशोधन आप आवश्यक समझते हैं? विश्वविद्यालय का निदेशक, सार्वजनिक अनुदेश और प्रभारी शिक्षा मंत्री के साथ यदि हों तो किस प्रकार के संबंध हो सकते हैं?

VII. पाठ्यक्रम

(प्रश्न 41-44)

41. क्या आप विभिन्न विश्वविद्यालयीक परीक्षाओं के लिए वर्तमान में निर्धारित विषयों और पाठ्यक्रम से सामान्यत: संतुष्ट हैं? यदि नहीं, तो आपके मत में क्या परिवर्तन होने चाहिएं?

42. क्या आप सामान्य और विशेष पाठ्यक्रमों में (क) पूर्णत: या (ख) बड़े अंतर का समर्थन करते हैं? इस प्रकार का अंतर महाविद्यालय और विद्यार्थियों को किस प्रकार प्रभावित करेगा?

43. क्या आप कला-पाठ्यक्रमों से विज्ञान को पूरी तरह हटाने का अनुमोदन देंगे? क्या आप विज्ञान के अध्ययन में से साहित्य और कलाओं के वर्तमान अलगाव का अनुमोदन करेंगे?

44. क्या आप स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधियों के वर्तमान पाठ्यक्रमों के बारे में ऐसा समझते हैं कि वे पर्याप्त विकल्पों से मुक्त हैं और उनमें अध्ययन पाठ्यक्रमों के संतोषजनक समुच्चयों व सह-संबंधों का प्रावधान है?

IX. मातृभाषा का प्रयोग

(प्रश्न 45-46)

45. आपके विचार में किस स्तर और कितनी मात्रा में मातृभाषा को अंग्रेजी के स्थान पर (क) किसी भी नवगठित विश्वविद्यालय में शिक्षा और परीक्षा का माध्यम बनाया जा

सकता है और बनाया जाना चाहिए? इस संबंध में आप कौन सी पद्धति अपनाएंगे कि इस प्रतिस्थापन से विद्यार्थियों द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी का आवश्यक स्तर गिरने न पाए?

46. आप इस प्रांत की मातृभाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा देने की सर्वोत्तम विधि और मातृभाषा में सभी प्रकार के साहित्य के प्रस्तुतीकरण को बढ़ावा देने के बारे में क्या सोचते हैं?

XIII. विशेष समुदाय

(प्रश्न 52)

52. क्या आप किसी विशेष समुदाय में विश्वविद्यालय-शिक्षा के प्रचार हेतु कोई विशेष उपाय करना चाहेंगे?

डा. भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखित साक्ष्य

(प्रश्न-1): मैं इंग्लैंड में शिक्षा मंडल के निरीक्षकों के इस मंतव्य से सहमत हूं कि विश्वविद्यालय-शिक्षा का उद्देश्य व कार्य ऐसे होने चाहिएं,जिनसे पता चले कि वहां दी जाने वाली शिक्षा वयस्कों के लिए उपयुक्त है, कि यह अपने चरित्र में वैज्ञानिक, निष्काम और पक्षपात रहित हो, कि इसका उद्देश्य विद्यार्थी के मस्तिष्क में केवल तथ्य और सिद्धांतों को भरना नहीं होना चाहिए अपितु उसके व्यक्तित्व और मानसिक स्थिति को सुदृढ़ करने वाला होना चाहिए, कि यह विद्यार्थी को प्रधान सत्ताधारी के समीक्षात्मक अध्ययन का आदी बनाती है तथा उसके मस्तिष्क में एक संपूर्णता का स्तर बनाती है, और उसे कठिनाई की दिशा से जूझते हुए सत्य तक पहुंचने का अर्थ देती है। इस प्रकार प्रशिक्षित विद्यार्थी यह अंतर करना सीख जाता है कि सही ढंग से तथ्यपूर्ण मामला क्या है और मात्र विचारपूर्ण मामला क्या है। उसे मूल प्रश्नों के विभेद की जानकारी आनी चाहिए और बिना किसी पूर्व प्रचलित सिद्धांत के प्रत्येक प्रश्न को गुणों के अनुसार जानने की क्षमता पैदा होनी चाहिए। उसे सही व सहानुभूतिपूर्वक ढंग से उन बातों को जानना चाहिए जिनके बारे में व्यावहारिक निष्कर्षों को वह तीव्रतापूर्वक विरोध करता रहा है। उसमें किसी सुझाई गई बात के परीक्षण की योग्यता होनी चाहिए और उसे त्यागने और स्वीकार करने से पहले उसके प्रतिफल को जानना चाहिए। अनिवार्यतः एक मौलिक विद्यार्थी बनने के बजाए उसे उन स्थितियों के प्रति अंतदृष्टि प्राप्त हो जानी चाहिए जिनमें मौलिक अनुसंधान किया जा रहा है। उसे तथ्यों को पहचानना आना चाहिए, उनका अनुगमन करना और तर्क-विर्तक के आधार पर विवेचना करना तथा अपनी नैतिकता स्थापित करना आना चाहिए।

मुझे इस बात का कोई कारण नजर नहीं आता कि बंबई प्रांत में विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य और कार्य भिन्न-भिन्न क्यों हो? विद्यार्थियों के गुण के आधार पर ये बनते हैं और यह कहा जाना चाहिए कि इस प्रांत में विश्वविद्यालय शिक्षण की वर्तमान पद्धति विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य और कार्यों को चरितार्थ करने में पूरी तरह से असफल रही है।

प्रश्न 2: संभव है इस असफलता के पीछे थोड़ा अनुदेशकों का उत्साह और पद्धतियां, थोड़े शिष्य और थोड़ी वह शिक्षा जिम्मेदार है,जो विश्वविद्यालय आने से पूर्व विद्यार्थी पाते हैं। मेरे विचार में, असफलता का मुख्य कारण विश्वविद्यालय का प्रशासनिक एवं शैक्षिक ढांचा है। इससे पहले कि एक विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय–शिक्षा के उद्देश्य और कार्यों को पूरा करने की स्थिति में आए, उसका प्रबंध इस प्रकार होना चाहिए कि वह वास्तव में एक ऐसी ज्ञान–स्थली बन सके जहां विद्वतजनों का मनुष्यों के प्रशिक्षण के लिए और ज्ञान की उन्नति और विस्तार हेतु साहचर्य भाव से परिश्रम करे। इन अभ्युक्तियों के प्रकाश में यह कहना स्पष्ट होगा कि बंबई विश्वविद्यालय सही मायने में विश्वविद्यालय नहीं है। यह विद्वतजनों का संघ नहीं है। यह मनुष्य को दीक्षित नहीं करता और यह प्रत्यक्षत: ज्ञान की उन्नति और विस्तार में रुचि नहीं लेता है। दूसरी ओर बंबई विश्वविद्यालय अपने प्रशासनिक और शैक्षिक ढांचे के कारण एक ऐसा विश्वविद्यालय बन गया है, जैसा उसे नहीं होना चाहिए। यह प्रशासकों का संघ हो गया है। यह बस उम्मीदवारों की परीक्षा से संबंधित है, जबकि ज्ञान की उन्नति और विस्तार इसकी रुचि–क्षेत्र से बाहर हैं।

प्रश्न 3: बंबई विश्वविद्यालय ने इस प्रांत में विविध समुदायों में इतिहास और संस्कृति के लिए परस्पर प्रेम और सहानुभूति के ज्ञान का प्रचार नहीं किया है। केवल परीक्षा लेने वाला विश्वविद्यालय,जो इस बात से कोई संबंध नहीं रखता कि ज्ञान के प्रति प्रेम उत्पन्न हो, इस उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता और मुझे ऐसा लगता है कि सफलता का एक ही मार्ग है और वह यह कि सबसे पहले इस विश्वविद्यालय को एक शिक्षण विश्वविद्यालय में परिवर्तित करें।

प्रश्न 4–7: मैं स्वयं को इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देने की स्थिति में नहीं पाता हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि विश्वविद्यालय का स्तर बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उच्च विद्यालयों से उसे किस प्रकार की 'सामग्री' प्राप्त होती है। सही स्तर की मानसिकता पाना प्रत्येक विश्वविद्यालय की समस्या है। पर मैं यह नहीं समझ सकता हूं कि एक विश्वविद्यालय को उच्च विद्यालयों की शिक्षा पद्धति का नियमन करने का अधिकार क्यों प्राप्त हो,ताकि वह उनमें आने वाले विद्यार्थियों के मानसिक स्तर को कायम कर सकें। मुझे एक भी ऐसे विश्वविद्यालय का पता नहीं है,जिसने इस उत्तरदायित्व को लिया हो। सभी विश्वविद्यालय अपनी प्रवेश परीक्षा आयोजित करते हैं, जहां वे अपने परीक्षा पत्रों द्वारा अपेक्षित विद्यार्थियों का चयन करते हैं। मैं नहीं समझता कि बंबई विश्वविद्यालय को इससे अधिक और क्या करने के लिए कहा जाए।

प्रश्न 8–10: मेरे विचार में बंबई विश्वविद्यालय को एक शिक्षण विश्वविद्यालय में परिवर्तित करने के किसी भी प्रयास में दो भिन्न समस्याएं आएंगी। वे हैं (1) इसे एक शिक्षण विश्वविद्यालय में कैसे बदला जाए और (2) इसके शिक्षण की व्यवस्था कैसे हो? पहली

समस्या पर मैं तब विचार करूंगा जब प्रश्न 30-40 पर आऊंगा। यहां मैं दूसरी समस्या पर विचार करूंगा। 1857 के समावेशन अधिनियम में विश्वविद्यालय को शिक्षण कार्यों का उत्तरदायित्व लेने की अनुमति हेतु कोई प्रावधान नहीं रखा गया था। 1904 के अधिनियम में पहली बार 'विद्यार्थियों के अनुदेश हेतु प्रावधान बनाने' के उद्देश्य (अन्यों के मध्य) से समावेश किए गए विश्वविद्यालय के रूप में व्याख्या किया गया,यह एक ऐसा वाक्य है,जिससे यह ध्वनित होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों से कार्य कराया जाए। सभी पुराने विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय आयोग के इस परामर्श को स्वीकार करते हैं कि विश्वविद्यालय एक अध्यापन संस्था के रूप में अपना अस्तित्व बनाए और उच्चतर शिक्षा का प्रावधान न करे। इसके परिणामस्वरूप आज हम पाते हैं कि स्नातक-पूर्व शिक्षण स्नातकोत्तर शिक्षण से अलग कर दिया गया है। इसमें से पहले शिक्षण का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालय और दूसरे शिक्षण का उत्तरदायित्व महाविद्यालयों द्वारा लिया गया है।

स्नातकोत्तर और स्नातक-पूर्व परीक्षण के बीच ऐसे किसी भी विभाजन हेतु मैंने पूरी तरह विरोध किया है। मेरे कारण इस प्रकार हैं-

(1) स्नातकोत्तर कार्य और स्नातक-पूर्व कार्य में अलगाव का अर्थ होता है,अनुसंधान से शिक्षण का अलगाव। किंतु यह स्वाभाविक है कि जहां अनुसंधान शिक्षण से अलग कर दिया जाता है,वहां अनुसंधान को हानि होती है। इस विषय में लंदन में विश्वविद्यालय शिक्षा पर 1911 के आयुक्तों द्वारा भली-भांति विचार किया गया है:

> 69. शिक्षण निस्संदेह प्रारंभिक कार्य में प्रमुख रहेगा और अनुसंधान उच्च स्तरीय कार्य के संदर्भ में प्रमुख रहेगा। किंतु यह विश्वविद्यालय के सर्वोपरि हित की बात होगी कि वहां के विशिष्ट आचार्य स्नातक-पूर्व के ही शिक्षण में भाग लेना प्रारंभ कर दें। अपने विश्वविद्यालयी जीवन के प्रारंभ से ही कनिष्ठ विद्यार्थियों के संपर्क में आने से ही शिक्षक अपने विषय के संकल्पन को उन्हें समझा सकता है और अपनी विधियों के अनुसार उन्हें प्रशिक्षित कर सकता है। इससे उसे दो लाभ होंगे, एक तो वह अनुसंधान के लिए सर्वोत्तम विद्यार्थियों का चयन कर सकेगा और दूसरे उनसे सर्वोत्तम कार्य ले सकेगा। इसके अतिरिक्त यह शिक्षक का व्यक्तिगत प्रभाव होगा कि कोई व्यक्ति अपने विषयों में मौलिक कार्य करे तो वह उसे प्रेरणा दे, उसे उत्साहित करे और उसमें शिष्यत्व की भावना जगाए। उसका व्यक्तित्व ऐसी चयनात्मक शक्ति होती है,जिससे जो उस विशेष कार्य के लिए योग्य हैं,वे स्वैच्छिक रूप में नाम लिखा देते हैं और उनका व्यक्तिगत प्रभाव उस मनोवृत्ति से पुनर्प्रस्तुत और विस्तृत होता है,जो अपने स्टाफ को प्रेरित करती है। यह कुछ ऐसे विद्यार्थियों की ही बात नहीं जो अकेले लाभ उठाते हों, सभी ईमानदार विद्यार्थी अपने उन शिक्षकों के सहयोग से अपार लाभ प्राप्त करते हैं,जो उन्हें स्वतंत्र और मौलिक सोच के कार्य का कुछ मार्ग दिखाते हैं। हैल्महोल्तज़ कहते हैं 'कोई भी

व्यक्ति जो एक बार प्रथम श्रेणी के एक या अनेक व्यक्तियों के संपर्क में आया हो,तो जीवनपर्यंत उसका संपूर्ण मानसिक स्तर बदला रहता है।' भाषणों का उपयोग अभी समाप्त नहीं हुआ है और पुस्तकें कभी भी पूरी तरह से जीवंत मौखिक शब्द का स्थान नहीं ले सकतीं। वे उस प्रयोगशाला और संगोष्ठी में अधिक आभ्यंतर शिक्षण का थोड़ा स्थान ले सकती हैं,जो विश्वविद्यालय शिक्षा के सामान्य पाठ्यक्रम की सीमा से बाहर नहीं हो और जिसमें एक विद्यार्थी न केवल अपने कार्य की पुष्टि में पुस्तकों से प्राप्त निष्कर्षों और कारणों का ज्ञान प्राप्त करता है अपितु विकासशील चिंतन की वास्तविक प्रक्रिया तथा अत्यंत प्रशिक्षित और मौलिक मस्तिष्क की कार्यप्रणाली भी सीखता है।

70. यदि यह माना जाए कि विश्वविद्यालय के उच्चस्तरीय शिक्षक स्नातक पूर्व कार्य में भी हिस्सा लें और वहां उनकी चेतना उन्हें प्रभावित करे,तो उन्हीं आधारों पर यह स्वीकार करना होगा कि उन्हें स्नातकोत्तर कार्य के स्तर पर पहुंचने पर अपने विद्यार्थियों की अच्छाई से वंचित नहीं रखना चाहिए। इस कार्य को विश्वविद्यालय के शेष कार्यों से अलग नहीं किया जाना चाहिए और भिन्न संस्थाओं में विविध शिक्षकों द्वारा इसे संचालित किया जाना चाहिए। जहां तक शिक्षक का संबंध है, यह आवश्यक है कि उसके अधीन स्नातकोत्तर विद्यार्थी होने चाहिएं। वह स्वयं भी मौलिक कार्य करता है और प्राय: उच्च स्तरीय विद्यार्थियों के सहयोग से शोध संबंधी सामग्री प्राप्त करता है। उनकी सभी कठिनाइयां परामर्शों से युक्त होती हैं और उनका विश्वास और उत्साह ताजगी (ऊर्जा) और शक्ति का मुख्य स्रोत (साधन) होता है। वह उस कल्पना लोक और प्रमाद से भी बचा रहता है,जो एकाकी कार्यकर्त्ता पर भी अधिकार जमा लेते हैं। विश्वविद्यालय के आचार्यों का कोई प्रश्न नहीं हो सकता,अन्यथा विश्वविद्यालय की संपूर्ण स्थिति का यहां शिक्षकों की उच्चतर कक्षा के बजाए ह्रास होगा। दूसरी ओर, उच्च श्रेणी का एक विश्वविद्यालय शिक्षक स्वाभाविक रूप से अपने उन स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को रखना चाहेगा, जिन्हें उसने पहले से अपने ही ढंग से तैयार किया है, हालांकि उसकी प्रयोगशाला या संगोष्ठी दूसरे विश्वविद्यालय से आए विद्यार्थियों के लिए है। इनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं,जो किसी विश्वविद्यालय से न आए हों और कुछ लंदन विश्वविद्यालय के अन्य शिक्षकों के विद्यार्थी हो सकते हैं। व्यापक स्तर पर परस्पर विचार-विनिमय की भावना विकसित होनी चाहिए और विद्यार्थी को एक ही विषय पर एकाधिक शिक्षकों के अधीन अध्ययन करते हुए लाभार्जन करना चाहिए। परंतु यह उच्चतर कार्य से निम्नस्तर को अलग करने से संबंधित पूरी तरह से भिन्न बात है। विश्वविद्यालय के उपाचार्य पदों के लिए उत्तम लोगों का मिलना हमारे विचार में संभव नहीं है। यदि आचार्यों को उच्चतम कार्य करने के लिए किसी भी रूप में रोका जाए या उत्तम विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिए उन्हें अपनी ख्याति को फैलाने में बाधा

पहुंचाई जाए।

71. विश्वविद्यालय के स्नातक पूर्व विद्यार्थियों के लिए यह बड़ी बुरी स्थिति है कि स्नातकोत्तर विद्यार्थी दूसरी संस्थाओं में भेज दिए जाएं। इन विद्यार्थियों को हमेशा उनके संपर्क में होना चाहिए,जो इनके मुकाबले अधिक अग्रवर्ती कार्य कर रहे हैं तथा जो इनसे बहुत अधिक पीछे भी नहीं हैं और जो आदर्श प्राप्त करने के लिए प्रेरणा और साहस दे रहे हैं।

कम से कम मेरी दृष्टि में उच्च अनुसंधान कार्य के लिए विनाशक परिणाम उसे शिक्षण कार्य से अलग करने में दिखाई देता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि बहुत से भारतीय विद्यार्थी,जो लंदन विश्वविद्यालय और अन्य विश्वविद्यालयों से स्नातकोत्तर उपाधियां लेकर वापस आते हैं, इस रूप में असफल होते हैं कि उन्हें विषय का पूरा ज्ञान नहीं हो पाता। यद्यपि उन्हें शैक्षिक कार्य क्षेत्र में सर्वोच्च पद प्राप्त हो जाते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि उनका स्नातक-पूर्व प्रशिक्षण उच्च अनुसंधान कार्य के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त था। समिति को याद होगा कि स्नातकोत्तर प्रशिक्षण अपने आर्विभाव और संकल्पन में बहुत आधुनिक है। कैंब्रिज और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों में ऐसे अनेक व्यक्ति थे,जिन्होंने बहुत परिश्रम से श्रेष्ठकार्य किया,हालांकि इन विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर विभाग नहीं थे। यहां तक कि आज भी आक्सफोर्ड, कैंब्रिज और लंदन विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर विभागों के अध्यक्ष वे व्यक्ति हैं,जो केवल स्नातक हैं और इतने पर भी वे भली-भांति स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को अनुसंधान कार्य में निर्देशन दे रहे हैं और विश्व के सभी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं इसका कारण यही है कि उनका स्नातक-पूर्व प्रशिक्षण बहुत ऊंचे स्तर का था। इसलिए, मैं इस बात पर बल देना चाहता हूं कि विश्वविद्यालय यदि स्नातकोत्तर कार्य की ढोस विधि की संरचना के निर्माण का इरादा रखता है,तो उसे स्नातक-पूर्व छात्रों के शिक्षण को भी अपने कार्य क्षेत्र में लेना चाहिए।

(2) दूसरी बात यह है कि विश्वविद्यालय द्वारा अपने स्टाफ के माध्यम से स्नातकोत्तर स्तर पर प्रशिक्षण हेतु प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व लेने पर यह संभावना हो सकती है कि इससे विश्वविद्यालय शिक्षकों के कारण महाविद्यालयों के उन शिक्षकों की क्षमता पर उल्टा प्रभाव पड़े,जो यह समझते हैं कि उनके स्तर को महाविद्यालय की औपचारिक एवं स्थायी सीमाओं द्वारा अकारण ही घटाकर एक निम्नस्तरीय कार्य में बदल दिया है।

(3) तीसरी बात यह है कि स्नातकोत्तर कार्य के लिए विश्वविद्यालयों के आचार्यों की नियुक्तियां और उनका कार्य विश्वविद्यालय के संसाधनों का मात्र दुरुपयोग है और इसे महाविद्यालयों के संसाधनों के समुचित उपयोग से सहज ही दूर किया जा सकता है। हमारी विश्वविद्यालयीन शिक्षा विधि में महाविद्यालय ही एकमात्र शिक्षा प्राप्ति के स्थान हैं। किंतु इस समय वे अलग-अलग निकायों की परिसंपत्ति हैं और उनका प्रबंध अलग-अलग शासी

निकायों द्वारा होता है। किसी महाविद्यालय द्वारा प्राप्त आय उसकी अपनी ही निधि में जाती है। यदि आवश्यक खर्चों के उपरांत अधिशेष राशि बचती है,तो वह उनकी निधि को ही समृद्ध करती है। प्रत्येक महाविद्यालय औरों की तरह एक जैसे विषयों को पढ़ाता है और इसलिए इसे एक लघु विश्वविद्यालय कहा जाता है। वह सभी विषय पढ़ा सकने वाले योग्य शिक्षकों को रखकर गौरवान्वित होता है। अपने उपयोग के लिए अलग पुस्तकालय तथा प्रयोगशाला की व्यवस्था भी करता है। यह महाविद्यालय स्वायत्त होने पर भी आर्थिक रूप से प्रथम श्रेणी के अपेक्षित स्टाफ को रखने में बहुत समर्थ नहीं होते। महाविद्यालय के शिक्षक अपने सीमित संसाधनों के कारण असुविधा और कार्याधिक्य का अनुभव करते हैं। अधिक विषयों को पढ़ाने का दायित्व लेने के कारण विशिष्ट योग्यता असंभव हो जाती है और एक महाविद्यालय का आचार्य इन परिस्थितियों के रहते न तो विकास का अवसर पाता है और न ही अपने विस्तृत विषय की किसी छोटे पक्ष का अध्येता बनने का अवसर प्राप्त करता है। स्वायत्त और आत्मनिर्भर महाविद्यालयों की इस पद्धति के अपरिहार्य परिणामस्वरूप हमने बेचारे आचार्यों, असक्षम पुस्तकालयों और असक्षम प्रयोगशालाओं को इधर-उधर बिखेर दिया है। लेकिन, चूंकि वर्तमान संसाधन तब अपर्याप्त प्रतीत होते हैं,जब विद्यालय के आर्थिक स्रोत संबद्ध रूप से समझे जाते हैं या विविध महाविद्यालयों के बीच बांट दिए जाते हैं; यह नहीं समझना चाहिए कि महाविद्यालय के कुछ संसाधन बंबई विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर एवं स्नातक-पूर्व शिक्षण का मुकाबला करने के लिए पूरी तरह पर्याप्त नहीं हैं। उदाहरण के लिए अर्थशास्त्र शिक्षण के उद्देश्य हेतु बंबई शहर में स्थित महाविद्यालय के संसाधनों को लिया जा सकता है।

बंबई शहर में निम्नलिखित महाविद्यालयों में बंबई विश्वविद्यालय के बी. ए. पाठ्यक्रम हेतु अर्थशास्त्र में प्रशिक्षण का प्रावधान है:

(1) एल्फिंस्टन महाविद्यालय, (2) विल्सन महाविद्यालय, (3) सेंट जेवियर महाविद्यालय और (4) सिडेनहम महाविद्यालय। एल्फिंस्टन महाविद्यालय में दो व्यक्ति, दो विल्सन महाविद्यालय में, दो सेंट जेवियर में और संभवतः छह सिडेनहम महाविद्यालय में अर्थशास्त्र की शिक्षा देते हैं। कुल मिलाकर बंबई शहर में बारह व्यक्ति अर्थशास्त्र के शिक्षण में रत हैं। मुझे विश्व में ऐसे किसी भी महाविद्यालय की जानकारी नहीं है, जिसके पास एक विषय के शिक्षण हेतु इतने अधिक व्यक्ति कार्यरत हों, फिर भी आचार्यों का समूह मात्र अच्छे संगठन के अभाव में क्षीण हो गया है। विश्वविद्यालय ने इस क्षीणता को रोकने के बजाए वर्तमान समूह में दो अतिरिक्त आचार्यों को नियुक्त कर लिया है।

हालांकि यह स्वाभाविक है कि यदि ये महाविद्यालय अपने शिक्षण और पुस्तकालय

संसाधनों के पूल बना सके, तो इससे न केवल प्रभावशाली विशेषज्ञ आचार्यों का लाभ उठाया जा सकेगा,अपितु इससे ऐसे आचार्यों का लाभ मिल सकेगा,जो स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर कार्य दोनों का शिक्षण कर सकें और इस प्रकार अर्थशास्त्र की दो विश्वविद्यालयीन नियुक्तियों संबंधी विश्वविद्यालय संसाधनों का अपव्यय रोका जा सकेगा। इसके लिए और कुछ नहीं करना होगा,सिवाय इसके कि इन 12 व्यक्तियों को परस्पर जोड़ दिया जाए। विश्वविद्यालय की अर्थशास्त्र संबंधी गतिविधियों के पालन हेतु और सभी विद्यार्थियों को उस पाठ्यक्रम संबंधी भाषण देने हेतु सहमति हो और इस बात का विचार किए बिना कि वे किन महाविद्यालयों में पंजीकृत हैं। बंबई शहर के महाविद्यालयों में अन्य विषयों के शिक्षण में भी यही योजना आसानी से अपनाई जा सकती है।इस योजना के मार्ग में संभवत: एकमात्र कठिनाई विद्यार्थियों को एक महाविद्यालय से दूसरे महाविद्यालय में इन भाषणों को सुनने के लिए जाने की है। यह कठिनाई आसानी से दूर की जा सकती है। मैं यह कहना चाहूंगा कि राजनीतिशास्त्र विषयक सभी भाषण सिडेनहम महाविद्यालय में दिए जाएं। दर्शन और मनोविज्ञान विषयक सभी भाषण विलसन महाविद्यालय में दिए जाएं तथा साहित्य और भाषाएं संबंधी सभी भाषण एल्फिंस्टन महाविद्यालय में दिए जाएं।इस व्यवस्था से विद्यार्थियों की महाविद्यालयों में बार-बार की भाग-दौड़ पूरी तरह कम की जा सकेगी। महाविद्यालयों को विषय-विशेष के व्याख्यान-सदन के रूप में घोषित कर देना चाहिए और व्याख्यान अपने-अपने महाविद्यालयों के आधार पर रहते हुए आपस में समान स्वरूप वाले दलों का निर्माण करें। महाविद्यालय जिस विषय में शिक्षा दे रहे होंगे,उन विषयों के लिए कमरे होंगे जिनमें विषय-विशेष पर संबद्ध महाविद्यालयों के पुस्तकालय का हिस्सा होगा।

मैं स्वीकार करता हूं कि विश्वविद्यालय एक केन्द्रीकृत संस्था हो और यदि एक नया विश्वविद्यालय खोलने की योजना हो,तो यह संबद्ध महाविद्यालयों के संघटक के रूप में कार्य करने वाले विश्वविद्यालय की भांति हो। किंतु यह भी स्वीकार करना होगा कि विश्वविद्यालय केवल प्रसारण माध्यम नहीं हो सकते और जहां पर महाविद्यालयीन स्तर की कुछ संस्थाएं बन रही हों, उन्हें सामान्यत: संस्था के केन्द्रीयकरण की सफलता के प्रचार हेतु बंद नहीं किया जा सकता। इस योजना के अंतर्गत न तो मैंने विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर को प्रस्तुत किया है और न ही महाविद्यालयों की स्वायत्तता में क्षति को रेखांकित किया है। प्रशासनिक स्तर पर महाविद्यालय स्वतंत्र बने रहते हैं। केवल शैक्षिक स्तर पर वे विश्वविद्यालय के अभिन्न अंग बन जाते हैं। संक्षेप में यह स्थिति आक्सफोर्ड और कैंब्रिज विश्वविद्यालय के समान हो जाती है,जहां विश्वविद्यालय महाविद्यालय का समूह है और महाविद्यालयों से विश्वविद्यालय बनता है,ऐसे संगठन से अधिकांश वर्तमान महाविद्यालय बनते हैं और इससे अपव्यय को समाप्त किया जाता है।

प्रश्न 25: विश्वविद्यालय शिक्षा को संयोजित करने से संबंधित मेरी योजना केवल उन

केंद्रो के लिए लागू होती है,जहां महाविद्यालय बहुत ही निकट स्थित हों। यदि इस योजना को बड़े स्तर पर लागू किया गया,तो पहला काम यह करना होगा कि महाविद्यालय पास-पास स्थापित करके उनकी स्थिति को नियंत्रित किया जाए। दूसरे शब्दों में, यह आवश्यक है कि महत्वाकांक्षी शिक्षाविदों को सभी प्रकार से अविकसित शहरों में व्यक्तिगत स्वायत्त महाविद्यालय खोलने से रोका जाए। जब कोई ऐसे अलग और बिखरे महाविद्यालयों को अस्तित्व में बनाए रखने से होने वाले अपव्यय, दोहराव और मूर्खतापूर्ण मनोरंजन की बात करता है, तब हमें आश्चर्य होता है कि ऐसी अराजक स्थिति को अब तक बर्दाश्त किया गया। मैं बंबई प्रांत के लिए इसे बहुत सौभाग्यशाली मानता हूं कि इन अलग-अलग महाविद्यालयों की वृद्धि अब तक उस तरह से और उस स्तर पर नहीं हो पाई है,जैसे बंगाल में। किंतु यदि विश्वविद्यालय शिक्षा का स्तर बनाए रखना है,तो बिखरे हुए महाविद्यालयों की स्थापना को समाप्त करने के लिए तत्काल कदम उठाए जाने चाहिए। इस उद्देश्य के लिए मैं इस प्रांत में विश्वविद्यालय शिक्षा के केंद्रों का निर्धारण करूंगा और किसी अन्य स्थान पर किसी भी महाविद्यालय के खोलने की अनुमति नहीं दूंगा। मेरे विचार में निम्नलिखित स्थान विश्वविद्यालय शिक्षा के वास्तविक या संभावित केंद्रों के रूप में चिन्हित किए जाने चाहिए:

1. बंबई
2. पूना
3. अहमदाबाद
4. सूरत (संभावनाशील)
5. कराची
6. हैदराबाद (संभावनाशील)
7. धारवाड़ (संभावनाशील)
8. सांगली (संभावनाशील)
9. नासिक (संभावनाशील)
10. अमालनेर (संभावनाशील)

विश्वविद्यालय शिक्षा केन्द्रों के रूप में परिभाषित होने के पश्चात दूसरा कार्य यह होगा कि उन स्थानों पर शिक्षण की व्यवस्था हो। उपरोक्त अधिकांश विश्वविद्यालय केंद्रों में अब तक केवल एक ही महाविद्यालय है,जो कला विषयक शिक्षा दे रहा है। केवल बंबई और पूना में निकट साहचर्य में महाविद्यालय स्थित हैं। वहां विश्वविद्यालय शिक्षा की समस्या विभागों में अलग-अलग महाविद्यालयों के शिक्षकों के क्रम-परिवर्तन और मिलान द्वारा आसानी से सुलझाई जा सकती है।

जिन केंद्रों पर अभी तक केवल एक-एक ही महाविद्यालय है,वहां विश्वविद्यालय की शिक्षा संबंधी समस्या दो तरह से सुलझाई जा सकती है (1) एक विशेष विषय के शिक्षण के लिए वर्तमान महाविद्यालय के समीप ही नए महाविद्यालय खोलने की अनुमति देकर या (2) वर्तमान महाविद्यालय को एक विश्वविद्यालय मानकर और इसे अध्ययन के नए विभाग खोलने की अनुमति देकर। पहली योजना अधिक सफल लगती है। किंतु दूसरी योजना कार्यक्षमता के आधार पर अधिक आकर्षक होगी। प्रांत के विभिन्न भागों में इधर-उधर बिखरे

हुए महाविद्यालयों की शैक्षिक मांगों को पूरा करने के बजाए इस नीति को स्वीकार करके प्रांत के अन्य भागों में अन्य विश्वविद्यालयों की शैक्षिक मांगों को पूरा करने में समर्थ होंगे। इससे संभव है,हम एक आदर्श केन्द्रीयकृत विश्वविद्यालय का लक्ष्य प्राप्त न कर सकें,किंतु कम से कम एक ऐसे जीवंत विश्वविद्यालय की उपलब्धि हो सकती है,जिसके साथ प्रांत में विश्वविद्यालय से उन सभी महाविद्यालयों को,जो बहुत निकट स्थित हैं, बौद्धिक सहयोग में परस्पर मिलने की भावना का विकास किया जा सकता है।

प्रश्न 28: इस समय बंबई और पूना ही ऐसे स्थान हैं,जहां विश्वविद्यालयों का विकास हो सकता है और मेरा सुझाव है कि इन दोनों स्थानों पर तत्काल अलग-अलग विश्वविद्यालय स्थापित कर दिए जाएं। निकट भविष्य में अहमदाबाद को भी विकसित किया जाए। वहां पहले से ही एक कला महाविद्यालय और एक विज्ञान संस्थान है और उसे बड़ी सरलता से विश्वविद्यालय में बदला जा सकता है। जिन केंद्रों का ऊपर उल्लेख किया गया है,वहां विश्वविद्यालयों की स्थापना के विचाराधीन बंबई, पूना और अहमदाबाद के तीन विश्वविद्यालय लंदन विश्वविद्यालय की तरह ही हो सकेंगे,जहां अन्य महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को अपनी परीक्षाएं देने पर उपाधियां मिल सकेंगी।

यदि इस प्रांत में भावी विश्वविद्यालयों की स्थापना केन्द्रीयकृत संस्थाओं का रूप ले लें,तब इन प्रश्नों पर उठाई गई समस्याएं समाप्त हो जाएंगी। उस स्थिति में विश्वविद्यालय अपने शिक्षकों और शिक्षण प्रबंध पर पूरा नियंत्रण रखेगा। किंतु मैं यह मानूंगा कि हमारे भावी विश्वविद्यालय अपनी व्यवस्था में स्वतंत्र संबद्ध महाविद्यालयों के समूह रूप में हों। किसी भी रूप में यह बंबई और पूना के नए विश्वविद्यालयों में होगा। संबद्ध महाविद्यालयों की योजना के अंतर्गत महाविद्यालय विश्वविद्यालय द्वारा मान्य शिक्षा देने के अधिकारी होंगे। इस रूप में अंतर महाविद्यालयीन शिक्षण की योजना से संबद्ध महाविद्यालयों द्वारा दोहरा अपव्यय और संसाधनों का दुरुपयोग समाप्त हो सकेगा। परंतु इसके साथ यह भी सोचना होगा कि क्या ये प्रबंध विश्वविद्यालय शिक्षा के उच्च स्तर को कायम रख सकेंगे। यह विश्वविद्यालय शिक्षा देने के लिए नियुक्त शिक्षकों के स्तर पर निर्भर करता है। इस समय शिक्षक महाविद्यालयों से संबद्ध हैं और उनका वेतन तथा स्तर महाविद्यालय के शासी प्राधिकारियों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। परंतु ऐसा नहीं लगता कि महाविद्यालय बहुत योग्य व्यक्तियों को नियुक्त करते हों या उनके स्तर, अवधि, वेतन और पदोन्नति को इस रूप में नियंत्रित करते हों,जिससे स्टाफ के उत्तम और बहुत योग्य सदस्य के रूप में उनके सामने एक सुंदर भविष्य खुलता हो। सरकार द्वारा निर्धारित सारा शैक्षिक कार्य तीन स्तरों में शैक्षिक सेवाओं को दिया जाता,जिसमें सभी प्रशासनिक और निरीक्षण अधिकारी, सरकारी महाविद्यालयों और विद्यालयों के अत्यधिक जिम्मेदार वे कनिष्ठ सभी शिक्षक शामिल हैं। सभी सेवाओं में वरिष्ठता का सिद्धांत गंभीरता से जुड़ा हुआ है। इस कारण यह बहुत अच्छी

परंपरा ही बन गई है कि सारे उच्च पद वरिष्ठता के आधार पर दिए जाएंगे। जहां तक विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रश्न है,इस पद्धति की मुख्य कमी यह है कि पारितोषिक विद्वता के आधार पर न होकर केवल दीर्घ सेवाकाल के आधार पर निर्धारित होते हैं। महाविद्यालय के शिक्षकों की, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किए जा सकने की शर्त से युक्त होते हैं,जैसा कि सरकारी सेवारत सदस्यों के मामले में होता है, महाविद्यालय के प्रति वह निष्ठा और आज्ञापालन भावना नहीं हो सकती,जो अपनी सेवा में होती है और कभी-कभी अपनी उस महत्वाकांक्षा में जिसमें वह सेवा के दौरान पदोन्नति प्राप्त करते हैं इससे उनके द्वारा शिक्षा का वह स्तर नहीं बन पाता,जिससे उनका नाम जुड़ा हुआ हो और परिचित हो सके। इस सेवापद्धति की दूसरी कमजोरी है,आई. ई. एस. और पी.ई.एस. के बीच किया गया,आपत्तिजनक विभाजन,जिसमें शिक्षण क्षेत्र में एक बहुत कनिष्ठ सदस्य भी अपने आपको वरिष्ठ तथा महत्वपूर्ण समझने लग जाता है। इससे अलगाव का तत्व उपस्थित होता है,जो महाविद्यालय के शिक्षकों के बीच परस्पर मैत्रीपूर्ण, स्वतंत्र और सहयोगी वातावरण में बाधा पहुंचाता है,जो किसी भी शैक्षिक संस्था के बौद्धिक जीवन को बढ़ावा देने के लिए अनिवार्य और अंत में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान अवस्था में सरकारी महाविद्यालयों के आचार्य सरकारी सेवा में होने के कारण अपने विद्यार्थियों का विश्वास खो चुके हैं। विद्यार्थी अपने आचार्यों को अपने बौद्धिक नेता के रूप में सम्मान करने के बजाए सरकार के अभिकर्ता समझते हैं और आचार्य अपने विद्यार्थियों से कोई विशेष सम्मान प्राप्त नहीं कर पाते, उनकी सद्भावना को जीतने का प्रयास भी नहीं करते। मिशनरी संस्थाओं द्वारा संचालित महाविद्यालयों में स्टाफ के प्रमुख सदस्य यूरोप के मिशनरी होते हैं। शेष स्टाफ में भारतीय शिक्षक होते हैं। वहां आई.ई.एस. और पी.ई.एस. का विभाजन छोटे स्तर पर ही होता है हालांकि वह किसी स्पष्ट मतभेद को महत्व नहीं देता। सोसाइटी द्वारा संचालित प्राइवेट महाविद्यालयों में जैसे 'दक्कन एजूकेशन सोसाइटी' के स्टाफ के सभी सदस्य सोसाइटी के सदस्य हैं। यहां का स्टाफ अधिक आत्मीय संबंधों से युक्त होता है और उससे संगठन में कोई मतभेद नहीं होता। परंतु इन महाविद्यालयों का संविधान ऐसे नियुक्त शिक्षकों को सोसाइटी का आजीवन सदस्य बनने से रोकता है,जो उन्हें नियंत्रित करती हैं। मैं यह बहुत निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि इन प्राइवेट महाविद्यालयों द्वारा दिया जाने वाला भविष्य कैसा है,परंतु यह निश्चित है कि सरकारी महाविद्यालयों में निम्नतम श्रेणी से तुलना करने पर भी वे निम्न स्तर के होते हैं और वे वास्तव में इतने निम्न स्तर के हैं कि आधुनिक योग्यता वाले व्यक्तियों को आकर्षित नहीं कर पाते,जबकि निष्काम भावना के द्वारा उसे बनाया जा सकता है। इसके बावजूद इन सब में अरुचि का एक बहुत बड़ा भाग भी होता है। किंतु यह केवल प्राइवेट महाविद्यालय ही नहीं है,जो सही व्यक्तियों से अपने रिक्त पदों को भरने में असफल होते हैं। यहां तक कि सरकारी महाविद्यालय भी अपने सर्वोतम प्रयासों के

बावजूद कभी-कभार ही उचित व्यक्ति नियुक्त करने में सफल रहते हैं । इसका एक कारण यह है कि उनके पास चयन की कोई न्यायोचित पद्धति नहीं है। सरकारी महाविद्यालयों के मामले में निदेशक, सार्वजनिक अनुदेश या सरकार का सचिव नियुक्त करते हैं,किंतु वास्तव में इस प्रकार की नियुक्तियों के लिए वे पूरी तरह अदक्ष व्यक्ति होते हैं। इसी प्रकार प्राइवेट महाविद्यालयों की नियुक्तियां भी महाविद्यालयों के अध्यक्षों द्वारा होती हैं,जो सही नियुक्ति करने में असमर्थ होते हैं। दोष इस बात में है कि एक व्यक्ति की नियुक्त जिस विषय में की जा रही है,उसे नियुक्त करने के लिए उस विषय का अधिकारी नहीं है। जबकि होना यह चाहिए कि एक अर्थशास्त्री ही अर्थशास्त्री की नियुक्ति करे।

हालांकि इन कठिनाइयों व कमियों के बावजूद अभी ऐसा कोई संभावित उपाय दिखाई नहीं देता,जिसके आधार पर विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों के आपसी संबंधों के स्तर पर इसके सदस्यों या इनके वितरण के संबंध में स्टाफ की भर्ती हो सके जो विश्वविद्यालय की आवश्यकता को पूरा हो सके। विश्वविद्यालय अपने पास एक ही विषय के कम से कम आधा दर्जन आचार्यों की नियुक्ति करता है,जबकि दूसरे महत्वपूर्ण विषय की एक भी नियुक्ति नहीं होती। विश्वविद्यालय संगठन इस आधार पर नहीं चलाया जा सकता है और जो कठिनाइयां ऊपर कही गई हैं,वे केवल विश्वविद्यालय द्वारा ही नियुक्तियां अपने हाथ में लेने के साथ दूर हो सकती हैं,जो शैक्षिक परिसर 'देखें नए विश्वविद्यालय का संविधान' से पास हों या कम से कम नियुक्तियों में विश्वविद्यालयों को अपना दृष्टिकोण रखने और मत देने का अवसर दिया जाए।

इसलिए मैं प्रस्तावित करता हूं कि शैक्षिक सेवा की महाविद्यालयीन शाखा को प्रशासनिक शाखा से अलग कर देना चाहिए और इसे सीधे ही उचित संरक्षण सहित विश्वविद्यालय के अंतर्गत कर दिया जाए। दूसरे शब्दों में, विभिन्न महाविद्यालयों में शिक्षकों के पदों को कुछ संस्थाओं से संबद्ध व समर्थित विशेष शिक्षा पीठों में बदल दिया जाए जैसा कि वर्तमान मामले में प्राइवेट और सरकारी महाविद्यालय द्वारा किया गया है परंतु इन पीठों की नियुक्तियां विश्वविद्यालय की देखरेख में होनी चाहिए।

मैं शैक्षिक वर्ग की नियुक्ति के संदर्भ में विश्वविद्यालय के नियंत्रण को बहुत महत्वपूर्ण मानता हूं। यहां तक कि बंबई विश्वविद्यालय ने विश्वविद्यालय शिक्षा का एक स्तर परीक्षा की कठोर पद्धति व जांच संबंधी शक्ति के रूप में बनाए रखा है। धीरे-धीरे उसके स्नातकों का स्तर कम होता जा रहा है। यह सिद्धांत रूप से एक बड़ी गलती के रूप में विश्वविद्यालय को प्रारंभ करने वाले बड़े शिक्षाविदों के ऊपर है,जिन्होंने दूसरे स्तरों की खोज न करके केवल यही माना है कि विश्वविद्यालय का शिक्षा स्तर मात्र उन विद्यार्थियों को कठोरता पूर्वक हटाने से संभव है,जो विश्वविद्यालय अध्ययन के लिए अनुपयुक्त है। जबकि वे कई बार इस जड़ परीक्षा पद्धति को केवल मात्र एक आधार नहीं मानते और दूसरी पद्धति से बहुत

योग्य तथा बुद्धिमान शिक्षकों के उस अस्तित्व को महत्व देते हैं,जिनसे अन्य विभाग पूरी तरह से समृद्ध हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है, उन्होंने विश्वविद्यालय स्तर को बनाए रखने के लिए शिक्षक और शिष्य के स्तर को बनाए रखना बहुत आवश्यक नहीं समझा और अब जब कि बंबई विश्वविद्यालय को एक शैक्षिक विश्वविद्यालय में बदलने की बात हो रही है, यह स्पष्ट होना चाहिए कि 'शिक्षण नियंत्रण की शक्ति जांच के उपरांत उपाधियां देने की शक्ति से अधिक महत्वपूर्ण है।'

एक विश्वविद्यालय शैक्षिक विश्वविद्यालय तब तक नहीं बन सकता,जब तक कि शैक्षिक कार्य, यथा शिक्षण और परीक्षा उसके अधिकार क्षेत्र में न हों,जो शिक्षण से संबद्ध हैं। किंतु यह विश्वविद्यालय उपाधि के स्तर हेतु घातक होगा,यदि वह उन शिक्षकों पर निर्भर करे,जिनकी क्षमता पर उसे स्वयं ही विश्वास नहीं है। इसलिए मैं यह प्रस्तावित करता हूं कि विश्वविद्यालय को महाविद्यालयों के ऊपर पूरा अधिकार होना चाहिए। महाविद्यालयों को सभी सरकारी अनुदान विश्वविद्यालय के माध्यम से ही मिलने चाहिएं,जिससे विश्वविद्यालय के पास शिक्षकों की नियुक्ति और पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं के लिए सामान खरीदने की दृष्टि से अधिकार होने चाहिएं।

प्रश्न 36-39: यदि एक विश्वविद्यालय को शैक्षिक संगठन के रूप में अपने समाज की सेवा करनी है तब उसके संविधान में (क) एक ऐसे निकाय जो समाज की सब प्रकार की अपेक्षाओं को ध्यान में रखे; (ख) एक ऐसे निकाय,जो विश्वविद्यालय की समस्त शैक्षिक स्थितियों और काम करने की क्षमता को बढ़ावा दे सके,जिससे जनता और विद्वानों के बीच कोई संकुचित दृष्टिकोण न रहने पाए; और (ग) एक ऐसे निकाय,जहां विद्वानों का वर्ग अपने शिक्षण कार्य में लग सके और जो विश्वविद्यालय के शैक्षिक स्तर को आधिकारिक रूप से दिशा-निर्देश दे सके; का प्रावधान अवश्य होना चाहिए।

मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि यह समिति देखे कि एक विश्वविद्यालय तब तक एक शैक्षिक विश्वविद्यालय नहीं बन सकता,जब तक कि वह केवल अपने शिक्षकों द्वारा मात्र शिक्षण कार्य करता है। यह एक शैक्षिक विश्वविद्यालय का स्वरूप नहीं है। एक विश्वविद्यालय शिक्षण देने के बावजूद एक शैक्षिक विश्वविद्यालय नहीं बन पाता। एक विश्वविद्यालय शैक्षिक विश्वविद्यालय है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके द्वारा नियुक्त विद्वान शिक्षक अपने शिक्षण कार्य में लगे हुए तत्संबंधी प्रभावी निदेशन दे सकें। यदि यह उनके अधिकार में है,तो वह विश्वविद्यालय नहीं है। एक शैक्षिक विश्वविद्यालय शिक्षकों का विश्वविद्यालय होता है।

मुझे ये प्रारंभिक टिप्पणियां इसलिए करनी पड़ीं क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि समिति संविधान संबंधी उन प्रश्नों के उत्तर चाहती है,जिनसे वह उन सुझावों पर विचार कर सके जो बंबई विश्वविद्यालय को शैक्षिक विश्वविद्यालय में परिवर्तित करने में सहायक हों। बंबई

विश्वविद्यालय के वर्तमान संविधान में अपेक्षित और स्पष्ट रूप से उन तीन आवश्यक संकायों का प्रावधान नहीं है,जिनका एक शैक्षिक विश्वविद्यालय के रूप में ठीक ढंग से कार्य करने के लिए मैंने उल्लेख किया है। बंबई विश्वविद्यालय की वरिष्ठ परिषद बंबई के जीवन और हितों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं करती। सिंडीकेट के पास वे उत्तरदायित्व और शक्तियां नहीं हैं जो एक बड़े विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद के विकास में योग दे सके और अपने कर्तव्य प्राय: उसे सौंप दें,जिन्हें निभाने के लिए वह पूरी तरह अक्षम है। जब कि शैक्षिक वर्ग,जो वास्तव में विश्वविद्यालय का हृदय होता है; के पास व्यावहारिक रूप में कोई अधिकार नहीं होता, केवल अधिकारी ही विश्वविद्यालय के शैक्षिक मामलों में निर्देश देते हैं।

बंबई विश्वविद्यालयों को एक शैक्षिक विश्वविद्यालय बनाने के संबंध में सबसे पहले मैं निकायों के गठन की बात करूंगा। इस उद्देश्य के लिए बंबई शहर में स्थापित महाविद्यालयों के बीच अंतर महाविद्यालयीन शिक्षण की मेरी योजना स्वीकार की जाए। इस योजना के अंतर्गत महाविद्यालयों में कराया जा रहा विभिन्न विषयों का शिक्षण स्वाभाविक रूप में विभागों में बदल दिया जाएगा,जैसे अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, प्रशासन, विधि, साहित्य, भाषाएं, रसायन शास्त्र, भौतिकी आदि। यह बात स्वीकार करनी होगी कि एक विश्वविद्यालय से विद्यार्थी अपनी अंतिम क्रमबद्ध तैयारी के बाद जीवन के एक या कई क्षेत्रों में काम कर सकें,जो किसी भी अवस्था में विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए, सबसे प्रमुख और प्राथमिक उद्देश्य।

इसमें सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि ज्ञान की उन विभिन्न शाखाओं को एकत्रित करना होगा,जिन्हें विद्यार्थी लेना चाहते हैं। इससे न केवल विद्यार्थियों की मांग ही पूरी होगी, अपितु शिक्षकों की आवश्यकता को भी कुछ दिशाओं में पूरा किया जा सकेगा। यह स्वाभाविक है कि ज्ञान की कुछ शाखाओं में परस्पर गहरा संबंध है और उनके उन दृष्टिकोणों में बहुत समानता है,जहां वे एक-दूसरे के पर्याप्त निकट हैं। यह निकटता शिक्षकों और शिष्यों से प्रकट होगी,जो हर ओर धीरे-धीरे ज्ञान के विविध विभागों के समूह के रूप में संकाय कही जाएगीं। इसलिए यदि हमारे विश्वविद्यालय को एक शैक्षिक विश्वविद्यालय बनाना है,तो मैं सुझाव देता हूं कि नए बंबई विश्वविद्यालय में विभागों को संकायों के रूप में वर्गीकृत कर दिया जाए और संकायों को विश्वविद्यालय संगठन का आधार बनाया जाए। एक संकाय में पूरी तरह से या अधिकांश रूप में संकाय के अंतर्गत आने वाले विषयों के आचार्य और सहायक आचार्य होंगे और अन्य शिक्षक तथा अधिकारी गण इस रूप में विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त किए जा सकते हैं,जैसे कि संकाय सहयोजित करना चाहे। उपकुलाधिपति प्रत्येक संकाय का पदेन सदस्य होगा। एक संकाय के पास निम्नलिखित विनियम बनाने की शक्ति होनी चाहिए-

(1) ऐसी समितियों की नियुक्तियां,जो संकाय में बाहरी व्यक्तियों के साथ अध्ययन

मंडल की स्थापना कर सकें और अन्य उद्देश्यों के लिए कार्य कर सकें;

(2) संकाय के कार्य क्षेत्र में आने वाली उपाधियों, डिप्लोमा और अन्य विशेष योग्यताओं को देने के संबंध में स्थितियों का सामान्यत: निर्धारण;

(3) संकाय के कार्य क्षेत्र में आने वाले विषयों में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा लिए गए अध्ययन पाठ्यक्रम का सामान्यत: निर्धारण;

(4) संकाय के कार्यक्षेत्र में आने वाले विषयों के बारे में शिक्षण व परीक्षा की विधि और पद्धति का सामान्यत: निर्धारण।

मैं फिर यह कहना चाहूंगा कि यदि संकाय को ऊपर उल्लिखित शक्तियां दी गईं और शिक्षकों को एक ही प्रकार के समन्वित पाठ्यक्रम को पढ़ाने की बाध्यता तथा एक सामान्य परीक्षा पद्धति से मुक्त किया गया,तो यह निश्चित करना आवश्यक है कि शिक्षक उस कार्य को पूरा करेंगे,जो उन्हें सौंपा जाएगा।

संकाय विश्वविद्यालय के वैधानिक अंग होने चाहिएं। विश्वविद्यालय के अकादमिक व शैक्षिक कार्य को संभालने वाले संकायों को बनाने के पश्चात हमें विश्वविद्यालय के प्रशासनिक कार्य को संभालने के लिए एक केन्द्रीय शासी निकाय का गठन करना चाहिए। यह निकाय बंबई विश्वविद्यालय की वर्तमान वरिष्ठ परिषद के साथ पत्र-व्यवहार रखेगी,किंतु अपने स्वरूप और संरचना में पूरी तरह से अलग होगी। मेरे विचार में सीनेट विश्वविद्यालय की सर्वोच्च शासी निकाय के अपने स्वरूप में प्रमुखतया अव्यावसायिक होने के कारण एक बड़ी निकाय तो होगी,ही उसमें स्नातकों और शिक्षकों के प्रतिनिधि भी शामिल होंगे। इस प्रकार की सरकारी प्रणाली के लाभ स्पष्ट हैं। एक बृहत सीनेट के माध्यम से उसमें अनेक प्रभावशाली नागरिक हों,जो अपनी व्यक्तिगत क्षमता के कारण उसमें लिए गए हों और नगर, नगरपालिका, प्रशासनिक, वाणिज्यिक, विधिक, वैज्ञानिक क्षेत्र आदि के महत्वपूर्ण हितों को ध्यान में रखने वाले प्रतिनिधि हों, तथा विधान परिषद, विधान सभा और राज्य परिषद के सदस्य विश्वविद्यालय के संपर्क में लाए जाएं और जो समग्र रूप में विश्वविद्यालय तथा जनता के बीच एक तारतम्य बन सकें। इस प्रकार की सीनेट विश्वविद्यालय से अधिकार व सफलतापूर्वक पूरा समर्थन लेने में सक्षम होगी और संपूर्ण शहर विश्वविद्यालय की सफलता के लिए स्वयं को तत्पर रखेगा।

परंतु 1902 के विश्वविद्यालय आयोग ने इस योजना में यह कमी बताई है कि विश्वविद्यालयों की वरिष्ठ सभाएं संख्या में बहुत बड़ी हो गई हैं (1900 में बंबई विश्वविद्यालय की वरिष्ठ सभा में 305 सदस्य थे) और ये सभी शैक्षिक मामलों में समुचित नियंत्रण नहीं कर पा रही हैं। उस आयोग ने यह नहीं समझा कि वरिष्ठ सभा का समुचित कार्य शिक्षा का नियंत्रण करना नहीं था। अपितु विश्वविद्यालय को जनता की विभिन्न अपेक्षाओं से अवगत किए रखना था। ऐसे कार्य होने के कारण ही वरिष्ठ सभा की रचना

व्यापक और वैविध्ययुक्त ही होगी। मैं यह प्रस्तावित करता हूं कि बंबई विश्वविद्यालय की सीनेट में कम से कम 150 सदस्य हों। विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 के अंतर्गत एक बहुत महत्वपूर्ण संशोधन यह किया गया कि सामान्य विद्वानों की संख्या के दो बटा पांच व्यक्ति शिक्षण क्षेत्र से लिए जाएं। पूर्व पद्धति से हटकर आने वाले की अर्हताओं को ध्यान में रखे बिना सम्मानार्थ अध्येतावृत्तियां प्रदान करने को अभिनंदनीय माना गया। परंतु इस प्रस्ताव के आलोक में मैं संकायों को बहुत अधिक सांविधिक शक्तियां देने के पक्ष में हूं। मैं नहीं समझता कि विश्वविद्यालय के शिक्षक सीनेट में बहुत अधिक प्रतिनिधित्व की आवश्यकता रखते हैं,बल्कि प्रत्येक संकाय के पास एक प्रवक्ता उपलब्ध कराना पर्याप्त है। इसलिए मैं प्रस्तावित करता हूं कि संकाय अध्यक्षों के लिए शिक्षकों के प्रतिनिधित्व को रोका जाए। सीनेट का शेष भाग राजनीतिक या व्यावसायिक क्षेत्र के व्यक्तियों से बनाई जाए शिक्षा में रुचि विश्वविद्यालय को वास्तविक सेवा देगी।

सीनेट का प्रमुख कार्य विधि-निर्माण होगा-

1. विश्वविद्यालय शासन को प्रभावित करने वाली संविधियां बनाना और संकल्प पारित करना,
2. सभी मानद उपाधियां प्रदान करना,
3. संबद्ध महाविद्यालयों या विश्वविद्यालय के विभागों में प्रवेश के लिए अनुमोदन देना,
4. कोई भी नई उपाधि, डिप्लोमा या प्रमाणपत्र प्रारंभ करना,
5. संकायों के बीच के विवादों का निर्णय करना।

एक तो विश्वविद्यालय का शासन देखने के लिए और दूसरे इसके शैक्षणिक कार्य व्यापार की देखभाल के लिए, दो निकायों के प्रबंध के पश्चात अब हमें एक तीसरे निकाय की व्यवस्था करनी है,जो लक्ष्य प्राप्ति के लिए साधनों के प्रावधान एवं उनके समायोजन के कार्य से युक्त होगा। दूसरे शब्दों में, विश्वविद्यालय की एक केंद्रीय कार्यकारिणी अवश्य होनी चाहिए। यह निकाय बंबई विश्वविद्यालय के वर्तमान सिंडीकेट की तरह तो हो, किंतु अपने स्वरूप एवं संरचना में उससे पूर्णतः भिन्न हो। अपनी संरचना और कार्य की शर्त, दोनों ही रूपों में सिंडीकेट सभी विश्वविद्यालय के निकायों में सबसे कम संतोषजनक है। सर्वोच्च कार्यकारिणी होने के नाते सिंडीकेट के अधिकार में सामान्य मुहर एवं उसका उपयोग, विश्वविद्यालय के संपूर्ण राजस्व व संपत्ति का प्रबंध तथा (अन्य रूप में प्रदत्त को छोड़कर) विश्वविद्यालय के सभी मामलों का संचालन होना चाहिए। परंतु इसके बजाए सिंडीकेट के कार्य व्यापार को अति विस्तृत क्षेत्र में फैला दिया गया है, जिसका अधिकांश भाग सुविधापूर्वक अन्य एंवं अधिक उपयुक्त निकायों को सौंपा जा सकता है। कथित कार्यकारिणी में वर्तमान पद्धति तथा सुविचारित निर्णय करने के बजाए बहस करने के कार्य पर ही केंद्रित रही है। इसलिए मेरा यह प्रस्ताव है कि लेखामंडल को समाप्त किया जाए तथा इसके कार्य

सिंडीकेट को हस्तांतरित कर दिए जाएं, जिसे निम्नलिखित बातें निर्धारित करने का अधिकार होगा-

(1) विश्वविद्यालय का वित्त, निवेश एवं लेखा।

(2) विश्वविद्यालय में वसूल की जाने वाली विश्वविद्यालय से प्राप्त विशेष सुविधा के उपभोग संबंधी राशि और शुल्क का भुगतान।

(3) आचार्य, शिक्षक, कुलसचिव, पुस्तकालयाध्यक्ष और स्थायी कर्मचारियों सहित विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों की नियुक्ति, पदावधि एवं कार्यालय से निष्कासन, कर्तव्य, परिलब्धियां, भत्ते, वेतन एवं सेवानिवृत्ति, भत्ते की शर्तें एवं रीति।

(4) कर निर्धारकों, परीक्षकों व परीक्षा मंडल की पदावधि और नियुक्ति की शर्तें एवं रीति।

(5) अध्येतावृत्ति, छात्रवृत्ति, पुरस्कार, पारितोषिक, धन संबंधी तथा सहायता के अन्य प्रावधान एवं अवधि।

(6) विद्यार्थियों के निवास हेतु भवन, छात्रावास एवं अन्य परिसर का प्रबंध, रख-रखाव और पर्यवेक्षण।

(7) विश्वविद्यालय के स्नातक-पूर्व के रूप में विद्यार्थियों का प्रवेश।

(8) विश्वविद्यालय की वास्तविक एवं निजी संपत्ति के लेन-देन को देखना।

(9) विश्वविद्यालय के कार्य को जारी रखने के लिए भवन, परिसर, फर्नीचर एवं अन्य आवश्यक साधनों की व्यवस्था करना।

(10) विश्वविद्यालय के लिए धन उधार लेना और आवश्यक होने पर विश्वविद्यालय की संपत्ति को बंधक रखना।

(11) विश्वविद्यालय की ओर से संविदाओं में हिस्सा लेना, उन्हें परिवर्तित करना, पूरा करना एवं रद्द करना।

(12) विश्वविद्यालय के ऐसे पदाधिकारी, आचार्य, शिक्षक वर्ग, स्नातक, स्नातक-पूर्व और कर्मचारी जिन्हें सीनेट के किसी कार्य के अलावा किसी अन्य प्रकार से दुख पहुंचा हो, की किसी भी शिकायत पर विचार करना, निर्णय देना और उपयुक्त समझे तो उसका सुधार करना।

(13) संबद्ध महाविद्यालयों में सरकारी अनुदान का नियमन करना।

वरिष्ठ सभा, सिंडीकेट और संकाय इन तीनों निकायों की स्थापना समाशन अधिनियम द्वारा की जानी चाहिए तथा ये तीनों परस्पर एक बड़े शैक्षिक विश्वविद्यालय के सभी आवश्यक साधनों की आपूर्ति करने में सक्षम हैं। परंतु बंबई विश्वविद्यालय के लिए एक और निकाय की आवश्यकता प्रतीत होती है, विशेषकर उस सुनिश्चित लंबे संक्रमण काल

के लिए जो विश्वविद्यालय शिक्षण के केंद्र में रहने वाले मूल महाविद्यालयों के विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होने से पहले होगा और जिसके निलंबित होने पर वे महाविद्यालय प्रांत के एक या दूसरे नए शैक्षिक विश्वविद्यालय से ही जुड़े रहेंगे। परंतु यदि इस संक्रमण काल के लिए प्रावधान बनाने की समस्या नहीं भी हो,फिर भी किसी बड़े शैक्षिक विश्वविद्यालय के प्रबंध हेतु एक चौथे निकाय की आवश्यकता अनुभव की जाती।

मेरे द्वारा प्रस्तावित संगठन की योजना न्यूनाधिक रूप में सत्ता के विभाजन सिद्धांत पर आधारित है। वैधानिक सत्ता का केंद्र वरिष्ठ सभा है। कार्यकारी सत्ता का केंद्र सिंडीकेट और शैक्षिक सत्ता का केंद्र संकाय है। किंतु यदि ये विभिन्न केंद्र शक्तियों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से बिना किसी समन्वय के करेंगे,तो इसका परिणाम विश्वविद्यालय के सर्वोत्तम हित के लिए घातक होगा। संकाय को विश्वविद्यालय संगठन के आधार रूप में लिया गया है और इसे अध्ययन पाठ्यक्रम निर्धारित करने, उसके पठन-पाठन का प्रबंध करने तथा परीक्षा संबंधी कार्यों में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की गई है। परंतु उन सभी विषयों को नियंत्रित करने के लिए, जिनका अधिकार, स्पष्ट रूप से संकायों को नहीं सौंपा गया है; एक से अधिक संकायों को प्रभावित करने वाले मामलों का निपटान करने और एक-दूसरे संकायों के बीच विवाद खड़ा होने पर अंतिम निर्णय लेने के संबंध में; प्रावधान अवश्य बनने चाहिएं। न केवल संकायों के समन्वय हेतु एक निकाय की आवश्यकता है, अपितु सिंडीकेट एवं संकायों के समन्वय के लिए भी एक निकाय की आवश्यकता है, अन्यथा अपनी कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग द्वारा सिंडीकेट संकायों की शैक्षणिक स्वंतत्रता में गंभीर रूप से हस्तक्षेप कर सकता है। धन पर नियंत्रण का अर्थ अंततः सभी वस्तुओं पर नियंत्रण है। इसलिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संपूर्ण शैक्षिक वर्ग के प्रतिनिधि मंडल के साथ सलाह किए बिना सिंडीकेट ऐसा कोई भी कार्य नहीं करेगा,जिसका विश्वविद्यालय पर सीधा शैक्षिक प्रभाव पड़ता हो। इस प्रकार चाहे वह संक्रमण काल की विशिष्टता के रूप में हो अथवा विश्वविद्यालय संगठन की स्थायी विशेषता के रूप में हो, समावेशन अधिनियम में एक चौथे निकाय की स्थापना की स्पष्ट आवश्यकता है। मेरा प्रस्ताव है कि उस निकाय को विद्या परिषद के नाम से पुकारा जाए। इसके कार्य अंशतः परामर्शदात्री और अंशतः कार्यकारी होंगे।

इसके कार्यकारी क्रियाकलापों में, विनिमय द्वारा निर्धारित या अन्य प्रकार से वे सभी मामले शामिल होंगे,जिनका संबंध निम्नलिखित से है-

(1) संकाय की अथवा संकायों द्वारा नियुक्त किसी भी समिति की बैठकों के लिए आवश्यक कोरम।

(2) किसी भी शैक्षिक मामले से संबंधित निकाय या अन्य किसी विश्वविद्यालय के साथ इस विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से गठित मंडल सहित सलाहकार एवं अन्य मंडलों के अधिकार एवं कर्तव्य।

(3) विश्वविद्यालय द्वारा दी जाने वाली सम्मानार्थ उपाधियों और विशेष योग्यताओं के लिए अर्हताएं और इन उपाधियों को देने के संबंध में अपनाए जाने वाले उपाय।

(4) संबद्ध महाविद्यालय का निरीक्षण।

(5) महाविद्यालयों की संबद्धता एवं असंबद्धता।

(6) अध्येतावृत्ति, छात्रवृत्ति, प्रदर्शनी और आर्थिक तथा अन्य सहायता की अवधि।

(7) स्नातकों एवं स्नातक-पूर्वों के बारे में विश्वविद्यालय के अधिकार क्षेत्र में आने वाले अनुशासन का लागू किया जाना।

(8) सीनेट में हुई अपील के परिप्रेक्ष्य में स्नातकों एवं स्नातक-पूर्वों को विश्वविद्यालय की सदस्यता से वंचित करना, उपाधियों, डिप्लोमा, प्रमाणपत्रों, विशेष योग्यताओं की वापसी। विद्या परिषद के सलाहकारी कार्य इस प्रकार होंगे:

(1) विद्या परिषद से रिपोर्ट देने के लिए आग्रह किए बिना और उस रिपोर्ट की प्राप्ति के बिना, स्नातक-पूर्व एवं स्नातकोत्तर दोनों वर्गों की विश्वविद्यालयीन शिक्षा के संगठन, सुधार और विस्तार से संबंधित किसी भी विषय पर सिंडीकेट कोई भी निर्णय नहीं लेगा।

(2) विद्या परिषद से रिपोर्ट देने के लिए आग्रह किए बिना और उस रिपोर्ट की प्राप्ति के बिना सिंडीकेट संकायों के लिए सामान्य निर्देश जारी नहीं करेगा या किसी अन्य संकाय की अपील पर वह किसी संकाय समिति या मंडल के कार्य की, ऐसे निकायों के पदाधिकारी या प्रतिनिधि के निर्वाचन को छोड़कर, समीक्षा नहीं करेगा या उसे भविष्य के कार्य के लिए निदेश भी नहीं देगा।

(3) विद्या परिषद से रिपोर्ट देने के लिए आग्रह किए बिना एवं उस रिपोर्ट की प्राप्ति के बिना सिंडीकेट शैक्षिक वर्ग की कोई नियुक्ति नहीं करेगा।

सीनेट, सिंडीकेट एवं विद्या परिषद की संरचना एवं शक्ति वैसी ही होनी चाहिए,जैसी कि कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने 'न्यू कलकत्ता यूनिवर्सिटी' के लिए प्रस्तावित की है। मैं समझता हूं कि नामों में परिवर्तन करना और अच्छा होगा। नए विश्वविद्यालय की वरिष्ठ सभा को 'कोर्ट' तथा सिंडीकेट को 'स्टेट' के नाम से पुकारा जाना अधिक अच्छा होगा। मैं यह प्रस्ताव भी रखता हूं कि वायसराय को विश्वविद्यालय का कुलाध्यक्ष होना चाहिए।

प्रश्न 16: बंबई विश्वविद्यालय बहुत अच्छी तरह से (क) परीक्षाओं के संचालन, (ख) पाठ्यक्रम के निर्धारण, और (ग) पाठ्य-पुस्तकों के निर्धारण संबंधी कार्यों को पूरा कर रहा है। परंतु ऐसा लगता है कि शिक्षक और शिक्षार्थियों पर पड़ने वाले इस सबके हानिकारक प्रभाव की ओर विश्वविद्यालय ने कभी ध्यान नहीं दिया। विश्वविद्यालय के शिक्षक जिस ढंग से पढ़ाना सर्वोत्तम समझें, उसके लिए उन्हें स्वतंत्रता कैसे प्राप्त हो तथा उन्हें किसी कठिन

पाठ्यक्रम में न बांधा जाए। यह ऐसी समस्या है,जिसे इस समिति द्वारा हल की जाने वाली सभी समस्याओं में सबसे आगे रखना चाहिए। यदि शिक्षकों के लिए स्वतंत्रता प्राप्त हो सकेगी तो विद्यार्थियों के लिए भी स्वतंत्रता आएगी। इस उद्देश्य के लिए विश्वविद्यालय के शिक्षकों का, समुचित पूर्वोपायों के साथ ही, अपने विद्यार्थियों की शिक्षा एवं परीक्षा पर संपूर्ण नियंत्रण होना चाहिए और इस कार्य को संभव बनाने के लिए विश्वविद्यालय को भी उसी प्रकार संस्थापित करना होगा।

प्रश्न 17: परीक्षा के अतिरिक्त, महाविद्यालयों में विद्यार्थियों के अन्य कार्यों पर भी विचार करना चाहिए। उच्चतर उपाधियों के लिए शोध-प्रबंध और मौखिक परीक्षाएं भी होनी चाहिए।

प्रश्न 18 और 19: बंबई विश्वविद्यालय को संपूर्ण विश्वविद्यालय बनाने के लिए इसमें अभियांत्रिकी, कृषि, ललित कलाएं, प्रौद्योगिकी और संगीत के भी संकाय होने चाहिए।

प्रश्न 20: स्नातकोत्तर उपाधियों के लिए अध्ययन-अवधि चार वर्ष की होनी चाहिए (ऐसा मैं केवल सामाजिक विज्ञानों के लिए बता रहा हूं)। दो-दो वर्षों के दो चरण हों। प्रथम चरण के समाप्त होने पर अभ्यर्थी एम.ए. की उपाधि का हकदार हो जाना चाहिए। उसे अपने अत्यधिक रुचि वाले केवल एक विषय में ही विशेषज्ञता प्राप्त करनी चाहिए। जांच के लिए एक लिखित परीक्षा होनी चाहिए,जिसमें लगभग 75 पृष्ठ का एक टंकित निबंध भी हो,जो मूल स्रोतों के उपयोग करने एवं उस पर आलोचना कर सकने की कला में उसकी दक्षता दिखाता हो। दूसरे चरण की समाप्ति पर अभ्यर्थी पी-एच.डी. की उपाधि का हकदार हो जाना चाहिए। इसकी जांच में मौखिक परीक्षा हो तथा प्रकाशन योग्य बड़े और अच्छे आकार का एक शोध,प्रबंध भी होना चाहिए। एम.ए. में लिए गए सर्वाधिक रुचि वाले विषय के अंतर्गत किसी विशेष क्षेत्र में अभ्यर्थी द्वारा किए गए शोध इसमें शामिल होंगे। इसके अतिरिक्त अभ्यर्थी उन दो विषयों के लिए; जो उसके सर्वोत्तम रुचि वाले तथा कम रुचि वाले विषय से संबंधित होंगे; अपने-आपको एक मौखिक परीक्षा हेतु प्रस्तुत करेगा। यह व्यवस्था विशेषज्ञता को विस्तृत आधार देगी।

प्रश्न 21: इस प्रकार की कुछ उपाधियों का होना अच्छा हो सकता है।

प्रश्न 22: आर्थिक सहायता, छात्रवृत्ति एवं अध्येतावृत्ति के द्वारा।

प्रश्न 23: विश्वविद्यालय मुद्रणालय एवं प्रकाशन विभाग का होना परमावश्यक है। इसके अभाव में स्नातकोत्तर कार्य में बहुत बाधा पहुंचेगी।

प्रश्न 24: प्रश्न 11-13 के उत्तर देखें।

प्रश्न 30: बंबई विश्वविद्यालय को बंबई तक ही स्वयं को सीमित रखना चाहिए। नए विश्वविद्यालय अपने-अपने विभाग खोलें। किंतु यदि नए विश्वविद्यालय की रचना महाविद्यालयों को लेकर करनी है, तब प्रत्येक महाविद्यालय केवल एक विषय पढ़ाने तक

ही अपने को सीमित रखें।

प्रश्न 31–33: प्रश्न 36–39 के उत्तर देखें।

प्रश्न 34: शिक्षा का प्रसार विश्वविद्यालय का एक विशिष्ट कार्य होना चाहिए। किंतु इस लक्ष्य को तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता,जब तक कि विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में देशी भाषा को नहीं अपनाता है, जो कि वर्तमान अवस्था में दूर की बात है।

प्रश्न 35: विश्वविद्यालय के शैक्षिक मामलों पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए। ये पूर्ण रूप से संकायों को सौंप दिए जाने चाहिएं। परंतु विश्वविद्यालय के विधायी एवं प्रशासनिक मामलों पर सरकार का कुछ नियंत्रण होना चाहिए। इसे सरकार को विश्वविद्यालय की 'कोर्ट' एवं सीनेट के मनोनयन द्वारा प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्न 41–44: मुझे इन प्रश्नों को नवगठित संकायों के लिए छोड़ देना चाहिए। मेरे विचार में आनर्स पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को हल्की शिक्षा ही प्रदान करती है।

प्रश्न 45–46: मैं शिक्षा माध्यम के रूप में देशी भाषा के प्रयोग के संबंध में एक सशक्त सकारात्मक दृष्टिकोण रखता हूं। लेकिन मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि इस समस्या का समाधान तब तक नहीं ढूंढा जा सकता है,जब तक कि भारतीय जनता यह निश्चित न कर ले कि सामान्य बोलचाल के लिए, वह किस देशी भाषा को चुनती है।

प्रश्न 52: मैं समझता हूं कि पिछड़े वर्गों और विशेषकर दलितों के मध्य विश्वविद्यालय को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है।

प्रश्नावली के संबंध में अपने उत्तरों को समाप्त करने से पूर्व एक अच्छे पुस्तकालय के निर्माण के प्रति समिति द्वारा दिखाई गई अत्यधिक उदासीनता के लिए मैं आश्चर्य व्यक्त करना चाहूंगा। मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि किसी प्रथम श्रेणी पुस्तकालय की संबद्धता के बिना कोई विश्वविद्यालय कैसे कार्य कर सकता है।

अनुक्रमणिका